

શા. જેઠાભાઈ દામજી તરફથી
પોતાના સ્વર્ગસ્થ કાકા
શ્રીભારમલ મેઘજીના સ્મરણાર્થ

શ્રીમદ્ગોજકવિરચિતા

દ્રવ્યાનુયોગતર્કણા

નામક

પરમોત્તમ ગ્રન્થનૂ ભાષાનુવાદ તૈયાર કરાવવામા

અને

છપાવવામા સહાયતારૂપે

રુ ૩૫૦) સાર્દાત્રણસોની રકમ

રાયચદ્રજૈનગાસ્ત્રમાલાને

અર્પણ કીધી છે

श्री परमात्माने नमः ।

प्रस्तावना



विदित हो कि अनादिकालीन सदात्तम जन धर्ममे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रयके समुदायको मोक्षकी प्राप्तिके प्रति कारणता है । इसमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है । क्योंकि, उसके बिना ज्ञानको और सम्यग्ज्ञानके बिना चारित्रको सम्यक् पदकी प्राप्ति नहीं होती है । वह सम्यग्दर्शन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन षट् द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपको जानकर उसमें श्रद्धान (विश्वास) करनेसे होता है । अतः सिद्ध हुआ कि मोक्षामिलायी जनोंको सर्वतः प्रथम षट् द्रव्योंका ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है । वह ज्ञान अन्तिम द्रव्यानुयोगसे होता है । इसी कारण पूज्य पुरुषोंने द्रव्यानुयोगके ज्ञानकी प्राप्ति सुकवठ होकर की है और इसके अभ्यास करनेवालोंको उत्तम कहा है ॥

प्राचीन आचार्यों और बुद्धिमान् गृहस्थरत्नोंने अपरिमित आपत्तियों और परिश्रमोंको सहन करके परोपकारबुद्धिसे इस विषयके सहस्रों ग्रन्थोंकी रचना की थी । परन्तु विकाराल कलिकालके प्रभावसे जीवोंके आदु, बल, बुद्धि तथा सद्धर्मकी श्रद्धा आदिमे प्रति समय होती हुई मदता, प्रमाद और निपयामिलापिताकी वृद्धि एवं दुष्टोंकी दुष्टता आदिसे उनके ग्रन्थ तो निरादर्शपूर्वक नष्ट होगये और बहुतसे तत्त्वार्थोंदार कुफल और भूखोंके अधिकारमे रहनेसे जीव हो रहे हैं, जिनका कि सूचीके बिना पता भी नहीं लगता । यह अत्यन्त खेदकी विषय है ।

तथापि दिगम्बर संप्रदायमें समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, परमामशकाश, राजनार्त्तिक, श्लोकनार्त्तिक, प्रमेयकमलमातण्ड, न्यायकुमुदचन्द्रोदय, अष्टसहस्री, आसपरीक्षा, पंचाध्यायी मटीक, द्रव्यसंग्रह, त्रयचर, सप्तमगतरिणी आदि और श्वेताम्बर संप्रदायमें समितितर्क, षोडशक, न्याद्वारत्तरत्नाकरात्रतारिका, स्वाद्यादभजरी, तत्त्वार्थाधिगममाप्य आदि अनेक ग्रन्थ जो प्रचारमें आ रहे हैं, उनसे सतोष है ।

श्वेताम्बर संप्रदायके उक्त ग्रन्थोंमे यथाथ नामका धारक यह “द्रव्यानुयोगतर्कणा” नामक शास्त्र भी एक है । इसके कर्त्ता तपोगच्छगगनमण्डलमार्त्तण्ड श्रीनितीसगर्जजीके मुख्य विषय द्रव्यविज्ञाननागर सकलगुणमागर श्रीभोजसागरजी हैं । उक्त महात्माने अपने अत्रारामे किस वसुधामण्डलको गडित किया यह शीघ्रतामें निश्चित न हो सका । समयके विषयमें वाचनमुख्य श्रीवैशेविजयोपाध्यायजीविरचित द्रव्यगुणपर्याय भाषाविवरण अनुसार इस प्रकृत शास्त्रका सम्पन्न करनेमें अनुमान किया जाता है कि क्रि.श. १०१५ के पीछे किसी समय इन्होंने यह ग्रन्थ रचा है ॥

(१) श्वेताम्बर संप्रदायक प्रचलित ग्रन्थाक विशय नाम उपस्थित नहीं थे, इस विषये श्वेताम्बर नाम दि मलाये गये हैं ।

(२) तपोगच्छजी एक दो पञ्चाशी पञ्चाशी गंगा, उसमे भा इनका तथा इनका मुग्धजाका वनन रही मिला ।

(३) इनका नाम सम्प्रदाय का नाम एक विनाश श्वेताम्बरपात्राला है ।

उक्त ग्रन्थमें शास्त्रकार महोदयने सुगमताने मन्दबुद्धि जीवोंको द्रव्यज्ञान होनेके अर्थ “गुणपर्यवद्रव्यम्” इस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रके अनुकूल द्रव्य, गुण और पर्यायोंका ही विशेष वर्णन किया है और प्रसंगवश ‘स्यादस्ति’ ‘साज्ञास्ति’ आदि सप्त भगोका और दिगम्बराचार्यवर्य श्रीद्वेवसेन-स्वामीविरचित नयचक्रके आधारसे नय, उपनय तथा मूलनयोंका भी विस्तारसे वर्णन किया है; जो कि विषयसूचीसे विदित होगा।

वर्तमान संस्कृतानभिज्ञ बुद्धिमान् जीवोंको अतिशय ज्ञानप्रद इस ग्रन्थद्वारा तेरह लाख जैनियोंमेंसे प्रायः तेरह जैनियोंको भी परिपूर्ण लाभ नहीं मिलता हुआ देखकर यथार्थ नामधारक “श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडल वंवाई” के प्रबन्धक चतुर महाशयोंने इस शास्त्रको व्याकरणाचार्य श्रीठाकुर-प्रसादजीशर्मा द्विवेदीके हस्तमें अनुवाद करनेके अर्थ प्रदान किया और उक्त पंडितजीने भी इसका अनुवाद करके उनके मनोरथको सफल कर दिया। परन्तु अनुवादक महाशयके स्थानान्तर होजानेसे इसके संशोधनका भार मंडलके व्यवस्थापक महाशयने मुझको दिया, जो कि मैंने यथाशक्ति किया है। इसमें यदि कोई भूल हुई हो तो पाठकगण क्षमा करें।

इस शास्त्रके संशोधनमें जयपुरस्थ संवेगी साधुवर श्रीशिवरामजी महाराजने अनेक प्रकारकी सहायता दी है, अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अन्तमें परमश्रुतप्रभावकमंडलके सभासदों और व्यवस्थापक शा० रेवाशंकरजी जगजीवनजी जोहरीको धन्यवाद देता हूँ कि जो इस सच्चे धर्मकार्यमें परिश्रम कर जगत्का उपकार कर रहे हैं ॥ इत्यलम्।

स्थान जयपुर शुभमिति }
कार्तिक वदि १२ रविवार }
सं० १९६३ विक्रम. }

संशोधक और निवेदक विनयावनत
पं० जवाहरलाल साहित्यशास्त्री दि० जैन.

ओ नम सिद्धेभ्य ।

उपोद्घात ।



विदितमस्तु समस्तयस्तुवेदकरीतरागचरणशरणमासेदुपामासोदितनिश्वासजुषा हेयोपादेयविदुषा विदुषा प्रति सप्रति यद्वि समीचीनताया प्राचीनतायाश्च निदर्शने जेनदशने सम्यग्दर्शनज्ञानचा रित्रमयगङ्गायसमुदयमेव निखिलकर्मनिमाक्षणलक्षणस्य मोक्षस्य कारणं विधुतमिति । तत्रापि च तत्त्वा र्थश्रद्धान् सम्यग्दर्शनमिति महाशमत्तराध्याधिगमसूत्रानुकूल जीवाजीनाम्बवन्धसवरनिर्जरा मो क्षारयाना सप्ततराना स्वरूपानुरूपश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शनं प्रकृष्टतरं, तेन विना ज्ञानस्य सज्ज्ञान मन्तरा चारित्रस्यासमीचीनत्वाच्च । उक्तेषु सप्ततत्त्वेषु जीवाजीनो मुरयतमौ—अपराणि त्वनयो सयोगजनितानीति च । एतयोर्ज्ञानस्त्वेक एव, अजीन पुनर्धर्माधर्माकाशकालपुद्गलमेदात्यन्धधा । एवमेकेन जीनेन साद्धमजीनस्य पञ्चप्रकाराणां मेलने कृते निष्प्रज्ञा या पदसख्या सैव पद्द्रव्यत्वेन प्रपन्ना सर्वत्र । द्रव्यलक्षणं चाखिलमतविलक्षणं गुणपर्ययवत्प्रमतं वृत्त्या गुणपर्यायसमन्वितानां पण्णा द्रव्याणां परिज्ञानमेव मोक्ष प्रत्यत्यन्तोपयोगीति पर्यवसन्नम् ॥

अत एव च विहितात्तरीन्द्रदुष्यान् द्वयवियोगानां श्रेयोनिनियोगानां प्रथमकरणचरणद्रव्याभिरय चतुरनुयोगानां मध्ये स्याद्वादमानुप्रखरकरप्रकरदूरीकृतैका तथ्वान्तं शुद्धबुद्धैकम्वभानपरमात्मस्वरूप निरूपणसुधासधृतमिथ्यात्वमलमलिनमन्यजनस्वात नितान्तनिचितपरमशुद्धोपयोग चरमद्रव्यापुयोग विशेषेण समनुमनन्ति परिशीलयन्ति चात्मज्ञानप्रसेदिवासो निहास ।

दुःखपारजनिजनिप्रतिसमयविनिर्द्दमाननिनिडा धकारप्रचारसजातैर्जनतामतिमान्धप्रमादानीष्टजनदौ ष्टादिकारणनातैर्निष्टे नष्टप्राये जीणितेऽननधारितसत्त्वे च कलकलापालयनिखिलनिन्मिपपत्यालापस स्तुतसर्गकल्पानल्पयतिपतिपरिकल्पितैर्द्विपयकमिद्धा तसघाते सतिष्ठते निलाधुनापि सुकृतिना सुकृ तैर्दिगम्बरश्वेताम्नारख्ययोरुमयोरेव सप्रदाययोर्मध्ये शतशो अथा इति सतोपासदमिद्भू ।

तेषु चैषा यथार्थनामा द्रव्यापुयोगतर्कणाप्यन्यतमा । अस्या विधाता तपोगच्छमगनमास्तरशीप्रिनी तसागरप्रियाप्रणिष्यो द्रव्यविज्ञानागर सद्गुणसागर श्रीमोजसागर स्त्रजनुषा क्तम वसुधामण्डल मण्डयामामेति निर्णतु नो शङ्कुम् । समयश्चास्य दुर्गरमारमन्मर्दकत्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरिनिर्मिताया स्याद्वादपरिच्छेदिकाया अन्ययोग्यवच्छेदद्वात्रिशिकाया त्रिवधपथाया स्त्रप्रनये विनियोजनात्— श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायमतहिकाविहितद्रव्यगुणपर्यायभाषाविवरणोत्तिार्थमनुसृत्येतद्द्रव्यसङ्ग्र हाच विदमानपञ्चशताच्युत्तरमेव भवेदित्यनुमीयते ।

विज्ञानसस्तुतेऽस्मिन् प्रस्तुते अये गुणपर्ययचन्द्रन्यमितिसूत्रोदितलक्षणानुकूल जीवाजीनादि पद्द्रव्याणां तद्वतिना गुणपर्यायाणां च स्वरूप मन्दमतमनुजावबोधनार्थमनतिविस्मयेण सरलस र्वनेन सुभाष्यप्रमाणं संयोजितं च प्रणीतं अयं कर्त्ता । प्रसंगाभावेका तमनजीनप्रयाणा स्यादस्ति

स्यान्नास्तीत्यादिस्थाणां सप्तमद्धानां दिगम्बराचार्यवर्यश्रीदेवसेनपादविनिर्मितनयचक्राधारतया नयो-
पनयमूलनयानामन्येषामपि बहूनां विषयाणां निरूपणं कृतमस्मीत्येतत्सर्वमग्रे विषयसचीतो ज्ञानं
भविष्यति ।

सर्वहितविहितप्रयत्नस्य चास्य शास्त्ररत्नस्य दुष्प्राप्यत्वात्सर्वजनसौकर्याय श्रीपरमश्रुतप्रभावक-
मण्डलसत्त्वाधिकारिभी रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाद्वारा मुद्रापणे मनोरथं व्यधायि । उक्तमण्डलव्यव-
स्थापकेन श्रीरेवाशंकर जगजीवनाभिधेन श्रेष्ठिवरेण व्याकरणाचार्यपण्डितटालुप्रसादशर्मद्विवेदि-
भिरनुवादं कारयित्वा सत्स्वपि बहुरत्नायां वसुन्धरायां मत्तोऽप्यधिकविद्वत्सु मन्वेवाध्यारोपितोऽस्य सं-
गोधनभारः । प्रेषिते चोभे पुस्तके । एकं च प्रायः शुद्धं पुस्तकं जयपुरस्थसवेगिमाधुप्रवरश्रीशि-
वरामजिदनुग्रहेण लब्धं मया । एवं समुपगते पुस्तकत्रये तदनुसारं ययामति सावधानतया नाति-
शीघ्रतया च संगोधनमकारि । यत्र तत्र शङ्कास्थलेषु च साधुश्रीशिवरामजीप्रभृतिभिरपि साहाय्य-
मवापि । तथापि सप्रति 'सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कश्चन' इति न्यायेन केवलश्रुतकेवल-
नमन्तरा सर्वेषामेवागाधागमवार्धौ प्रस्तुतलनसंभवान्मदीयप्रमादाज्ञानार्थैर्मुद्रणकालीनैरपरैश्च कारण-
कलापैर्मूले यान्मुटयो भवेयुस्तासां शोधनं कृत्वा तद्विषयकसूचनया मागनुगृहीयुस्तत्रभवन्तः सज्जन-
विद्वद्बराः येन द्विरावृत्तौ ता न स्युः क्षन्तव्यश्चाज्ञानादिजनितो ममापराध इति मुहुर्मुहुः प्रार्थयेऽह-
मिति दिक् ।

संशोधको निवेदकश्च विज्ञानुचरो जयपुरस्थः साहित्यशास्त्रीत्युपाधिधारी

जवाहरलालो दिगम्बरीयजैनः ।

अथ विषयसूची ।

वि०संख्या	विषय	प्रा०पृष्ठाङ्क	प्रा०श्लो०	वि०संख्या	विषय	प्रा०पृष्ठाङ्क	प्रा०श्लो०
१	टीसामालाचरण	१	१	२३	जिम द्रव्यके भेद है उसीके एतान्तरको		
२	सूत्रमालाचरण	२	१		प्राप्त होनेपर अभेद हो जाता है		
३	द्रव्यानुयोगिकी प्रस्तासा	३	२		और इसरीतिसे सैकड़ा नयोंका		
४	उपसंहार और प्रथमाध्यायकी समाप्ति	१०	९		उदय होता है, इस प्रकार निरूपण	४९	८
५	द्रव्यका लक्षण	११	१	२४	क्षेत्र आदिसे सप्तभगोंकी उत्पत्ति और		
६	गुण तथा पयायका संक्षिप्त लक्षण	१२			उनका वणन	५०	९
७	द्रव्यक साय गुण और पयायका भेद	१४	३	२५	उपसंहार और चतुर्थ अध्यायकी		
८	सामान्यका निरूपण	१५	४		समाप्ति	५४	१४
९	शक्तिरूप गुणका निषेध	२०	१०	२६	प्रमाण और नयने विषयका निरूपण	५७	१
१०	गुण और पयायकी एकता	२१	११	२७	द्रव्याधिकृतनयके विषयका वणन	५९	२
११	पयायसे भिन्न गुण मानने वालोंके प्रति			२८	पयायार्थिक तयके विषयका निरूपण	६०	३
	दूषण	२२	१२	२९	दोना नय सुगम्यता तथा गौणतासे भेद		
१२	पयायका कारण गुणको माननेवालोंके				और अभेदका निरूपण करते हैं,		
	प्रति दूषण	२२	१२		यह वणन	६१	४
१३	एकनैकस्वरूप तथा आधारधेयभावसे			३०	एक नय एकही विषयको कहता है, ऐसा		
	भेद बल्यना	२३	१४		माननेवालोंके प्रति दूषण	६२	५
१४	आधारधेयभावका दृष्टांत	२६	१५	३१	दिगम्बरमत जाननेके लिये उनके		
१५	उपसंहार और द्वितीयाध्यायकी				मतके अनुसार नयों आर		
	समाप्ति	२७	१६		उपनयोंके वचनकी प्रतिष्ठा	६४	७
१६	द्रव्यादिकम सधया भेद माननेवालोंके			३२	नय, उपनय और मूलतयाकी सख्या	६५	८
	प्रति दूषण	२८	१	३३	द्रव्याधिकृतनयके दस १० भेदोंका वणन	६६	९
१७	यदि कायात्पत्तिके पहले कारणम काय			३४	ज्ञानकी प्रस्तासा और प्रथमाध्यायकी		
	है तो काय क्यों उहीं दीख पड़ता?				समाप्ति	७०	२०
	इस शङ्काका समाधान	३५	८	३५	दिगम्बरमतमें भी गलतका ग्रहण		
१८	नैयायिकका मत और उसका गट्टा	३६	९		करना चाहिये, यह वणन	७८	१
१९	ज्ञानम सधया अवियमान अधरा			३६	पयायार्थिक नयके ८ भेदोंका निरूपण	७९	
	मान माननेवालोंके प्रति दूषण	३८	११	३७	नगमनयके २ भेदोंका वणन	८४	९
२०	उपसंहार और तृतीयाध्यायकी			३८	संग्रह तयके दो भेदोंका वणन	८९	१०
	समाप्ति	४१	१७	३९	व्यवहारतयके दो भेदोंका वणन	९१	१३
२१	“एक द्रव्यमें परस्पर विरोधी भेद और			४०	चतुष्प्रनयके दो भेदोंका निरूपण	९३	१४
	अभेदये दोनों धम नहीं रह सकत”			४१	शब्दनय और गमभिन्नतयका वणन	९८	१५
	इस शङ्काका निराकरण	४३	१	४२	एकभूत नयका वणन आर नय तयोंके		
२२	जहाँ भेद है, वहाँ अभेद नहीं रहना				भेदोंकी संख्या	९५	१६
	एक शङ्काका निराकरण	४७	६	४३	उपसंहार और पञ्चमाध्यायकी समाप्ति	९७	१७

वि०संख्या.	विषय.	प्रा०पृष्ठाद.	प्रा०पृष्ठाद.	वि०संख्या.	विषय.	प्रा०पृष्ठाद.	प्रा०पृष्ठाद.
४४	सद्भूत व्यवहार उपनयका निरूपण.	९८	१	६८	षट् द्रव्योंकि नाम	...	१६५ ३
४५	असद्भूत व्यवहार उपनयका कथन.	१००	४	६९	यमं द्रव्यका वर्णन.	...	१६६ ४
४६	उपचरित असद्भूत उपनयका वर्णन.	१०८	१३	७०	अधमं द्रव्यका कथन.	...	१६७ ५
४७	उपसंहार और सप्तमाध्यायकी समाप्ति.	...	११० १६	७१	धमं द्रव्यमे प्रमाण.	...	१६८ ६
४८	दो मूलनयोंमें प्रथम निश्चयनयका कथन.	...	१११ १	७२	तत्रयमं द्रव्यमे प्रमाण.	...	१६९ ७
४९	द्वितीय व्यवहारनयका निरूपण	११२	३	७३	आक्रान्त द्रव्यका निरूपण.	...	१७० ८
५०	इन नय, उपनय और मूलनयोंका वर्णन दिगम्बरीय नय-चक्रमें देवसेनजीने इसीप्रकार किया है, यह कथन.	...	११५ ८	७४	काल द्रव्यका वर्णन	...	१७३ १०
५१	इस नयविचारमें दिगम्बर और श्वेताम्बर-रोके अर्थभेद नहीं, यह वर्णन.	११६	९	७५	पुद्गल और जीव द्रव्यका वर्णन	...	१८२ २०
५२	दिगम्बर नव नय मानते हैं, इसका खडन.	...	११७ १०	७६	उपसंहार और दशमाध्यायकी समाप्ति.	...	१८३ २१
५३	द्रव्यार्थिकके दश भेद उपलक्षण मात्र हैं, यह वर्णन.	...	१२७ २०	७७	गुणनिरूपणकी प्रतिज्ञा.	...	१८४ १
५४	उपनय भी व्यवहारमें ही अन्तर्गत हो जाते हैं.	...	१२८ २१	७८	दश सामान्य गुणोंका निरूपण.	...	१८५ २
५५	निश्चय और व्यवहारमें जय एककी मुख्यता रहती है, तब दूसरेकी गौणता रहती है, यह निरूपण	...	२२ २२	७९	विशेष गुणोंका वर्णन.	...	१८९ ७
५६	निश्चय तत्त्वार्थको और व्यवहार लोको-क्तिको कहता है.	...	१३० २३	८०	एकादश सामान्य स्वभावोंका कथन	...	१९३ १३
५७	निश्चयका विषय.	...	१३१ २४	८१	उपसंहार और ११ वे अध्यायकी समाप्ति.	...	२०२ २७
५८	व्यवहारका विषय	...	१३२ २५	८२	दश विशेष स्वभावोंका वर्णन.	...	२०४ १
५९	उक्त कथनका संक्षेप.	...	१३३ २६	८३	किस २ द्रव्यमें कितने २ स्वभाव हैं, यह कथन.	...	२११ १२
६०	अष्टमाध्यायकी समाप्ति.	...	१३४ २७	८४	उपसंहार और १२वे अध्यायकी समाप्ति.	...	२१२ १५
६१	एकही पदार्थ उत्पाद, व्यय और भ्रौव्य इन तीन लक्षणोंसहित है, यह निरूपण.	...	१ १	८५	कौन २ से स्वभाव किस २ नयके मतसे हैं, यह वर्णन.	...	२१३ १
६२	उत्पादका वर्णन.	...	१५४ १९	८६	गुण और पर्यायका लक्षण.	...	२११ १७
६३	नाशका वर्णन.	...	१५९ २५	८७	उपसंहार और १३ वे अध्यायकी समाप्ति	...	२२२ १८
६४	भ्रौव्यका निरूपण.	...	१६२ २८	८८	पर्यायका निरूपण	...	२२३ १
६५	उपसंहार और नवमाध्यायकी समाप्ति	...	२९ २९	८९	गुणके विकार ही पर्याय हैं, इस मतका खडन.	...	२३२ १७
६६	द्रव्यका निरूपण करनेकी प्रतिज्ञा	१६४	१	९०	उपसंहार और १४ वे अध्यायकी समाप्ति	...	२३३ १८
६७	द्रव्यपरिज्ञानसे सम्यक्त्वकी शुद्धि	...	२ २	९१	द्रव्यविचार करनेका फल	...	२३३ १
				९२	द्रव्यानुयोगका प्रकाश मैंने किया.	...	२३४ २
				९३	द्रव्यानुयोगके अभ्यासी उत्तम हैं.	...	३ ३
				९४	ज्ञानकी प्रगसा.	...	४ ४
				९५	प्रशस्ति.	...	२३७ ११
				९६	त्रयकी समाप्ति	...	२४० २३

अथ द्रव्यानुरोगतर्कणाया सुद्धिपत्रम् ।

अनुद	सुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
चिन्तयतीतनु	चिन्तयतीतनु	१	१०
जिन भगवान्की तीन अवयवमयी	रक्षणयत्न शरीरके धारक	२	२३
मूर्ति सवापरि विनयकारी है	श्रीजिनेद्र जयवत ह	१	३३
श्रीलक्ष्मीसे	श्री (लक्ष्मी) से	३३	४
(आदिज्ञान)	आदि	३	१२
यागति	जागति	॥	२६
पृच्छानुवाद है	+	॥	३०
वाक्यव्यवहारप्राधान्यम् ।	+	४	१८
(चित्तके प्रणिधान चित्तकी तत्परता)	चित्तकी तत्परता	५	२७
आवश्यक	आवश्यक	६	१७
आवश्यक	आवश्यकआदिरूप जो	॥	२६
श्रमत	श्रमत	७	२३
तत्कक्षाओंके अध्ययनद्वारा सिद्धान्त-रहस्यम	गीताथ तथा गीतार्थनिर्णय इन दोनोंके		
निरुद्धने विहार किया है, अथवा सामा	विवाय निरी तीसरेको श्रीजिनेद्रने		
न्यरूपसे इसमें प्रेम होनेसे जो सिद्धा	साधु नहीं कहा है		
न्तरहस्या गिष्ठ है, इनहीको चित्त के			
ध्याने साधु कहे हैं, न कि अन्यत्र वृत्ताय			
स्थान विहार करनेवाले		८१९ ३१३२१५	
तादृक् नियारहित	तादृक्नियारहित	९	२२
तत्त्ववयवा	तत्त्ववयवा	११	२१
आपेक्षिक जात	आपेक्षिक जात	॥	२३
सत्यमेति	सत्यमेति	॥	२६
इसी प्रकार	इसी प्रकार सब	१	३१
तीन लक्षणयुक्त द्रव्य गुण तथा पर्यायमे	द्रव्य, गुण तथा पर्याय परस्पर भिन्न भी		
त्रिविध (तीन प्रकारके ह और ये तीना	हैं, अभिन्न भी हैं, तीन प्रकारके ह		
कचचित्भिन्न और कचचित्अभिन्न भी ह ।	और त्रिलक्षणसाहित हैं ।	१२ २०१०११२०	
छद्म	छद्म	१३	२३
त्रिविध	त्रिविध ह और त्रिलक्षण	॥	२४
द्रव्य	द्रव्य	॥	२५
(२)	(३)	॥	२९
(३)	(२)	॥	२२
श्वेतदिभ्यश्च	श्वेततादिभ्यश्च	१८	६
मनुभवत्	मनुभवत्	॥	११
ऊपता	प्रथम ऊपता	॥	२९

अशुद्ध.	शुद्ध	पृष्ठ.	पंक्ति.
परोप्रेऽतनो	परोऽप्रेतनो	१८	३०
तदि	तदा	१५	३
द्रव्यमापद्यतेति	द्रव्यमापद्यत इति	"	८
गाभिका	गामिना	"	२४
(उचित वा योग्य)	+	१७	१४
तथाह	तथाहि	"	२५
परिणमिता	परिणता	"	२६
परम्परकारण	परम्पराकारण	१९	७
परियष्टेषु	परिवष्टेषु	"	२८
कार्यकरणोके	कार्यकारणोके	२०	१४
भण्णइ	भण्णइ	२१	२८
गोर्न	गोर्न	२२	४
दोग्धि	दोग्धि	"	"
तदि	तर्हि	२३	४
वदन्ते	वदन्ति	२४	१२
किमिति—	किमिति	"	२१
थयनाम	थयोनाम	"	२६
होना चाहिये	होने चाहिये	२५	३
पर्यायाऽनेके	पर्याया अनेके	"	१८
गुण है सो सहभावी	हो सो सहभावी गुण है	२७	६
पर्याय सो क्रमभावी	हो सो क्रमभावी पर्याय है	"	७
संज्ञा	संज्ञा	"	२५
गुणना	गुणन	"	२८
निःप्रक्रम्पो	निष्प्रक्रम्पो	"	३१
क्योकि जैसे	क्योकि	३०	१
पुनरभेद	पुनर्भेद	"	२१
भावात्स्कन्धा	भावात्स्कन्धा	३१	१९
मान्याष्टगुरुस्त्वमाननात्	मान्योत्कृष्टगुरुस्त्वमननात्	"	२९
परिणमयत्येव	परिणमत्येव	"	३१
भापते	भापसे	३३	१०११
यह एक रूप उससेही है अर्थात्	ये एकरूप ही है इससे	३४	११
आगतः	आगतः	"	२५
लाघवोऽस्ति	लाघवमस्ति	३६	२६
अविद्यामान	अविद्यमान	३७	२३
मन्वप	मन्वय	"	१५
वाह्यमान	वाह्यमान	"	१६

अनुद	उद	पृष्ठ	पक्ष
ऐसा कहना	तथा न कहना	३९	३
पोताकर	धातुकार	"	१५
दृश्यग्राह	दृश्यग्राह	३९	०
नापयितु-	हापयितु	४०	१८
प्रकारकी	प्रकारकी	"	२४
भेद तब	भेदनय	४१	१९
क्याकि ऐसा	तथा यह	४५	१५
ह नही	है ऐसा पूछे हो सो नही,	"	१६
प्रकाशका	प्रकाशके	"	१८
भेद	भेदसे	"	२३
क्याय	क्याय	४६	१६
जन्माह	जन्माह	"	३०
भीत्या	भेदा	"	"
जावा जावा	जीयानीया	४८	२०
स्यादवाच्य एव	स्यादत्तयेव स्यादवाच्य एव	५१	०
चाह	चाँधा	,	२९
क्याय	क्यायाय	५३	२९
"तब स्यात्	तब "स्यात्	५४	१
(बाध)	(बाध) का	७	५
विनाये	सीनाम	५९	२३
आप	तथा	,	२९
अनदको	भेदको	६१	२६
दुनय	दुनय	६	१७
विमुक्तयेन	विमुक्तयेन	,	१९
मुक्त संमिता	धुक्त संमिता	६३	३
अनुत्ता	अनुत्ता	"	८
एव	एव	,	१०
"	,	'	"
तदा भावता	तदाभासता	,	१३
सम युता	समयुता	"	१
दुनया	दुनया	"	२३
त्रिगुण गुण	त्रिगुण गुण	६४	७
क भाषितान्तर	का ज्ञा कतिनय	"	८
कृत्ययन तत्तावत्	तदा कृत्ययन अ. ज्ञातेना कतिनय	,	११
की ६ १	की ६ १		२६
तावत्	तावत्	६५	१३
१ इत्येव तत्तावत् ही २१ तत्तावत्	इत्येव तत्तावत् ही ६ इत्येव तत्तावत्	,	१८

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पङ्क्ति
उनका	उन नयोंका	६५	१९
चाध्यात्माऽपि	चाध्यात्ममपि	,,	२६
दश भेद दिखाकर उन	+	६६	१७
द्वय भव्य	द्वय भव्य	,,	३१
कर्मोपाधि-	कर्मोपाधि-	६७	१७
दोश्च । पा० ४।३।१६२।	दोश्च । पा० ४।३।१६१।	,,	३१
वाह्यकारेण	वाह्याकारेण	६८	२०
अन्तरविद्य-	अन्तर्विद्य	,,	,,
विष्णेया ।	विष्णेया	,,	२२
अविर्भावको	आविर्भावको	,,	२७
कहलाते (द्रव्यप्राण और भावप्राण) दोनों	कहलाते हैं द्रव्य तथा भाव ये दोनों प्राण		
प्राण जिनके हैं वे प्राणी हैं ऐसे जो संसारी	जिनके हैं वे प्राणी हैं संसारी ऐसे जो	,,	२९।३०
मुख्यनयं	मुख्यनयः	७२	१३
कहते	करते	७३	५
भाव्यालयः	भव्यालयः	७६	२९
नवं	भवं	७७	३
घातीया कर्मोंके	घातिया कर्मोंके	,,	२६
शुक्र	शुक्र	,,	,,
विधिवलीवान्	विधिवलवान्	८०	२४
-मुपाधिकानां	-मौपाधिकानां	८२	१३
दृष्टान्त-	दृष्टान्त-	,,	१४
उपाधिक-	औपाधिक-	,,	१७
सापेक्षिकं	सापेक्षकं	८३	९
,,	,,	,,	१४-१५
व्याधयोर्वर्तमाना.	व्याधयो वर्तमानाः	,,	१५
सापेक्षिक	सापेक्षक	,,	१८
-तस्मिन्तदध्यारोप-	-तस्मिन्तदध्यारोप-	८४	३१
धर्मके	धर्मकी	८६	१४
गोत्रकर्म	गोत्रकर्म, नामकर्म	८७	१९
चाचिये	चाहिये	,,	२३
सगृह्यते	सगृह्यते	८९	९
भावप्राणश्चत्वारः	भावप्राणाश्चत्वारः	,,	१५
पञ्चभेदा—	पञ्च भेदा—	,,	१९
पञ्चाक्षलक्षण	पञ्चाक्षलक्षण	,,	,,
विशेष	विशेष	,,	३२
इस लिये उनके	+	९०	१०
उनसे	उन २	९२	५

अउद्ध	उद्ध	पृष्ठ	पक्षि
अग्रनि	समस्त	६२	७
जीन और	जीन और अज्ञाव	"	१४
द्रव्य लाओ वा	द्रव्य लाओ	"	१८
द्रव्याविद्यमानसे	द्रव्यादि विवक्षासे	"	२०
यथोक्ति द्वाब्दे पटभेदसे और कुम्भसे	इष्टिने द्वाब्द भेदसे	६५	१
समा	समा	६६	२३
समा चीन	समा वक्ष्यमाण चीन	६७	८
समूह	समूह	"	१२
समूह	संमूह	"	१५
दिशि-	दिशि-	"	१६
अध्यासकृत	अध्यासकृत	१००	१०
अथ, जयो	अथ — जयो	"	१३
यथाभवेत्	यथा भवेत्	१००	२१
गार-	गार-	१०३	३६
गुणाचारो	गुणाचारो	१०४	२०
प्रतिष्ठान	प्रतिष्ठान	१०५	४
द्वारा	द्वारा	"	६
गुण	गुण	"	८
गुण	गुण	"	१०
पञ्चोपैव सद्व्यवहारो	पञ्चोपैव सद्व्यवहारो	"	१
विशमति	विशमति	"	१२
आर	आर	१०६	५
संगमसिद्ध	संगमसिद्ध जाति	"	२३
भार	भार	१०७	०
गतिज्ञान	गतिज्ञान	"	१८
आगि	आगि	१०८	२३
गन्धधीरी	गन्धधीरी	११०	०
गन्धधीरी	गन्धधीरी	"	५
स्वादादानीं	स्वादादानीं	"	१०
पूरा	पूरा	"	२७
विद्यमान	विद्यमान	१११	१
अज्ञान	अज्ञान	"	२६
अज्ञान	अज्ञान	"	१
अज्ञान	अज्ञान	११२	२६
अज्ञान	अज्ञान	"	२०
अज्ञान	अज्ञान	११३	१६

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पङ्क्ति
द्विःप्रकारः	द्विप्रकारः	११४	५
केवलादिगुणके	केवलादिगुणसे	”	६
तदपि कल्पितत्वादुपचरितम्	सोऽपि कल्पितत्वादुपचरितः	११५	३
संबन्धमिव	सम्बन्ध इव	”	६
समादिष्ट कथितम् ।	समादिष्टाः कथिता.	”	२८
कहा है	कहे हैं	११६	३
समानतत्र	समानतत्रता	”	९
कृत्वान्तरतमना	कृत्वान्तरात्मना	”	२०
“देवसेनजीसे (अन्य	देवसेनजीसे “अन्य	११७	२
अर्थकैकस्य	अर्थकैकस्य	”	२०
पर्यायार्थ	पर्यायार्थ	११८	१५
प्रति व्यक्ति-	प्रतिव्यक्ति-	”	२०
वैसदृश्य-	वैसादृश्य-	”	२२
समभिरूढ	समभिरूढ	१२०	१३
उज्जुसुयस्य	उज्जुसुयस्स	१२२	९
वादीयोका	वादियोंको	”	१६
द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थिक-	”	२९
कोटिप्रकारैरपि तानर्पित	कोटिप्रकारैरप्यर्पितानर्पित	१२३	५
समभिरूढ	समभिरूढ	”	१७
विशेष	विशेष-	”	३१
संग्रहाव्यवहाराच्च	संग्रहाद् व्यवहाराच्च	१२४	१६
इत्यादि	इत्यादि ।	”	१८
पृथिवीकथिकादि-	पृथिवीकायिकादि.	१२५	७
स्वप्रक्रिया	स्वप्रक्रिया	”	१२
नियोजनजीवा	नियोजन जीवा.	”	१३
अजीवश्चैतौ	अजीवश्चैतौ	”	१६
आश्रयः	आस्रवः	”	१७
कहिये	कहने चाहिये	१२६	१
आश्रय आदि	आस्रव आदि	”	”
आश्रय आदिक	आस्रव आदिक	”	३
शुभ बधके कारण पुण्यको	शुभ अशुभ बधके कारण पुण्य पापको	”	१९
पणात्ता	पणत्ता	”	२७
मुल्लङ्घाधिक	मुल्लङ्घाधिक	”	”
स्वसम्पत्क	स्वसम्यक्त्व	”	२९
सूत्रमे	सूत्र	१२७	२
तेन	ते	”	२५
सूत्रे	सूत्रे व्यवहारलक्षण—	”	२६
लौकिकप्रायः”	लौकिकप्रायो व्यवहारः” इति	”	”

अणुद	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
मात्रेण	मात्रैव	१२८	२८
द्वन्द्वन	द्व-द्वन	१२८	२७
नरनैरयमादि	नरनैरयमादि	१२९	१३
गौणतासे उस नयकी अधवोधनशक्ति	×	॥	२०
तथा पुण्डरीकाध्ययनार्थ	पुण्डरीकाध्ययनार्थ	१३१	२३
विद्या	विद्या	१३२	१८
करती है	करती है	॥	२७
प्यधिकान्	प्यधिकान्	१३३	४
इत्यादि अनेक	इत्याद्यनेक	॥	११
सत्येलीके	सत्येऽलीके	॥	१७
देससेन	देवसेनो	॥	॥
भागा	भक्ता	१३४	९
ध्रुवे इवा	ध्रुवे इवा	१३५	५
निनाशै	निनाशै	॥	३१
निनाशै	निर्णाशै	१३६	३
विरोधनाश	विरोधनाश	॥	१०
जगह	जगह	॥	१७
नियततासे	नियततासे	॥	२८
त्रिविधलक्षणप्रस्तुताया	प्रस्तुत त्रिविध लक्षणरा	॥	३१
ध्रुव ही है	ध्रुव ही नहीं है	१३८	१
मीले ध्रौव्य	मीलेध्रौव्य	॥	८
ग्रहण	ग्रहण	१३९	१५
भाणामनिष्टम्	भाणामनिष्टम्	१४०	२६
इष्टु ।	इष्टु है ।	१४१	७
प्रमाणसिद्ध-	प्रमाणसिद्धय	॥	२९
आहतव्या	आदतव्या	॥	३०
-ध्रौव्यानि	ध्रौव्याणि	१४२	२७
अमितरूप	अभिप्ररूप	१४३	७
प्यानसे	यानसे	॥	८
राघवप्रिय (१)	राघवप्रिय नैयायिक	॥	११
नैयायिक नाश	नाश	॥	१२
पुस	पुन	॥	१७
गौरवसत्त्वेन	गौरवत्त्वेन	॥	२९
भक्षणप्रय	लक्षणप्रय	१४४	२
अवतारण	अवतारणा	॥	॥
घटति	घट इति	॥	॥
संमती	संमती	॥	॥

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
नगवातो	नग्धातो	१४७	७
तथा नागके	नाशके	„	२८
कालक्री	कालके	१४८	१
भवदग्रे	भवेदग्रे	„	१७
अपक्षासे	अपेक्षासे	१४९	५
संव	स एव	„	१५
विगेश	विसेस	„	१८
नागक्री	नाशक्री	१५०	१९
अभवका	अभावका	१५२	२८
द्रव्याना-	द्रव्याणा-	१५३	१७
नियमा	नियता	„	२४
नियमकता	नियामकता	„	१९
दविपत्स बहुयाविहोति उप्पापा. ।	दवियत्सबहुयावि होंति उप्पापा ।	„	२१
उप्पापसमाविगमाठिइपस्सुगाओ	उप्पायसमा विगमा ठिइयउस्सुगाओ	„	२२
(तथा उत्पत्तियुक्त)	तथा उत्पत्तियुक्त	१५४	८
आयो विशुद्धो	आद्योऽविशुद्धो	„	१५
अपरिशुद्धो	अपरिशुद्धो	„	२३
परिगतः	परिणतः	१५५	२७
उत्पत्तिसे	उत्पत्ति एकत्व	१५७	२९
संयोगे है	संयोग है	१५८	७
पर्यायतः	पर्ययतः	१५९	२२
पर्यव	पर्यय	„	„
परमाणुना-	परमाणूना-	१६०	२३
संमिता	संमर्ता	१६१	१९
समयप्रमाणमस्ति	समयप्रमाणोऽस्ति	१६२	८
अन्वयानुगम	अन्वयानुगम	„	२१
लक्ष्योक्तम्	लक्ष्यीकृतम्	१६३	९
गुणपर्यायो	गुणपर्याय	„	२५
द्रव्यादीनि	द्रव्यादीनां	१६४	५
मोक्त्वफलाओ	मोक्त्वफलाओ	„	२७
प्रवर्तन्	प्रवर्तमानः	„	२८
धर्मधर्मको अचछा	धर्मधर्मको अच्छा	१६५	१६
प्रदेशार्त्त	प्रदेशार्त्तः	„	३१
स्यात्तिरिक्त्याय	स्यात्तिरिक्त्याय	१६६	१
इयत्तिरिक्त्याय	इयत्तिरिक्त्याय	„	५
जीव इव	जीवद्रव्य	„	८
देवेने	देवने	„	„

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
अपदेशा	अपपेसा	१६६	६
असर्वं तत्त्व और प्रदेशत्व	+	"	२१
अपेक्षा कारण	अपेक्षाकारण	१६७	११
आगोका	आगोका	१६८	१७
काशात्तेनैव	काशात्तेनैव	"	३०
अस्यच	अन्यच	"	३१
निबधनो	निबधनो	"	"
नियामाका	नियामिका	१६९	२९
(द्रष्टुकादिद्रव्य)	(द्रष्टुकादिद्रव्य) की सिद्धि	१७०	२५
—मन्तमेघ	—मन्त एव	१७१	८
—मन्तत	—मन्तत	१७३	१७-१८
मथा नन्त	मथानन्त	"	१८
मुधाराणा	मुधाराणा	१७४	१३
भगवान्नाह गोतम	भगवान्नाह । गोतम	"	१६
वृद्धिके	वृद्धिके	"	२२
आक्षा	आक्ष	१७५	१६
भगवत्ताग	भगवत्ताग	"	२४
भ्रते	भ्रते	"	२५
समहिण्या	समहिण्या	१७६	१
"	"	"	५
वत्तणाह	वत्तणाह	"	६
समहिणी	समहिणी	"	७
दुदादतम्	दुदादतम्	"	१३
व्यवहारे	व्यवहारो	१७७	१५
व्यणवो	व्यणवो	१७८	२
मयीष्टमस्ति	मयीष्टमस्ति	"	६
तावन्त	तावन्त	"	१०
प्रकृतिपतस्य	प्रकृतिपतस्य	१८०	१९
समृद्ध	समृद्ध	"	३१
शेय	शेया	१८२	४
मनुष्य	मनुष्य	"	७
च	च	"	२९
मरुपमगन्ध अवण चयणा	मरुपमगन्ध अवण चयणा	१८३	३

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
सम्यक्त्व	सम्यक्त्व	१८४	२
श्रीनामेय	श्रीनामेय	,,	२८
व्याप्य—	व्याप्य—	१८६	८
समनित्त	समनित्तत्व	१८८	५
सद्व्यंकार उज्जोया प्रभायावा	सद्व्यंकार उज्जोया प्रभा छाया	१९२	१७
प्रभा,	प्रभा, छाया,	१९३	१
स्वभावः	ये स्वभावः	,,	११
करते	करते	१९४	२५
मृन्नघट	मृन्न घट	१९७	१
। और	वैसे	,,	७
विभावस्वभाव	विभावस्वभाव	२०९	५
मूर्तेति	मूर्तेति	२११	२७
व्यवहारी	व्यवहारो	२३१	२१
वे हैं	करते हैं	२३५	२७
	इति ।		

आवश्यक सूचना ।

त्रुटि पृ० १२८, पं० २८ के आगेका यह व्याख्यार्थ है.

व्याख्यार्थः—ऐसा होनेपर नयभेदोंको यदि उपनयकरके मानते हो तो 'स्वपर-व्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्' अर्थात् 'स्वपरका व्यवसाय (निश्चय) करनेवाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है' इस लक्षणसे लक्षित ज्ञानरूप प्रमाणका भी एकदेश मतिज्ञानादि, अथवा मतिज्ञानका एकदेश जो अवग्रहादि वह भी उपप्रमाणरूपसे भिन्न हो जायगा । इससे नयोपनयप्रक्रिया शिष्योंकी बुद्धिका द्वन्द्वन (विकल्प) मात्र करनेके लिये समझनी चाहिये ॥ २१ ॥



रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला.

श्रीभोजकप्रिविरचिता

द्रव्यानुयोगतर्कणा ।

भाषानुवादसहिता च

श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीवीतरागाय नमः ।

मङ्गलाचरणम्

श्रिया निवास निखिलार्थवेदक सुरेन्द्रससेवितमन्तरारिघम् ।

प्रमाणयुङ्ग्यायनयप्रदर्शक नमामि जैन जगदीश्वर महः ॥ १ ॥

यदीयगोभिर्भुवनोदरस्थित कुवादभूच्छायभर निवार्यते ।

द्रव्यादियाथात्म्यमपि प्रकाश्यते जयत्यधीशः स जिनत्रयीतनुः ॥ २ ॥

वन्दे वीरपरम्परावियदहर्नाथ सनाथ श्रिया

गाम्भीर्यादिगुणावलीप्रविलसद्रजोघरत्नाकरम् ।

विद्यादेवपुरोहितप्रतिनिधि श्रीमत्तपागच्छप

प्रख्यात विजयादयागणधर द्रव्यानुयोगेश्वरम् ॥ ३ ॥

श्रीभावसागर नत्वा श्रीविनीतादिसागरम् ।

प्रबन्धे तत्प्रसादेन किञ्चिद्भारया प्रतायते ॥ ४ ॥

सद्भावयुक्त श्रीमन्त मुविनीत गुरु मुटा ।

प्रणम्य रम्यभावेन सूत्रवृत्तिः प्रतायते ॥ ५ ॥

अनेक प्रकारकी लक्ष्मियोंका निवासस्थान, सपूर्ण पदार्थोंका सप्रवर्तक, देवेन्द्रोसे सेवित, अभ्यन्तरके शत्रुओंका नाशक, और प्रमाणसहित न्यायमार्गका प्रदर्शक ऐसे श्रीजिन भगवान्‌सम्बधी जगदीश्वर तेजको मे नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ जिनकी किरणोंसे ससा-

रके उदरमे वर्तमान कुवादसे उत्पन्न छायाका समूह दूर होता है, और द्रव्यादि पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप भी प्रकाशित होता है ऐसे सबके स्वामी जिन भगवानकी तीन अवयव (सम्यग्ज्ञान, दर्शन, तथा चारित्र) मयी, मूर्ति (शरीर) सर्वोपरि विजयकारी है ॥ २ ॥ श्रीमहावीरस्वामीसे आदि लेके संपूर्ण तीर्थंकरोंकी पंक्तिरूप आकाशके सूर्य, श्रीलक्ष्मीसे सेवित तथा गाम्भीर्य, “दया दाक्षिण्य” आदि गुणोंकी पंक्तियोंसे अति शोभायमान रत्नोंके समूहके रत्नाकर तथा शास्त्र, देव, और पुरोहितके प्रतिनिधि (स्थानापन्न) श्रीमत्तपागच्छके नायक श्रीदयाविजय नाम गणधरजीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥ और श्रीविनीतसागरजी तथा श्रीभावसागरजी नाम विद्यागुरुको नमस्कार करके उन्हीं महाऽनुभावकी कृपासे इस द्रव्याऽनुयोगतर्कणा नाम प्रबन्धकी कुछ व्याख्या मैं करता हूं ॥ ४ ॥ समीचीन (उत्तम) भावोंसे संयुक्त, श्रीमान् सुविनीत गुरुजीको परमरमणीय भक्तिभावसे प्रणाम करके सूत्रोंकी वृत्तिका विस्तार मैं करता हूं ॥ ५ ॥

चिकीर्षितग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारादिरूपं मङ्गलं ग्रन्थादौ आचरन् अनुबन्धचतुष्टयं दर्शयन्नेव चिकीर्षितं प्रतिजानीते ।

रचनेको अभीष्ट ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिकी इच्छासे अपने इष्ट देवका नमस्काररूप मङ्गलाचरण करतेहुए तथा ग्रन्थके अनुबन्धचतुष्टयको दर्शातेहुए ग्रन्थकार निजचिकीर्षित (करनेको इष्ट) विषयकी प्रतिज्ञा करते है ।

अथ सूत्रम्—श्रीयुगादिजिनं नत्वा कृत्वा श्रीगुरुवन्दनम् ।

आत्मोपकृतये कुर्वे द्रव्यानुयोगतर्कणाम् ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थ—युगके आदिमे आविर्भूत श्रीआदिजिन भगवान् (श्रीआदिनाथ ऋषभदेवजी) को नमस्कार करके, तथा श्रीगुरुदेवको वन्दना करके आत्माके उपकारके अर्थ, अर्थात् जीव अजीव आदि द्रव्योंको जानकर संसारसागरसे जीवके उद्धारके लिये इस द्रव्याऽनुयोगतर्कणा नाम ग्रन्थको मैं रचता हूं ॥ १ ॥

व्याख्या । तत्र प्रथममिष्टदेवतानमस्करणेन सप्रयोजनाभिधेयो दर्शितः । आद्यपदद्वयेन मङ्गलाचरणं नमस्कारकरणं च । १ । आत्मार्थिन इहाधिकारिणः । २ । तेषामर्थबोधो भविष्यतीति उपकाररूपं प्रयोजनम् । ३ । द्रव्याणामनुयोगोऽत्राधिकारः । ४ । अथ द्रव्यानुयोग इति कः शब्दार्थः । अनुयोगो हि सूत्रार्थयोर्व्याख्यानं तस्य चत्वारो भेदास्तत्र प्रथम-श्ररणानुयोग आचारवचनमाचाराङ्गादिसूत्राणि । द्वितीयो गणितानुयोगः संख्याशास्त्रं चन्द्रप्र-ज्ञस्यादिसूत्राणि । तृतीयो धर्मकथानुयोग आख्यायिकावचनं ज्ञाता धर्मकथाङ्गादिसूत्राणि । ३ । चतुर्थो द्रव्यानुयोगः प्रज्ञाद्रव्यविचारः सूत्रकृताङ्गादिसूत्राणि सम्मतितत्त्वार्थप्रमुखप्रकरणानि च महाशास्त्राणि । ततोऽन्यभेदविचारणामहं कुर्वे ।

व्याख्यार्थ—प्रथम सूत्रमे अभीष्ट परमदेव जिन भगवानको नमस्कार करनेसे प्रयोजनसहित निजग्रन्थमे अभिधेय अर्थात् कथन करनेके योग्य पदार्थ दर्शाया है.

तात्पर्य यह है कि द्रव्यादि पदार्थोंके ज्ञानसे आत्मज्ञानपूर्वक श्रीजिन भगवान्का ज्ञान तथा उनकी नमस्कार आदिरूप भक्ति ही इस ग्रन्थका अभिधेय और प्रयोजन है । सूत्रके प्रथम दो पादोसे श्रीजिन देवको तथा श्रीगुरु देवको नमस्कार करके आस्तिक मतके अनुसार मङ्गलाचरण तथा नमस्कार प्रदर्शित किया गया है ॥ १ ॥ और “आत्मोपकृतये कुर्वे” इस तृतीय पादसे यह अभिप्राय दर्शाया है कि आत्माके अभिलाषी जन इस ग्रन्थके अधिकारी है ॥ २ ॥ उन अधिकारी जीवोंको पदार्थोंका ज्ञान होगा इस उपकाररूप ग्रन्थका प्रयोजन है ॥ ३ ॥ और द्रव्याऽनुयोग इस ग्रन्थका अधिकृत विषय है ॥ ४ ॥ ये ही ४ अभिधेय, प्रयोजन, सन्ध तथा अधिकारी ग्रन्थकी आदिमें अनुबन्धचतुष्टय कहे जाते हैं । अत्र “द्रव्याऽनुयोग” इस शब्दका क्या अर्थ है इस विषयमें विचार करते हैं । सूत्र आर अर्थके व्याख्यानको अनुयोग कहते हैं । उस अनुयोगके चार भेद हैं । उनमें प्रथम चरणानुयोग है, जिसमें आचारके वचन हैं, जैसे आचारागादिसूत्र ॥ १ ॥ द्वितीय गणितानुयोग अर्थात् सख्याशास्त्र है, जैसे चन्द्रप्रज्ञप्ति (आदि ज्ञान) के सूत्र ॥ २ ॥ तृतीय धर्मकथानुयोग अर्थात् कथा शास्त्र है इसमें ज्ञाताधर्म कथा आदि सूत्र हे ॥ ३ ॥ और चतुर्थ द्रव्याऽनुयोग अर्थात् जीव आदि पद द्रव्योंका विचार है इसमें सूत्रकृतागादिसूत्र, समतिप्रकरण, तत्त्वार्थप्रकरण आदि अनेक महाशास्त्र है ॥ ४ ॥ अत एव अतिउपयोगी होनेसे अन्तिम भेद जो द्रव्यानुयोग है उसीका विचार मैं करता हूँ ॥ १ ॥

सूत्रम् । विना द्रव्यानुयोगोह चरणकरणाख्ययोः ।

सार नेति कृतिप्रेष्ठ निर्दिष्ट सम्मतौ स्फुटम् ॥ २ ॥

सूत्रभाष्यार्थः— द्रव्याऽनुयोगके विचारके विना द्रव्य तथा गुणपर्यायोंका ज्ञान नहा होता अत एव चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगमें द्रव्याऽनुयोगके ज्ञानके विना कुछ तत्त्व नहीं है, और द्रव्याऽनुयोगके ज्ञानको ही चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगका सार और पण्डित जनोंको अतिप्रिय समति ग्रन्थमें स्पष्ट रीतिसे दर्शाया है ॥ २ ॥

व्याख्या । द्रव्यानुयोगोह द्रव्यगुणपर्यायविचार विना चरणकरणयो सार न । चरण सप्तत्या करणसप्तत्याश्च सार केवल द्रव्यानुयोग एव । इत्यय निष्कर्ष । सम्मतिग्रन्थे स्फुट प्रकट कृतिप्रेष्ठ बुधजनप्रलभ निर्दिष्ट कथित बुधा एव जानते न तु बाह्यदृष्टय । यत “चरणकरणप्पहाणा ससमयपरसमयमुक्तानाम् । चरणकरणस्त सार विचयसुद्ध न याणति १” इतीय गाथा सम्मतौ कथिता । अतश्चरणकरणानुयोगमूल इहोपायो द्रव्यानुयोग एव उक्त । २ ।

व्याख्यार्थः— द्रव्यानुयोग जिसमें जीवआदि सपूर्ण द्रव्य, गुण तथा सपूर्ण पर्यायोंका पूर्णरूपसे वर्णन है उसके (द्रव्याऽनुयोगके) ज्ञानके विना चरण तथा करणाऽनुयोगमें

कुछ सार नहीं है, अर्थात् चरणसप्तति और करणसप्ततिका सार केवल द्रव्याऽनुयोग ही है, और वही पण्डितजनों (सम्यग्दर्शन आदि सहित जनों)को प्रिय है. क्योंकि, आत्म-ज्ञानद्वारा मोक्षका कारण द्रव्याऽनुयोग ही है, उसीसे स्वमतका स्थापन तथा परमतका खण्डन होता है, यह वार्ता संमति ग्रन्थमें स्पष्ट रीतिसे दर्शाई गई है । “चरणाऽनुयोग तथा करणाऽनुयोगके ज्ञानसे संपन्न भी जन अपने तथा अन्यके शास्त्रीय सिद्धान्त ज्ञानके व्यापारसे सर्वथा वर्जित रहते हैं, क्योंकि वे चरणानुयोग तथा करणाऽनुयोगके सारभूत निश्चय शुद्ध द्रव्याऽनुयोगको नहीं जानते” ॥ १ ॥ यह गाथा सम्मति ग्रन्थमें कही गई है । इसी हेतुसे चरणाऽनुयोग और करणाऽनुयोगका मूल (मुख्य सिद्धान्त) जान-नेका उपाय द्रव्यानुयोग ही यहांपर कहा गया है ॥ २ ॥

सूत्रम् । शुद्धान्नादिस्तनुर्योगो महान् द्रव्यानुयोगजः ।

इत्थं षोडशकाज्ज्ञात्वा विदधीत शुभादरम् ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—शुद्ध आहारआदिका ग्रहण करना, अर्थात् चरण करणाऽनुयोग-रूप योग लघु है और द्रव्याऽनुयोगनामक योग महान् है, इस प्रकार षोडशक नामके उपदेशग्रन्थसे जानकर शुभ मार्गमें आदर करना उचित है ॥ ३ ॥

व्याख्या । शुद्धान्नादिः शुद्धाहारग्रहणमर्थात् चरणकरणानुयोगाख्यो योगो द्विचत्वारिंशद्वृष-णरहितपिण्डग्रहणो योगस्तनुर्लघुः कथितः । तथा द्रव्यानुयोगः । स्वसमयपरसमयपरिज्ञानं तदाख्यो योगो द्रव्यानुयोगजो योगो महान् महत्तरः कथितः । अत्र साक्षित्वमुपदेशपदादिषु ग्रन्थेषु वर्तते । ततो ज्ञात्वा शुभे पथि प्रवर्ततां बाह्यव्यवहारप्राधान्यम् । बाह्यव्यवहारप्राधान्यं ज्ञानस्य गौणता यत्र भवति सोऽशुभमार्गः । १ । ज्ञानस्य प्राधान्यं व्यवहारस्य गौणता यत्र स उत्तममार्गः । २ । अत एव ज्ञानादिगुणहेतुगुरुकुलवासरहितस्य शुद्धाहारादियत्नवतोऽपि महान् दोषश्चारित्रहानिश्च जायते । यदुक्तम् । षोडशके गुरुदोषारम्भितया लब्धकरणम् । यत्नतो निपुणधीभिः सन्निन्दादेश्च तथा ज्ञायते यन्नियोगेन । ३ ।

व्याख्यार्थः— शुद्ध शोधित आहारसेवन, अर्थात् शास्त्रप्रोक्त ४२ दोषोंसे वर्जित भोजनग्रहणआदिरूप जो चरण तथा करणाऽनुयोगरूप योग है वह लघु है और स्व तथा परसमयके ज्ञानरूप जो द्रव्याऽनुयोगरूप योग है वह अतिमहान् कहा गया है । इसी विषयकी साक्षिता उपदेशपदआदि ग्रन्थोंमें विद्यमान है । उन ग्रन्थोंसे द्रव्याऽनुयोगको श्रेष्ठतर जानके शुभ मार्गमें ही आदरसे प्रवृत्त होना चाहिये । जहां लौकिक व्यवहारोंकी प्रधानता हो और ज्ञानकी गौणता हो वह अशुभ मार्ग है ॥ १ ॥ और जहां ज्ञानकी प्रधानता तथा लौकिक व्यवहारकी गौणता है वह उत्तम वा शुभ मार्ग है ॥ २ ॥ इसी कारणसे ज्ञानआदि गुणोंका हेतुभूत जो गुरुकुलमे निवास है उससे रहित पुरुष चाहे शुद्ध

आहारआदि करनेमें प्रयत्न भी करे, परन्तु वह ज्ञानसे रहित होनेसे महान् दोषभागी होता है तथा उसके चारित्रिकी भी हानि होती है । इस निषयमें ऐसा कहा भी है,—उप-देशके ग्रन्थोंमें यह निरूपित है कि द्रव्यानुयोगके ज्ञानविना शुद्ध आहारादिके ग्रहणम महान् दोषोंके आरम्भ होनेकी सभावना है इस हेतुसे तथा ज्ञानरहित होनेसे सज्जनोंकी निन्दादिसे चरणकरणानुयोग द्रव्यानुयोगकी अपेक्षासे लघु है, उस लघु चरणकरणानुयोगके दोषोंको कुशलबुद्धि जन यत्नपूर्वक द्रव्यानुयोगद्वारा जानते हैं ॥ ३ ॥

सूत्रम् । सति द्रव्यानुयोगेऽस्मिन्नाध्यकर्मदिदूषणम् ।

इत्युक्त पञ्चकल्पाख्ये भाष्ये यत्तद्गुरोः श्रुतम् ॥ ४ ॥

सूत्रभाष्यः—इस द्रव्यानुयोगके ज्ञान होनेहीसे आधाकर्मदि (पाकादि कर्म अध्ययनपूर्वकान्त) दूषण जाने जाते हैं, यह पञ्चकल्प नाम ग्रन्थमें तथा भाष्यमें कहा है और गुरुमुखसे भी ऐसा सुना है ॥ ४ ॥

व्याख्या । अस्मिन् द्रव्यानुयोगविचाररूपे ज्ञानयोगे सति आध्यकर्मदिदूषणम् । आधा कर्मद्वयोऽध्ययनपूर्वकान्ता पोडशपिण्डोद्गमविषया दोषास्तत्र आधानम् । आधा साधुनिमित्तचेत-स प्रणिधान यथा अमुकस्य साधो हेतोर्मया भक्तादि पञ्चनीयमिति आधया कर्मपाकादित्रियया आधाकर्म तद्योगाद्भक्ताद्यध्याधाकर्म तदद्विषया तेषा दूषण गुरुसमुदायान्तर्निवसतो ज्ञाना भ्यासवसतो मुनेन भवति ॥ एव पञ्चकल्पभाष्ये यदुक्तं तन्मया गुरो सकाशात् श्रुतं कल्पाकल्पविचारस्तु अनेकान्तशास्त्रेणोक्तो यतो गाथा । “आहा गुडाई मुजति । अणमणो सक-मुणा ॥ उवलित्ते वियाणिज्जा अणुवलित्ते विवा पुणो । १ । एदे हिंदोहिं ठाणेहि ववहा रोण विज्जई ॥ एदे हिंदोहिं ठाणेहि अणायारतुजाणए ॥ २ ॥” द्वितीयाह्नस्य प्रथमाध्ययने । किञ्चिच्छुद्ध कल्पमकल्प स्यात् स्यादकल्पमपि कल्प पिण्ड । श्रय्या वरर भेपजाय वा देश काल पुरुषमवस्थामुपयोगशुद्धपरिणामान प्रसमीक्ष्य भवति कल्प नैकान्तात्कल्पने कल्पमात्र इति प्रशमरतो ॥ ४ ॥

व्याख्यानार्थः—सत्र पदार्थोंके ज्ञान करानेजाले इस द्रव्यानुयोग विचाररूप ज्ञानयोगके होनेपर ही आधाकर्म आदि दूषण, अर्थात् आधाकर्मसे आदि लेके अध्ययनपूर्वकान्त पो-डश (१६) दोष आहार ग्रहण करनेसे उत्पन्न होते हैं, उन मोलह दोषोंमेंमें साधुके पाकादिनिमित्त (चित्तके प्रणिधान चित्तकी तत्परता) को आधाकर्म कहते हैं जैसे—अमुक साधुके लिये मुझे भात पकाना है । यह “आधया पाकादित्रियया कर्म इति आधाकर्म” पाक आदि क्रियासे जो कर्मक्रिया जाता है उसको आधाकर्म कहते हैं उस आधा क्रि-याके योगसे भक्त (भात) आदि अन्न सिद्ध किया जाता है, उसको भी आधाकर्म कह-ते हैं उस आधाकर्मआदिके दोष गुरुओंके समुदायमें निगम करतेहुए मुनिको जानने

अभ्यासके वशसे नहीं होते इस प्रकार पञ्चकल्पभाष्यमें जो कहा है वह मैंने गुरुमुखसे सुना है और कल्पाकल्पका विचार तो अनेकांशशास्त्रसे कहा गया है। इस विषयमें ये गाथा हैं। उपलिप्त हो अथवा अनुलिप्त हो अन्योऽन्यकर्मसे अनभिज्ञ (अज्ञानी जन) आधाकर्मगत पाप अवश्य भोगते हैं ॥ १ ॥ क्योंकि ये दोष हैं, ये दोषोंके स्थान हैं, इन व्यवहारोंको द्रव्यानुयोगज्ञानसे रहित जन नहीं जानते और गुरुकुलनिवासी द्रव्यानुयोगज्ञाता मुनि दोष तथा दोषस्थानोंको जानता है ॥ २ ॥ द्वितीयाङ्गके प्रथम अध्ययनमें ऐसा वर्णित है कि कोई वस्तु शुद्धकल्प भी अकल्प हो सकती है;—और अकल्पभी कल्प हो सकती है, जैसे आहार, शय्या, वस्त्र, पात्र, औषध, भोज्य पदार्थ, देश, काल, पुरुष, अवस्था, ये सब उपयोगसे शुद्ध परिणामोंको देखकर कल्प (योग्य वा शुद्ध) होते हैं किन्तु सर्वथा कोई पदार्थ अपने स्वरूपसे ही शुद्ध वा योग्य कल्पित नहीं हो सकता ॥ २ ॥ ऐसा प्रशमरतिनाम ग्रन्थमें कहा है ॥ ४ ॥

सूत्रम् । बाह्यक्रिया वहिर्योगश्चान्तरङ्गक्रियापरः ।

बाह्यहीनोऽपि ज्ञानाढ्यो धर्मदासैः प्रशंसितः ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—बाह्य क्रियाको वहिर्योग कहते हैं, और जो अन्तरङ्ग क्रिया है उसको अन्तरङ्गयोग कहते हैं, किन्तु बाह्यक्रियासे हीन (शून्य) होनेपर भी यदि ज्ञानसे पूर्ण हो तो वह धर्मदासोंसे प्रशंसित है ॥ ५ ॥

व्याख्या । बाह्यक्रिया अवस्थादिकरूपा वहिर्योगोऽस्ति । १ । च पुनः । अन्तरङ्गक्रिया च स्वसमयपरसमयपरिज्ञानरूपा ज्ञानक्रिया अपरो द्रव्यानुयोगोऽस्ति । अन्तरङ्गयोगो ज्ञानक्रिया । एवं द्विविधो योगस्तत्र बाह्यक्रियाहीनोऽपि ज्ञानाढ्यो ज्ञानाधिकः साधुः । उपदेशमालाया व्याख्यातो यतः । “ नाणाहिओवरचरणहीणो विहुपयवेणंपभासंतो । णयंदुक्खरं करंतोसुदुविअप्पागमोपुरिसो । १ । तथा हीणस्स विसुद्धपरूवगस्स नाणाहि जस्स कायव्व” तस्मात् क्रियाहीनस्यापि ज्ञानिनोऽवज्ञा न कर्तव्या । ज्ञानयोगाच्छासनप्रभावको ज्ञातव्यः कश्चिदेवं कथयिष्यति यन् क्रियाहीनः । ज्ञानाधिको भव्य उक्तस्तदीपकसम्यक्त्वापेक्षया परं क्रिया विनैकेन ज्ञानेन स्वस्योपकारो न जायते दोषवत् । इति शङ्काकारं प्रत्युत्तरयति । द्रव्यादिज्ञानमेव शुक्लध्यानमतो मोक्षकारणं तत् उपादेयमेव ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—आवश्यक बाह्य क्रिया है वह वहिर्योग है, और स्वसमय तथा परसमयके ज्ञानरूप जो ज्ञानक्रिया है वह अभ्यन्तर अर्थात् द्रव्याऽनुयोग है, वह अन्तरङ्ग योग अथवा ज्ञानक्रिया है । इस रीतिसे अन्तरङ्गयोग तथा वहिर्योग भेदसे दो प्रकारका योग कहा गया है; उनमेंसे बाह्य क्रिया अर्थात् वहिर्योगसे हीन भी पुरुष हो, परन्तु ज्ञानपूर्ण अर्थात् अधिकज्ञानसंयुक्त हो तो वह साधु है । क्योंकि वह साधुरूपसे उपदेशमालामें प्रख्यात है । यथा गाथा,—चरणकरणानुयोग अर्थात् बाह्यक्रियासे हीन भी शुद्ध उपदेश

ज्ञानमय वचनको कहते हुए, और दुष्कल्मषको करतेहुए ज्ञानसे पूर्ण आत्मनानी पुरुष निजज्ञानसे ही साधु है, तथा विशुद्धज्ञानसे हीन होनेसे भी बाह्य क्रियासे सपन्न होनेपर भी वह साधु है क्योंकि शरीर ज्ञान ही है इस कारण क्रियाहीन भी ज्ञानी पुरुषका अनादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि ज्ञानके योगसे वह सजके ऊपर आज्ञा करनेका प्रभाव धारण करता है ऐसा समझना चाहिये ।

अन कोई यहापर ऐसा कहता है कि क्रियाहीन और अधिक ज्ञानसम्पन्नको जो भव्य कहा है वह दीर्घकसम्यक्त्वकी अपेक्षापर है, क्योंकि, क्रियाके विना केवल ज्ञानमात्रसे अपने आत्माका कुछ भी उपकार नहीं होता जैसे, दीपक यदि अपना ही प्रकाश न करे तो अथ घटपटआदिका प्रकाश कैसे कर सकता है? इसप्रकार शकाका उत्तर ग्रन्थकार देते हैं कि द्रव्यआदि पदार्थोंका ज्ञान ही शुद्ध ध्यान कहा गया है और वही मोक्षका कारण होनेसे उपादेय है ॥ ५ ॥

सूत्रम् । द्रव्यादिचिन्तया सारं शुद्धध्यानमवाप्यते ।

आद्रियध्वममु तस्माद्गुरुशुश्रूपया बुधा ॥ ६ ॥

सूत्रभाष्यार्थ —द्रव्यआदि पदार्थोंकी चिन्तासे सारभूत शुद्धध्यान प्राप्त होता है, इस हेतुसे हे बुधजनों ! गुरुजनोंकी सेवा आदिसे आदरपूर्वक द्रव्यआदि पदार्थोंके ज्ञानके उपार्जनमें आदर करो ॥ ६ ॥

व्याख्या । द्रव्यादिचिन्तया पदद्रव्यचिन्तनेन सार प्रधानं शुद्धध्यानमवाप्यते, किं च आत्मद्रव्यस्य गुणपर्यायभेदचिन्तया शुद्धध्यानस्य प्रथम पादो भवति । तथा तस्यैव द्रव्यस्य गुणपर्याययोरभेदचिन्तया द्वितीयपादो भवति । एव शुद्धद्रव्यगुणपर्यायभावनया सिद्धसमाप्तिर्जायते । ततो द्रव्यचिन्ताशुद्धध्यान फल । तेन ससारपगमः । यत् प्रवचनसारेऽप्युक्तम् । “जो जाणदि अरहन्ते दव्वत्त गुणत्त पज्जयन्ते हिं । सो जाणदि अप्पाण मोहो उल्लु जादि तस्स लय । १ ।” तस्मात् कारणात् भो बुधा । गुरुशुश्रूपया गुरुसामीप्येन अमु द्रव्यानुयोगमाद्रियध्वमादरं गुरुध्वमिति गुरु त्यक्त्वा स्वच्छया मा भ्रमत । ६ । अथ ज्ञान विना चात्र प्रमात्रेण ये सन्तुष्टा सन्ति तान् हितगिद्वया सम्योध्यति ।

व्याख्यार्थ —द्रव्यआदि पद पदार्थोंकी चिन्ता अर्थात् पूर्ण विचारसे प्रधानभूत शुद्धध्यान प्राप्त होता है । और आत्मद्रव्यके गुण तथा पर्यायोंके भेदके विचारसे शुद्ध ध्यान का प्रथम पाद सिद्ध होता है, तथा उसी आत्मद्रव्यके गुण तथा पर्यायोंके अभेदविचारसे शुद्धध्यानका द्वितीय पाद सिद्ध होता है, और इसी रीतिसे शुद्ध द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी भवनासे सिद्धिकी समाप्ति होती है । इसलिये द्रव्यकी चिन्ताका शुद्धध्यान फल है, और इस शुद्धध्यानकी प्राप्तिसे ससारका नाश होता है, क्योंकि, ऐसा ही प्रव-

१ दापकम जमे दमरेके प्रमाण कर्मेन मामध्य रहता है एवे न अपनको भी, न नि स्वतः अन्य पद बोधे प्रमाण एवे मात्र ।

चनसारमें भी कहा है:—जो कोई अहम् भगवान्को द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूपसे जानता है वही आत्माको भी जानता है, क्योंकि द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूपसे आत्मज्ञानी पुरुषका मोह लयको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इस कारण हे बुधजनो ! गुरुके समीप जाके भक्ति शुश्रूषादि द्वारा इस द्रव्यानुयोगके ज्ञानसंपादनमें आदरसे लगे । तात्पर्य यह है कि गुरुसे आदरपूर्वक इसके ज्ञानको ग्रहण करो, और गुरुको त्याग कर अपनी इच्छासे न भ्रमण करो ॥ ६ ॥

अब जो ज्ञानके बिना चारित्र्य मात्रसे संतुष्ट है उनको हितदायक शिक्षासे संवोधन करते हैं—

द्यौ

सूत्रम् । अस्य येनेक्षितः स्ताथोऽत्रौघेन प्रेम यस्य वा ।

द्यौ निर्ग्रन्थाविमौ ख्यातौ नान्य इत्याह सम्मतिः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—जिस पुरुषने इस द्रव्याऽनुयोगरूपी समुद्रका अधोभाग देखा है, अथवा जिसका इसमें सामान्यरूपसे अनुराग है, ये दो प्रकारके पुरुष निर्ग्रन्थ अर्थात् साधु कहे गये हैं न कि अन्य, ऐसा सम्मति ग्रन्थ कहता है ॥ ७ ॥

व्याख्या । अस्य द्रव्यानुयोगसमुद्रस्य स्तायस्तलस्पर्शनं येन ईक्षितो विलोकितः सम्मत्यादितर्कग्रन्थाध्ययनेन गीतार्थो जातः स एव एकः प्रशस्यः । तथा अत्र द्रव्यानुयोगे ओघेन सामान्यप्रकारेण यस्य प्रेम रागोऽस्ति गीतार्थनिश्चयः सोऽपि प्रशस्यः । इमौ द्वौ निर्ग्रन्थौ साधू ख्यातौ कथितौ । आभ्यामपरस्तृतीयः कश्चित्साधुरपि नास्ति इत्युक्तिं सन्मतिग्रन्थ आह । यतः । “गीयत्योयविहारो वीओगीयत्य नित्सओ भणिओ । इतोतइयविहारोणाणुन्भाओ जिणवरेहि । १ ।” एतावन्मात्रो विशेषोऽस्ति । या चरणकरणानुयोगदृष्टिर्निशीथकल्पव्यवहाराध्ययनेन जायते सा जघन्या दृष्टिः या च दृष्टिर्वादाध्ययनेन जायते सा मध्यमा दृष्टिः । २ । या पुनः समस्तश्रुतनिष्कर्षज्ञानरूपेण जायते सा उत्कृष्टा दृष्टिः । ३ । एवं जघन्यमध्यमोत्कृष्टा दृष्टयस्तिस्त्रस्तद्विशेषेण गीतार्था अपि त्रयः । अत्र द्रव्यानुयोगदृष्टिः सम्मत्यादितर्कशास्त्रपारीणताख्या उत्कृष्टा । तथा तन्निश्चया द्वितीया दृष्टिः । एतदृष्टिद्वयपरौ द्वावेव निर्ग्रन्थौ स्तोऽपरः कोऽपि साधुर्नेति भावः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—जिस महा उद्योगी पुरुषने इस द्रव्याऽनुयोगरूप महासमुद्रके तल-स्पर्शको गोता मारके देखा है, अर्थात् सम्मति आदि तर्कग्रन्थोंको पूर्णरूपसे पढ़के सिद्धान्तरहस्यका ज्ञाता हुआ है वही एक पुरुष प्रशंसनीय है। अथवा इस द्रव्याऽनुयोगमें जिसका सामान्य प्रकारसे प्रेम है, अर्थात् तर्कके अध्ययनपूर्वक अनुरागसे सिद्धान्तरहस्यको जिसने निश्चय किया है, ये ही दो प्रकारके पुरुष निर्ग्रन्थ साधु प्रख्यात हैं अर्थात् शास्त्रोंमें कहे गये हैं। इन दोनोंसे अन्य कोई तृतीय साधु नहीं है, ऐसा कथन सम्मति ग्रन्थका है। उसकी गाथा यह है—तर्कशास्त्रोंके अध्ययनद्वारा सिद्धान्तरहस्यमें जिसने विहार किया है, अथवा सामान्यरूपसे इसमें प्रेम होनेसे जो सिद्धान्तरहस्यमें निष्ठ है

इनहीको जिनश्रेष्ठोंने साधु कहे हैं । नकि अन्यत्र तृतीय स्थान निहार करनेवाले ॥ १ ॥ इसमें इतनी निगोपता है कि जो निशीथकल्प (अर्द्धरात्रिके तुल्य अन्धकारमय) व्यवहारके अध्ययनसे चरणकरणाऽनुयोगदृष्टि उत्पन्न होती है वह जघन्य अर्थात् निकृष्ट दृष्टि है, जो दृष्टिवाद शास्त्रके अध्ययनसे उत्पन्न होती है वह मध्यमा दृष्टि है, और समस्त शास्त्रोंके तत्त्वज्ञानसे उत्पन्न जो दृष्टि है वह उत्कृष्ट अर्थात् उत्तम दृष्टि है ॥ ३ ॥ इस प्रकार जघन्य मध्यम तथा उत्तम भेदसे तीन प्रकारकी दृष्टियाँ हैं, और उन २ दृष्टियोंके विशेषसे गीतार्थ भी तीन ही प्रकारके हैं । इनमें समिति आदि तर्क शास्त्रोंमें पारीणता (तर्कशास्त्रमें पारगामिता) नामवाली जो द्रव्यानुर्योगरूप दृष्टि है वह उत्तम है, और उस तर्कशास्त्रको निश्चय करनेवाली द्वितीया दृष्टि है, इन दोनों दृष्टियोंमें परायण दोनों प्रकारके ही पुरुष निर्ग्रन्थ साधु हैं, इनसे भिन्न कोई साधु नहीं है, यही पूर्वोक्त वाक्यका अभिप्राय है ॥ ७ ॥

अथ द्रव्यानुर्योगप्रत्याप्या निजस्यात्मन कृतकृत्यता दर्शयन्नाह ।

अथ द्रव्यानुर्योगकी प्राप्तिसे अपने आत्माको कृतार्थ दिखाते हुये कहते हैं ।

सूत्रम् । तस्माद्गुरुपदाधीनो लीनश्चास्मिन्प्रतिक्षणम् ।

साधयामि क्रियां या मे महत्याधारता हि सा ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्याऽनुयोगके भी बलनत्वके हेतु गुरु है इस हेतुसे गुरुके चरणोंके आश्रित होके, तथा प्रतिक्षण इस द्रव्यानुर्योगरूप योगमें लीन होके जिस क्रियाको मे सिद्ध करता हूँ उसमें वही मेरी बड़ी आधारता है ॥ ८ ॥

व्याख्या । तस्मादिति । तत् कारणान्ता द्रव्यानुर्योगनलवत्ताहेतुर्गुरुस्तस्य पदयोश्चरणयोराधीन । शुश्रूपापरो विनयादिप्रसन्नो गुरुज्ञानमेव दत्त इति । पुन अस्मिन् द्रव्यानुर्योगे प्रतिक्षण मनुसमय लीनो या चरणकरणानुर्योगरूपा क्रिया साधयामि सा एव मे महती महीयसी आधारता । एतावता तादृक् क्रियारहित पर गुरुसेवी ज्ञानप्रिय इच्छायोगाधिकारी भवति । यत्—“कर्तुमिच्छो श्रुतार्थस्य ज्ञानिनोपि प्रमादिन । विकले धर्मयोगो य इच्छायोग उन्नाहत ” । १ । ललितविस्तरादौ । ८ ।

व्याख्यार्थः—द्रव्यानुर्योगजनित ज्ञानके सवोत्कृष्ट तत्त्व सिद्ध करनेमें दयालु गुरु ही मुख्य कारण है, इस कारणसे श्रीगुरुमहाराजके चरणरुमलोंके आधीन अर्थात् उनकी शुश्रूषा विनय आदिमें ही सदा तत्पर होके (क्योंकि विनय आदिसे प्रसन्न गुरु ज्ञान देतेहैं) फिर इस द्रव्यानुर्योगमें प्रतिक्षण लीन होके जिस चरणकरणाऽनुयोगरूप क्रियाको मे सिद्ध करता हूँ वह क्रियाही मेरेलिये महान् आश्रय है, इतने कथनसे यह सिद्ध हुआ कि उस क्रियासे रहित, केवल गुरुसेवी, तथा ज्ञानप्रिय जन इच्छायोगका अधिकारी होता है । क्योंकि—शास्त्रीय अर्थके सिद्ध करनेकी इच्छावाले ज्ञानी ऐसे भी

प्रमादी पुरुषका जो विकल धर्मयोग है वही इच्छायोग कहा गया है ॥ १ ॥ ऐसा वचन ललितविस्तर आदि ग्रन्थमे है ॥ ८ ॥

एवं इच्छायोगे स्थितानां परोपकारार्थं द्रव्यानुयोगविचारं कथयामः । पुनरेतावतैव संतुष्टिर्न कर्तव्या । विशेषार्थिना गुरुसेवा न मोक्तव्या । एवं हितशिक्षां कथयन्नाह ।

इस प्रकार जो इच्छायोगमे स्थित हैं उनके परोपकारार्थं द्रव्यानुयोगका विचार कहते हैं, क्योंकि इच्छायोगमे स्थितिमात्रसे प्राणीको सन्तोष नहीं करना चाहिये, किन्तु विशेष अर्थके अभिलाषी जनको गुरुसेवा कदापि न त्यागनी चाहिये, इस प्रकारकी हितकारिणी शिक्षाको कहतेहुये ग्रन्थकार कहते हैं:-

सूत्रम् । तत्त्वार्थसंमतिमुखेषु महाश्रुतेषु

द्रव्यानुयोगमहिमा कथिता विशेषात् ।

तल्लेशमात्रमिह पश्यत सत्प्रबंधे

सर्वादरेण किल तिष्ठत तीर्थवाक्ये ॥ ९ ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—तत्त्वार्थसंमति आदि महा शास्त्रोंमे द्रव्यानुयोगकी महिमा विशेष रूपसे वर्णन की गई है, अतः हे बुधजन ! इस लघु प्रबन्धमे अर्थात् इस द्रव्यानुयोगतर्कणा नाम ग्रन्थमें उनका यत्किंचित् लेश मात्र तुम लोग देखो, और सर्वथा आदर तथा विश्वासपूर्वक तीर्थ (शास्त्रवक्ता गुरु)के वाक्यमे स्थित रहो ॥ ९ ॥

द्रव्यानुयोग तर्कणामें प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ.

व्याख्या । तत्त्वार्थसंमतिप्रधानेषु 'महाश्रुतेषु' महाशास्त्रेषु द्रव्यानुयोगमहिमा 'कथितः' । विशेषाद्विस्तरेण तेषु ग्रंथेषु प्रकाशितः । तेषां ग्रंथोक्तानां वाक्यानां लेशमात्रमल्पमात्रम् । इहैतस्मिन्वक्ष्यमाणे सत्प्रबंधे द्रव्यानुयोगतर्कणायां 'पश्यत' विलोकयत । 'किल' निश्चयेन तीर्थ-वाक्ये, तीर्थो गुरुस्तस्य वाक्यं द्रव्यादिपदसमूहस्तस्मिन् तीर्थवाक्ये 'सर्वादरेण' सर्वप्रयत्नेन 'तिष्ठत' आदरं कुरुत । परंतु परमार्थतो गुरुवाक्ये स्थातव्यम् अल्पमतिं ज्ञात्वा अहंकारो न कर्तव्यः । यथा अधनेन धनं प्राप्तं वृणवन्मन्यते जगत् इति दृष्टान्तात् । अत एव उपरितना-श्रत्वारो नया अतिगंभीरार्था यस्य कस्यापि स्मृतिविषयं न चान्ति । तेन सिद्धान्ते प्रथमं न दर्शितास्तथा रहस्यं च गुरुभक्त्यैव देयमित्युक्तत्वात् ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां कृतिभोजविनिर्मितायां प्रथमोऽध्यायः सूचनार्थमुपदर्शितः ।

व्याख्यार्थः—हे बुधजन तत्त्वार्थसंमति आदि प्रधान महाशास्त्रोंमे विस्तारसे द्रव्यानुयोगकी महिमा प्रकाशित है, किन्तु उन ग्रन्थोंमे कथित वाक्योंका अति अल्प लेशमात्र इस वक्ष्यमाण लघु सत्प्रबन्ध अर्थात् द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक ग्रन्थमे, तुम लोग देखो, और निश्चयसे तीर्थरूप जो गुरु है, उनके वाक्यरूप जो द्रव्यआदि पदोंका समूह

हे उसमें सर्व आदर अर्थात् सपूर्ण प्रयत्नमें आदर करो, परन्तु परमार्थमें गुरुके वाक्यमें स्थित रहना चाहिये, तथा अपनी अल्पबुद्धिको जानकर अहंकार न करना चाहिये और “निर्धन पुरुष धनको पाकर सत्कारको तृणके समान समझता है” यह जो दृष्टान्त है वह तुमारे ऊपर न घटे ॥ इसीसे ऊपरके चारों नय अति गभीर अर्थसहित है और जिस किसी साधारण मनुष्यके स्मरण विषयमें नहीं आते इसी कारणसे सिद्धान्तमें वे प्रथम नहीं देखाये गये क्योंकि उनका रहस्य परम गुरुभक्तको ही देना उचित है, ऐसा शास्त्रकारोंने कहा है ॥

इति द्रव्यानुयोगनिरूपणाय कृतिभोचविनिर्मितायामाचार्यापाधिधारिद्विवेचुपनामरूपेण्डित
डाकुरप्रसादशास्त्रीप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृताया प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

अथ द्रव्यस्वरूपमाह ।

अत्र द्रव्यके स्वरूपका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । गुणपर्याययोः स्थानमेकरूप सदापि यत् ।

स्वजात्या द्रव्यमाख्यात मध्ये भेदो न तस्य वै ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—जो गुण और पर्यायोंका स्थान है । जो निजस्वरूपमें सदा एकरूप रहता है, और जिसके निजरूपका मध्यमें कुछ भेद नहीं है, वह द्रव्य कहा गया है ॥ १ ॥

व्याख्या । गुणपर्याययोर्भाजन कालत्रये एकरूप द्रव्यम् स्वजात्या निजत्वेन एकरूप भवति । पर पर्यायवत् न परावृत्ति लभते तद्रव्यमुच्यते । यथा ज्ञानादिगुणपर्यायभाजन जीवद्रव्यम् । रूपाणिगुणपर्यायभाजन पुटलद्रव्यम् । सर्वरक्तत्वादिघटत्यादिगुणपर्यायभाजन मृद्रव्यम् । यथा वा ततव पटापेक्षया द्रव्यम् । पुनस्ततोऽन्यवापेक्षया पर्याया । कथं । यत पटविचाले पटावस्थाविचाले च तत्तूना भेदो नास्ति । तत्तवयवावस्थायामन्वयत्यरूपो भेदोऽस्ति । तस्मान् पुटलस्त्वधमध्ये द्रव्यपर्यायत्वमापेक्षितं बोध्यम् । अथ कश्चिदेव कथयिष्यति । द्रव्यत्वं तु स्वाभाविकं न जातम् । आपेक्षिकजातं । तदा तत् समा धत्ते । भो तार्किकं शृणु । यत्सकलवस्तूना व्यवहारोपेक्षयैव जायते । न तु स्वभावेन । तस्मादत्र न कश्चिदोप । ये च समवायिकारणप्रमुखाद्रव्यलक्षणं मन्वते । तेषामपि अपेक्षामनुसत्यवेति । गुणपर्यायवद्रव्यमिति तत्त्वार्थः । विस्मरस्तु द्रव्याणामुद्देशलक्षणपरीक्षा भिन्नत्रैवास्ति । अतस्ततोऽयमेव । १ ।

व्याख्यार्थः—जो गुण और पर्यायका आश्रय हो, निजस्वरूपमें कालत्रयमेंभी एक रूप हो, न कि—पर्यायके सदृश परिवर्तनको प्राप्त हो उसको द्रव्य कहते हैं । जैसे ज्ञान आदि गुणपर्यायका भागी जीवद्रव्य है, और रूप आदि गुणपर्यायका भागी पुटल द्रव्य है । इसीप्रकार रक्तत्व आदि गुण तथा घटत्व आदि पर्यायका भागी मृत्तिकारूप

द्रव्य है। अथवा जैसे तन्तु (सूत्र) पटरूप कार्य्यकी अपेक्षासे द्रव्य हैं, और वेही तन्तु अपने अवयवोंकी अपेक्षासे पर्याय्य कहे गये हैं, किस प्रकारसे ऐसा पृथो तो कहतेहैं। क्योंकि पटके तथा पटकी पर्यायोंके संचालनमें तन्तुओंमें भेद नहीं है, और तन्तुओंके अवयवोंकी अवस्थाओंके संचालनमें अन्वयत्वरूप भेद है; इस लिये पुद्गलस्कन्धोंके मध्यमें द्रव्य तथा पर्याय्य सापेक्षिक समझना चाहिये। यहांपर कोई ऐसा कहता है कि इसप्रकार माननेसे द्रव्यस्वरूप स्वाभाविक न रहा किन्तु सापेक्षिक हो गया, तो इस शंकाका समाधान करते हैं:— हे तार्किक सुनो, संपूर्ण वस्तुओंका व्यवहार इस लोकमें अपेक्षासेही होता है, इसलिये अपेक्षासे किसी वस्तुको द्रव्य अथवा पर्याय्य माननेमें कोई दोष नहीं है। और जो नैयायिक समवायी कारण आदि द्रव्यका लक्षण मानते हैं उनको भी अपेक्षाका अनुसरण अवश्य करना होगा। और “गुणपर्यायवद्द्रव्यम्” गुण तथा पर्याय्यसहित होना, यह द्रव्यका लक्षण महातत्त्वार्थसूत्रमें कहा है। तथा उद्देश लक्षण और परीक्षाद्वारा द्रव्योंका विस्तारसे निरूपण भी उस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रमें ही है; इसलिये द्रव्योंका विशेष विस्तार उसी शास्त्रसे जानना चाहिये ॥ २ ॥

अथ द्रव्यं संक्षेपत उक्तम् । अस्यैव गुणपर्याययोर्भेदादिकांक्षया तदेव दर्शयन्नाह ।

अब द्रव्यका तो संक्षेपसे निरूपण करचुके, आगे इसहीके गुणपर्यायोंका भेदादिवर्णन करना है, अतः वही दर्शाते हुये अग्रिमसूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । सहभावी गुणो धर्मः पर्यायः क्रमभाव्यथ ।

भिन्ना अभिन्नास्त्रिविधास्त्रिलक्षणयुता इमे ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यके साथ सदा रहनेवाला जो धर्म है उसको गुण कहते हैं, और द्रव्यमें जो क्रमसे होनेवाला है उसको पर्याय्य कहते हैं, ये तीनलक्षणयुक्त द्रव्य, गुण, तथा पर्याय्यसे त्रिविध (तीनप्रकार)के हैं, और ये तीनों कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न भी हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या । द्रव्यस्य सहभावी यावद्द्रव्यभावी यो धर्मः स गुण उच्यते । यथा जीवद्रव्यस्योपयोगाख्यो गुणः । पुद्गलस्य ग्रहणं गुणः । धर्मास्तिकायस्य गतिहेतुत्वं गुणः । अधर्मास्तिकायस्य स्थितिहेतुत्वं गुणः । कालस्य वर्तनाहेतुत्वं गुणः । यदैव द्रव्यं उत्पद्यते तदैव ते द्रव्येण गुणा उत्पद्यन्ते । पौर्वापर्यभाव एव नास्ति । गुणगुणिनोः समानसामग्रीकत्वात् सव्येतरविषाणवदिति । अनादिनिधनानां द्रव्यगुणानामुत्पत्तिदर्शनं व्यवहारतः कृष्णादिघटवत् । अथ क्रमभावी अयावद्द्रव्यभावी पर्यायः । यथा जीवस्य नरकादिपर्यायाः ।

(१) न्यायमें द्रव्यको समवायीकारण माना है जैसे घटआदि कार्य्यमें मृत्तिका समवायी कारण है ।

(२) जीव और उसके ज्ञान आदि उपयोग व्यवहारदृष्टिसे भिन्न हैं ।

(३) परन्तु एकही देशमें जीव तथा ज्ञानादिकी उपलब्धी होनेसे जीवपर्याय्य अभिन्नभी है चतुर्विध दर्शन तथा अष्टविध ज्ञानको उपयोग कहते हैं ।

पुद्गलस्य रूपरसस्पर्शादिपर्याया । धर्मस्य व्यजनार्थपर्यायौ । अधर्मस्य व्यजनार्थपर्यायौ । कालस्य व्यजनार्थपर्यायौ । आकाशस्य व्यजनार्थपर्यायौ । एष द्रव्याणां सख्याकृतो भेद । लक्षणात्कृतो भेद । प्रदेशादिविभागतस्त्रिविधा । उपचारेण नवविधा । एकैकस्य त्रैविध्यान् । तथापि लक्षणादुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्ता । इत्थं पटपि जैनप्रमाणप्राप्तानि द्रव्याणि इमे । इति त्रयगुणपर्याया प्रत्येक परस्पर भिन्ना अभिन्नास्त्रिविधास्त्रिलक्षणयुता सतीति व्याख्येयम् ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—द्रव्यके सहभावी अर्थात् द्रव्यके साथही साथ होनेवाला, तथा यावद्द्रव्यभावी अर्थात् उस द्रव्यमात्रमें रहनेवाला जो बर्म है उसीको गुण कहते हैं, जैसे जीव द्रव्यका उपर्योग नाम गुण है, पुद्गल द्रव्यका ग्रहण गुण है, धर्मास्तिकाय (धर्मद्रव्य) का गतिहेतुता गुण है, अधर्मास्तिकाय (अधर्मद्रव्य) का स्थितिकी कारणतारूप गुण है, और ऐसेही कालद्रव्यका वर्तना हेतु लक्षण गुण है । जिस समय जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसी समानकालमें उस द्रव्यके गुणभी उत्पन्न होते हैं, इस हेतुसे द्रव्य तथा उसके गुणोंका पौर्वापर्यभाव, अर्थात् पूर्ण कालमें द्रव्य है पश्चात् उस द्रव्यके गुण है यह वार्ता नहीं है । दक्षिण तथा वाम भागके पशुके शृणोंके सदृश द्रव्य तथा गुण ये दोनों समान सामग्रीसे जन्म होनेसे एकही कालमें हैं । अनादि अनन्त द्रव्य गुणोंकी उत्पत्ति ससारके व्यवहारसे एकही कालमें देखी गई है, जैसे कृष्णघट । अब क्रमभावी, अधना अया वद्द्रव्यभावी अर्थात् उस सपूर्ण द्रव्यमात्रमें जो न रहे किन्तु किसी दशामें रहे उसको पर्याय कहते हैं । जैसे जीव द्रव्यके नरकआदि पर्याय, पुद्गलद्रव्यके रूप रस स्पर्शादि पर्याय, धर्म द्रव्यके व्यजन तथा अर्थपर्याय, अधर्मद्रव्यके भी व्यजन तथा अर्थपर्याय, कालद्रव्यके व्यजन तथा अर्थपर्याय, और आकाशद्रव्यके भी व्यजन तथा अर्थपर्याय है । इसी प्रकार द्रव्योंके सख्याकृत, भेद लक्षणादि कृतभेद, प्रदेश विभाग कृतभेद हैं, इसरीतिसे तीन प्रकारके हैं, और उपचारसे त्रिविध है, क्योंकि एक २ के तीन २ भेद है, तथापि लक्षणसे सपूर्ण द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययुक्त है । इस प्रकार जीव १ पुद्गल २ धर्म, ३ अधर्म ४ आकाश, ५ तथा काल, ६ ये छहों जैनप्रमाणसे प्राप्त (सिद्ध) हैं, और ये द्रव्य, गुण, पर्याय परस्पर भिन्नभी हैं और अभिन्न भी, तथा त्रिविध लक्षण, अर्थात् उत्पत्ति, व्यय और ध्रौव्ययुक्त है । ऐसा सूत्रका व्याख्यान करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ द्रव्येण सह गुणपर्याययोर्भेद दर्शयन्नाह ।

अब इसके अनन्तर द्रव्यकेसाथ गुण और पर्यायका भेद दर्शातेहुये अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

(१) परन्तु एकदा देशमें जीव तथा ज्ञानादिनां उपलब्धी होनेसे जीवपर्याय अभिन्न भी है चतुर्विध दशा तथा अष्टविध ज्ञानको उपयोग करते हैं ।

(२) असुख पदाथ ज्ञाने समयमें है इस प्रकार सप्त पदाथोंने वृत्तानेके लक्षणरूप बाल है ।

(३) प्रत्येक पदार्थकी गतिमें सत्कारिकारणता धर्म द्रव्यको है ।

सूत्रम् । मुक्ताभ्यः श्वेततादिभ्यो मुक्तादाम यथा पृथक् ।

गुणपर्याययोर्व्यक्तेर्द्रव्यशक्तिस्तथाश्रिता ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—जैसे मोतियोंसे तथा श्वेतता आदि गुणोंसे मोतीकी माला भिन्न है, ऐसेही गुणपर्यायकी व्यक्तिसे द्रव्यशक्ति पृथक् होकर भी एक प्रदेशमें आश्रित होनेसे अभिन्नरूप है ॥ ३ ॥

व्याख्या । यथा मुक्ताभ्यो, मौक्तिकानां श्वेतादिभ्यश्च मौक्तिकमाला भिन्ना वर्तते । तथैव द्रव्यशक्तिर्गुणपर्यायव्यक्तिभ्याम् । तथात्र समाधिः । गुणपर्याययोर्व्यक्तेः सकाशान् पृथगपि द्रव्यशक्तिरेकप्रदेशसंबन्धेनाश्रिता अभिन्ना अपृथगित्यर्थः । श्वेततादयो मौक्तिकानां गुणस्थानिनः, मौक्तिकाः पर्यायस्थानिनः । एतद्द्वयं भिन्नमपि द्रव्यस्थाने मुक्तादान्नि संगतमभिन्नं सन् मुक्तादामेति व्यवहारो जायते । इति दृष्टान्तयोजना । अथ च घटादिद्रव्यं प्रत्यक्षप्रमाणेन सामान्यविशेषरूपमनुभवन् सामान्योपयोगेन मृत्तिकादिसामान्यं भासते विशेषोपयोगेन घटादिविशेषं च भासते । तत्र यत्सामान्यभानं तद्द्रव्यरूपम् । यश्च विशेषः स गुणपर्यायरूपो ज्ञेयः । ३ ।

व्याख्यार्थः—मौक्तिक (मोतीकी) माला, मोतीसे तथा मोतीमें रहनेवाले श्वेतता आदि गुणोंसे जैसे भिन्न भासती है, ऐसे ही गुणव्यक्ति तथा पर्यायव्यक्तिसे द्रव्यशक्ति भिन्न भासनेपर भी एकप्रदेशसंबन्धमें आश्रित होनेसे अभिन्न है, यह अभिप्राय सूत्रका है । श्वेतआदि गुण जो हैं वे मोतियोंके गुणस्थानी हैं, और मोती पर्यायस्थानी हैं; ये दोनों (गुणपर्याय) भिन्न हो कर भी, मोतीकी मालारूप द्रव्यस्थानमें मिले हुए अभिन्न है इस ही से मोतीकी माला यह व्यवहार होता है ऐसे सूत्रके दृष्टान्तकी योजना है । और जो घट आदिरूप द्रव्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे सामान्य और विशेषरूपको अनुभव करता हुआ सामान्य उपयोगरूपसे मृत्तिका आदि सामान्यरूप भासता है, और विशेष उपयोगसे घट आदि विशेषरूप भासता है; इसमें जो सामान्य भान है वह तो द्रव्यरूप और जो विशेषका भान है उसको गुणपर्यायरूप जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ सामान्यं द्विप्रकारं दर्शयन्नाह ।

अब दो प्रकारके सामान्यको दिखाते हुए सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । ऊर्ध्वतादिमसामान्यं पूर्वापरगुणोदयम् ।

पिंडस्थादिकसंस्थानानुगता मृद्यथा स्थिता ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—पूर्वोक्त गुणपर्यायोंके उदयका कारण, तथा पूर्वोत्तर पर्यायोंकी त्रिकाल दशामें पिंड कुसूल अनेक आकारोंमें जो एक अनुगतरूपसे स्थित है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या । पूर्वः प्रथमोऽपरोऽग्रेऽतनो यो गुणो विशेषस्तयोरुदयं कारणं पूर्वापरगुणोदयं पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रव्यं त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्ध्वतासामान्यमित्यभिधीयते । निदर्शनमुत्तानमेव । यथा । पिंडो मृत्पिंडः अस्थिः कुसूल-

इत्यादयोऽनेके सस्थाना आकृतयस्तासु अनुगता पूर्वापरसाधारणपरिणामद्रव्यरूपा मृत्तिका तथाकारा स्थिता । एतदूर्ध्वतासामान्य कथ्यते । यदि च पिंडकुसूलदिपर्यायेषु अनुगतमेक मृदद्रव्य न कथ्यते । तदि घटादिपर्यायेषु अनुगत घटादिद्रव्यमपि न कथ्यते । तथा च सर्व विशेषरूप भवति । क्षणिकवादिबौद्धमतमायाति । अथवा सर्वद्रव्येषु एकमेव द्रव्यमागच्छतीति । तत् । घटादिद्रव्ये अथ च तदतर्ध्वतासामान्यमृदादिद्रव्ये चानुभवानुसारेण परापरो र्ध्वतासामान्यमवश्यमङ्गीकर्तव्यम् । घटादिद्रव्याणि स्लोकपर्यायव्यापीनि पुनर्मृदादिद्रव्याणि बहुपर्यायव्यापीनि सति । इत्थ नरनारकादिद्रव्याणा निगोपो ज्ञातव्य । एतत्सर्वमपि नैगम नयमतम् । तथा शुद्धसप्रह्ननयमते तु सद्वैतवादेन एकमेव द्रव्यमापद्यतेतिज्ञेयम् । ४ ।

व्याख्यार्थः—पहिले और अगले निशेपोंके उदयका जो कारण सो पूर्वापर गुणोदय अर्थात् पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें निकाल अनुयायी पदार्थका अर्थात् उसको उर्ध्वता नामक प्रथम सामान्य कहतेहैं । दृष्टान्त यह है कि जैसे—मृत्तिकाका पिंड, कुसूल इत्यादि आकृतियोंमें अनुगत अर्थात् पूर्वोत्तर साधारण परिणामरूप द्रव्यरूप जो मृत्तिका है वह उसही आकारसे स्थित है । इसहीको उर्ध्वता सामान्य कहतेहैं । और यदि पिंड कुसूल आदि यावत् पर्यायोंमें अनुगत एक मृत्तिकारूप द्रव्य न कहै तो घट आदि पर्यायोंमें अनुगत घट आदि द्रव्य भी नहीं कह सकते, और इस प्रकारसे सब निशेपरूप होनेसे क्षणिकवादी बौद्धका मत आके प्राप्त होता है । अथवा सपूर्ण द्रव्योंमें एकही द्रव्य आता है, इस लिये घटआदि द्रव्योंमें और उसके अन्तर्गत सामान्य मृत्तिका आदि द्रव्योंमें भी अनुभवके अनुसार पूर्वापरदशासाधारण ऊर्ध्वता सामान्य अवश्य अङ्गीकृतव्य है । इनमें घटआदि द्रव्य तो अल्प पर्याय व्यापी है और मृत्तिका आदि द्रव्य बहुत पर्याय व्यापी हैं । इसी प्रकार नर तथा नारक आदि द्रव्योंकाभी निशेप समझना चाहिये । यह सब द्रव्य गुण तथा पर्यायका भेद और अभेद तथा ऊर्ध्वता सामान्यकी व्यवस्थादि नैगमनयमतके अनुसार वर्णन किया गया है, और शुद्धसप्रह्ननयमतके अनुसार तो सद् अद्वैतनादसे एक ही द्रव्य प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥

पूर्वापरसाधारण परिणामद्रव्यमूर्ध्वता कटककणानुगामिका न वर्त्ततीति तत्त्वरूपमु क्त्वाथ तिर्यक्सामान्यलक्षणमाह ।

पूर्वापरपर्यायोंमें साधारण परिणामरूप द्रव्य ऊर्ध्वता सामान्य है, वह कुडल, कटक (कडे) ककण आदि पर्यायोंमें अनुगामी पनेको नहीं कहता है याते ऊर्ध्वता सामान्यका स्वरूप कहके अत्र तिर्यक्सामान्यका लक्षण कहते हैं ॥

सूत्रम् । तुल्या परिणतिभिन्नव्यक्तिषु यत्तदुच्यते ।

तिर्यक्सामान्यमित्येव घटत्वं तु घटेष्विव ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—भित्त २ प्रयोगोंमें स्थित जो अनेक व्यक्ति हैं उन सबमें मृदश परिणामरूप जो द्रव्यव्यक्ति है उसको तिर्यक्सामान्य कहने है जैसे कि घटामें घटत्व ॥ ५ ॥

व्याख्या । यत् भिन्नव्यक्तिषु भिन्नप्रदेशविशेषेषु तुल्या समाना एकरूपा । एकाकारा द्रव्यशक्तिस्तित्तिर्यक्सामान्यमुच्यते तु । यथा । घटेषु घटत्वं, गोषु शाबलेयादिषु गोत्वम्, अश्वेषु अश्वत्वं, तिष्ठति सामान्यभूतम् । तथा । अनेकाकारघटसहस्रेष्वपि घटत्वमेवेति तिर्यक्सामान्यमिति । अत्र कश्चिदाह । यद्घटादिभिन्नव्यक्तिषु यथा घटत्वादिकं सामान्यमेकमेवास्ति । तथा पिङ्गकुसूलादिभिन्नव्यक्तिषु मृदादिसामान्यमेकमेवास्ति । तर्हि तिर्यक्सामान्योर्ध्वतासामान्ययोः को विशेषस्तत्राह । यत्र देशभेदेन या एकाकारा प्रतीतिरुत्पद्यते । तत्र तिर्यक्सामान्यमभिधीयते । यत्र पुनः कालभेदेन अनुगताकारप्रतीतिरुत्पद्यते । तत्र ऊर्ध्वतासामान्यमभिधीयते इति । एवं सति दिगंबरानुसारी कश्चिद्वक्ति । पण्णां द्रव्याणां कालपर्यायरूप ऊर्ध्वताप्रचयः । कालं विना पञ्चद्रव्याणामवयवसंघातरूपतिर्यक्प्रचयश्चास्ति । एवं वदतां तेषां मते तिर्यक्प्रचयस्याधारो घटादिस्तित्तिर्यक्सामान्यं भवति । तथा परमाणुरूप प्रचयपर्यायाणामाधारो भिन्न एव युज्यते । तस्मात् पञ्चद्रव्याणाम् । स्कंध १ देश २ प्रदेश भावेन एकानेकव्यवहार उत्पादनीयः । परंतु तिर्यक्प्रचय इति नामांतरमप्रयोजकं बालुकापेषवत् । इति नियमः १४ । ५ ।

व्याख्यार्थः—जो भिन्न २ प्रदेशोंवाले विशेषोंमें समान अर्थात् एकआकारवाली द्रव्यशक्ति है उसको तिर्यक् सामान्य कहते हैं जैसे संपूर्ण घट व्यक्तियोंमें घटत्व, शाबलेय आदि समस्त गो व्यक्तियोंमें गोत्व, एवमेव अश्व (घोड़े) में अश्वपना सामान्यभूत रहता है वैसेही अनेक आकारवाले हजारों घटोंमेंभी घटत्वही रहता है ऐसा तिर्यक् सामान्य है ॥ अब यहांपर कोई शंका करता है कि जैसे घट आदि भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें घटत्व आदि सामान्य एक ही है ऐसे ही पिङ्ग, कुसूल, आदि भिन्न व्यक्तियोंमें मृत्तिका आदि सामान्य भी एक ही रूप है. तो तिर्यक् सामान्य तथा ऊर्ध्वता सामान्य इन दोनोंमें क्या विशेष है ? इस शंकाका उत्तर देते हैं—जहांपर एक जातिके पदार्थोंमें केवल देशभेदसे जो सब उस प्रकारकी व्यक्तियोंमें एकाकार प्रतीति होती है वहांपर उस (एकाकार प्रतीति वा भान) को तिर्यक् सामान्य कहते हैं; और जहां पुनः कालभेदसे सब पर्यायोंमें अनुगत एकाकार प्रतीति होती है उसको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं; येही दोनोंमें भेद है । इस प्रकार मानने पर कोई दिगम्बर जैनमताऽनुयायी कहते हैं कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन छहों द्रव्योंका काल पर्यायरूपमें तो ऊर्ध्वता प्रचय है; और कालको छोड़के शेष पंच द्रव्योंका अवयव संघातरूप तिर्यक् प्रचय है । इस प्रकार कहनेवाले दिगम्बरियोंके मतमें तिर्यक् प्रचयका आधार घटआदि तिर्यक् सामान्य होता है; और उसी रीति परमाणुरूप प्रचय पर्यायोंका आधार उनसे कोई भिन्न होना योग्य है!! इस हेतुसे पञ्चद्रव्योंका स्कंध १ देश २ तथा प्रदेश भावसे एक तथा अनेक व्यवहार प्रतिपादन करना चाहिये; परन्तु तिर्यक् प्रचय ऐसा अन्य नाम तो व्यर्थही है जैसे बालू (रेती) का चूर्ण वश यही नियम है ॥ ५ ॥

अधोर्ध्वतासामान्यशक्तेर्भेदद्वय दर्शयन्नाह ।

इमके पश्चात् उर्ध्वता सामान्य शक्तिके दो भेद दर्शाते हैं,

सूत्रम् । गुणपर्याययोः शक्तिमात्रमोघोद्भवादिमा ।

आसन्नकार्ययोग्यत्वाच्छक्तिः समुचिता परा ॥ ६ ॥

सूत्रभाष्यः—द्रव्योके गुण तथा पर्यायमें शक्तिमात्र है उसके दो भेद हैं, उनमेंसे जो प्रथम शक्ति है उसको ओघोद्भवा कहते हैं, और समीपवर्ती कार्यके योग्य होनेमें तथा व्यवहारके उपयुक्त होनेसे द्वितीय शक्तिको समुचिता शक्ति कहते हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या । सर्वेषां द्रव्याणां निजनिजगुणपर्याययोः शक्तिमात्रम् । ओघोद्भवा ओघशक्ति आत्मा प्रथमभेदरूपा कल्पते । पुन आसन्न निकट शीघ्रभावि वा यत्कार्यं तस्य योग्यत्वान् व्यवहारयोग्यत्वान् समुचिता शक्तिरपरा द्वितीया समुचितशक्तिरन्यत इति । ६ ।

व्याख्यार्थः—सम्पूर्ण द्रव्योके गुण तथा पर्यायमें जो शक्तिमात्र है उसके दो भेद हैं, प्रथम अथवा आदि शक्ति जो ओघमें अर्थात् समूहसे उत्पन्न होती है उसको ओघशक्ति कहते हैं, और पुन समीपवर्ती शीघ्रभावी जो कार्य है उसके योग्य होनेमें तथा व्यवहारके उपयोगी होनेसे द्वितीय शक्तिको समुचित (उचित वा योग्य) शक्ति कहते हैं ॥ ६ ॥

अथैतन्नेद्वय दृष्टान्तेन द्रढयन्नाह ।

अन इन दोनों भेदोंको दृष्टान्तसे दृढ करते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । ज्ञायमाना तृणत्वेनाज्यशक्तिरनुमानतः ।

किं च दुग्धादिभावेन प्रोक्ता लोकसुखप्रदा ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—यद्यपि घृतकी शक्ति तृणपनेकर अनुमानसे जानी जाती है तथापि दुग्धभाजसे कही हुई लोकमें सुख देनेवाली होती है ॥ ७ ॥

व्याख्या । यथा आज्यशक्तिर्घृतशक्ति तृणत्वेन तृणभावेन अनुमानप्रमाणतो ज्ञायमानापि लोकानामप्रत कथयितुं न शक्यते । यदि तृणपुद्गलेषु घृतशक्तिर्नास्ति तदा तृणाहारेण धेनु दुग्धं कथं वत्ते । तदुग्धान्तर्भूता घृतशक्ति कुत आगता । इत्यमनुमीयमाना तृणभावेन घृतशक्तिर्ज्ञातापि लोकानां पुन प्रकाशयितुमशक्या । तस्मात् तृणभावेन या शक्ति सा ओघशक्तिरित्येकदृष्टान्तः । किं चानुमीयमानौघशक्तिराणां पुनर्व्यवहारदेश एभवे । तथाह । तृणजन्यदुग्धादिभावेन दुग्धं न ध्यान्निभावेन परिणमिता घृतशक्ति प्रकाशयमाना लोकसुखप्रदा लोकचित्तगम्या भवेत् । तत सा शक्तिर्द्वितीया समुचितशक्ति कथ्यते । अत्राय विप्रैक । अनन्तरकारणमध्ये समुचितशक्तिः, परम्परकारणमध्ये ओघशक्तिरिति । ओघशक्तौ तु तृणानि धेनुरभाति, पुष्टा मती दुग्धं वत्ते, दुग्धेन दधि जायते, दध्न कारणकलापेन घृतमेवमीधेन घृतशक्ति स्फुटीभवति । तथान्यत्र दुग्धं न ध्यादेर्घृतमेवेति व्यवहारयोग्यत्वं लोकप्रसिद्धमेवेति । अथ च ओघशक्तिसमुचितशक्तयोरन्यकारणता, प्रयोजनवेतिनामान्तरद्वयमपि ग्रन्था न्तरात्कथितमिति धेयम् । ७ ।

व्याख्यार्थः—जैसे घृतशक्ति तृणस्वरूपसे अनुमानप्रमाण द्वारा जानी जाती है तो भी मनुष्योंके आगे कही नहीं जा सकती । यदि तृणरूप पुद्गलोंमें घृतशक्ति नहीं होती तो तृणका भोजन करनेसे गौ दुग्ध कैसे देती ? और उस दुग्धके भीतर भी जो घृत शक्ति है वह कहाँसे आती ? इसप्रकार अनुमान की हुई घृतशक्ति तृणभावसे जानली गई है तो भी मनुष्योंके आगे वह प्रकट नहीं की जा सकती । इसी हेतु तृणभावसे ज्ञात जो घृतशक्ति है वह पहली ओघशक्ति है । यह एक दृष्टान्त हुआ । किञ्च अनुमान प्रमाण सिद्ध जो वह आदिम ओघशक्ति है सो फिर व्यवहारके आदेश को प्राप्त होती है । सो ही कहते हैं कि तृणके भोजनसे उत्पन्न हुए दुग्ध आदि भावसे परिणामको प्राप्त हुई घृतशक्ति जो लोकमें प्रकाशित की जाती है वह लोगोंको सुख देनेवाली अर्थात् रमणीय होती है । तात्पर्य यह कि यदि लोकमें कहो कि घृत तृणसे उत्पन्न होता है तो लोगोंको अच्छा नहीं लगेगा और दुग्धसे घृत उत्पन्न होता है ऐसा कहना सबको अच्छा लगेगा क्योंकि घृत साक्षात् दुग्ध व दधि (दही) से उत्पन्न होता है इसकारण वह दूसरी शक्ति समुचिता शक्ति कहलाती है । यहांपर ऐसा विवेक करना चाहिये कि व्यवधानरहित कारणके मध्यमें जो शक्ति है वह समुचित शक्ति है अर्थात् दुग्ध तथा दधिरूप कारण और घृतकार्यके मध्यमें कोई व्यवधान नहीं है इसलिये घृतकार्यके अव्यवहित पूर्व दुग्ध वा दधिरूप कारणमें जो शक्ति है वह समुचित शक्ति है । परंपरा कारणके मध्यमें जो शक्ति है वह ओघशक्ति है । इस ओघशक्तिमें परंपरा इसप्रकार है कि गौ पहले तृणोंको खाती है, फिर उससे रस आदिका जो परिणमन होता है उससे जब पुष्ट होती है तब दुग्ध देती है, पुनः दुग्धसे दधि होता है, इसरीतिसे तृणसे दधिपर्यन्त जो कारणोंका समूह है उससे घृत होता है, ऐसे ओघसे घृतशक्ति प्रकट होती है । और अन्यत्र दूध दही आदि घृतरूप है यह व्यवहार लोकमें प्रसिद्ध ही है । तथा ओघशक्ति और समुचित शक्तिके अन्य ग्रंथोंमें कहे हुए समुचित कारणता तथा प्रयोजनता ये दो दूसरे नाम भी जानने चाहियें ।

अथ आत्मद्रव्यमध्ये एतच्छक्तिद्वयं विवक्ति ।

अजीव द्रव्यमें दोनों शक्तियोंका निरूपण करके अब आत्मद्रव्यमें ओघशक्ति तथा समुचितशक्तिकी विवेचना करते हैं—

सूत्रम् । प्राक् पुद्गलपरावर्ते धर्मशक्तिर्यथौघजा ।

अन्त्यावर्ते तथा ख्याता शक्तिः समुचिताङ्गिनाम् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—जैसे भव्य जीवोंके प्रथम पुद्गलोंके परावर्तनोंमें ओघ (समूह)से उत्पन्न हुई धर्मशक्ति थी वैसे ही अन्तके पुद्गल परावर्तनमें समुचिता नामसे प्रसिद्ध धर्मशक्ति है ॥ ८ ॥

व्याख्या । यथा अङ्गिना प्राणिना भव्याना प्राक् पुद्गलपरावर्ते प्रथमपुद्गलपरावर्ते जात्ये-
कवचनम् । अर्थात् अनन्तेषु पुद्गलपरावर्तषु प्रथम व्यतीतेषु सत्सु ओघजा सामान्यरूपा धर्म-
शक्तिसदनुगता आसीत् । यद्येव न भवेत्तर्हि अन्यपुद्गलपरावर्ते सा कुत प्राप्स्यते । यत्
नासतो विद्यते भाव इत्यादिवचनात् । तथा पुनरन्यावर्ते चरमपुद्गलपरावर्ते धर्मशक्ति समु-
चिता ख्याता । अत एवाचरमपुद्गलपरावर्तकालो भवनाल्यकाल पुनरन्यपुद्गलपरावर्तकालो
धर्मयौवनकालश्च कथ्यते । उक्तं च ।

अचरमपरियट्टेसु कालो भवबालकालगो भणिओ ।

चरमोड धम्मजुवणकालो न्ह वज्रमेउत्ति । १ । एतद्विग्रहा पठितमिति ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे भव्य जीवोंके प्रथम पुद्गलोंके परावर्त्तनोंमें, “प्राक्पुद्गल-
परावर्त्ते” यहा जातिकी अपेक्षा से एक वचनका प्रयोग किया गया है भावार्थ—अनन्त
परावर्त्तमान अर्थात् एकके पीछे निरन्तर गमनागमन शील जो पुद्गल प्रथम व्यतीत
होते चले आये है उनमें ओघसे उत्पन्न तथा उनके सब पर्यायोंमें अनुगत सामान्य
रूपको धारण करनेवाली धर्मशक्ति विद्यमान थी । क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय
तो अन्तिम पुद्गल परावर्त्तनमें उन पुद्गलोंको पर्यायोंमें चलानेवाली धर्मशक्ति कहासे
प्राप्त हो सकती है ? क्योंकि असत् पदार्थका भाव अर्थात् विद्यमानपना नहीं हो
सक्ता इत्यादि वचन है, इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम पुद्गलोंके परावर्त्तनोंमें सामान्य
रूप ओघसे उत्पन्न धर्मशक्ति अवश्य थी । तथा अन्तिम पुद्गलोंके परावर्त्तनोंमें जो
विद्यमान धर्मशक्ति है उसका समुचिता नाम है । इसी कारणसे प्रथम पुद्गलोंका जो
परावर्त्तन काल वह भवका बाल्य काल है, और जो अन्तके पुद्गलोंका परावर्त्तन काल
है वह धर्मका यौवनकाल कहा जाता है । इस निषयमें यह वचन भी कहा गया है कि—
प्रथम पुद्गलोंके परावर्त्तनोंका काल भवका बाल्यकाल कहलाता है, तथा अन्तके
पुद्गलोंका परावर्त्तन काल धर्मयौवनकाल कहलाता है । १ । यह गाथा विंगति-
नामक ग्रन्थमें पठित है ॥ ८ ॥

अथ द्रव्यशक्ति व्यवहारनिश्चयनयाभ्या दर्शयत्ताह ।

अत्र द्रव्यकी शक्तिको व्यवहार तथा निश्चयनयसे दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । कार्यभेदाच्छक्तिभेदो व्यवहारेण दृश्यते ।

युक्तिनिश्चयनयादेकमनेकैः कार्यकारणैः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—व्यवहारयुक्ती अपेक्षासे कार्योक्ति भेदसे शक्तिभेद भी देय पड़ता है,
तथा निश्चयनयकी अपेक्षासे तो अनेक कार्य तथा कारणोंसे युक्त होने पर भी निजशक्ति
स्वभावा एकही द्रव्य है ॥ ९ ॥

व्याख्या । एष पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकस्य कार्यस्य ओघशक्तिसमुचितशक्तिरूपा शक्तयोऽने
कदा एकद्रव्यस्य प्राप्नोते । ता पुनर्व्यवहारनयेन व्यवहृता सस कार्यकारणभेद सूचयति ।

कथं—व्यवहारनयो हि कार्यकारणभेदमेव मनुते । निश्चयनयो हि अनेककार्यकारणैर्युगपि द्रव्यमेकमेव स्वशक्तिस्वभावमस्तीत्यवधारयति । कदापि इत्थं नावधार्यते । तदा स्वभाव-भेदाद्द्रव्यभेदोऽपि संपद्येत । तस्मात्तत्तद्देशकालादिकापेक्षया एकस्यानेककार्यकारणस्वभावमङ्गी-कुर्वतां न कोपि दोषोपः । कारणान्तरापेक्षापि स्वभावान्तर्भूता एवास्ति । तेन तस्यापि वैफल्यं न जायते । तथा शुद्धनिश्चयमताङ्गीकारे तु कार्यकारणकल्पनैव मिथ्या । यतः—आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथेति वचनात् । कार्यकारणकल्पनाविरहितं शुद्धमविकलमचलितस्वरूपं द्रव्यमस्तीति ज्ञेयम् । ९ ।

व्याख्यार्थः—पूर्व प्रसंगमें कही हुई रीतिसे एक एक कार्यकी ओघशक्ति तथा समुचित शक्तिरूप जो शक्तियें हैं वे एक द्रव्यके अनेक प्राप्त होती हैं, और व्यवहार-नयसे व्यवहृत (व्यवहार वा उपयोगमे प्राप्त) होनेसे वे ही शक्तियें कार्य तथा कारणका भेद सूचित करती हैं; क्योंकि व्यवहार नय कार्यकारणका भेद ही मानता है; और निश्चय (शुद्ध) नय तो अनेक कार्य तथा कारणोंसे युक्त होनेपर भी द्रव्य एक निज-शक्ति स्वभाववाला है ऐसा निश्चय कराता है, और ऐसा निश्चय कभी भी नहीं कराता कि कार्यकारणोंके भेदसे अनेक स्वभावयुक्त द्रव्य होता है, क्योंकि जब ऐसा माना जा-यगा तब स्वभाव भेदसे द्रव्य भेद भी प्राप्त हो जायगा । इसलिये उस उस देश उस उस काल आदिकी अपेक्षासे एक द्रव्यका अनेक कार्य कारण स्वभाव अंगीकार करने-वालोंको कोई भी दोषका लेश नहीं है, और कारणान्तरकी अपेक्षा जो है वह भी द्रव्यके स्वभावके अन्तर्गत ही है, इसलिये उसको भी निष्फलता नहीं होती और शुद्ध निश्चय नयके मतको स्वीकार करने पर तो कार्यकारणकी कल्पना ही मिथ्या है । क्योंकि “जो धर्म अथवा स्वभाव अर्थात् द्रव्यका अनेक स्वरूप आदि अन्तमे नहीं है वह वर्त-मानमें भी वैसा ही है अर्थात् नहीं है ऐसा वचन है; इससे कार्यकारणकी कल्पनासे शून्य, अखंडित, तथा अविचलित स्वरूप एक ही द्रव्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ९ ॥

पूर्वत्र शक्तिस्वरूपं द्रव्यं व्याख्यातम् । अथ च व्यक्तिरूपौ गुणपर्यायौ वर्णयन्नाह ।

पूर्व प्रकरणमें शक्तिस्वरूप द्रव्यका वर्णन किया गया, अब व्यक्तिरूप गुण तथा पर्यायका वर्णन करते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं.

सूत्रम् । स्वस्वजात्यादिभूयस्यो गुणपर्यायव्यक्तयः ।

शक्तिरूपो गुणः केषांचिन्मते तन्मृष्टागमे ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—सहभावी अथवा क्रमभावी कल्पनासे किये हुए निजस्वभावसे वर्तमान गुण तथा पर्यायोंकी व्यक्ति अनेक प्रकारकी है; और किन्हीके अर्थात् दिग्गम्बरमतानु-सारियोंके मतसे गुण जो है वह शक्तिरूप ही है परंतु यह शास्त्रीय सिद्धान्तोंसे मिथ्या है ॥ १० ॥

व्याख्या । स्वस्वजात्या सहभाविक्रमभाविविकल्पनाकृत्तिजस्वभावेन वर्तमानां गुणपर्याय-

व्यक्तयो भूयस्यो बहुप्रकारा सन्तीति । अत्र कश्चिद्दिगम्बरानुसारी शक्तिरूपो गुण इति कथयन्नाह । यतो द्रव्यपर्यायकारणं द्रव्यम् । गुणपर्यायकारणं गुणं द्रव्यपर्याययोर्द्रव्यस्यान्यथाभावः । यथा नरनारकादयो यथा वा द्व्यणुकत्र्यणुकादयः । पुनर्गुणपर्याययोर्गुणस्यान्यथाभावः । यथा मतिश्रुतादिविशेषः । अथवा भवस्थसिद्धादिविशेषः । एतौ द्रव्यगुणौ स्वस्वजात्या शाश्वतौ पर्यायेण चाशाश्वतौ इत्यसंगिरन्ते । परमार्थतस्तु आगमयुक्त्या एतत्सर्वमृषा असत्कल्पनमित्यवधार्य प्रमाणाभावात् ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—द्रव्योक्ते अपने २ स्वभावासे सहभावी अर्थात् द्रव्यके साथ ही होनेवाले गुणोंकी व्यक्तिया, तथा द्रव्योक्ते निज २ स्वभावसे क्रमभावी पर्यायोंकी व्यक्तिया अनेक प्रकारकी हैं । यहाँ कोई दिगम्बरमतके अनुयायी शक्तिरूप ही गुण है ऐसा कहते हुए कहते हैं कि द्रव्यपर्यायका कारण तो द्रव्य है, और गुणपर्यायका कारण गुण है, तथा द्रव्य और पर्यायोंमें भी द्रव्यका अन्यथा भाव है, जैसे जीवद्रव्यके नर तथा नारकादि विशेष, पुद्गल द्रव्यके द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि विशेष, और गुणपर्यायोंमें गुणका अन्यथाभाव अर्थात् गुणकी रूपान्तरसे स्थितिरूप ही है । जैसे ज्ञानगुणके मतिश्रुत आदि विशेष, अथवा भगवत्स्थ सिद्ध आदिक विशेष । फिर यह द्रव्य गुण निज निज स्वभावासे तो नित्य है, और पर्यायरूपसे अनित्य है, ऐसा दिगम्बर जैनी कहते हैं । परन्तु यथार्थमें शास्त्रीय युक्तिके यह सब मिथ्या हैं अर्थात् यह कल्पना उनकी असद्रूप है । क्योंकि इस कल्पनामें कोई प्रमाण नहीं है ॥ १० ॥

अथ गुणपर्याययोरैक्यप्रदर्शयन्नाह ।

अथ गुण तथा पर्याययोरैक्यता दर्शयते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायान्न गुणो भिन्नः सम्मतिग्रन्थसम्मतः ।

यस्य भेदो विवक्षात् स कथं कथ्यते पृथक् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—सम्मतिग्रन्थको यह सम्मत है कि पर्यायसे गुण भिन्न नहीं है क्योंकि जिसका भेद वक्तानी इच्छा अथवा किमी अपेक्षाके आधीन है वह पदार्थ भिन्न कैसे कहा जा सकता है ॥ ११ ॥

व्याख्या । पर्यायाद्गुणो भिन्नः पृथक् न किंतु पर्याय एव गुण इत्यर्थः । कीदृशो गुण सम्मतिग्रन्थसम्मतः । सम्मतिग्रन्थे श्रीमत्सिद्धसेनैराचार्यैर्व्युत्तराच्चा समुच्चारितस्तथा च तद्वन्थः ।

परिगमणपञ्चाओ अणुगकरणे गुणान्ति तुल्यता ।

तद्विचि न गुणान्ति भण्णं पञ्चवणयदेसण जम्मा ॥ १ ॥

इति यथाक्रमभावित्र पर्यायलक्षणम् । तथैवानेककरणमपि पर्यायस्य लक्षणान्तरमेवास्ति । द्रव्यं तु एकमेवास्ते ज्ञानदर्शनादिभेदकार्यमपि पर्याय एव पर गुणो न कथ्यते । यस्मात् द्रव्यपर्याययोर्भगवतो देशना वर्तते । परन्तु गुणपर्याययोर्देशना न विद्यते । अथ गाथा । एव सति गुण पर्यायान्निष्ठो न तादृह द्रव्यम् १ गुण २ पर्याय ३ अस्ति नामत्रयं पृथक् कथं सङ्कलितम् । इत्येवंचन व्याचक्षते तानाह । यस्य गुणस्य विवक्षाकृतो भेदो विवक्षा हि

नयस्य कल्पना । यथा तैलस्य धारा । अत्र तैलान् धारा भिन्ना प्रदर्शिता । तथापि भिन्ना नास्ति । तथैव सहभावी गुणः क्रमभावी पर्याय इति भिन्नत्वं विवक्षितं परं परमार्थदृशा भिन्नत्वं नास्ति । तस्माद्यस्य भेद उपचरितो भवेत् । स कथं भिन्नत्वेन व्यपदिष्यते । यथा उपचरितगुणे दृष्टान्तवचनं “गौर्दोग्धि” इत्यत्र गोर्न दौग्धि तद्वन् उपचरितगुणोऽपि शक्तित्वं न धत्त इति । ११ ।

व्याख्यार्थः—पर्यायसे गुण भिन्नरूप नहीं है किन्तु पर्याय ही गुण है, कैसा गुण ? इस आकांक्षापर विशेषण कहते हैं कि सम्मतिग्रन्थके सम्मत अर्थात् सम्मतिग्रन्थमे श्रीसिद्धसेन आचार्यद्वारा स्पष्ट वाणीसे कहा गया ऐसा । उनके ग्रन्थकी गाथा यह है कि द्रव्यमें जो क्रमसे गमन करै अर्थात् क्रमसे हो वह पर्याय है तथा एकको अनेक करना यह गुण है और दोनों समान हैं तथापि गुण नहीं कहा जाता है क्योंकि शास्त्रोंमें पर्याय-नयका ही कथन है । १ । तात्पर्य—गाथाका यह है कि जैसे क्रमभावीपना पर्यायका लक्षण है, उस ही प्रकार एकको अनेक करना भी पर्यायका दूसरा लक्षण ही है, द्रव्य तो सदा एक रूप ही रहता है, तथा ज्ञान दर्शन आदिकके भेदका करनेवाला भी पर्याय ही कहा जाता है न कि गुण. क्योंकि गुण, भेद करनेवाला नहीं है इसीसे श्रीभगवान्का उपदेश भी द्रव्य तथा पर्यायमें ही है । परंतु गुण और पर्यायमें उपदेश नहीं । यदि पूर्वोक्त प्रकार गुण पर्यायसे भिन्न नहीं है तो द्रव्य, गुण तथा पर्याय यह तीन नाम जुड़े कैसे गिने गये इस प्रकार जो कितने ही कहते हैं उनका समाधान करनेके लिये उत्तरार्द्धसे कहते हैं कि जिस गुणका विवक्षासे किया हुआ भेद है वह भिन्नपनेसे कैसे कहा जाय ? भावार्थ—नयोंकी जो कल्पना है वह विवक्षा कहलाती है, जैसे “तैलकी धारा” इस वाक्यमें तैलसे धारा जुड़ी दिखाई गई है; तो भी यथार्थमें धारा तैलसे भिन्न वस्तु नहीं है, वैसे ही सहभावी साथ होनेवाला गुण, तथा क्रमभावी (क्रमसे होनेवाला) पर्याय, ऐसे गुण पर्यायका भेद केवल विवक्षासे है, परंतु परमार्थदृष्टिसे भेद नहीं है । इसकारण जिसका भेद उपचारसे माना गया हो, वह यथार्थमें भिन्नरूपसे कैसे कहा जा सकता है । और गुण उपचारसे है इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे ‘गौ दुहती है’ यहां गौ नहीं दुहती है । यहांपर दोहनकर्त्तापना उपचारसे गायमें है न कि यथार्थमें । ऐसे ही उपचारको प्राप्त हुआ गुण भी शक्तिको नहीं धारण करता है ॥ ११ ॥

अथ ये च गुणः पर्यायाद्भिन्न इति प्रमाणयन्ति तान् दूषयन्नाह ।

अब गुण पर्यायसे भिन्न पदार्थ है, ऐसा जो प्रमाण करते हैं उनको दूषण देते हुए आगेका सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । गुणो द्रव्यं तृतीयं चेत्तृतीयोऽपि नयस्तदा ।

सिद्धान्ते द्रव्यपर्यायार्थिकभेदान्नयद्वयम् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—द्रव्य तथा पर्यायको मानकर सिद्धान्तमें द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदमे दो ही नय कहे गये हैं, यदि गुण भी तृतीय द्रव्य होता तो तीसरा नय भी कहते ॥ १२ ॥

व्याख्या । यदि गुणस्तृतीय पदार्थ द्रव्यपर्यायाद्विज्ञेय पदार्थो भावो भवेत् । तदि तृतीयो नयोऽपि लभ्यते । सूत्रे तु द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिक इति नयद्वयमेव कथितम् । नयान्तर यद्यभविष्यत्तदाद्रव्यत् । अतो नयद्वयादपरो नय एव न । उक्तं च सम्मतो—

बोऊ णया भगवया दब्बद्वियपज्जवट्टियाणियया ।

जइ पुण गुणोचि हुतो गुणद्वियणयोमि जुज्जतो ॥ १ ॥

ज च पुण भगवया ते सुत्तेसु सुत्तेसु गोयमाईण ।

पज्जवसण्णा णियया वागरिया तेण पज्जाया ॥ २ ॥

रूपादीना गुणसङ्गा सूत्रे न भाषिता परन्तु “वर्णपज्जवा गंधपज्जवा इत्यादिपाठ पर्यायशब्देन पठितस्तथापि गुणो न कल्प्यते । अन्यच्च । एगुणकालण्ड्यादिस्थानेष्वपि गुणान्त्रो यश्च दृश्यते सोपि गणितशास्त्रमिद्व्यपर्यायविशेष सत्यावाचको ज्ञेय । परन्तु गुणास्तिकनयविषयवाचको न । उक्तं च । सम्मतिग्रन्थमध्ये—

जपति अत्थिसमं एगु गुणो दृशगुणो अणतगुणो ।

त्वाइपरिणामा भन्नइ तन्हा गुणनिसेसा ॥ १ ॥

गुणसद्वमतरेणानि तणुपज्जवत्रिसेससराण ।

सिज्जइ ण वर सत्ता णसत्त्वधम्मो एव गुणोत्ति ॥ २ ॥

जह वससु वसगुणमि य ण्णमि वमतण समत्ते च ।

अहिय वि गुणसदे तहेव ण्णमि दब्बट्ट ॥ ३ ॥

एव गुण पर्यायात् परमार्थदृशा भिन्नो नास्ति । तस्माद्द्रव्यमिव शक्तिरूपता कथं स्यादित्यभिप्रायः । १० ।

व्याख्या—यदि गुण तीसरा पदार्थ अर्थात् द्रव्य और पर्यायसे भिन्न पदार्थ होता तो तीसरा नय भी प्राप्त होता अर्थात् सूत्रमें तो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे दो नय ही कहे गये हैं यदि तीसरा होता तो देय पड़ता । इसमे यह मिद हुआ कि इन कथित दो नयोंमे अन्य कोई नय ही नहीं है । समतिग्रन्थमें कहा भी है ।

गाथार्थ—श्री भगवान्ने द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक ये दो ही नय कहे हैं, फिर यदि द्रव्यपर्यायसे भिन्न गुण भी होता तो गुणार्थिक नय भी कहना योग्य था ॥ १ ॥ और भगवान्ने जो गौतमान्त्रिको सूत्र कहे हैं उनमे पज्जव सगा कही है इसलिये गुण पर्याय ही कहलाते हैं ॥ २ ॥

रूपादिकी सूत्रमे गुणमत्ता नहीं कही गई है परन्तु ‘वर्णपज्जवा, ‘गन्धपज्जवा’ इत्यादि पाठ पर्यायशब्दमे ही कहा है अर्थात् वर्णपर्याय, गुणपर्याय ऐसा ही कहा गया है, । और गुण शब्द बड़ापर नहीं कहा ॥ और भी ‘एगु गुणकाल ण एगु गुणकालमे’ इत्यादि स्या-

नोंमें जो गुण शब्द देख पड़ता है, वह गुणशब्द भी गणितशास्त्रमें सिद्ध पर्यायविशेषका ही नाम है, इसलिये उसको संख्याका वाचक ही समझना चाहिये और गुणास्तिक नयके विषय का वाचक नहीं। संमतिग्रन्थमें कहा भी है:—

“गाथार्थः—आर्थिक समय में ऐसा कहते हैं कि एक गुण, दशगुण, तथा अनन्त-गुण रूपादि परिणाम कहे गये हैं, इस कारण गुणशब्द संख्याविशेषवाचक है ॥ १ ॥ और गुणशब्दके बिना भी संख्याओंके विषयमें तनुपर्यायविशेष ऐसा प्रयोग किया है, इस हेतुसे एक गुण यह समूहका धर्म संख्यापरक है न कि शक्तिपरक ॥ २ ॥ जैसे दशसंख्याओंमें दशगुण है, ऐसे ही एकमें एक गुण, शतमें शतगुण है, इसी प्रकार समस्त संख्याओंमें गुण शब्दका प्रयोग है ऐसे एक गुण द्रव्यस्थ गुण नहीं है ॥ ३ ॥

इस रीतिसे परमार्थ दृष्टिसे पर्यायसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है, इस कारण से द्रव्य के सदृश शक्तिरूपता गुणकी कैसे होसकती है ॥ १२ ॥

अथ केचन पर्यायस्य दलं गुण इति वदन्ते । गुणं शक्तिरूपमेव मन्वानश्च विवदन्ते तान् दूषयन्नाह ।

अब वादीगण गुणको पर्यायका कारण मानते हैं, और गुणको स्वतत्त्वशक्तिरूप मानते हुए परस्पर विरुद्ध विवाद करते हैं उनको दूषण देते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायस्य दलं यर्हि गुणो द्रव्येण किन्तदा ।

गुणपर्याय एवेयं गुणपरिणामकल्पना ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—और यदि पर्याय का कारण (उपादान कारण) गुण हो तो पुनः द्रव्यका क्या प्रयोजन है? । और गुणपर्याय यह जो कथन है सो तो गुणकी ही परिणामरूप कल्पना है न कि अन्य कुछ ॥ १३ ॥

व्याख्या । यर्हि गुणः पर्यायस्य दलं उपादानकारणं भवति । तदा द्रव्येण किमिति-किं प्रयोजनं द्रव्यप्रयोजनं गुणेनैव सिद्धमित्यर्थात् गुणपर्यायावेव पदार्थौ उपदिश्यतां तृतीयस्यासम्भवात् इति नियमः । पुनरत्र कश्चित्कथयिष्यति । द्रव्यपर्याय १ गुणपर्याय २ रूपे कार्ये भिन्ने स्तस्ततश्च द्रव्य १ गुणरूप २ कारणे अपि भिन्ने स्तः । इति कल्पनया वादी असत्यः । कथं—कार्ये कारणोपचारात् कार्यमध्ये कारणशब्दप्रवेशो जायते । तथा कारणभेदे कार्यभेदः सिद्ध्यति । अथ च कार्यभेदसिद्धौ कारणभेदसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयनाम दूषणमुत्पद्यते । तस्मान् गुणपर्यायस्तु गुणपरिणामस्यैव पदान्तरभेदकल्पनारूपः । तत एव केवलं सम्भावना परन्तु परमार्थतो न हि । अथ च द्रव्यादि नामत्रयमपि भेदोपचारेणैव ज्ञेयम् । १३ ।

व्याख्यार्थः—यदि गुण पर्यायका उपादान कारण हो तो द्रव्यसे क्या प्रयोजन है? अर्थात् द्रव्यका प्रयोजन गुणसे ही चल जायगा तब अन्य पदार्थ मानने की क्या आवश्यकता है? और द्रव्यका कार्य गुणसे हो गया तो गुण, तथा पर्याय, इन्ही दोनों पदार्थोंका उपदेश करना चाहिये, क्योंकि तृतीयका असंभव है ऐसा नियम होना चाहिये

अब इस विषयमें यदि कोई ऐसा कहै कि द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय ये दोनों कार्य भिन्न २ रूपके हैं, इसलिये द्रव्य तथा गुण ये कारण भी भिन्न २ रूपके होना चाहिये । इस प्रकार कल्पनायादी भी मिथ्या है । क्योंकि कार्यमें ही उपचारसे कारण की कल्पना होती है इसलिये कार्यमें कारण शब्दका प्रवेश होता है । और भी प्रथम कारणका भेद सिद्ध होने पर कार्यका भेद सिद्ध होता है, और ऐसे ही कार्यका भेद सिद्ध हो जाने तब कारणका भेद सिद्ध हो सकता है, इस प्रकार कारणके भेद सिद्ध होनेमें कार्यभेद सिद्ध कारण होगा, तथा कार्यके भेद सिद्ध होनेमें कारणका भेद सिद्ध होना कारण होगा, इस रीतिसे तुम्हारे मतमें अन्योन्याश्रय नामका दूषण भी आता है । इसलिये गुणपर्याय यह जो कथन है सो तो गुणकी ही परिणामरूपसे कल्पना है क्योंकि कल्पनामात्रसे ही पर्यायमें गुणके भेदका समग्र है, और परमार्थदृष्टिसे तो गुणका पर्यायसे भेद है ही नहीं, किन्तु परमार्थमें द्रव्य गुण तथा पर्याय ये तीनों नाम भी भेदके उपचारसे ही कल्पित किये हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १३ ॥

सूत्रम् । एकानेकस्वरूपेण भेदा एव परस्परम् ।

आधाराधेयभावेन कल्पना च विभावय ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—इस पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्य एक ही है, गुण पर्याय अनेक है, इस रीतिसे परस्पर अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षासे भेदकी कल्पना मात्र जानो, और इसी पूर्वोक्त रीतिसे आधाराधेयभावकी कल्पना भी निश्चय करो ॥ १४ ॥

व्याख्या । एवममुना प्रकारेण द्रव्यमेक, गुणपर्यायाऽनेके, इत्थ भावना कार्या । परस्परमन्योन्य भेदभावकल्पना कर्तव्येत्यर्थ । च पुन अनयैव दिशा आधाराधेयभावेन कल्पना विभावय । आधाराधेयप्रमुखभावानामपि स्थभावेन भेदान् विचार्य मनसि ज्ञेयम् । यत् परस्परवृत्तिधर्माण परस्परभेदान् प्रापयन्तीति भाव । १४ ।

व्याख्यानार्थः—इस पूर्वोक्त रीतिसे कल्पना मात्रसे गुण, पर्यायकी सिद्धि होनेसे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्य एक है कल्पना अथवा विज्ञानमें गुण पर्याय अनेक है, इस प्रकार द्रव्य, गुण तथा पर्यायके परस्पर कल्पित स्वरूपमें भेदकी भावना करनी चाहिये । और इसी रीतिसे आधार, आधेय आदि मात्रसे भी कल्पना को जानो अर्थात् कल्पित स्वभावे ही भेदसे आधार, आधेय इत्यादि भावोंके भी म्यायीभावसे भेदोंको विचार कर मनमें निश्चय करो, क्योंकि परस्पर आनुत्तिशील धर्म, अर्थात् एक पक्ष से दूसरे में आनेवाले धर्म ही परस्परके भेद को ज्ञापित करते हैं यह तात्पर्य है ॥ १४ ॥

अथ आधाराधेयभावयोर्दृष्टान्तेन उपपत्तिराह ।

अथ आधार आधेय भावके विषयमें दृष्टांतद्वारा उपदेश देते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । घटादिद्रव्यमाधार आधेयौ तु गुणादिकौ ।

एकाक्षलक्ष्यारूपाद्या द्वाक्षगम्यं घटादिकम् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—घट आदि द्रव्य तो आधार हैं और गुण आदि आधेय हैं; इनमें आधेय रूप आदि तो एक इंद्रियके विषय हैं, और घट आदि द्रव्य दो इंद्रियोंके विषय हैं॥१५॥

व्याख्या । घटादिद्रव्यमाधारः द्रव्यं घटादिकमाधारो रूपादीनां । तथा हि-घटे रूपाद्या आवृतास्तिष्ठन्तीति । अथ गुणपर्यायरूपरसादयो नीलपीतादयश्चाधेयाः द्रव्ये स्थिताः । एवमाधाराधेयभावेन द्रव्यान् गुणपर्यायौ भेदेन स्थितौ । तथा रूपादयो गुणपर्याया एकेन्द्रियगोचरा एकेन्द्रियविषया इत्यर्थः । यथा रूपं चक्षुरिन्द्रियगोचरं चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणत्वात् । रसो हि रसनाविषयो रसनामात्रग्राह्यगुणत्वादित्यादि । अथ घटादि द्रव्यं तु द्वीन्द्रियविषयं चक्षुःस्पर्शाभ्यां घटो गृह्यते द्रव्यत्वात् । एतन्नैयायिकाभिमतं । स्वमते तु गन्धादिपर्यायद्वारा घ्राणेन्द्रियादिकेनापि द्रव्यप्रत्यक्षमस्ति । न हि चेत् कुसुमं घ्रापयामीत्यादिज्ञाने भ्रान्तित्वं जायते । एवमनेकेन्द्रियग्राह्यद्रव्यात् गुणपर्याययोर्भेदो ज्ञातव्यः । गुणपर्याययोरन्योन्यं भेदस्तु सहभावी क्रमभावी च कल्पनीयः । सहभावी गुणः क्रमभावी पर्याय इति । अन्यच्च पर्यायो द्विविधः । सहभावी क्रमभावी च । सहभावी गुण इत्यभिधीयते । पर्यायशब्देन तु पर्यायसामान्यस्य स्वव्यक्तिव्यापिनोऽभिधानात्र दोष इति । तत्र सहभाविनः पर्यायाः गुणाः । यथात्मनो विज्ञानव्यक्तिशक्त्यादयः । क्रमभाविनः पर्यायास्त्वात्मनो यथा सुखदुःखशोकहर्षादयः । इति भेदकल्पनम् । १५ ।

व्याख्यार्थः—घट आदि द्रव्यरूप पदार्थ आधार हैं, क्योंकि घट आदिमें रूप आदि रहते हैं । इसलिये रूपादिक रहनेका स्थान घट आदि द्रव्य आधार अर्थात् रूपादिका धारण करनेवाला है; और रूप, रस आदि गुण तथा नीलपीतादि पर्याय ये सब आधेय हैं, अर्थात् घट आदि द्रव्यमें रूपादि गुण रहते हैं, इसलिये आधेय हैं, अर्थात् द्रव्यमें ये गुणपर्याय स्थित हैं । इसप्रकार आधार आधेयभावसे द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्नरूपसे स्थित हैं; और रूपादि गुणपर्याय एक इंद्रियसे ग्राह्य हैं, अर्थात् ये एक २ इंद्रियसे जाने जाते हैं । जैसे रूप नेत्र इंद्रियका विषय है, क्योंकि केवल नेत्र इंद्रियमात्रसे जो ग्राह्य गुण हो उसको रूप कहते हैं; तथा रस जिह्वा इंद्रियका विषय है, क्योंकि जिह्वा इंद्रियमात्रसे ग्रहण करने योग्य गुण है । और घट आदि द्रव्य तो दो इंद्रियके विषय हैं, क्योंकि घट नेत्र तथा स्पर्शन (त्वक्) इन दोनों इंद्रियोंसे जाना जाता है, क्योंकि वह द्रव्य है । यह कथन नैयायिकमतके अनुसार है, और निज अर्थात् जैनमतमें तो

१ चटाई पर देवदत्त है, स्थालीमें पकाता है, तिलमें तैल है, घटमें रूप है । यहां चटाई, स्थाली, तिल तथा घट आधार हैं ।

२ जो वस्तु उनमें वा उनपर है वह आधेय है । चटाईरूप आधारका आधेय देवदत्त, स्थालीका चावल, तिलका तैल और घटका रूप आधेय है ।

गन्ध आदि द्रव्यके पर्यायद्वारा घ्राण आदि इन्द्रियोंसे भी द्रव्यका प्रत्यक्ष होता है । यदि ऐमा न मानो, तो “पुष्प घ्रापयामि,, मे तुमको फूल सुघाता हूँ, इत्यादि ज्ञानम भ्रम होगा । इसप्रकार अनेक इन्द्रियग्राह्य (जानने योग्य) द्रव्यसे एक इन्द्रियग्राह्य गुण पर्यायका भेद जानना चाहिये । ओर गुण तथा पर्यायका परस्पर भेद तो सहभावी तथा क्रमभावी कल्पनासे समझ लेना चाहिये । सह अर्थात् द्रव्यके साथ २ भावी होनेवाला जो गुण है, सो सहभावी, जैसे पुद्गलमे रूपादि और जीवमे ज्ञान आदि उपयोग । ओर क्रम अर्थात् चारी २ से भावी होनेवाला जो पर्याय, सो क्रमभावी, जैसे अजीव भृत्तिका द्रव्यमे पिंड कुसूल आदि, सुवर्णमे कटक कुडल आदि, ओर जीव द्रव्यमे नर नारक तथा सिद्धादि पर्याय समझना । ओर भी पर्यायके दो भेद हैं, एक तो सहभावी (साथ होनेवाला) पर्याय और दूसरा क्रमभावी अर्थात् क्रमसे होनेवाला पर्याय । इनमसे साथ होनेवाले पर्यायको ही गुण कहते हैं । यहापर पर्यायशब्दसे पर्याय सामान्यका ग्रहण है, अर्थात् निज आधारभूत व्यक्तिमात्रमें व्यापक होके रहनेवाला पर्याय गुणशब्दसे कहा जाता है, इसलिये ऐसा कहनेसे कोई दोष नहीं है । उनमें सहभावी पर्याय गुण है, जैसे आत्माके विज्ञान व्यक्तिकी शक्ति आदि, ओर क्रमभावी पर्याय है, जैसे आत्माके सुख दुःख हर्ष तथा शोक आदि, इस रीतिसे गुणपर्यायके परस्पर भेद कल्पना करनी चाहिये ॥ १५ ॥

सूत्रम् । सज्जासद्गुणालक्षणेभ्यो विभाग

द्रव्यादीना यो विदित्वा मिथोऽत्र ।

राद्धान्ते श्रीतीर्थनाथप्रणीते

श्रद्धां कुर्यान्निश्चलस्तस्य बोध ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—सज्जा (वस्तुके नाम) सज्या (पदार्थ गणना) तथा असाधारण धर्मवचन आदि लक्षणद्वारा जो द्रव्य आदिके विभागको परस्पर जानकर श्रीभगवान् तीर्थनाथ रचित सिद्धान्तमें श्रद्धा करेगा, उम भव्य जीवके अचल बोध होगा ॥ १६ ॥

इति श्रीभोजविनिर्मिताया द्रव्यानुरयोगतर्कणाया द्वितीयोऽध्याय

व्याख्या । सज्जा नाम तत्त्वतो विभागो यथा—द्रव्यनाम १ गुणनाम २ पर्यायनाम ३ धृति । सद्गुण गणना तत्त्वतो विभागो यथा द्रव्याणि पद, गुणा अनेके, पर्याया अनेके । लक्षण त्वसाधारणधर्मवचन तत्त्वतो विभागो यथा द्रवति तास्तान्पर्यायानागच्छतीति द्रव्यम् । गुणनामेकगदन्त्यस्य भिन्नकरण गुण । परिगमन सवतो व्याप्ति पर्याय । एव मेतेषा द्रव्यगुणपर्यायाणा परस्पर भेदोऽस्ति । एव सज्जासद्गुणालक्षणेभ्यो विभागभेद विदित्वा द्रव्यादीना यो मिय परस्परम् अत्र राद्धान्ते सिद्धांते श्रीतीर्थनाथप्रणीते श्रीभगवद्भाषिते श्रद्धाभासा उच्यते । तस्य भव्यस्य निश्चलो नि प्रवम्भो बोध सम्यग्प्र लभत इति मेयम् । ॥ १६ ॥

इति श्रीद्रव्यानुरयोगतर्कणाया भेदप्रदर्शनो द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—संज्ञा अर्थात् वस्तुओंका नाम उस नामकृत विभाग जैसे द्रव्य नाम १ गुण नाम २ तथा पर्याय नाम इत्यादिसे । संख्या अर्थात् गणना उस गणनाजनित विभागसे, जैसे जीव, पुद्गल, धर्म आदि छह द्रव्य है। गुण अनेक हैं, तथा पर्याय भी अनेक है, इस विभागसे और असाधारण धर्म वचन लक्षण है अर्थात् लक्ष्य पदार्थका ऐसा धर्म वर्णन करै, कि वह धर्म अन्य पदार्थोंमें न मिले; वह ही असाधारणधर्मको कहनेवाला लक्षण है । उसकर किया हुआ विभाग जैसे “उन उन पदार्थोंको जो प्राप्त हो वह द्रव्य है” यह द्रव्यका लक्षण है । “एक समूह वा एक जातिके पदार्थोंमेंसे जो एक किसीको पृथक् करै वह गुण है” यह गुणका लक्षण है, ऐसे ही “जो सर्वत्र व्याप्त हो, जो सर्वत्र गमन करै वह पर्याय है” यह पर्यायका लक्षण है । इसप्रकार संज्ञा, संख्या, तथा लक्षणके द्वारा द्रव्य, गुण तथा पर्यायका परस्पर भेद है । इस रीतिसे संज्ञा संख्या और लक्षणोंसे द्रव्य आदिके परस्पर भेदको जानकर श्रीभगवान् तीर्थनाथ द्वारा भाषित इस स्याद्वादरूपी सिद्धान्तमें जो श्रद्धा करै उस मनुष्यके निश्चल (अकंपायमान्) बोध (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणव्याख्यायामाचार्योपाधिधारिपण्डितठाकुरप्रसाद-
शर्मप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयाध्याये ये तीर्थिका द्रव्यादीनां भेदमङ्गीकुर्वन्ति । अभेदपक्षमाश्रित्य तान् दूषयन्नाह ।

अब जो शास्त्रकार द्रव्यादिका सर्वथा भेद ही अङ्गीकार करते हैं उनके मतको अभेद पक्षका आश्रय करके इस तृतीय अध्यायमें दूषित करते हैं ।

सूत्रम् । एकान्तेनोच्यते भेदो द्रव्यादीनां मिथो यदा ।

स्याद्गुणगुणिनोरेव भावोच्छेदोऽन्यद्रव्यवत् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—यदि एकान्ततः अर्थात् सर्वथा द्रव्य, गुण, तथा पर्यायोंका परस्पर भेद ही कहते हो, तो अन्य द्रव्यके तुल्य गुणगुणी भावका उच्छेद (अभाव) हो जावेगा ।

व्याख्या । यदा द्रव्यादीनां द्रव्यगुणपर्यायाणामेकान्तेन एकान्तपक्षेण मिथः परस्परं भेद उच्यते । तदा अन्यद्रव्यवत् परद्रव्येणैव स्वद्रव्यविषयेऽपि गुणगुणिनोरेव भावोच्छेदो गुणगुणिभावस्य व्युच्छित्तिर्भवेत् । यथा जीवद्रव्यस्य गुणा ज्ञानादयस्तेषां गुणी जीवद्रव्यम्, पुद्गलद्रव्यस्य गुणा रूपादयस्तेषां गुणी पुद्गलद्रव्यमिति । एवं व्यवस्था शास्त्रप्रसिद्धा भेदाङ्गीकारेण विलुप्यते । जीवद्रव्यस्य यथा पुद्गलद्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदोऽस्ति । तथा निजगुणेभ्यो ज्ञानादिभ्योऽपि भेदोऽस्ति । तद्वत् अयमस्य गुणी । एतस्य एते गुणा इत्ययं व्यवहारोऽपि विलुप्येत । तस्मात् कारणात् द्रव्यपर्यायाणामभेद एव सम्भवति । एतादृशो भेदनयविचारो गुरोरुपदेशात् भव्याङ्गिनो धारयन्ति । १ ।

व्याख्यार्थः—जत्र द्रव्यादिका अर्थात् द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंका एकान्तपक्षसे परस्पर भेद कहते हो, तो परद्रव्यकी तरह स्वद्रव्यके विषयमे भी गुण ओर गुणीके भावका उच्छेद (सर्वथा अभाव) हो जायगा । जैसे जीवद्रव्यके ज्ञानादिक गुण है, और उनका गुणी जीवद्रव्य है । ऐसे ही पुद्गल द्रव्यके गुण रूप आदि है और पुद्गल द्रव्य उनका गुणी है । इसप्रकार जो व्यवस्था शास्त्रमें प्रसिद्ध है वह गुण और गुणीके सर्वथा भेद अंगीकार करनेसे लुप्त होती है । क्योंकि जैसे जीवद्रव्यका पुद्गलद्रव्यके गुणोंसे भेद है । वैसे ही निजगुणोंसे भी भेद है । उस ही प्रकार इसके यह गुणी है तथा इस द्रव्यके यह गुण है यह जो व्यवहार है वह भी लुप्त होता है । इसलिये द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंके अमेद ही समवता है । ऐसा भेदनयका विचार गुरुके उपदेशसे भव्य जीव धारण करै ॥ १ ॥

अथ पुनरप्यभेदमाश्रित्य युक्तिं कथयन्नाह ।

अब पुन अमेदका आश्रय करके युक्तिको दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । गुणपर्याययोर्द्रव्ये भेदसम्बन्ध ईरितः ।

अनवस्था प्रबन्धः स्याद्भेदकल्पनया भृशम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—गुण और पर्यायका द्रव्यके विषयमें अमेद सन्ध ही सिद्धान्तमे कहा गया है क्योंकि भेद कल्पनासे अत्यन्त अनवस्थाका प्रबन्ध हो जाता है ॥ २ ॥

व्याख्या । गुणपर्याययोरन्योन्य द्रव्ये द्रव्यविषये अभेदसम्बन्ध एवास्ति । यदि च द्रव्यविषये गुणपर्याययो समवायनाम्ना भिन्न सम्बन्ध प्रकल्पते । तदाऽनवस्थादोषनिबन्धन निष्पद्यते । गुणगुणिनोरिव पृथक्समवायो लक्ष्यते । पुनस्तस्य समवायसम्बन्धस्यापि अन्य सम्बन्धो युज्यते । पुनस्तस्यापि अन्यतर । एव प्रकल्पयतोऽनस्थिति क्षुद्रापि न भवति । एव च भेदकल्पनया भृशमत्यर्थमनवस्थाप्रबन्ध अस्थितियुक्तिप्रसङ्गश्च जायते । तस्मात् कारणात् समवायस्य स्वरूपसम्बन्धमेवाभितरतया यदङ्गीचक्यं । तर्हि गुणगुणिनो स्वरूपसम्बन्धमङ्गीकृतता को दोष । किं च भवता विघटते । यश्च नवीनसम्बन्धकल्पनगौरव विधत्त । उक्तं च—

“प्रक्रियागौरव यत्र त पक्ष न सहामहे । प्रक्रियालाघव यत्र त पक्ष रोचयामहे” ॥ १ ॥

भ्रजुमारगोणं सिद्धरतोऽर्थस्य वशेण साधनायोगात् । समवायस्य स्वरूपसम्बन्धभित्करणे गुणगुणिनोश्च स्वरूपसम्बन्धाङ्गीकरणे च को विनेपो निरर्थकनवीनसम्बन्धाविकरणेन च गौरवापत्तिरिति दिक् । २ ।

व्याख्यार्थः—स्वाद्धादिसिद्धान्तमें द्रव्यके विषयमे अर्थात् द्रव्यके साथ गुण और पर्यायका परस्पर अमेद सन्ध ही है । और यदि द्रव्यके विषयमे गुण और पर्यायका समवाय नाम एक भिन्न सवध कल्पित करते हो, अर्थात् गुण और पर्याय यह दोनों ही द्रव्यमें समवाय सन्धसे रहते हैं ऐसा मानोगे तो यह अनवस्थारूप दोषका

कारण होता है। क्योंकि जैसे तुम्हारे मतमें गुण तथा गुणी जैमे भिन्न २ लक्षित होते हैं उनके तुल्य समवाय भी तो सबसे पृथक् भागता है। और जैसे गुण, गुणी द्रव्यमें समवाय संबंधसे रहते हैं ऐसे ही समवाय संबंध भी उनमें किस संबंधसे रहेगा इससे उस समवायका भी अन्य संबंध मानना योग्य है। और फिर उस समवाय संबंधका भी अन्य संबंध कल्पना करना चाहिये, इसप्रकार कल्पना करते हुए तुम्हारी स्थिति कहीं भी न होगी। इसप्रकार भेदकी कल्पनासे अत्यंत अनवस्थाका प्रबंध और अस्थिति युक्तिका प्रसंग होता है। इसकारण यदि समवायका अन्यसंबंध न मानकर अभेदसे स्वरूपसंबंध ही अङ्गीकार किया हो तो गुण तथा गुणीके स्वरूपसंबंध स्वीकार करनेवालोंको क्या दोष है? और तुम्हारा इसमें क्या बिगाड़ होता है जो नवीन समवाय संबंध स्वीकाररूप कल्पनाका गौरव करते हो? अन्यत्र कहा भी है “जिस पक्षमें प्रक्रियाका गौरव है उस पक्षको हम नहीं सहते हैं, और जिस पक्षमें प्रक्रियाका लाघव है उस पक्षको प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं”। क्योंकि जो अर्थ सरल मार्गसे सिद्ध होता है उस अर्थको वक्रमार्गसे साधना योग्य नहीं है। और समवायके जुदा स्वरूप संबंध करनेमें तथा गुणगुणीके स्वरूप संबंध स्वीकार करनेमें क्या विशेष (फर्क) है? और व्यर्थ नवीन संबंधके प्रकट करनेमें गौरव होता है (अर्थात् गुण और गुणीका भेद मानना और उनका समवायसंबंध मानना पुनः अनवस्थादोषसे भयभीत होके समवायका संबन्धांतर न मानकर उसका स्वरूपसंबंध ही स्वीकार करना इसकी अपेक्षा गुणगुणीके केवल स्वरूपसंबंधके माननेमें ही लाघव है क्योंकि स्वरूपसंबंध तो तुमको भी मानना पड़ता ही है) इस प्रकार संक्षेपसे सर्वथा गुणगुणीके भेद माननेवालोंके मतमें दूषण दर्शाया है ॥ २ ॥

पुनरभेदपक्षिणो दूषयन्नाह ।

अब भेदवादीके पक्षको दोष देते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । स्वर्णं कुण्डलतां प्राप्तं घटो रक्तत्वमीयिवान् ।

इति व्यवहृतिर्न स्याद्यद्यभेदो भवेन्न हि ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—यदि द्रव्य, गुण तथा पर्यायका अभेद न होता तो “सुवर्णद्रव्य कुण्डल-दशाको प्राप्त हुआ और घट रक्तत्व (गुणदशा) को प्राप्त हुआ” यह व्यवहार लोकमें नहीं हो सक्ता ॥ ३ ॥

व्याख्या । स्वर्ण कुण्डलतां कुण्डलभावं प्राप्तं । कनके कुण्डलाकारतां गतेपि नामान्तरेण

१ जाति व्यक्तिका, गुण गुणीका, अवयव अवयवीका, क्रिया क्रियावान्का तथा नित्यद्रव्य विशेषका, भेद नैयायिक मानते हैं और इनका समवायसंबंध भी नैयायिक मानते हैं उनके मतमें यह दोष है ।

न भेदापत्ति । तथा च घटो रक्तत्वमीयिवान् । पूर्वावस्थया घट इयामवर्णं पुनरभिपाका द्रुत्तत्वं प्राप्तस्तथापि इयामे घटे रक्तता प्राप्तेऽपि घटान्तरता न जाता । वर्णार्यगुणभेदा द्रव्यभेदो न जात इति व्यवहारो लोकप्रसिद्धिरूप आचारो न घटते । यद्यभेदस्यभाव व्यवहारो द्रव्यादीना न भवेत् । अतो द्रव्यान्वयस्योऽभिज्ञा एव प्रकल्पन्ते नामान्तरेण न शङ्कनीयमिति भाव । ३ ।

व्याख्यार्थः—सुवर्णं कुण्डल अर्थात् कर्णके आभूषणपनेको प्राप्त हुआ, यहा सुवर्ण कुण्डलके आकारको प्राप्त होगया है तो भी कुण्डल इस नाममात्रसे सुवर्ण और कुण्डलका भेद नहा होता तथा घट रक्तस्वदशाको प्राप्त हुआ, यहा पूर्व अपक्वदशामें घट इयाम वर्णका था और अग्निके द्वारा पकनेसे रक्तपनेको प्राप्त हुआ, तो भी अर्थात् इयामघटके रक्तता प्राप्त होनेपर भी वह घट अन्यघट वा अन्य पदार्थताको नहीं प्राप्त हुआ अर्थात् वर्णनामा गुणके भेदसे द्रव्यका भेद नहीं हुआ और यदि अभेदस्यभावसे द्रव्यगुण-पर्यायोंका व्यवहार न हो तो पूर्वकथित सुवर्ण घट आदिमें यह व्यवहार अर्थात् लोक प्रसिद्ध आचार नहीं घट सकृता है । इसलिये द्रव्य आदि तीनों पदार्थ अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय ये अभिन्नरूप ही कल्पित किये जाते हैं इनके जुदे २ तीन नाम होनेसे यह शका न करनी चाहिये कि यह भिन्न है यह भाव है ॥ ३ ॥

पुनर्बाधक कथयति ।

फिर अभेद वादीके मतमें बाधकका रुधन करते हैं ।

सूत्रम् । स्यात् स्कन्धदेशयोर्भेदात्स्कन्धेऽपि द्विगुणात्मता ।

प्रदेशगुरुत्वाभावात्स्कन्धाभेदप्रबन्धता ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—स्कन्ध तथा देशके भेदसे स्कन्धमें द्विगुणता होनी चाहिये परन्तु देशसे स्कन्धमें अधिक गुरुता नहीं है, इस हेतुसे देशसे स्कन्धका अभेदरूप ही प्रबन्ध है ॥ ४ ॥

व्याख्या । स्कन्धदेशयोर्भेदात् स्कन्धविषयेऽपि द्विगुणात्मता द्विगुणभारारोपो भवेत् । स्कन्धोऽवयवी, देशोऽन्यव अनयोर्भेदकल्पनया द्विगुणो भार स्कन्धमध्ये भवन् द्विगुणो भवेत् । यत — शततन्तुपटे शततन्तुपु यावान् भारोऽस्ति तावानेव हि पटे भारो युज्यते तन्तुपटयोरभेदात् । भेदविचारे पटोऽन्य तन्तवोऽन्ये एवमनयोर्भेदस्तस्मिन्सति द्विगुणगुरुतापि युक्ता । अथ च कश्चिन्नैयायिको नञीन एव यदि कथयति । यत — अवयवभारान् अवयवि भारोऽत्यन्त लघूयानन्ति । तस्मात् तन्मते द्विप्रदेशादिस्कन्धमध्ये कुत्रापि उत्कृष्टगुरुत्वं नो भवितुर्महति द्विप्रदेशादिस्कन्ध एकप्रदेशापेक्षया अन्यत्रिधर्मत्वात् । अन्यच्च परमाणुमध्ये मान्याष्टगुरुत्वमाननात् रूपात्मिकविशेषोऽपि परमाणुमध्ये मान्य स्यात् । द्विप्रदेशादिकमध्ये न मान्य स्यात् । अभेदेन यस्य वन्धो यत्न मन्यते तदा प्रदेशस्य यो भा स एव स्कन्धस्य भारत्वेन परिणमयत्येव । यथा तन्तुरूप पटरूपतया परिणमति । तदा गुरुताया वृद्धेश्च दोष कल्पमानोपि न लग्नन्ति भाव । ४ ।

व्याख्यार्थः—स्कंध (अवयवी) तथा देश (अवयव) का यथार्थमें भेद होनेसे स्कंधके विषयमें द्विगुणरूपता होगी अर्थात् स्कंधमें दूना बोझ प्राप्त होगा यहांपर सूत्रमें स्कंधशब्दसे अवयवीरूप अर्थका ग्रहण है। और देशशब्दसे अवयवका इन दोनों अवयवी तथा अवयवोंकी भेदकल्पनासे अवयवीमें दूना बोझ होनेसे वह अवयवी अवयवोंकी अपेक्षा दूना बोझल होजावेगा क्योंकि सो तंतु (सूत) से चुने हुए वस्त्रमें उतना ही भार युक्त है, जितना कि उन सो तन्तुओंमें है। क्योंकि तंतु और पटके अभेद है, और यदि तंतु और पटके भेद विचारें, तो पट अन्य है तंतु अन्य है। इसप्रकार इन दोनोंका भेद होते हुए अवयवी पटमें दूना भारीपन भी होना उचित है। अब यहांपर यदि कोई नवीन नैयायिक ऐसा कहता है, कि अवयवके भारसे अवयवोंका भार बहुत हल्का है, तो इस हेतुसे उसके मतमें दोप्रदेश युक्त अवयवीमें कहीं भी अवयवकी अपेक्षासे अधिक भारीपन न होना चाहिये, क्योंकि दोप्रदेश आदियुक्त स्कंधमें एक प्रदेश आदिकी अपेक्षासे अवयवी धर्मपना है, और एक प्रदेशवाले परमाणुमें दृष्टगुरुत्वकी अपेक्षा अधिक गुरुत्व माननेसे परमाणुमें रूपादिकी अधिकता भी मानी जायगी। और द्विप्रदेशादि स्कंधमें न मानी जायगी। और जब जिसका संबंध अभेदसे मानते हैं तो प्रदेश (अवयव) का जो भार है वह स्कंध (अवयवी) के भी भारपनेसे परिणत होता ही है। जैसे—तंतुका रूप पटरूपतासे परिणमनको प्राप्त होता है, अर्थात् जो तंतुका रूप है वह ही पटका रूप होता है; तब इसप्रकारसे गुरुता अथवा प्रदेश वृद्धिका जो दोष कहा हुआ है सो भी नहीं लग सकता है। यह सूत्रका तात्पर्य है ॥ ४ ॥

अब जो द्रव्यादिकोके अभेद मानते हैं उनको उपालंभ देते हुए कहते है ॥

सूत्रम् । चेद्भिन्नद्रव्यपर्यायमेकरूपं गृहादिकम् ।

भाषसे न कथं द्रव्यं गुणपर्यायवत्तदा ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—यदि भिन्न द्रव्योंके पर्याय गृहादिकको एक रूप कहते हो तो द्रव्य गुण पर्यायोंवाला है ऐसा क्यों नहीं कहते ? ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—यदि भिन्न २ द्रव्योंके पर्याय रूप अर्थात् पाषाण, काष्ठ जल आदि जो भिन्न २ बहुतसे द्रव्य है, उनके पर्यायभूत गृह (घर) आदिको “यह घर एक रूप है” इसप्रकारकी बुद्धिसे एक ही कहता है, तो द्रव्यको गुणपर्यायवाला क्यों नहीं कहता है अर्थात् एक द्रव्यमें गुण तथा पर्यायका अभेद होय; ऐसा विवेक क्यों नहीं कहता है ? क्योंकि जो आत्मा द्रव्य है वह ही आत्माका ज्ञान आदि गुण है, और

१ तात्पर्य यह है कि अवयव मिलके अवयवी बनता है तो वह अवयवोंसे भिन्न है इससे अपनी तथा अवयवोंकी गुरुता (भारीपन) मिलाके दूना होगया ।

देव नर आदि पर्याय है यह अनादि सिद्ध व्यवहार है जो द्रव्यादिकोका अभेदभाव अंगीकार तुम नहीं करते तो वह ठीक नहीं क्योंकि द्रव्योंमें अभेदता अनश्य ही है । यद्यपि द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसे नाम पृथक् २ होनेके कारण द्रव्य भिन्न है गुण भिन्न है, और पर्याय भी भिन्न ही है इस युक्तिसे भिन्नताका भान लक्षित (प्रतीत) होता है, तथापि द्रव्य घट है और गुणसे शुद्ध घट, नील घट रक्त घट या श्याम घट है तथा पर्यायसे विशाल आकारमें परिणत शरके तुल्य ग्रीवासहित और महान् उदरवाला यह घट है इत्यादि गुण तथा पर्यायोंसे घट भिन्न नहीं है ॥ १ ॥

अथ द्रव्यादीनामभेद येऽङ्गीकुर्वन्ति तान् उपालम्भ ददन्नाह ।

व्याख्या । यद्यपि भिन्नद्रव्यपर्याय पापाणकाष्ठजलादिकानि द्रव्याणि चन्ति तेषां पर्यायगृहादिक भवतादिकमेकरूपमेतद्द्रुममित्यादिरित्या बुद्ध्या एकमेव भापते तर्हि द्रव्य कथं गुणपर्यायवन्न भापते । एकस्मिन् द्रव्ये गुणपर्याययोरभेदो भवेत् । एतादृश त्रिवेक कथं न कथयसि । यत आत्मद्रव्यं यदस्ति स एवात्मगुणः स एवात्मपर्यायश्चेतीदृशव्यवहारोनादिसिद्धो वर्तते । यस्माद्द्रव्यादीनामभेदभावः नाङ्गीकुर्वन्ते तदस्ति । एतेषामभेदता एव वर्तते । यद्यपि द्रव्यं भिन्नं गुणो भिन्नः पर्यायोऽपि भिन्नः एव द्रव्यगुणपर्यायानामतयात् इति युक्त्या भिन्नताभानं लक्ष्यते तथापि द्रव्यं घटं गुणेन शुद्धो घटो नीलो घटो रक्तो घटः । श्यामो वा पर्यायेण पृथुवुष्माद्याकारपरिणतः कम्बुग्रीवः पेटोऽनरः द्रव्यादिगुणपर्यायाभ्यां घटो भिन्नो नास्ति ॥ ५ ॥

सूत्रम् । नियतव्यवहार यद्रव्यं तदनयोः सतो ।

परिणत्येकरूपत्वाच्च वैकप्रकारकाः ॥ ६ ॥

सूत्रभाष्यार्थ — जो द्रव्य यह नियतव्यवहार होता है वह इन दोनोंके विद्यमान होनेपर होता है, तथा परिणाममें तीनोंकी एकरूपता होनेसे द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों एक ही प्रकारके अर्थात् एक ही हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या । यज्ञीयद्रव्यमजीवद्रव्यमित्यादिनियतव्यवहारं द्रव्यं व्यवस्थामहितव्यवहारो भवति । तद्रूपपर्याययोरभेदात् सतोर्विद्यमानयोरनयोर्भेदेत् । यथा ज्ञानादिगुणपर्यायेभ्योऽभिन्नो जीवः । रूपादिगुणपर्यायेभ्योऽभिन्नोऽजीवश्चेति यन्ति न स्यात्तत्र द्रव्यात्सा मान्यान् विशेषज्ञानं न भवेत् । अतः कारणात् द्रव्यं १ गुणं २ पर्याया ३ इति नामत्रयम् । परन्तु स्वजात्याद्येकत्वव्यवहार एव त्रिषु तिष्ठति परिणत्येकरूपत्वात् परिणामतः यथात्मद्रव्यं तस्य च ज्ञानादिगुणा परिणामिवस्तुषु तेषां पर्याया एतत्सर्वमपि एकमेति यतो रत्नं १ तस्य कान्तिः २ पुराणहारलक्षणा तच्छक्तिः ३ एतत्त्रयमपि परिणत्येकरूपत्वम् । तथैव द्रव्यं १ गुणं २ पर्यायं ३ इत्येकरूपत्वमेव तस्मात्परिणत्येकरूपत्वात् द्रव्यादय एकाप्रकारकास्त्य ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थ — जो जीव द्रव्य, अजीव द्रव्य, इत्यादि नियत व्यवहार अर्थात् द्रव्य,

इस प्रकार व्यवस्थासहित व्यवहार होता है, वह गुण और पर्यायोंके अभेदसे है इस कारण इन गुण पर्यायोंके विद्यमान होनेपर ही होवे है। जैसे ज्ञानादि गुण पर्यायोंसे अभिन्न जीव है और रूपादि गुण पर्यायोंसे अभिन्न अजीव द्रव्य है। यदि ऐसा न होवे तो गुण पर्यायोंसे रहित सामान्य द्रव्यसे मनुष्य जीव, देवजीव, मुक्तजीव, तथा रक्त घट पीत घट इत्यादि विशेषसंज्ञा न होवें। इस कारणसे द्रव्य, गुण, पर्याय यह तीन नाम है, परन्तु स्व स्वभाव आदि एकपनेका व्यवहार ही तीनोंमें रहता है क्योंकि परिणतिमें एकरूप है। परिणमन जैसे आत्मा द्रव्य है उसके ज्ञानादि गुण परिणाम है यहां ज्ञानादि गुणसहित द्रव्यमें ही आत्मा यह व्यवहार होता है और ऐसे ही परिणामी वस्तुओंमें उनके जो पर्याय है उन पर्यायोंसे युक्तमें द्रव्य व्यवहार होता है, यह सब एक ही है। क्योंकि रत्न, उसकी कान्ति तथा ज्वरको नाश करनेवाली उसकी शक्ति यह तीनों भी परिणतिमें एक रूप हैं। उस ही प्रकार द्रव्य गुण तथा पर्याय यह एकरूप उससे ही है अर्थात् परिणतिमें एक रूप होनेसे द्रव्यादिक तीनों एक प्रकारवाले है ॥ ६ ॥

पुनरभेदं नाङ्गीकुर्वन्ति । तेषु एव दोषसम्भवमाह ।

फिर भी जो अभेदको नहीं मानते हैं उनमें ही दोषकी उत्पत्तिको कहते हैं ।

सूत्रम् । न ह्येतेषां यदाभेदस्तदा कार्यं कुतो भवेत् ।

नोत्पद्यते ह्यसद्वस्तु शशशृङ्गवदुच्चकैः ।

सूत्रभावार्थः—यदि इन द्रव्यादिकोंका अभेद नहीं है तो इनसे कार्य कैसे होता है क्योंकि जैसे सुसेके (खगोशके) सींग उत्पन्न नहीं होता है वैसे असत् पदार्थ उत्पन्न नहीं होना चाहिये ॥ ७ ॥

व्याख्या । यदि एतेषां द्रव्यादीनामभेदो न तदा कार्यं कुतो भवेत् । अपि तु द्रव्यगुण-पर्यायाणामभेदो नास्ति । तदा कारणकार्ययोरपि अभेदो न भवेत् । तदा च सृत्तिकादि-कारणेभ्यो घटादिकार्यं कथं निष्पत्स्यते कारणे कार्यशक्तौ सत्यामेव कार्योत्पत्तिनियामकत्वमसद्विद्यमानं वस्तु न निष्पद्यते निश्चयेन शशशृङ्गवत् । यथा शशविषाणमित्यसद्वस्तु असत्परिणतितत्त्वात् कार्यं निष्पत्त्यभाव एव दृश्यते अयमत्र भावः । यदि कारण-मध्ये कार्यसत्ताङ्गीक्रियते । तदा अभेदः सहजमेव आगातः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—यदि इन द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंका अभेद नहीं है तो कार्य कैसे उत्पन्न होता है अर्थात् अभेदके बिना कारणसे कार्य नहीं हो सकता, और यदि द्रव्य गुण तथा पर्यायोंका अभेद नहीं है, तो कारण कार्यका भी अभेद न होना चाहिये । और जब कारण कार्यका अभेद न हुआ तो सृत्तिकादिरूप कारणोंसे घट आदि कार्य कैसे उत्पन्न होंगे ? क्योंकि कारणमें कार्य शक्तिकी सत्ता ही कार्यकी उत्पत्तिमें नियामिका है क्योंकि जो पदार्थ जहां अविद्यमान है वहांसे वह पदार्थ कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता है यह

निश्चय है । शशशृंगके समान । जैसे शश (खर्गोश) का सींग यह असत् (अविद्यमान) वस्तु है क्योंकि असत् परिणतिपना है, अर्थात् शशरूप कारणमें सींगरूप कार्यकी शक्ति नही है । इससे शशसींगरूप कार्यकी उत्पत्तिका अभाव ही देखा जाता है । यहापर आशय यह है कि यदि कारणमें कार्यकी विद्यमानता स्वीकार करते हो तब तो कार्य-कारणका अभेद सहजमें ही प्राप्त हुआ अर्थात् कार्य अपने प्रकट होनेके पूर्व कारणरूपसे ही था और उत्पन्न होनेपर भी केवल उस द्रव्यका पर्यायमात्र होगया, यथार्थमें वह कारणसे अभिन्नरूप ही है । जैसे घट आदि कार्य मृत्तिकासे उत्पन्न होते है तो भी मृत्तिकासे भिन्न नहीं है ॥ ७ ॥

कारणे कार्योत्पत्तिक्षणात्पूर्वमेव यदि कार्यसत्तास्ति । तदा कायदर्शन कथं न जायते । इत्थं शङ्का समुत्पन्ना तदुपरि कथयति ।

अथ यदि कारणमें कार्यके उत्पत्तिक्षणके पूर्व भी कार्य विद्यमान है, तो मृत्तिका आदि कारणमें घट आदि कार्य क्यों नही देख पड़ते । ऐसी शंका वादीके उत्पन्न हुई उसपर यह आगेका सूत्र कहते हैं—

शङ्कापनोद करोति ।

अन अग्रिम काव्यसे शङ्काको दूर करते हैं ।

सूत्रम् । द्रव्यरूपा तिरोभावाच्छक्तिः कार्यस्य या सती ।

गुणपर्याययोरविर्भावात्सा व्यक्तित्वा ब्रजेत् ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—कार्यके कारणमें तिरोभावसे जो द्रव्यरूप शक्ति विद्यमान रहती है यह गुण और पर्यायके आविर्भावासे प्रकटताको प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

व्याख्या । कार्य यावन्तोत्पन्न तावत्कारणे कार्यस्य द्रव्यरूपा तिरोभावादन्तर्गतत्वात्ता च कार्यत्वेनालक्ष्या शक्ति सती विद्यमाना तिष्ठति । सा च शक्ति सकलसामग्रीसामानिध्योपगता गुणपर्याययोरविर्भावात्प्रकटनाद्व्यक्तित्वाभाविर्भावता ब्रजेत् । तस्मादत्र कार्य दृश्यते । तिरोभावाविर्भाववपि नियामकं कायपर्यायौ विशेषत्वेन ज्ञेया । तेनाविर्भावस्य सदसद्विकल्पदूषण न लगति । परन्तुभुवनासुरित्वेन पर्यायकल्पना । अथ च कार्यस्य घटस्य तिरोभावादर्शनाद्द्रव्यरूपा मृत्पिण्डरूपा या शक्ति सती विद्यमाना तिष्ठति सा सामान्य-शक्तिराविर्भावात्कारणकलापाद्गुणपर्याययो रक्तत्वपृथुबुद्धत्वकम्पुमीवत्वादिकयो । रक्तोऽयं घटो योऽयं मृत्पिण्डात्समुत्पन्न इति कायादेगेन रक्तो घट इति ज्ञात । कारणे कार्या पचारादित्यर्थ ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थ —कार्य जतक उत्पन्न नही हुआ ततक कारणमें कार्यके छिपे रहनेसे

१ यद्यपि कारणमें कार्य है तथापि तिन पदार्थोंसे वह प्रकट होता है उनके बिना उसको प्रकटना नहीं होती इस कारण मृत्तिकाके पिण्डमें घटकी द्रव्यरूपताकी विद्यमानता होकर भी बुगमर, चाक आदि सामग्रीके बिना प्रकट नहीं होती २ तब 'यथा' 'एति पा' सम्प्रतिभाषा

जो कार्यपने करके नहीं देखनेमें आती हुई द्रव्यरूप शक्ति विद्यमान रहती है वह ही शक्ति जब सम्पूर्ण सामग्रीकी समीपताको प्राप्त होती है तब गुण और पर्यायके प्रकट होनेसे स्वयं भी प्रकाशित होती है उससे यहां कार्य देखा जाता है यहांपर तिरोभाव तथा आविर्भावोंको भी कार्यके पर्यायकी समानतासे नियामक समझने चाहियें क्योंकि इस प्रकार आविर्भावके सत् तथा असत्पक्षके विकल्पोसे जो दूषण लगता है वह नहीं लगता परन्तु आविर्भाव तथा तिरोभावमें अनुभवके अनुसार पर्यायकी कल्पना की गई है । भावार्थ—घट रूप कार्यके न देख पडनेसे द्रव्यरूप अर्थात् मृत्तिकाके पिण्डरूप जो शक्ति विद्यमान रहती है वह ही सामान्यशक्ति कुंभकार चाक दण्ड चीवर (चाकपरसे घटके उतारनेका धागा) आदि कारणोंके समूहसे रक्तत्व आदि गुण और पृथुवुश्चत्व, कम्बुग्रीवत्वादि पर्यायोंमें प्रकट होती है तब यह घट रक्त (लाल) है जो कि मृत्तिकाके पिण्डसे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार कार्यके आदेशसे रक्त घट है ऐसा व्यवहार हुआ क्योंकि कारणमें कार्यका उपचार है ॥ ८ ॥

अथ श्लोकद्वयेन नैयायिकमतं प्रकटयित्वा समाधत्ते ।

अब दो श्लोकोंके द्वारा नैयायिकका मत प्रकट करके उसका समाधान करते हैं ।

सूत्रम् । नैयायिकोऽसतो ज्ञानमतीतविषयं भवेत् ।

यथा तथा सतः कार्यमपि निष्पद्यते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

इत्थमाह मृषा तच्चासद्भूतविषयं न हि ।

पर्यायार्थतयानित्यं नित्यं द्रव्यार्थिकेनयत् ॥ १० ॥ युग्मम्

सूत्रभावार्थः—जैसे असत् (अविद्यमान) घट आदिका ज्ञान अतीत अर्थात् भूत-पदार्थके विषयवाला होता है उस ही प्रकार अविद्यमान घटआदि कार्य भी निश्चय करके उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ ऐसा जो नैयायिक कहता है वह मिथ्या है क्योंकि भूत-विषयघटादि असत् नहीं है क्योंकि जो पर्यायार्थिक नयसे अनित्य है वह द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है ॥ १० ॥ युग्मम् ।

व्याख्या । यथा असतो घटादेर्ज्ञानमतीतविषयं भवेत्तथा घटादिकार्यमसदपि मृत्तिकादि-दलसामग्र्या निष्पद्यते । असतो ज्ञप्तिरस्ति तर्ह्यसत उत्पत्तिः कथं न भवति । पुनः घटस्य कारणं दण्डादि कथ्यतेऽस्माभिस्तत्र लाघवोऽस्ति । भवतां मते घटाभिव्यक्तेर्दण्डादिकं कारण-मस्ति तत्र गौरवं जायते । अन्यच्चाभिव्यक्तेः कारणं चक्षुरादीन्द्रियमस्ति परन्तु दण्डादिकं नास्ति । ततः कारणाद्भेदपक्ष एव । द्रव्यघटाभिव्यक्तेः कारणं दण्डाभावः । घटाभिव्यक्तौ कारणं

१ यद्यपि मृत्पिण्ड भी मृत्तिकारूप द्रव्यका कार्य अथवा पर्यायरूप ही है तथापि घटका कारण है इसलिये उसको कारण माना है और यथार्थमें सभी कार्य वा पर्याय कारण रूप ही हैं सामग्रीसमूहसे विशेष पर्यायरूप होनेसे कारणोंके कार्यरूप कायम रहता है ।

चक्षुरादि तत्र गोरव न घटते ॥ ९ ॥ नेयायिकोऽसतो द्रव्यात् उत्पत्तिरित्यमाह । तदमत् । किं ताह । अतीतविषयो घटादि सर्वथासत्र विद्यते । तच्च पर्यायार्थतो घटो नास्ति तत्र द्रव्यार्थतो नित्योऽस्ति । नष्टो घटोऽपि मृत्तिकारूपोऽस्ति । यदि सर्वथा न भवेत्तर्ह्यं शशशृङ्गसाधर्म्यं लभेत् । तथा च-सवथासन्नर्थो ज्ञाने भासते य स कथं सद्वृत्ता यातीति विरोधापत्ते । तन्माद्यत्किञ्चिद्भूतविषयमस्ति तत्सत्रास्ति । किन्तु मत्रेव प्रवर्तते । तत्रेय योजना यद्वस्तु नित्यं द्रव्यार्थिकेन वर्तते । तत् पर्यायाथतया कृत्यभावेनानित्यं भासते । परमार्थतस्तु द्रव्यसमवायि भूतविषय वस्तु कारणोदयेन कार्यतामापन्नं लक्ष्यं जायते । अतः सत एवोत्पत्तिर्नास्तो भावस्येति नियम इति ॥ १० ॥

व्याख्याः—जैसे असत् अर्थात् अविद्यमान घटआदि पदार्थोंका ज्ञान अतीत विषय अर्थात् भूत पदार्थके विषयवाला होता है वैसे ही असत् अर्थात् कारणमें अविद्यमान ही घट आदि कार्य मृत्तिका तथा कुम्भकार आदिक सामग्रीके समूहसे उत्पन्न होता है क्योंकि जत्र असत् पदार्थका ज्ञान होता है तो अविद्यमान पदार्थकी उत्पत्ति कैसे नहीं होती है अर्थात् होती ही है और जो हम दण्ड आदिकको घटका कारण कहते हैं इसमें लाघव है और आप जैनियोंके मतमें दण्ड आदिक ही घटकी प्रकटताका कारण है उसमें गोरव होता है और घटकी प्रकटताका कारण तो नेत्र आदिक इन्द्रिय है परन्तु दण्ड आदिक नहीं । इसलिये कारणसे कार्यका भेद जो हम मानते हैं सो ही सत्य है तथा द्रव्यरूप घटकी अभिव्यक्तिका कारण दण्डका अभाव है न कि दण्ड, और घटके प्रकट होनेमें नेत्र आदिकको जो कारण माना है सो गौरवको नहा घटित करता है ॥ ९ ॥ नेयायिक असत् घट आदि कार्यकी द्रव्यसे उत्पत्ति कहता है वह असत्य है । तो सत्य क्या है इस जिज्ञासामें कहते हैं कि अतीत विषयवाला घट आदि सर्वथा असत् नहीं क्योंकि वह अतीत विषयवाला घट पर्यायार्थनयसे नहीं है परन्तु द्रव्यार्थिक नयसे उसमें नित्य है भावार्थ घट नष्ट होगया है तोभी मृत्तिकारूपसे विद्यमान है यदि वह घट सर्वथा न होवे तो सुस्मेके सींगकी समताको प्राप्त होजाय और जो सर्वथा अविद्यमान पदार्थ ज्ञानमें भासता है वह पदार्थ विद्यमानताको कैसे प्राप्त होता है क्योंकि इस प्रकार माननेमें विरोध आता है इसलिये जो कुछ भूत विषय है वह सर्वथा असत् नहीं है किन्तु सद्वृत्त होकर ही प्रवर्तता है यहा पर यह योजना करनी चाहिये की जो वस्तु द्रव्यार्थिक नयसे नित्य वर्तती है उस वस्तुमें आकारका अभाव होनेसे पर्यायार्थनयसे अनित्यपणा भासता है और परमार्थसे तो द्रव्यमें समवायी भूतविषय पदार्थ है सो कारणके उदय होनेसे कार्यपनेको प्राप्त होकर देखनेमें आता है इस कारण सत् पदार्थकी ही उत्पत्ति

होती है और अविद्यमान पदार्थकी नहीं होती ऐसा नियम है ॥ १० ॥ इस प्रकारका युग्म श्लोकोंका अर्थ है ।

अथ सर्वथा अविद्यमानोऽर्थो ज्ञानविषये भासत इतीत्थं ये कथयन्ति । तेषां बाधकं दर्शयति ।

अब जो ऐसा कहते हैं कि सर्वथा अविद्यमान पदार्थ ही ज्ञानमें भासता है उनके मतमें बाधक दिखाते हैं

सूत्रम् । अर्थोऽसन् भासते ज्ञातुस्तदाज्ञानमयं जगत् ।

स्वभावेन भवेत्सर्वं योगाचारमतं भवेत् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—जब असत् पदार्थ ज्ञाताके ज्ञानमें भासता है तो सम्पूर्ण जगत् स्वभावसे ज्ञानरूप ही हो जाय और तब तृतीय बौद्ध योगाचारका मत सिद्ध होजावे ॥ ११ ॥

व्याख्या । यदि ज्ञानविषयेऽसन्नर्थोऽतीतप्रमुखो भासत इतीदृशमङ्गीकुरुषे । तदा सर्वं जगज्ज्ञानाकारमेवास्ति । बाह्याकारा अनाद्यविद्यावासनया असन्त एवावभासन्ते । यथा स्वप्नेऽसत्पदार्थभासनवत् । बाह्याकाररहितं शुद्धं ज्ञानन्तु बुद्धस्यैव भवति । एवं यदि कथयसि तर्हि योगाचारनामा तृतीयो बुद्ध उत्तिष्ठते । तस्मादेवं वितर्कय । असतो ज्ञानं न भवेत्सत एव वस्तुनस्तिरोभावशक्त्यन्तरितस्य कारणकलापाविर्भावव्यक्तेर्दृश्याकारत्वं जायते । इति सर्ववस्तु द्रव्यात्मना नोत्पद्यते विपद्यते वा परिस्फुटमन्वपदर्शनान् । लूनपुनर्जातनखादिष्वन्वयदर्शनेन व्यभिचार इति न वाच्यम् । प्रमाणेन बाह्यमानस्यान्वयस्यापरिस्फुटत्वात् । न च वस्तुतोऽन्वयः प्रमाणविरुद्धः सत्यप्रत्यभिज्ञानसिद्धत्वात् । ततो द्रव्यात्मना स्थितिरेव सर्वस्य वस्तुनः । पर्यायात्मना तु सर्वं वस्तूत्पद्यते विपद्यते चास्वलितपर्यायानुभवसद्भावात् । न चैवं शुद्धे शङ्खे पीतादिपर्यायानुभवेन व्यभिचारस्तस्य स्खलनरूपत्वात् न खलु सोऽस्खलनरूपो येन पूर्वाकारविनाशाजहद्वृत्तौत्तराकारोत्पादाविष्कर्तुमशक्यत्वात् । नन्वरस्य नाशे तद्धेतूनां वैयर्थ्यं न हि स्वहेतुः स एवाप्तवान् । स्वभावे भावे भावान्तरव्यापारः फलवोस्तदनुपरेतिप्रसक्तेः ? ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—यदि भूतकालविषयक पदार्थ ज्ञानमें असत् भासता है इस प्रकार तू मानता है तो सब जगत् ज्ञानाकार ही होगा क्योंकि अनादिकालसे चली आती हुई अविद्याकी वासनासे बाह्यके आकार तो जैसे स्वप्नमें असत् पदार्थका भासन होता है वैसे ही जागृत दशामे भी अविद्यमान ही भासते हैं परन्तु बाह्य आकारसे शून्य शुद्धज्ञान तो बुद्धके मतमें ही है इसलिये ऐसा जो तुम कहते हो तो बौद्धमतके ४ भेदोंमें तीसरा जो योगाचार नामक भेद है उसका मत खडा होता है इस कारण ऐसा विचारो कि असत् पदार्थका भान नहीं होता किन्तु तिरोभाव शक्तिसे छिपे हुए सत् पदार्थकी कारणोंके समूहसे प्रकटता होनेके कारण देखनेमें आनेयोग्य आकारपना उत्पन्न होता है । इस कारण द्रव्यरूपसे

न तो सत्र पदार्थ उत्पन्न होते और न नाशको प्राप्त होते हैं क्योंकि प्रत्येक पर्यायम द्रव्यका अन्वय (सन्ध) स्पष्टरीतिसे देखा जाता है वार काटेहुए तथा फिर उत्पन्नहुए नष्ट आदिमें जो असत् पदार्थका अन्वय देखते हैं उससे आपके मतमें व्यभिचार होगा ऐसा कहना चाहिये क्योंकि जो अवय प्रमाणसे बाधित है वह अस्पष्ट है और वास्तवमें अन्वय प्रमाणके विरुद्ध नहीं है क्योंकि सत्य प्रत्यभिज्ञानसे सिद्ध है इस कारण द्रव्यरूपमें सत्र वस्तुकी विद्यमानता ही है न कि उत्पत्ति अथवा नाश तथा पर्यायरूपसे तो सत्र पदार्थ उत्पन्न होता है और नाशको प्राप्त होता है क्योंकि जो पर्याय जिस द्रव्यम सत्त्वरूपसे विद्यमान है उस पर्यायका ही अस्पष्टित (निश्चल)रूपसे अनुभव होता है और ऐसे शुरु शरम जो पीत आदि पर्यायोंका कामल आदि नेत्रके रोगोंके वशसे अनुभव होजाता है उससे व्यभिचार नहीं होता क्योंकि वह अनुभव स्तलनरूप (चलायमान) है भावार्थ नेत्रके रोगसे शुरुशरम पीत (पीले) वर्णका जो अनुभव होता है वह नेत्र रोगके दूर होनेपर आप ही चलायमान (नष्ट) होजाता है और शरम जो पीतादि पर्यायका अनुभव है वह तो अस्तलन (अविचल) रूप नहीं है अर्थात् विचलरूप है क्योंकि शरममें निर्दोष दशामें जो शुरुकार भासता है उसका विनाश तथा नेत्रके दोष दशामें जो पीताकर भासता है उसकी उत्पत्ति आदि नहीं कर सकता, किन्तु दोष निवृत्त होनेसे वह स्वयं नष्ट होजाता है और उसके नाममें उसके हेतुओंकी व्यर्थता नहीं है, क्योंकि जो कृत्रिम स्वभाव वस्तुमें प्राप्त है उसमें दूसरे पदार्थका व्यापार फलवान् नहीं होता किन्तु जिस कारण (दोषादि)से वह उत्पन्न हुआ है उसकी निवृत्तिसे वह पर्याय नष्ट होता है अन्यथा अनुपपत्ति है ॥ ११ ॥

अथ दृष्टान्तेन दृढयत्राह ।

अथ दृष्टान्तसे उक्त कथनको दृढ करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । ज्ञातोऽधुना मया कुम्भ इत्यतीतार्थता हि या ।

वर्त्तमानस्य पर्यायात्सा भवेद्वर्त्तमानता ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थ—इस समय मेने भूत घटको जाना इस प्रकार जो अतीतार्थता हुई है वह वर्त्तमानकी पर्यायसे वर्त्तमानता होती है ॥ १२ ॥

‘याख्या । यदि असतो ज्ञान भवेत्तर्हि अधुना मया अतीतो घटो ज्ञात इत्याकारिका प्रतीति कथं जायते । तत्र हि—अतीतो घटो मया सांप्रत ज्ञात एव यो बोधो जायते । तत्र द्रव्यात्मतोऽतीतघटस्य विषये वर्त्तमानज्ञेयाकाररूपपर्यायाधुनातीतघटो ज्ञात इति ज्ञान भानतान्नि । अयमा नैगमनयादतीतार्थविषये वर्त्तमानाधारोप नियते । तन्मात्सर्वधामतो यस्तुनो ज्ञान न भवति । अधुना मया उन्मो ज्ञात इत्यतीतार्थता हि यासीत् सातीतार्थता वर्त्तमानस्य पर्यायाद्वर्त्तमानता भवेत् ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—यदि सर्वथा असत् पदार्थका ज्ञान होवे तो इस समय मैंने अतीत घट-
को जाना इस आकारकी प्रतीति कैसे होती है । क्योंकि उस समयमें अतीत घटको मैंने
इस समय जाना इस प्रकार जो बोध होता है उससे द्रव्यसे विद्यमान अतीत घटके विषयमे
वर्तमान ज्ञेयके आकाररूप पर्यायसे इस समयभूत घटको जाना ऐसा ज्ञानका भान है ।
अथवा नैगमनयकी अपेक्षासे भूतपदार्थके विषयमे वर्तमान पदार्थका आरोप किया जाता
है । इस कारण यह सिद्ध हुआ कि असत् पदार्थका ज्ञान सर्वथा नहीं होता है क्योंकि
इस कालमें घटको मैंने जाना ऐसे जो घटकी भूत पदार्थरूपता थी वह अतीतार्थता वर्त-
मान द्रव्यका पर्याय होनेसे वर्तमानता होती है ॥ १२ ॥

फिर भेदभावना कहते हैं ।

सूत्रम् । चेद्धर्मेणासता धर्मी कालेऽप्यसति रोचते ।

तदा सदा शशशृङ्गं किञ्च ज्ञापयसि द्रुतम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—यदि अतीत कालमे भूत घटरूप धर्मी अविद्यमान आकारसे भासता है
ऐसा तुमको रुचता है तो तुम सदा निःशङ्क (शङ्कारहित) होकर सुस्सेके सींगको भी
क्यों नहीं जनाते ॥ १३ ॥

व्याख्या । धर्मी अतीतो घटोऽसता धर्मेणाविद्यमानाकारेण असति काले अतीते काले घटा-
भावकालेऽपि सदिति भासते । अथवा धर्मी अतीतो घटः असता धर्मेण ज्ञेयाकारेण असति
काले भासते । इत्थं यदि तव चेतसि रोचते तत्सर्वमतीतानागतवर्तमानकाले निर्भय-
मदृष्टशङ्कारहितं यथा भवति तथा शशशृङ्गमपि कथं न ज्ञापयसि । एतदेव ज्ञापयतु-
मिष्टमेवेति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—धर्मी अर्थात् भूतकालका घट असत् धर्म अर्थात् अविद्यमान आकार
रूपसे असत् काल अर्थात् घटाभावकालमे (विद्यमानरूपसे) भासता है । अथवा धर्मी
भूतघट असत् धर्म अर्थात् अविद्यमान ज्ञेय आकारसे अविद्यमान कालमे भासता है
ऐसा पक्ष यदि तुम्हारे चित्तमे रुचता है तो तुम निर्भय अर्थात् नहीं देखनेमें आते
हुए पदार्थको हम कैसे जनाते हैं इस प्रकारकी शङ्कारहित जैसे होय तैसे सदा अर्थात्
भूत भविष्यत् वर्तमानकालमे अविद्यमान सुस्सेके सींगको भी क्यों नहीं जनाते हो क्योंकि
जब तुमने मृत्तिकासे असत् घटकी उत्पत्ति तथा भूतकालके असत् घटका भान मान
लिया है तो असत् शशशृङ्गको भी सिद्ध करके जनादेना तुम्हारे इष्ट ही है ॥ १३ ॥

सूत्रम् । ततोऽसतो हि नो बोधो नैव जन्म च जायते ।

कार्यकारणयोरैक्यं द्रव्यादीनामपि श्रय ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—इस पूर्वोक्त हेतुसे अविद्यमान पदार्थका ज्ञान नहीं होता है और न
उत्पत्ति ही होती है इस कारण तुम कार्य, कारणकी तथा द्रव्य, गुण, पर्यायकी एकता-
को भी स्वीकार करो ॥ १४ ॥

व्याख्या । हि निश्चितमसतोऽविद्यमानमर्थस्य नो बोध । च पुनर्जन्माप्युत्पत्तिरपि न भवति । सत एव ज्ञान सत एवोत्पत्तिरित्याशय । एवमपि निश्चयेन कार्यकारणयोरभेदोऽस्ति । तद्वृष्टान्तेन द्रव्यगुणपर्यायादीनामप्यभेद श्रयाङ्गीकुरु ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—इस पूर्वोक्त कथनसे निश्चय कर अविद्यमान पदार्थका ज्ञान नहीं होता और अविद्यमान पदार्थकी उत्पत्ति भी नहीं होती अर्थात् विद्यमान पदार्थका ही ज्ञान और उसकी ही उत्पत्ति होती है, यह आशय है । इस प्रकार भी निश्चयसे कार्य और कारणका अभेद है । उसी दृष्टान्तसे तुम द्रव्य गुण तथा पर्याय आदिके भी अभेदको स्वीकार करो

सत्रम् । नैयायिको भेदनय प्रकाशते ।

साङ्ख्योऽप्यभेद प्रकटीकरोति वै ॥

विस्तारयन् जैनचरो ष्य स्वय ।

प्राप्नोति सर्वत्र जय सुनिर्भयम् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—नैयायिक द्रव्य आदिके सर्वथा भेदको प्रकाशित करता है, और साङ्ख्यवादी निश्चयकर अभेदको प्रकट करता है और जैनियोंमें श्रेष्ठ पुरुष अथवा श्रेष्ठ जैनमत तो अपेक्षासे भेद तथा अभेदको स्वयं निर्भय होके विस्तारता हुआ सन वादियोंमें जयको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

व्याख्या । नैयायिको द्रव्यादीना भेदमङ्गीकुरुते । यत् उत्पन्न द्रव्य क्षणमगुण तिष्ठतीति क्षणेन गुणाना पृथगुत्पादात् । द्रव्य हि तावन्निर्गुणमुत्पद्यते, पश्चात्तत्समवेता गुणा उत्पद्यन्ते, समकालोत्पत्तौ तु गुणगुणिनो समानसामग्रीकत्वाद्भेदो न स्यात्कारणभेदस्य कार्यभेदनियतत्वापत्तिरिति भेदे नय नैयायिको वक्ति । साङ्ख्योऽपि द्रव्यादीनामभेदमङ्गीकरोति । यतो गुणगुणिनो समानकालीन जन्म सव्येतरविषाणवत्पार्याभावात् । न हि स एव तस्यैव पूर्वभावी पश्चाद्भावी च भवति । अतो यदैव द्रव्य जायते तदैव तद्रूपत्वादयोऽपि जायन्ते इति द्रव्यादीना साङ्ख्यमतेऽभेदता । जैनस्तु द्रव्यादीना भेदमपि द्रव्यगुणपर्यायत्वाद्भेदमपि । द्रव्य तदेव गुणस्तदेव पर्याय यथा घट द्रव्येण मृदगुणेन रक्त, पर्यायेण कम्बु ग्रीव, इत्यभेद इत्येतद्वयमप्यङ्गीकुर्वाण सर्वत्र जय प्राप्नोति । उक्तं च—

अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्यथा परे मत्सरिण प्रवाता ।

नयानशेषानविशेषमिच्छन्न पक्षपाती समयस्तथा ते ॥ १ ॥

तथा

य एव षोषा किल नित्यवाटे विनाशवान्तेऽपि समान एव ।

परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु जयत्यधृष्य निनशासन ते ॥ २ ॥

तस्माद्भेदनयपक्षस्याभिमानमभेदनयोऽपाकरोति । अथ नयद्वयस्यामिन निर्दिशति । अमत्यर्थं दृश्यत इति नैयायिकाभिमतम् । मन्ति सारयाभिमतम् । सद्मन्ति जैनभिमत पक्षपातरहितमिति ॥ १५ ॥

इति श्रीमोजविनिर्मिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—नैयायिक द्रव्यादिक (द्रव्य, गुण, पर्याय) का भेद मानता है, क्योंकि “उत्पन्न हुआ द्रव्य क्षणभर गुणरहित रहता है” इस नैयायिकके कथनसे गुणोंकी उत्पत्ति भिन्न क्षणमें होती है। भावार्थ—नैयायिक ऐसा कहता है कि—द्रव्य प्रथम निर्गुण उत्पन्न होता है फिर उसमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले गुण उत्पन्न होते हैं, समान काल (एक ही समय) में द्रव्य तथा गुणकी उत्पत्ति होनेपर तो समान सामग्रीके होनेसे गुण और गुणी (द्रव्य) का भेद न होवे क्योंकि कारणका भेद कार्यके भेदका नियामक होता है। अर्थात् कारणका भेद होनेसे कार्यका भेद अवश्य होता है यदि कारणका भेद न हो तो कार्यका भी भेद नहीं होता इसलिये जब गुण और गुणीकी सामग्री ही एक है तो उनका भेद न होगा। और सांख्य द्रव्य आदिका अभेद मानता है क्योंकि यह इसके पहले उत्पन्न हुआ यह इसके पीछे उत्पन्न हुआ इस प्रकारके पूर्वापरभावका अभाव होनेसे पशुके दक्षिण तथा वाम-सींगकी भांति गुण और गुणीकी उत्पत्ति एक समयमें होती है, और वह ही द्रव्य उसहीके पूर्वभावी तथा पश्चाद्भावी नहीं होता है। इसलिये जब द्रव्य उत्पन्न होता है तब ही उसमें प्राप्त रूपादिक गुण भी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार द्रव्य आदिकी सांख्यमतमें अभेदता है और जैन तो द्रव्य गुण तथा पर्यायपनेसे द्रव्य आदिके भेदको भी और अभेदको भी मानते हैं और जो द्रव्य है वही गुण है, वही पर्याय है, जैसे कि घड़ा द्रव्यसे सृष्टिका है, गुणसे लालरंगका है, पर्यायसे शङ्खकीसी ग्रीवाका धारक है, इस प्रकार अभेद मानते हैं। ऐसे भेद अभेद इन दोनोंको स्वीकार करते हुए जैन तो सब जगह विजयको प्राप्त होते हैं। सो ही कहा है कि—

हे जिनेंद्र जैसे अन्यमतावलम्बियोंके प्रवाद परस्पर पक्ष तथा प्रतिपक्षपनेसे ईर्ष्याके धारक है उस प्रकार सब मतोंको समानतासे चाहता हुआ आपका जिनशासन पक्षपाती नहीं है ॥ १ ॥

(भावार्थः—कोई सर्वथा भेद मानता है, कोई सर्वथा अभेद मानता है इस कारण दोनोंके सिद्धान्त परस्पर ईर्ष्याके धारक हैं। और अपेक्षासे भेद तथा अभेद इन दोनोंको स्वीकार करनेवाला जैनसिद्धान्त दोनों वादियोंको समान देखता है। किसीसे ईर्ष्या नहीं करता)

तथा और भी कहा है कि—

जो दोष सर्वथा नित्यवादमें है वे ही सर्वथा एकान्त रूपसे अनित्यवादमें भी हैं, इसलिये परस्पर एक दूसरेके ध्वंस करनेवाले कंटक (कंटक तुल्यमतों) में अनेकान्तवादी होनेसे प्रबल आपका जिनशासन विजयको प्राप्त होता है। २। इसलिये सर्वथा भेदनय पक्षके अभिमानको अभेद नय दूर करता है। अब भेद तथा अभेदमतके स्वामीका नाम दिखलाते हैं। कार्य असत् (अविद्यमान) दीखनेमें आता है और कार्य कारण तथा गुण-

गुणीका परस्पर भेद हे, यह तो नैयायिकको इष्ट हे । मत् कार्य देखनेमे आता हे ओर कार्य कारण तथा गुणगुणीका सर्वाथा अभेद हे, यह सांख्यवादीको अभीष्ट है । ओर कथंचित् सत् एव कथंचित् असत् कार्य देखनेमे आता है तथा कार्य कारण ओर गुण गुणीका कथंचित् अभेद है, यह पक्षपात रहित मत जैनको अभीष्ट है ॥ १५ ॥

इति द्विवेद्युपनामकपण्डितठाकुरप्रसादवैयाकरणाचार्यप्रणीतभाष्यानुवादसमलङ्घिताया
द्रव्यानुरोगतर्कणाया तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

व्या०—अथ परवादी वक्ति द्रव्यादीना भेदाभेदौ द्वौ कथ मान्यौ स्त इत्याशङ्किते प्रत्युत्तरयन्नाह ।

अर्थः—अब अन्यमतावलम्बी वादी कहता है कि द्रव्यआदिकोंके भेद अभेद ये दोनों धर्म किस प्रकारसे मान्य है ऐसे आशङ्काके प्राप्त होनेपर वादीको प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । भेदाभेदौ कथ मान्यौ परस्परविरोधिनौ

कुत्राप्येकत्र न स्यातामन्धकारातपौ यथा ॥ १ ॥

इत्थमाशङ्कित शिष्य गुरुराह जिनास्तिभिः

सर्वत्राप्यविरोधेन धर्मां ऋवेकसश्रयौ ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—हे गुरो ! जैसे कहीं भी अन्धकार और प्रकाश एक अधिकरणम नहा रहते हैं वैसे ही परम्पर विरोधके धारक भेद और अभेद ये दोनों एक वस्तुमें कैसे मान्य हो सकते हैं ॥ १ ॥

इस प्रकार आशङ्काको प्राप्त हुए शिष्यके प्रति श्रीगुरु महाराज श्रीजिनभगवान्की उक्तियों द्वारा कहते हैं कि हे शिष्य ! सब ही स्थान तथा वस्तुओंमें एक द्रव्यमें रहनेवाले दोनों धर्म विरोधरहित हैं ॥ २ ॥

व्याख्या । अहो भेदाभेदौ कथ केन प्रकारेण मान्यौ कीदृशौ तौ परस्परविरोधिनौ । यत्र भेद स्यात्तत्राभेदो न यत्राभेदस्तत्र भेदो न इत्यमनयोगन्योऽन्य विरोधोऽस्ति । द्वैवेकत्र न तिष्ठत । यथान्धकारातपावप्येकत्र स्वायिनौ कदापि न भवतस्तथैवेतावपीत्यर्थ । तथा श्लोक्तमाचाराङ्गे “वितिगित्य समावश्रेण अप्पाणेण न लभते समाहिंसि” तदर्थं शङ्कित शिष्य गुरु प्रवचनविच्छेदस्याद्वाणीभि कथयति स्म । अहो शिष्य यद्वदस्य घटाभावस्य च यस्याप्यन्योऽन्य विरोध सम्भाव्यते । परन्त्वनयोर्भेदाभेदयो परस्पर विरोधो नास्ति । यत कारणात्सर्वत्र स्थानेषु वस्तुषु च भेदाभेदलक्षणौ धर्मां विरोधेन विरोधाभाजेन चैकाश्रय वृत्त्याश्रयाश्रयिभावेन च दृश्येते । अत उक्तमेकसश्रयावेकस्मिन्द्रव्ये सश्रय आधारे ययो-स्तावेकसश्रयाविति । सत्य तुल्यौ द्वौ तथाप्यभेदाभ्य स्वाभाविकस्तस्य , पुनर्भेद उपाधिकोऽसत्यश्चेत्तद्वदशङ्कित कश्चित्कथयिष्यति तदा तदप्यसम्भवमनुभवगोचरं च न । तत्कथ व्यवहारेण परापेक्षत्व द्वयोरपि । गुणादीना भेद गुणानीनामभेदश्चेति वचनादविरोध एव भेदाभेदयो रेकत्र समाश्रितयोर्हातव्य इति ध्येयम् ॥

व्याख्यार्थः—परस्पर विरोधधारक भेद और अभेद ये दोनों धर्म द्रव्यादिकमें किस प्रकारसे मानने योग्य होंगे क्योंकि जहां भेद हो वहां अभेद नहीं रहता है, ऐसे ही जहां जिस वस्तुका अभेद हो वहां भेद नहीं रहता है, इस प्रकार आपसमें विरोध है। इसलिये भेद और अभेद ये दोनों एक ही द्रव्यादिकमें नहीं रहते हैं। अर्थात् जैसे अन्धकार और प्रकाश एक जगह रहनेवाले कभी भी नहीं होते हैं वैसे ही ये भेद अभेद भी एक स्थलमें रहनेवाले नहीं हैं। और वैसे ही आचाराङ्गमें कहा है कि “वितिगित्य समावन्नेण अप्पाणेणं न लभते समाहिंति” इस प्रकार शङ्काको प्राप्त हुए शिष्यको गुरु अर्थात् प्रवचनके ज्ञाता पुरुष श्रीस्याद्वादके वचनों द्वारा कहते भये कि अहो शिष्य! यद्यपि घट और घटाभावका परस्पर विरोध संभावित होता है। परन्तु इन भेद तथा अभेद रूप दोनों धर्मोंका परस्पर विरोध नहीं है। क्योंकि सब स्थानोंमें तथा वस्तुओंमें भेद अभेदरूप दोनों धर्म विरोधरहिततासे तथा आश्रयाश्रयिभावसे देख पड़ते हैं। इस ही कारण मूल सूत्रमें “एकसंश्रयौ” यह पद दिया है अर्थात् एक द्रव्यमें है संश्रय (आधार) जिनका ऐसे भेद और अभेद सर्वत्र विना किसी विरोधके रहते हैं।

“यह यद्यपि सत्य है कि भेद तथा अभेद ये दोनों तुल्य हैं तथापि अभेद स्वाभाविक और सत्य है और भेद औपार्थिक तथा असत्य है” इस प्रकार शङ्कित होके कोई कहेगा तो वह उसका कथन भी असम्भव है और अनुभवके गोचर नहीं है। सो कैसे कि व्यवहारसे दोनों ही परकी अपेक्षा करनेवाले हैं। उससे गुणादिकका भेद तथा गुणादिकका अभेद है इस वचनसे एक आश्रयमें रहनेवाले भेद तथा अभेदका अविरोध ही जानना चाहिये। ऐसा भाव है ॥ २ ॥

व्या०—पुनर्विरोधमपाकुर्वन्नाह ।

अर्थः—फिर भेद, अभेदके विरोधको दूर करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । एकत्र जनतारूढ्या यत्प्रत्यक्षेण लभ्यते ।

रूपादीनामिवैतेषां भेदादि तत्कथं भ्रमः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—जब एक घटादि द्रव्यमें लोकविदित व्यवहारसे जो प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा रूपादिकका भेद अभेद प्राप्त होता है तब इन द्रव्यआदिका भेद अभेद है, इसके माननेमें भ्रम कैसे होता है अर्थात् विरोध क्यों करते हो ॥ ३ ॥

व्याख्या । एकस्मिन् स्थाने घटादिद्रव्यविषये जनतारूढ्या सर्वलोकविदितव्यवहारेण लोकसाक्षित्वेन वा प्रत्यक्षप्रमाणेन रक्तत्वादिगुणपर्यायाणां यद्भेदाभेदत्वं लभ्यते तत्कथं भ्रमः ।

१ स्वाभाविक अर्थात् स्वयंसिद्ध तात्पर्य यह है कि मृत्तिका और घटमें अभेदतो स्वयंसिद्ध है क्योंकि घट दृग्भावे तथा उसके आगे पीछे भी मृत्तिका ही है इसलिये अभेद स्वाभाविक सत्य है ।

२ घटरूप उपाधिसे उत्पन्न भेद औपार्थिक (वनावटी) है इस लिये असत्य है ।

इति । तेषां रूपादीनामिवैतेषां द्रव्यादीनामपि भेदादि वर्तते । तत्र विरोध किमर्थं क्रियते । यथा रूपरसादीनामेकाग्रयष्टित्वानुभवाद्विरोधो न कथ्यते । तथैव द्रव्यादीनामपि भेदाभेदयोरपि त्रिरोधो न भवेत् । निश्चयेन ज्ञान चक्षुषा विशृष्ट सुस्थमेव जायते । उक्तं च—न हि प्रत्यक्षदृष्टेऽर्थे विरोधो नाम जायते । तथा प्रत्यक्षदृष्टार्थे दृष्टान्तस्याप्यभावतः । उक्तं च—केदमन्यत्र दृष्टत्वमहो निपुणता तव । दृष्टान्तं पठसे यत्त्वं प्रत्यक्षेऽप्यनुमानवत् ॥ १ ॥ इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—एक स्थानमे अर्थात् घटादि द्रव्यके विषे जनसमूहकी रूढिसे अर्थात् मन लोकके विदित व्यवहारसे अथवा सब लोकोंकी साक्षीमे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा जन घटादि द्रव्यमे रक्तत्वआदि गुण पर्यायोक्ता भेद और अभेद उपलब्ध होता है, तब उनके विरोधके विषयम भ्रम कैसे होता है । जैसे रूपआदिके भेद आदि हैं ऐसे ही इन द्रव्यगुणपर्यायके भी भेद अभेद हैं इसमें विरोध क्यों करते हो, जैसे एक घट अथवा आम्रके फल आदि अधिकरणमे अनुभवसिद्ध रूप रसआदिका भेद अभेद है वहापर तुम विरोध नहीं कहते हो ऐसे ही द्रव्यपर्याय आदिके भेद अभेदका कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि निश्चयकर नेत्रद्वारा विचाराहुआ अर्थात् देखा हुआ ज्ञान सत्य ही होता है ऐसा कहा भी है कि प्रत्यक्षसे देखेहुए पदार्थमे विरोध नहीं होता, और प्रत्यक्षसे दृष्टवस्तुमे दृष्टान्तका भी अभाव है क्योंकि ऐसा अन्यत्र कहा देखा है अहो, यह तुझारी निपुणता है कि प्रत्यक्षमे भी अनुमानकी भाँति दृष्टान्तको भी पढते हो अर्थात् प्रत्यक्षरूपसे जो भेदाभेद दृष्ट है उस अनुभवको अनुमानके समान अन्धकार तथा प्रकाशका दृष्टान्तद्वारा छिपाते हो ॥ ३ ॥

व्या०—अथ भेदाभेदयोः प्रत्यक्षस्याभिलापः पुद्गलद्रव्येण दर्शयन्नाह ।

अर्थः—अब भेद अभेदके प्रत्यक्षका अभिलाप पुद्गल द्रव्यसे दर्शाते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । पूर्वं श्यामो घटः पश्चाद्भेदाद्रक्तो भवन्स्वयम् ।

घटत्वेन विरोधित्वं नैव वक्ति कदाचन ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—जो घट पूर्व अवस्थामे श्याम पर्यायवाला है वही पश्चात् भेद स्वयं रक्त पर्याय युक्त होता हुआ घटत्वेन साथ कभी विरोधपनेको नहा कहता है ॥ ४ ॥

व्याख्या । यो हि घट पूर्वावस्थायां श्यामभावोऽस्ति स एव घटः पश्चात्पाकादिपरिणतः सः स्वयमात्मना रक्तो रक्तवर्णा भवति सन् भिन्नत्वेन व्यपदेशः लभ्यते घटत्वेन कालद्वयेऽपि पूर्वावस्थाश्यामरूपेण परावस्थारक्तरूपेण च घटभावेन भेदाभेदौ न कथयतीति । अतो घटत्वेन विरोधित्वं पूर्वं श्यामो य एव घटः पश्चाद्रक्तो जातः स घटो न इति विरोधिभावः न वक्ति । अर्थात् श्यामोऽपि घटः रक्तोऽपि घटः, घटत्वेनाविरोध एव । कदाचन पूर्वपरपर्याय गुणादानविभक्तोऽपि घटस्तु घट एव । एव श्यामावस्थायां रक्तावस्थायां अवस्थाकृतभेदाद्वद भेदो न जातस्तदात्र द्रव्यादीनां परस्पर भेदाभेदौ मानधारयः । घटदृष्टान्तेन द्रव्यादीनामप्यन्योन्यमेक्यं विद्धि न कदापि भिन्नभावाभावात् जानीहि ॥ ४ ॥

और रक्त घट श्याम नहीं है इस प्रकार श्यामत्व तथा रक्तत्व धर्मका भेद ज्ञानमें भासता है परन्तु श्यामत्व तथा रक्तत्व दोनों दशामें वर्तमान धर्माँ घटकी भिन्नता नहीं भासती ऐसा यदि तुम प्रतिपादन करते हो अर्थात् धर्मके भेदसे धर्माँका भेद नहीं मानते हो तो जड और चेतन जो भिन्न धर्म हैं उनका धर्माँ एक द्रव्य निश्चयसे होजायगा । कदाचित् कहो कि जड चेतनका जो भेद भासता है वहां जडत्व और चेतनत्व इन दोनों धर्मोंका ही भेद है परन्तु जड, चेतन द्रव्योंका भेद नहीं है इस प्रकार अवस्थासे धर्माँका प्रतियोगीरूपसे (अर्थात् जड चेतन नहीं है और चेतन जड नहीं है) उल्लेख (कथन) करनेपर भी जड चेतन तथा श्याम और रक्त घट भी सदृश है और प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थमें कोई वाधकका-प्रसंग भी नहीं होता क्योंकि अनुपलब्ध अर्थात् अनुभव प्रमाणसे अप्राप्त वस्तुमें न्याय नहीं प्रवृत्त होता किन्तु संदिग्ध वस्तुमें न्यायकी प्रवृत्ति होती है ऐसा कहा है इस रीतिसे धर्मका भेद आपके अनुभवमें भासता है धर्माँका भेद तुम नहीं कहते हो तो भिन्न धर्मके धारक जड और चेतनका एक धर्माँ प्राप्त होता है यह ही कारिकाका आशय है ॥ ६ ॥

सूत्रम् । भेदाभेदौ च तत्रापि दिशन् जैनो जयत्यलम् ।

रूपान्तरात्पृथग्रूपेऽप्यभेदो भुवि संभवेत् ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—वहां भी भेद तथा अभेदका उपदेश करता हुआ जैनमत अतिशय करके सर्वोत्कृष्ट वर्त्तता है क्योंकि रूपान्तर अर्थात् द्रव्यरूपसे पृथक् जो जीवादि भासते हैं वहां भी संसारमें अभेदका संभव है ॥ ७ ॥

व्याख्या । च पुनस्तत्रजडचेतनयोर्मध्ये भेदाभेदौ कथयन् जैन एव अलमत्यर्थं जयति सर्वोत्कृष्टत्वेन प्रवर्त्तते । कथं तद्यतो भिन्नरूपा ये जीवा जीवादयस्तेषु रूपान्तरद्रव्यत्वपदार्थत्वादिभ्यश्चाभेदोऽपि जगत्यायाति । एतावता भेदाभेदयोः सर्वत्र व्यापकत्वं कथितम् । रूपान्तराद्रव्यत्वपदार्थत्वलक्षणाद्भिन्नरूपे जीवाजीवादिकेऽपि व्यापकत्वादभेदोऽपि भुवि जगत्यां संभवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—फिर जहां जड चेतनमें नैयायिक भेदमात्र कहता है वहां भी जड तथा चेतनके मध्यमें भेद अभेद दोनोंको कहता हुआ जैनमत ही अतिशयकर सर्वोत्कृष्ट-पनेसे वर्त्तता है सो कैसे कि भिन्न रूप जो जीव अजीव आदिक हैं उनमें रूपान्तर द्रव्यत्व पदार्थत्व आदिसे अभेद भी जगत्में आता है इस कथनसे भेद अभेदके, सब जगह

१ जब श्याम तथा रक्त इन अवस्थाओंका कथन होता है तब वहां “श्यामघटो रक्तो नास्ति” श्यामघट रक्त नहीं है और रक्त होनेपर “रक्तो घटः श्यामो नास्ति” रक्त घटा श्याम नहीं है ऐसा प्रतियोगीरूपसे धर्माँ घटका भी भान होता है यह नैयायिकका आशय है ।

२ नैयायिकका अभिप्राय यह है कि जब धर्मका भेद है तब धर्माँका भेद अवश्य है क्योंकि धर्माँके भेदार्थ ही धर्मका भेद है ।

व्यापकत्व कहा अर्थात् तुम्हारे मतसे भिन्नरूप जीव पदार्थ है उनमें भी रूपान्तर अर्थात् द्रव्यत्व, पदार्थत्व रक्षणसे व्यापकता होनेके कारण जगत्में अभेद भी संभव होता है ऐसा अर्थ है भाग्यार्थ—तुमने सर्वत्र धर्मभेदसे भेदको ही व्यापक कहा है परन्तु जीव और अजीव दोनों द्रव्य होनेसे द्रव्यत्वरूपसे हमारे मतमें जड़ चेतनमें भी अभेद व्यापक होनेसे निश्चयमान है यद्यपि जटत्व तथा चेतनत्व पर्यायरूपसे भिन्न हैं परन्तु उन ही दोनोंमें व्यापक द्रव्यत्वसे अभेद भी जगत्में सम्य है ॥ ७ ॥

सूत्रम् । यस्यभेदोऽप्यभेदोऽपि रूपान्तरमुपेयुषः ।

एव रूपान्तरोत्पन्नभेदाच्छतनयोदयः ॥ ८ ॥

सूत्रभाचार्यः—जिस वस्तुका भेद भासता है उसी वस्तुका रूपान्तरको प्राप्त होते हुए अर्थात् भेदयुक्त वस्तु जब दूसरे स्वरूपमें परिवर्तित हो जाता है तब, उसीका अभेद भी हो जाता है एव रूपान्तरसे अन्य रूपान्तरमें उत्पन्न भेद तथा पुन उससे भी रूपान्तरमें अभेद इस रीतिसे अन्य अन्य उत्पन्न गुणपर्यायद्वारा जो भेदसे अभेद है उस-हीसे सैकड़ों नयोंका उदय है ॥ ८ ॥

व्याख्या । यस्य वस्तुनो भेदस्यैव रूपान्तरमुपेयुष रूपान्तरसहितस्याभेदोऽपि भवे यथा स्थासकोशकुशूलादयो घटस्य भेदा सन्ति पुनस्त एव स्थासादयो मृद्वव्यनिशिष्टानर्पित स्वपर्याया अभेदा रूपान्तरसमुक्तत्वादभेदा, तेषामेव रूपान्तराद्वेगो भवेत् । यथा स्थास कोशकुशूलादिपर्यायविशिष्टमृद्वव्यत्वेन तस्यैव भेद । एवमस्य भेदस्याभेदोऽस्ति य स एव शतसरयमूलनयाना हेतुरस्ति । यत्तु सप्तनयाना ये सप्तशतसरयामिता भेदा जायन्ते ते चानयैव रीत्या द्रव्यपर्यायस्यार्पणयानर्पणया च शतारनयचक्राध्ययनमध्यगता पुरासन् । ते चाधुना द्वाद्वादशरनयचक्रमध्ये विधिर्विधिर्विधिरित्यादिरीत्या एकैकस्मिन्नयान्तरे द्वावश द्वादश भेदा समुद्भवन्ति । अत सम्यगुक्तपाठपठितपरिकलनाप्रसिद्धिमवधार्य भङ्गयोजना निधेयेत्यर्थ । यस्य भेदोऽस्ति तस्यैव रूपान्तरेणाभेदोऽप्यस्ति तस्यैव भेद पुनस्तस्याभेद एव शतनयावतार ॥ ८ ॥

व्याख्याः—जिस वस्तुका तुमको वर्तमान पर्यायको लेके भेद भासता है वही वस्तु जब रूपान्तर सहित होजाती है तब उसका अभेद भी होजाता है जैसे निज निज पर्यायसे योजित स्थास, कोश, तथा कुशूलआदि सब घटक भेद ह पुन वे ही स्थास कोश कुशूलआदि जब अपने २ पर्यायसे न योजित किये जाय अर्थात् पर्यायकी विवक्षा की जाय तो मृत्तिकारूप द्रव्यसहित होनेसे अथवा केवल मृत्तिकारूपकी विवक्षा

१ पर्यायरूपसे पिंड कुण्ड घटादिमें भेद रहते भी द्रव्यस्वरूप सम्य अनुगत होखे पिंड कुण्डादिमें भेद नहीं है नैयायिक भी पृथिवी जगादिमें परस्पर भेद रहने भी १ () द्रव्योप न्यून रूप ही मानने ह और प्रमेयत्वादि धर्मों तो पदार्थका अभेद मानते ह ।

करनेसे अभिन्नरूप हैं अर्थात् उनका भेद नहीं है क्योंकि अब रूपान्तरसंयुक्त होगये अब पुनः उनहीका रूपान्तर होनेसे पुनः भेद भी हो जाता है जैसे स्थास कोश कुशल आदि पर्यायसहित मृत्तिकाद्रव्यत्वसे उसीका भेद है इस प्रकार इस भेदका जो अभेद है वह ही अभेद शतसंख्याक (सौ १००) मूल नयोंका कारण है । और जो नैगम सङ्ग्रह आदि सात नयोंके सातसो (७००) भेद होते हैं वह सब भेद भी इसी रीतिसे द्रव्य पर्यायके अर्पण तथा अनर्पणसे अर्थात् कदाचित् द्रव्यार्थिक योजनासे और कदाचित् उसकी अविवक्षा करके पर्यायकी योजनासे शतारनयचक्राध्ययनके मध्यगत पूर्वकालमें ये वे ही अब द्वादशारनयचक्रके मध्यमें “विधिविधिविधिः” इत्यादि रीतिसे एक एक नयके बीचमें बारह बारह भेद होते हैं इसलिये सम्यक् प्रकारसे कथित पाठमें पड़ी हुई संख्याकी प्रसिद्धिको अवधारण कर भंगोंकी योजना करनी चाहिये तात्पर्य यह कि जिसका पर्याय आदिकी अपेक्षासे भेद है उसका पुनः रूपान्तरमें प्राप्त होनेसे अभेद और पुनः उस भेदका अभेद एवं शत (१००) नयका अवतार होता है ॥ ८ ॥

व्याख्या । अथ ते नयभेदाश्चिकीर्षिता अतस्तानेव दर्शयन्नाह ।

व्याख्यार्थः—यहां उन नयोंके भेद करनेकी इच्छा करी इसलिये अब उन ही भेदोंको दर्शाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । तथा क्षेत्रादिभिः सप्तभङ्गीकोटिः प्रजायते ।

संक्षेपादिह बोधाय सप्तभङ्गी प्रतायते ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—उसी प्रकार सप्तभंग भी क्षेत्र कालादिकी अपेक्षासे अवान्तर भेद प्रभेद आदिके निरूपणसे कोटि (करोड) भङ्ग होजाते हैं परन्तु यहां संक्षेपसे बोध होनेकेलिये केवल सप्तभङ्गीका विस्तार करते हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या । यथा द्रव्यादिविशेषेण भंगा जायन्ते तथैव क्षेत्रादिविशेषेणापि भंगा अनेके संभवन्ति । यतः स्वतो विवक्षितो घटो द्रव्यमस्यापेक्षया क्षेत्रादिघटः परद्रव्यमिति । एव प्रत्येकं प्रत्येकं सप्तभङ्गोऽपि कोटिशो निष्पद्यन्ते । तथापि लोकप्रसिद्ध्या यः कम्बुग्रीवादि-पर्यायोपेतो घटो द्रव्यं वर्तते तस्यैव स्वतस्त्वमङ्गीकृत्य स्वरूपेणास्तित्वं पररूपेण नास्तित्व-मित्यवधार्य सप्तभङ्गीं व्याकुरुते । तथा हि स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया घटोऽस्त्येव । १ । परद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया घटो नास्त्येव । २ । एकदा युगपदुभयविवक्षया घटोऽवाच्य एव एकशब्देन पर्यायद्वयं मुख्यरूपेण वक्तुमशक्यत्वात् । ३ । एकोऽंशः स्वरूपेण विवक्ष्यतेऽपरोऽंशः पररूपेण विवक्ष्यते तदा अस्ति नास्ति घटः । ४ । एकोऽंशः स्वरूपेणापरोऽंशो युगपदुभयरूपेण विवक्ष्यते तदा घटोऽस्ति परमवाच्य इति । ५ । एकोऽंशः पररूपेणापरोऽंशो युगपदुभयरूपेण विवक्ष्यते तदा घटो नास्त्यवाच्य इति । ६ । एकोऽंशः स्वरूपेणैकोऽंशः पररूपेणैकश्चांशो युगपदुभयरूपेण विवक्ष्यते तदा घटोऽस्ति नास्त्यवाच्य इति । ७ ।

घट स्यादस्त्येन । १ । स्यान्नास्त्येन । २ । स्यादवान्य एन । ३ । स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव । ४ । स्यादवाच्य एव । ५ । स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव । ६ । स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एवेति । ७ । इति प्रयोग इति ॥ ९ ॥

व्याख्यानार्थः—जैसे द्रव्य पर्याय आदि विशेषसे भङ्ग होते हैं वैसे ही क्षेत्र काल आदि विशेषसे भी अनेक भङ्गोंका सम्भव है क्योंकि स्वतन्त्र निश्चित घट द्रव्य है इसी द्रव्य घटकी अपेक्षासे क्षेत्रआदिका घट परद्रव्य है ऐसे ही प्रत्येक प्रत्येक अर्थात् हर एकके प्रति सप्तभगिये भी किरोहों सिद्ध होती है तथापि लोकरकी प्रसिद्धिसे जो कम्बुग्रीवादि पर्यायसहित घटद्रव्य है उसी घटका स्वतन्त्र अर्थात् निजस्वरूप कालादि भङ्गीकार करके स्वरूपसे घटका अस्तित्व और पररूपसे घटका नास्तित्व है ऐसा निश्चय करके सप्तभगोंका व्याख्यान करते हैं जैसे नि—अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे “घट अस्त्येन” घट है ही । १ । परके द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावकी अपेक्षासे “घट नास्ति एव” घट है ही नहीं । २ । और एक कालमें ही अस्ति तथा नास्ति की निश्चयसे घट अवैच्य ही है क्योंकि एक शब्दसे अस्ति नास्ति रूप दोनों पर्याय एक कालमें प्रधानतासे नहीं कहे जा सकते । ३ । तथा घटका एक अंश तो उसके निज स्वरूपआदिसे विवक्षित करते हैं और दूसरा अंश पररूपसे विवक्षित करते हैं तब “अस्ति नास्ति घट ” अर्थात् घट है भी ओर नहीं भी है ऐसा चतुर्व्य भग होता है । ४ । तथा घटका एक अंश तो उसके स्वरूपसे विवक्षित करते हैं और अन्य अंश एक ही कालमें उभयरूपसे निश्चित करते हैं तो “घट अस्ति परन्तु अवाच्य ” अर्थात् घट है परन्तु वह अवैच्य है । इस पंचम भगकी प्रवृत्ति होती है । ५ । तथा एक अंश तो पररूपसे और एक अंश उभयरूपसे एक कालमें विवक्षित करते हैं “तो घटो नास्ति अवाच्य ” घट नहीं है ओर अवैच्य है इस छठे भगकी प्रवृत्ति होती है । ६ । और जब एक अंश तो घटका स्वरूपसे निश्चित करते हैं और एक अंश पररूपसे विवक्षित करते हैं तथा एक अंश एककालमें अस्ति नास्ति इस उभयरूपसे विवक्षित करते हैं तब “घट अस्ति नास्ति अवाच्य ” घट है नहीं है अवाच्य है यह सप्तम भग होता है (७) अब सप्तभगीका प्रयोग इस प्रकार है कि कथंचित् घट है ही । १ । कथंचित् (किसी अपेक्षासे) घट नहीं ही है । २ । किसी अपेक्षासे घट अवाच्य ही है । ३ । किसी अपेक्षासे घट है ही

१ अपने द्रव्य क्षेत्र भावसे । २ परके द्रव्य क्षेत्र भावसे । ३ कथन का निरूपण करनेसे अयोग्य । एक वस्तु ही एक बालहाम स्वरूपसे सत्ता और पररूपसे अगत्ता प्रपातसे कहनेसे अवगम्य है इसलिये यह अवाच्य है । ४ स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व का कहना यह चार भग होता है । ५ कहनेसे घट । ६ निरूपणसे सत्ता मात्र ही अस्ति नास्ति इस उभयरूपसे अवाच्य है । ७ जब द्रव्य क्षेत्रादिसे घटका अस्तित्व और उभयरूपसे अवाच्य है इसलिये “स्यान्नास्ति अवाच्य ” यह छठा भग है । ८ निजद्रव्य क्षेत्रादिसे घटका सत्ता परद्रव्य क्षेत्रादिसे अस्तित्व तथा अग्नि नास्ति उभयरूपसे अवैच्य इस आभिसारासे यह सातवां भग है ।

किसी अपेक्षासे नहीं ही है । ४ । कथंचित् घट है ही कथंचित् घट अवक्तव्य ही है । ५ । कथंचित् घट नहीं ही है कथंचित् अवक्तव्य ही है । ६ । तथा किसी अपेक्षासे घट है ही किसी अपेक्षासे है ही नहीं और किसी अपेक्षासे अवक्तव्य ही है । ७ । ॥ ९ ॥

अथास्याः सप्तभङ्गया भेदाभेदौ योजयति ।

अब इस सप्तभङ्गीके भेद तथा अभेदकी योजना करते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थनयाद्भिन्नं वस्तु द्रव्यार्थतोऽपृथक् ।

क्रमापितनयद्वन्द्वद्भिन्नं चाभिन्नमेव तत् ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे संपूर्ण वस्तु भिन्न २ हैं और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अभिन्न हैं तथा क्रमसे पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंकी योजनासे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न ही है ॥ १० ॥

व्याख्या । पर्यायार्थिकनयात्सर्वं वस्तु द्रव्यगुणपर्यायलक्षणैः कथंचिद्भिन्नमस्ति । १ । द्रव्यार्थिकनयात्कथंचिदभिन्नमेव । गुणपर्यायौ हि द्रव्यस्यैवाविर्भावतिरोभावरूपावित्युक्तत्वात् । २ । अनुक्रमेण यदि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोरपेक्षणं क्रियते तदा कथंचिद्भिन्नं कथंचिदभिन्नं च कथ्यते । ३ ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे द्रव्य गुण तथा पर्यायरूपसे संपूर्ण पदार्थ भिन्न है । १ । और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे कथंचित् सब पदार्थ अभिन्न ही हैं क्योंकि गुण और पर्याय तो द्रव्य ही के आविर्भाव तथा तिरोभावरूप हैं ऐसा प्रथम कह चुके हैं । २ । और अनुक्रमसे यदि पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंकी योजना करते हैं तो कथंचित् भिन्न अर्थात् पर्यायसे भिन्न और द्रव्यार्थिकरूपसे अभिन्न कहे जाते हैं । ३ ॥ १० ॥

सूत्रम् । यद्येकदोभयादानं तदावाच्यं भवेच्च तत् ।

एकदैवैकशब्देन नार्थद्वयप्रकाशनात् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—और यदि एक समयमें ही पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंका ग्रहण करें तो अवाच्य होता है क्योंकि एक शब्दसे एक ही क्षणमें दो विरुद्ध अर्थोंका प्रकाश नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

व्याख्या । यद्येकवेलं नयद्वयार्थविवक्षा जायते । तदा त्ववाच्यमेव लभते । यत एकेन शब्देनैकस्मिन् क्षणेऽर्थद्वयकथनासंभवात् । सांकेतिकशब्देनैकमेव संकेतरूपं निरूपणीयं स्यात्परन्तु रूपद्वयशब्दं कथयितुमशक्य एव । पुष्पदन्तादिशब्दा अप्येकोत्तया चन्द्रसूर्ययोर्व्यक्ति वदन्ति परन्तु भिन्नोक्त्या कथयितुमशक्या इह तूभयनयार्थौ मुख्यतयैव भिन्नोक्त्या

उच्चारयितु योग्यौ तद्योग्यत्व तु यत्नेनापि न भवति । तस्मादेकदा नयद्वयार्थविवक्षयावाच्य इति । ४ । ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—यदि एक कालमें ही दोनों नयोंसे दोनों अर्थोंकी विवक्षा उत्पन्न हो अर्थात् एक समयमें पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंसे पर्याय तथा द्रव्य रूप दोनों अर्थोंके कथनकी इच्छा हो तब तो पदार्थ अवक्तव्य दशाको ही प्राप्त होता है, क्योंकि एक शब्दसे एक ही क्षणमें द्रव्य पर्याय अथवा स्वरूप पररूपादि अर्थका कथन असंभव है सांकेतिक शब्दसे जो संकेतरूप एक अर्थ है वह ही उस शब्दसे निरूपणीय (कथनयोग्य) होता है, परन्तु दो अर्थरूप शब्दका तो कथन करनेको वह शब्द असमर्थ ही है और पुष्पदन्त आदि शब्द भी एक ही उक्तिसे अर्थात् समूहालम्बन ज्ञानसे सूर्य चन्द्रकी व्यक्तिको कहते हैं परन्तु भिन्न २ अर्थात् पृथक् २ सूर्य तथा चन्द्रादिरूप अर्थ कहनेको असमर्थ है अर्थात् पृथक् २ दो अर्थ एक शब्दसे एक ही क्षणमें कहनेको अशक्य है और यहाँ तो उभय अर्थात् पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक दोनों नयोंके प्रतिपाद्य पर्याय तथा द्रव्यरूप अर्थ मुख्यता (प्रधानता) से भिन्न २ उक्तिसे उच्चारण करनेके योग्य है और एक ही कालमें उन दोनों अर्थोंके उच्चारण करनेकी योग्यता तो यत्नमें भी नहीं होती इस कारणसे एक कालमें एक शब्दसे दो नयके अर्थकी विवक्षासे अत्राच्य ही है । ४ । ॥ ११ ॥

अथ पञ्चमभङ्गोद्धेतु करोति ।

अथ पञ्चम भगका प्रतिपादन करते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकसकल्पात्पञ्चाद्वयविवक्षितात् ।

भिन्नमवाच्य वस्त्वेतत्स्यात्कारपटलाज्जितम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—प्रथम पर्यायार्थिक नयके सकल्प (विवक्षा) करके पश्चात् दोनोंकी विवक्षा होनेसे यह पदार्थ स्यात् कार इस पदसे चिह्नित अर्थात् स्यात् भिन्न है और स्यात् अभिन्न है अवाच्य है तात्पर्य यह कि प्रथम पर्यायार्थिक नयकी विवक्षा की ओर पश्चात् द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंकी विवक्षा की तब वह वस्तु पर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् भिन्न है और उभय नयकी अपेक्षासे कथंचित् अवाच्य है । ५ ॥ १२ ॥

व्याख्या । प्रथम पर्यायार्थिकल्पना तब एकदोभयनयार्पण क्रियते तदा भिन्नमवक्तव्यमिति स्यात्कथंचिद्भिन्नमवक्तव्यमिति पञ्चमभङ्गोद्धेतु ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—प्रथमतो पर्याय नयकी कल्पना की और उसके अनन्तर द्रव्यार्थिक

१ यह “स्यात्” शब्द सभावनायक कथंचित् वाचक अव्यय है निम्नसे पूर्व यह लगाया जाता है उस वस्तुको किसी अपेक्षासे बढ़ता है ।

तथा पर्यायार्थिक एतत् उभय नयकी विवक्षा की “तव स्यात् भिन्नं स्यात् अवक्तव्यं च” अर्थात् वस्तु कथंचित् भिन्न कथंचित् अवक्तव्य है यह पञ्चम भंगका वर्णन हुआ ॥१२॥
अथ षष्ठमङ्गोद्देशः ।

अव षष्ठ ६ भंगका प्रतिपादन करते हैं ।

सूत्रम् । द्रव्यार्थेनोभयादानादभिन्नं तदवाच्यकम् ।

युगपन्नयद्वयादानाद्भिन्नमभिन्नमवाच्यम् ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—प्रथम द्रव्यार्थिक नयकी कल्पना करके उसके साथ पश्चात् उभय नयकी योजना की “तव स्यात् अभिन्नः स्यात् अवक्तव्यः” अर्थात् कथंचित् अभिन्न और कथंचित् अवक्तव्य इस षष्ठ भंगकी प्रवृत्ति हुई और पुनः क्रमसे उभय नयकी विवक्षा की पश्चात् एक कालमें ही उभय नयकी विवक्षा की तब कथंचित् भिन्न, अभिन्न अवक्तव्य इस सप्तम भंगकी सिद्धि हुई ॥ १३ ॥

व्याख्या । तत्रादौ द्रव्यार्थिकनयकल्पना । तत एकदोभयनयार्पणं क्रियते । तदा कथंचिद्भिन्नमवक्तव्यमिति कथ्यते । इति षष्ठः । पुनरनुक्रमेण प्रथमं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकेति नयद्वयकल्पना विधीयते । ततश्चैकदोभयनयार्पणं क्रियते तदा कथंचिद्भिन्नमभिन्नमवक्तव्यमिति भंगः सप्तमः समुत्पद्यत इति ॥ ७ ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—षष्ठ ६ भंगमें आदिमें केवल द्रव्यार्थिक नयकी विवक्षा की और उसके पश्चात् एक कालमें ही पर्यायार्थिक तथा द्रव्यार्थिक इन दोनों नयोंकी विवक्षा की तब कथंचित् अभिन्न तथा अवक्तव्य यह षष्ठ नय सिद्ध हुआ और प्रथम अनुक्रमसे पर्यायार्थिक नयकी और उसके पश्चात् द्रव्यार्थिक नयकी विवक्षा की और पुनः एक समयमें ही द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इस उभय नयकी योजना की तब “स्यात् भिन्नम् अभिन्नम् अवक्तव्यं च” अर्थात् कथंचित् भिन्न कथंचित् अभिन्न और कथंचित् अवक्तव्य इस सप्तम भंगकी उत्पत्ति हुई । ७ । ॥ १३ ॥

सूत्रम् । इमां सप्तभङ्गीं दृढाभ्यासयुक्तः

सदा योऽभ्यसेत्तत्त्वदृष्ट्या विचार्य ।

क्रमाभ्युपगम्यसेवाभ्यासवाप्याहतीं स

भवेन्मुक्तियोग्योऽचिराद्भव्यजन्मा ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—इस सप्तभङ्गी नयका जो मनुष्य दृढ अभ्यासमें तत्पर होकर तत्त्व-दृष्टिसे विचार करके सदा अभ्यास करेगा वह भव्य जन्मधारी प्राणी श्रीजिनभगवान्के चरणकमलकी सेवा भक्तिको पाकर शीघ्र मुक्तिके योग्य होगा ॥ १४ ॥

व्याख्या । एवमेका भेदपर्यायेऽभेदपर्याये च सप्तभङ्गीयोजना कृता पुनरित्थमेव सर्वत्र योजयितव्या । अथ शिष्यः प्रश्नयति । यतः स्वामिन् यत्र नयद्वयविषयस्यैव विचारणा भवेत्तत्रैकस्य मुख्यभावेनापरस्य गौणभावेन सप्तभङ्गी समुत्पद्यताम् परन्तु यत्र प्रदेशप्रस्थका

दिविचारेण सप्त ७ पट् ६ पञ्च ५ प्रमुखनयानां भिन्न २ विचारा भवन्ति तत्र त्वधिकभङ्गा एव जायन्ते तदा सप्तभङ्गया नियम कुत्र स्थिरो भवति । सप्तभङ्गीनियमस्त्वत एव निया मको न दृश्यते । इति पृष्ठो गुरुराह । भो शिष्य भवदुक्तं सत्यं परमार्थतस्तु । एव यत्तया गौणमुख्यव्यवहारो दाशतस्तत्र त्वेकस्यैव नयार्थस्य मुख्यतया विधिरन्येषा तु सर्वेषामेव निषेध । एव विधिनिषेधौ गृहीत्वाऽनेके भङ्गा क्रियन्ते । अस्माभिस्तु इत्थं ज्ञायते । उक्तं च सकलनयार्थप्रतिपादकतापर्यायाधिकरणं वाच्यं प्रमाणवाक्यमिति । एतल्लक्षणत्वात्तादृशे स्थाने स्यात्कारपदलाञ्छितसकलनयार्थसमूहालम्बनमेकस्मिन् भङ्गेऽपि निषिद्धं नास्ति तस्माद्व्यञ्जनपर्यायस्य स्थाने २ भङ्गतार्थसिद्धिं समतिग्रन्थविषये दर्शितास्ति । तथा च तद्ग्रन्थगाथा

एव सत्तवियप्पो वयणपहोहोइ अत्थ पज्जाए ।

वजणपज्जाए पुण सविअप्पो निज्जिअप्पोय । १ ।

अस्यार्थः । एव पूर्वाक्तप्रकारेण सप्तविकल्प सप्तप्रकारपचनमेव सप्तभङ्गीरूपपचनपन्था स चार्थपर्यायो योऽस्ति नास्तित्यादिविषय एव भवति । पुनर्व्यञ्जनपर्यायो घटकुम्भादिशब्द-वाच्यता तत्र विषये सविकल्परूपविधिरूपनिर्विकल्पकविधिरूपे द्वे एव भङ्गे स । परन्तु वक्तव्या विमङ्गो न भवति । यस्मात्कारणान्वक्तव्यशब्दविषयं भुवता निरोधोत्पत्तिः । अथवा स त्रिकल्पकशब्दसमभिरूढनयमते भवति । अपि च निर्विकल्पकशब्देवभूतनयमते त्वित्थं भङ्गद्वयं ज्ञातव्यम् । अर्थनया प्रथमे चत्वारस्तु व्यञ्जनपर्यायमेव नानुजानन्ति तस्मात्कार-णात्तेषां नयानामिह प्रवृत्तिर्नास्ति । अत्राधिन्यन्त्वनेकान्तव्यवस्थातो ज्ञातव्यम् । तदेवमेकत्र विषये प्रतिस्वमनेकनयविप्रतिपत्तिस्थले स्यात्कारपदलाञ्छिततावन्नयार्थप्रकारकसप्तधालम्बन-घोषजनक एक एव भङ्गं गृह्यो । व्यञ्जनपर्यायस्थले भङ्गद्वयम् । यदि च सर्वत्र सप्तभङ्गी-नियम एवाश्वासस्तदा चालनीयन्यायेन तावन्नयार्थनिषेधबोधको द्वितीयोऽपि भङ्गसन्मूलका-श्चान्ये तावत्कोटिका पञ्चभङ्गाश्च कल्पनीयाः । इत्थमेव निराकाङ्क्षसकलभङ्गप्रतिपत्तिनि-र्वाहान्ति युक्तं पश्याम । अयं विचार स्याद्वादपण्डितेन सूक्ष्मबुद्धिमता चेतसि धार्यः । अयं फलितार्थं कथयति । इमा व्यावर्ण्यमाना सप्तभङ्गी तत्तदृष्टया विमृश्यातिप्रौढियुक्तो यो भव्योऽभ्यासीश्रुयत्स आर्हता जैनी चरणपङ्कजभक्ति प्राप्याचिरास्तोक्कालेन कतिपयभव-प्रहणेन मोक्षं गच्छेत् ॥ १४ ॥

इति श्रीभोजविनिर्भिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्याख्यानार्थः—इस रीतिसे एक वस्तुमें भेद पर्याय तथा अभेद पर्यायमे एक सप्त-भङ्गीकी योजना की, और इस ही प्रकार सर्वत्र योजना करनी चाहिये अत्र शिष्य गुरुसे प्रश्न करता है कि हे स्वामिन् जहापर केवल दो ही नयोंके विषयका विचार हो वहापर एककी प्रधानतासे आर दूसरेकी गौणतासे सप्तभङ्गी उत्पन्न हो परन्तु जहापर प्रदेश, प्रस्थ, (अवयव, अवयवी) आदिके विचारमे सप्तम पष्ठ तथा पचम आदि नयोंके भिन्न भिन्न विचार होते हैं वहा पर तो अधिक ही भङ्ग होंगे उस समय सप्तभङ्गीका अर्थात् सात दा भग हैं यह नियम कहा स्थिर होगा और इसी रीतसे

सप्तभंगीका नियम नियामक नहीं देख पड़ता इस प्रकार पूछे हुए श्रीगुरुमहाराज कहते हैं की हे शिष्य, परमार्थसे तेरा कहना सत्य है क्योंकि जो तुमने गौण मुख्य व्यवहारका प्रदर्शन किया है वहां तो एक ही नयके अर्थकी मुख्यतासे विधि है और अन्य सब ही नयोंका निषेध है और इस प्रकारसे विधि और निषेधको मूलभागमें ग्रहण करके पुनः अनेक भंग किये जाते हैं ऐसी हमारी सम्मति है और ऐसा कहा भी है कि “संपूर्णनयोंके अर्थकी प्रतिपादकताके अर्थात् जिसकेद्वारा संपूर्ण नयोंके अर्थका कथन कियाजाय उसके पर्यायाधिकरण वाक्यको प्रमाणवाक्य कहते हैं” इस प्रकारके लक्षणसे जहां संपूर्ण पदार्थोंका विवेचन होता है वहां स्याद्वादसे चिन्हित अर्थात् स्यात् शब्दसे युक्त सम्पूर्ण नयोंके अर्थोंके समूहका धारण करना एक भंगमे भी निषिद्ध नहीं है इस कारणसे व्यंजनपर्यायके स्थानमे तो केवल दो भंगोंसे अर्थकी सिद्धि होती है ऐसा सम्मतिग्रंथमें दर्शाया है और उस ग्रन्थकी गाथा यह है इस प्रकार सप्तविकल्पसहित वचन (नय)का मार्ग अर्थ पर्यायमे होता है और व्यञ्जन पर्यायमे तो सविकल्प विधिरूप तथा निर्विकल्प विधिरूप दो ही भंग होते हैं इसका विशेष विवरण यों है कि इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे सप्त विकल्प अर्थात् सप्त (सात) प्रकारके भेदसहित जो वचन है सो ही सप्तभङ्गीरूप वचनका मार्ग है वह अर्थ पर्यायमें अर्थात् अस्तित्व नास्तित्व आदिके विषयमे ही होता है और व्यञ्जनपर्याय जो घट कुम्भ आदि शब्दोंकी वाच्यता है वहांपर सविकल्प विधिरूप तथा निर्विकल्प विधिरूप दो ही भंग होते हैं परन्तु अवक्तव्यत्व आदि भंग यहां नहीं होता क्योंकि अवक्तव्य शब्दविषयको कहनेवालोंके विरोधकी उत्पत्ति होती है अथवा सविकल्पक शब्द समभिरूढ नयके मतमे अवक्तव्यत्व आदि भंग होता है और निर्विकल्पक शब्द एवंभूत नयमे तो इस प्रकार दो ही भंग जानने चाहियें और पहले चार जो अर्थनय हैं वे तो व्यञ्जन पर्यायको ही नहीं जानते हैं इसलिये उन नयोंकी यहां प्रवृत्ति नहीं है यहांपर विशेष वर्णन अनेकान्त व्यवस्थासे जानना चाहिये इस कारण पूर्वोक्त प्रकारसे एक विषयमे प्रतिवस्तुमे जहां अनेक नयोंकी विप्रतिपत्ति हो वहांपर स्यात्कार (स्यात्) पदसे लांछित उतने नयार्थका प्रकारवाला सात प्रकारका आलम्बनरूप जो बोध उस बोधको उत्पन्न करनेवाला अर्थात् सात प्रकारके नयार्थोंके प्रकारतः विशेषता वा अनुयोगिता सम्बन्धसे अपनेमें रखनेवाला जो ज्ञान उस ज्ञानका

१ भेदसहित अर्थात् पर्यायरूप भेदयुक्त । २ भेदशून्य द्रव्य नयसे सब भेदशून्य है ।

३ अनेक प्रकारके अर्थबोध करनेकी और झुकनेसे समभिरूढ नय कहलाता है जैसे परमेश्वर्ययुक्त होनेसे इन्द्र समर्थ होनेसे शक्र और गुरुके नगरको विदीर्ण करनेसे पुरन्दर कहलाते हैं ऐसे ही उन उन पर्याय रूपताको प्राप्त होनेसे द्रव्य विविधरूप संयुक्त होनेसे पर्याय इत्यादि ।

४ जिस रूपसे है उसीसे बोध करावे वह एवभूत नय है जैसे ऐश्वर्ययुक्त हो वही इन्द्र, समर्थ होनेसे शक्र ऐसे ही पर्यायोंमें जावे वह द्रव्य अनेक आकारयुक्त होनेसे पर्याय समझना चाहिये ।

उत्पादक एक ही भग इष्ट करना चाहिये और व्यञ्जनपर्यायस्थलमे पूर्वोक्त दो ही भग समझने चाहिये और यदि सर्वत्र (अर्थ तथा व्यञ्जनपर्याय) स्थलमे सप्तभगी नियमपर ही निश्वास है तो उस स्थलमे चालनी न्यायसे उतने ही नयार्थोंके निषेधका बोधक भी दूसरा भग और उसीको मूलाधारमे आश्रय करके उसी कोटिके अन्य पांच भगोंकी भी कल्पना करनी चाहिये क्योंकि इसी प्रकारसे निराकाश संपूर्ण भगोंकी प्रतिपत्ति (बोध) निर्गह होता है इसलिये हम इस ही सिद्धांतको युक्तियुक्त देखते हैं और यह विचार सूक्ष्म बुद्धिके धारक स्याद्वादमतज्ञाता पुरुषको अपने चित्तमे धारण करनेना चाहिये अत्र इस चतुर्दशमें (१४) सूत्रका फलितार्थ कहते हैं कि—इस वर्ण्यमान सप्तभगीको तत्त्वदृष्टि से विचारपूर्वक निवेचन करके अतिप्रौढतायुक्त जो भव्य अभ्यास करेगा वह जिन भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवाको प्राप्त करके अचिर काल अर्थात् ओढेसे भगोंको ग्रहण करके मोक्षको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥

इति श्रीवैयाकरणाचार्योपाधिधारकप० ठाकुरप्रसादद्विवेदिविरचितभाषाटीकाममल
कृताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमाध्याये नयप्रमाणयोर्विवेचन करोति

अत्र इस पंचम अध्यायमे नय तथा प्रमाणका विचार करते हैं ।

सूत्रम् । एकोऽर्थस्तु त्रिरूपः स्यात्सत्प्रमाणावलोकितः ।

मुख्यवृत्त्योपचारेण जानीते नयवादवित् ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—एक ही पदार्थ सत्प्रमाणसे दृष्ट होनेपर तीन प्रकारका होजाता है और त्रयवादका जाननेवाला इस त्रिरूपताको मुख्य तथा उपचार वृत्तिसे जानता है ॥ १ ॥

ध्याय्या । एकोऽर्थः षट्पटान्त्रिजीवाजीनादिर्वा त्रिरूपः, रूपत्रयोपेतो ज्ञेयो यथा द्रव्य-
गुणपर्यायरूप तथा हि षट्पटान्यो हि मृत्तिकात्रिरूपेण द्रव्याणि, षट्गतस्वरूपमात्रात्मकत्वेनानेके
शुभा, षटादिरूपेण सनातीयद्रव्यत्वेन पर्याया । अत्र जीवादीनामपि ज्ञेयम् । एकोऽर्थस्त्रि-
रूपः स च कीदृशः सत्प्रमाणावलोकितः सत्प्रमाणं स्याद्वास्तेनावलोकितो दृष्टः । यत्र प्रमा-
णसत्प्रमाणात्मकत्वेन त्रिरूपस्तत्र मुख्यद्वारा ज्ञेयम् । नयवादी होकाशनादी स च मुख्य-
स्या तयोपचारेणकमिग्रथ त्रिरूपत्व जानाति । यद्यपि त्रयवादिना एकाग्रचक्षुः शक्तिरूप
एकोऽर्थः कथ्यते । तथापि त्रयवादीरूपोपचारेणानेकेऽप्यर्थः ज्ञायन्ते । अन्यत्र वृत्तिद्वय न भवेत्
पर त्रिचक्षुः नाम्नि । गङ्गाया मत्स्योपाविन्यान्त्यलेप्त्रिव वृत्तिद्वयस्यापि मान्यत्वान् । तद्वि-

१ वाच्यार्थं जलमदि दृश्यते तो वह त्रिणी न दिया ओरसे निरुक्त जायगा क्योंकि तभी एते ही द्रव्या
धिक तबसे अभेद उद्भूत होने से पदार्थाधिक निमित्तक भेदका निश्चय होगा, भेद मानने से अभेदका निश्चय
होगा दोनोंसे एक वाच्यार्थ होने से वाच्यार्थका निषेध होगा इस प्रकार त्रिणीका निश्चय और त्रिणीका निषेध
होगा दृष्टेय और तब से वाच्यार्थ

हापि मुख्यत्वेनामुख्यत्वेन चानन्तधर्मात्मकवस्तुजापनायैकस्य नयशब्दस्य वृत्तिद्वयमङ्गीकुर्वतां विरोधो नास्ति । अथवा नयात्मकशास्त्रस्य क्रमेण वाक्यद्वयेनाप्यर्थो द्वायते । अथवा एकशब्दबोधशब्देनैकबोधार्थः एवमनेके भंगा द्वेयाः ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—एक पदार्थ घट पटआदि अथवा जीव अजीवआदि तीन प्रकारका अर्थात् तीन रूपसंयुक्त होता है; प्रत्येक वस्तुको त्रिरूपसहित जानना चाहिये, और त्रिरूपता द्रव्य, गुण और पर्यायसे है जैसे घटआदि वस्तु सृत्तिकारूपसे द्रव्य है १ घटादिके रूप रसादिसे विवक्षा करो अर्थात् यह श्याम है, यह रक्त है, यह पीत है इस रीतिसे वे गुणरूप है २, और घटआदिरूप सजातीय द्रव्यत्वरूपसे विवक्षा करनेपर वे पर्याय है ३ । इस प्रकार घटादिके तीन रूप होगये और ऐसे ही जीवादिकोंको भी जानना चाहिये अर्थात् जीव आत्मरूपसे द्रव्य है १, ज्ञान दर्शनादिकी विवक्षासे गुण है २ और देव मनुष्यादि पर्यायकी विवक्षासे पर्यायरूप है ३, अब वह एक पदार्थका त्रिरूप कैसा है कि—सत्प्रमाणसे अवलोकित (दृष्ट) है अर्थात् समीचीन (उत्तम) स्याद्वादरूप प्रमाणसे विचारित होनेसे पदार्थकी त्रिरूपता स्पष्टतासे भासती है, क्योंकि सप्तभंगीरूप जो प्रमाण है, उससे वस्तुकी त्रिरूपता मुख्यवृत्तिसे जानी जाती है, और नयवादी अर्थात् एकअंशवादी जो है वह मुख्यवृत्ति तथा उपचारसे भी एक पदार्थमें त्रिरूपताको जानता है । यद्यपि नयवादी एक अंशको कहनेवाले वचनसे शक्तिरूप एक ही अर्थको कहता है, तथापि उपचारसे अर्थात् लक्षणाशक्तिसे अनेक अर्थोंको भी वह जानलेता है । यद्यपि एक कालमें ही दो वृत्ति अर्थात् अभिधा और लक्षणाशक्ति नहीं होसकती परन्तु यह सिद्धान्त निश्चित नहीं है क्योंकि “गङ्गायां मत्स्यघोषौ” गंगामें मत्स्य तथा अहीरोंका ग्राम है, इत्यादि स्थलके तुल्य अन्यत्र भी एक कालमें ही दो शक्ति (अभिधा तथा लक्षणा) मान्य है । उसी प्रकारसे यहां भी मुख्यता तथा गौणतासे अनन्त धर्मस्वरूप वस्तुको जनानेके

१ संपूर्णरूपसे पदार्थके स्वरूपको जो सिद्ध करे वह सम्यग्ज्ञानरूप सप्तभंगी नय यहा प्रमाण पदसे विवक्षित है क्योंकि “ सकलदेशः प्रमाणाधीनः ” संपूर्ण आदेश प्रमाणके आधीन है.

२ वस्तुके स्वरूपके किसी अंशके प्रतिपादनको नय कहते हैं क्योंकि “विकलदेशो नयाधीनः” खंड, आदेश नयके, आधीन होता है ॥

३ जो अर्थको मुख्यवृत्तिसे प्रकाश करे वह अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना ये तीन प्रकारकी शब्दमें शक्ति है और वाच्य, लक्ष्य, तथा व्यञ्ज्य, ये अर्थ भी तीन ही प्रकारके हैं, इसके अनुरोधसे शब्द भी वाचक लक्षक और व्यञ्जक इन भेदोंसे तीन प्रकारके हैं ।

४ तात्पर्यकी अनुपपत्तिसे लक्षणाशक्तिसे वाक्यार्थ होता है “ गङ्गाया घोष ” गङ्गा नाम अभिधा शक्तिसे प्रवाहका है उसमें ग्राम नहीं रहसकता है, इसलिये गंगापदकी गंगातटमें लक्षणा की, तब गंगा शब्द लक्षणाशक्तिसे गंगातटका बोधक हुआ तब अन्वय बंनगया क्योंकि गंगातटमें अहीरोंका ग्राम रह सकता है । ऐसे ही लक्षणासे एक नय अन्यार्थका भी बोध करावेगा तो पदार्थकी त्रिरूपताका बोधक हो जायगा ।

५ यहा मत्स्यकेलिये तो गंगामें वाचकताशक्ति और घोषकेलिये लक्षणा है ।

लिये एक ही नयशब्दकी दो वृत्ति स्वीकार करनेवालोंको कोई विरोध नहीं है । अथवा नयप्रतिपादक शास्त्रके क्रमसे दो वाक्योंसे भी अर्थ जान सकते हैं । अथवा एकार्थबोधक एक शब्दसे एक अर्थका बोध होता है और अन्य अर्थका अन्य शब्दसे, इस रीतिसे अनेक भग भी समझलेने चाहियें ॥ १ ॥

अथोक्तमेवार्थं शब्दत्वेन ज्ञापयन्नाह ।

अत्र पूर्वोक्त विषयको ही सूत्रद्वारा प्रकाशित करते हैं ।

सूत्रम् । द्रव्यार्थिकनयो मुख्यवृत्त्याभेद वदन्निपु ।

अन्योन्यमुपचारेण तेषु भेद दिशत्यलम् ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यार्थिकनय मुख्यवृत्ति अर्थात् वाचकता शक्तिसे द्रव्य, गुण, पर्याय तीनोंमें मृत्तिकारूपसे अभेद प्रकाश करता हुआ लक्षणाशक्तिसे उन तीनोंमें परस्पर भेद भी पूर्णरूपसे दर्शाता है ॥ २ ॥

व्या०—द्रव्यार्थिकनयो मुख्यवृत्त्या मुरया प्रधाना शब्दार्थकथनपरा वृत्तिर्व्यापारो यस्य स तस्य भावस्तत्ता तथा शब्दार्थान्निष्कत्वेन त्रिषु द्रव्यगुणपर्यायेष्वभेद भेदाभाव वदन् कथयन् सन् यतो गुणपर्यायाभ्यां भिन्नस्य मृद्द्रव्यस्य विषये घटादिपदस्य शक्तिरस्तीत्येतेषामन्योन्यमभेद प्रकटयन्पुन स एव द्रव्यार्थिकनयस्तेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु चान्योन्य परस्पर-मुपचारेण लक्षणया भेद भेदत्वमलमर्थ दिशति । यतो द्रव्य भिन्न कम्बुग्रीवान्पर्यायेषु च तस्य घटादिपदस्य लक्षणावगम्यते । किं च मुख्यार्थवाधे तथैव मुरयार्थसवन्धे च सति त-याविधव्यवहारप्रयोजनेऽनुसृत्य तत्र लक्षणा प्रवर्ततेऽदुर्घटत्वात् । उक्तं च—मुरयार्थवाधे तद्योगे रूढितोऽर्थप्रयोजनात् । अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपितत्रिया । १ । इति ॥२॥

व्याख्यार्थ —द्रव्यार्थिक नय मुख्यवृत्तिसे अर्थात् शब्दार्थके कथनमें तत्पर व्यापार वाली अभिधाशक्तिसे शब्दके अर्थोंका प्रकाश करनेसे द्रव्य, गुण तथा पर्याय इन तीनोंमें अभेद (भेदाभावा)को कहता हुआ अर्थात् गुण और पर्यायसे भिन्न मृत्तिका रूप द्रव्यके कथनमें घटादि पदकी शक्ति है इस रीतिसे इन तीनोंमें परस्पर अभेद प्रकाश करता हुआ पुन वही द्रव्यार्थिक नय उन ही द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंमें उपचार (लक्षणाशक्ति) से भेदको भी पूर्ण रीतिसे प्रकट करता है, क्योंकि द्रव्य भिन्न है और कम्बुग्रीवत्वआदि पर्यायोंमें उस घटादि पदकी लक्षणाशक्ति निश्चित होती है । और मुख्य अर्थके बाधमें तथा मुख्य अर्थके संबन्ध रहते उसी प्रकारके व्यवहार तथा प्रयोजनका अनुसरण करके लक्षणाशक्ति प्रवृत्त होती है अन्यथा लक्षणाशक्तिकी प्रवृत्ति दुर्घट है । और ऐसा कहा भी है—मुख्यार्थके बाध होनेपर उस मुरय अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थमें ही रूढिसे अर्थ प्रयोजनमें

१ प्रयोजनवश लक्षणाने अनेक भेद हैं परन्तु मुख्यतः एक प्रयोजनावली और दूसरी निरुद्ध लक्षणा है प्रथममें गंगाशब्दवा गंगातट रूप अर्थ करनेसे यह प्रयोजन है कि—अहीरोंका ग्राम अतिपवित्र तथा शी लारि धमयुक्त है । दूसरी निरुद्ध लक्षणा कुशलआदि शब्दोंमें समझनी चाहिये अथवा कुशलका अर्थ कु शलनेपाल है परन्तु रूढिमें यह चतुर्थ अर्थमें बताया है यही निरुद्ध लक्षणा है ।

जहां अन्य अर्थ लक्षित हो उस आरोपित क्रियाको लेके प्रवृत्त होनेवाली शक्तिको लक्षणाशक्ति कहते हैं जैसे कहा भी है कि—“मुख्यार्थवाधे तद्योगे रुद्धिनोऽर्थप्रयोजनात् ॥ अन्योर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपितक्रिया ॥ १ ॥ भावार्थः—मुख्य अर्थका बाध होनेपर तथा उसका योग होनेपर अर्थ प्रयोजनसे जिससे रूढ़ीसे भिन्न अर्थ लक्षित हो वह लक्षणा होती है ॥ १ ॥ जैसे “गङ्गायां घोषः” यहां गंगाका मुख्य अर्थ प्रवाह है परन्तु उस मुख्य अर्थमें घोष (अहीरोंके ग्राम) की अधिकरणता (आधारता)का बाध है इसलिये गंगासे संबन्ध रखनेवाले अन्य अर्थ गंगातटमें गंगाशब्दकी लक्षणा हुई तब “गङ्गायाम्” इस पदका अर्थ “गंगातटे” (गंगाजीके तटपर) “घोषः” ग्राम है यह अन्वय बन गया ऐसे ही यहां भी समझलेना ॥ २ ॥

अथोक्तमेव द्रढयन्नाह ।

अब पूर्वोक्त अर्थको ही दृढ करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिक एवापि मुख्यवृत्त्यात्र भेदताम् ।

उपचारानुभूतिभ्यां मनुतेऽभेदतां त्रिषु ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—और पर्यायार्थिक नय भी यहां मुख्यवृत्तिसे तो भेद भाव ही मानता है, परन्तु उपचार तथा अनुभवसे तीनोंमें अभेद मानता है ॥ ३ ॥

व्याख्या । पर्यायार्थिकनय एवापि एवमेव प्रकारेणोक्तलक्षणेन मुख्यवृत्त्या प्रधानव्यापारेणात्र द्रव्यगुणपर्यायेषु भेदतां भेदभावं ज्ञापयति । यत एतस्य नयस्य मते मृदादिपदस्य द्रव्यमित्यर्थः । १ । रूपादिपदस्य गुण इत्यर्थः । २ । घटादिपदस्य कम्बुग्रीवपृथुवुद्भादिपर्याय इत्यर्थः । ३ । इत्थं त्रयाणामपि मिथो नामान्तरकल्पना भिन्ना भिन्ना प्रदर्शिता । अतो द्रव्यगुणपर्यायाणां प्राधान्येन भेदोऽस्तीति ध्येयम् । तथा पुनरुपचारानुभूतिभ्यामुपचारो लक्षणा, अनुभूतिरनुभवः, उपचारश्चानुभूतिश्च ताभ्यां पर्यायार्थिकनयोऽप्यभेदतामभेदभावं द्रव्यादिषु त्रिषु मनुते । यतो घटादि मृद्द्रव्याद्यभिन्नमेवास्ति लक्षणया ज्ञानेन चेति । इमां प्रतीतिं घटादिपदानां मृदादिद्रव्येषु लक्षणाप्रवृत्त्याङ्गीकुर्वतां न कदापि क्षतिरिति भावार्थः ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—पर्यायार्थिक नय भी इस ही पूर्वोक्त प्रकारसे अर्थात् मुख्यवृत्ति (प्रधान व्यापार) से इन द्रव्यादि तीनोंमें अर्थात् द्रव्य गुण पर्यायोंमें भेदभाव ही ज्ञापित करता है । क्योंकि इस नयके मतसे मृत् (मृत्तिका) आदि पदका द्रव्य यह अर्थ है । १ । श्याम रक्त तथा पीतादि पदोंका गुण यह अर्थ है । २ । और घटादि पदका कंबुग्रीव (शंखके तुल्य गलेसहित) तथा विशाल उदर सहित आदि पर्याय अर्थ है । ३ । इस प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय तीनोंकी नामान्तरकल्पना परस्पर भिन्न २ प्रदर्शित की गई है, इससे यह सिद्ध हुआ कि—पर्यायार्थिक नयके अनुसार द्रव्य, गुण, पर्याय प्रधानतासे भिन्न २ है ऐसा निश्चय करना चाहिये । और पुनः उपचार तथा अनुभवसे पर्यायार्थिक

नय भी द्रव्यादि तीनों पदार्थोंमें अमेद अर्थात् भेदाभाव ही मानता है । क्योंकि मृत्तिका के बिना घट अनुपपन्न है, इसलिये लक्षणा तथा ज्ञानसे घटआदि पदार्थ मृत्तिकारूप द्रव्यसे अभिन्न ही हैं । घटआदि पदोंकी मृत्तिकाआदि द्रव्योंमें इस प्रतीतिको लक्षणा प्रवृत्तिसे माननेवालोंके कोई भी दोष नहीं है, यह सूत्रका तात्पर्य है ॥ ३ ॥

अथ पुनर्भेदमेव दर्शयन्नाह ।

अत्र पुन भेदको ही दर्शति हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । गृह्णाति यो नयो धर्मो मुरयामुख्यतया तथा ।

तस्यानुसारतस्तेषा वृत्त्योपचारकल्पनम् ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—जो नय मुख्यता तथा गौणतासे भेद अमेदरूप धर्मोंको ग्रहण करता है वहा उसीके अनुसार द्रव्य, गुण, पर्यायोंकी वृत्तिसे उस उपचारकल्पनाका विधान होता है ॥ ४ ॥

व्याख्या । यो हि नयो द्रव्यार्थिकोऽथवा पर्यायार्थिक धर्मा भेदाभेदात्मकौ प्राधान्यगौण तथा गृह्णाति उहाप्यप्रमाणेन धारयति । तस्य नयस्य द्रव्यार्थिकस्य वा पर्यायार्थिकस्य मुख्यतया साक्षात्सङ्केतेन तथा वा व्यवहितसङ्केतेन चानुसृत्य तेषा द्रव्यगुणपर्यायाणा वृत्त्या तदुपचारकल्पन विधीयते । यथा गङ्गापदस्य साक्षात्सङ्केत प्रवाहरूपार्थविषयेऽस्ति तस्मात्प्रवाहेण शक्ति । तथा “ गङ्गातीरे घोष ” गङ्गासङ्केतव्यवहितसङ्केतोऽस्ति । ततश्च यथोपचारस्तथा द्रव्यार्थिकनयस्य साक्षात्सङ्केतोऽभेदे नास्ति । तत्र शक्तिभेदेन व्यवहितसङ्केतोऽस्ति ततश्चोपचारितत्वं तु पर्यायार्थिकनयस्यापि अत्योपचार गृहीत्वा भेदाभेदनयनिषयेऽपि योजनीयम् ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—जो नय द्रव्यार्थिक हो अथवा पर्यायार्थिक हो भेद तथा अमेद स्वरूप धर्मोंको प्रधानता अथवा गौणतासे ग्रहण करता है अर्थात् जहा ऊहा नामक (कल्पना स्वरूप) प्रमाणसे धारण करता है वहापर उसी द्रव्यार्थिक वा पर्यायार्थिक नयकी मुख्यता अर्थात् साक्षात्सङ्केत तथा गौणता अर्थात् व्यवहितसङ्केतके अनुसार द्रव्य, गुण पर्यायोंकी वृत्ति (शक्ति)से उपचार कल्पनाका विधान होता है । तात्पर्य यह कि द्रव्यार्थिकनय प्रधानता (साक्षात् सङ्केत)से अमेदको प्रतिपादन करता है परन्तु वह गौणता (व्यवहित सङ्केत)से अमेदको भी कहेगा, ऐसे ही पर्यायार्थिक नय प्रधानता (साक्षात्सङ्केत)में भेदको और गौणता (व्यवहित सङ्केत)से अमेदरूप धर्मको कहता है । जैसे गंगापदका प्रधानतासे साक्षात्सङ्केत प्रवाह (जलकी धारा)रूप अर्थमें है, इसलिये मुख्यतासे तो प्रवाहरूपसे ही शक्ति है तथा गंगातीरमें घोष है यहा तीररूप अर्थमें गंगासङ्केतमें व्यवहित सङ्केत है, इसलिये गंगापदमें गंगातीर साक्षात्सङ्केत अर्थ उपचारसे हुआ । अत्र ऐसे ही द्रव्यार्थिक नयका सङ्केत तो अमेदरूप अर्थ है, और उस नयकी

भिन्न शक्ति (लक्षणा शक्ति)से व्यवहित संकेत अर्थात् भेदरूप अर्थमें वृत्ति है, इस लिये भेदरूप अर्थ प्रतिपादनके अर्थ द्रव्यार्थिकनयकी उपचारसे प्रवृत्ति हुई । ऐसे ही पर्यायार्थिक नयकी भी मुख्य शक्ति तथा उपचार शक्तिको ग्रहण करके भेदाऽभेद नय विषयमें योजना करलेनी चाहिये, अर्थात् पर्यायार्थिक नय मुख्यवृत्ति अर्थात् वाचकता शक्तिसे भेदरूप अर्थको कहता है और उपचार अर्थात् लक्षणा शक्तिसे अभेदरूप अर्थको भी कहता है ॥ ४ ॥

कश्चित्कथयति एको नय एकमेव विषयं गृह्णाति तदूपयति । .

कोई प्रतिवादी कहता है कि एक नय एक ही विषय (भेद अथवा अभेदमें किसी एक अर्थ)को ग्रहण करता है । उस सिद्धान्तको अग्रिम श्लोकसे दूषित करते हैं ।

सूत्रम् । यो भिन्नविषयो ज्ञाने सर्वथा नेति चेन्नयः ।

तदा स्वतन्त्रभावेन स स्यान्मिथ्यात्वगोचरः ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—जो नय है वह ज्ञानमें निजसे भिन्न नयके विषयको गौणतासे भी सर्वथा नहीं कह सकता ऐसा यदि मानो तो वह नय स्वतन्त्रतासे मिथ्यात्वियोंके गोचर होगा ॥ ५ ॥

व्याख्या । यो नयः ज्ञाने ज्ञानविषये भिन्नविषयो नयान्तरस्य मुख्यार्थः सर्वथा अमुख्यत्वेनापि न भासते । तदा स नयः स्वतन्त्रभावेन सर्वथा नयान्तरविमुख्यत्वेन मिथ्यात्वगोचरो मिथ्यादृष्टिभिर्विवेचनीयः कुदृष्टिपरिगृहीतः स्यात् । एतावता दुर्णय एव भवति । परन्तु सुनयो न भवति । एवं ज्ञेयम् । अनुभवेन विचार्यमाणः कश्चिन्नयः भिन्नविषयत्वान्नयान्तरमुख्यार्थत्वात्सर्वथा अमुख्यत्वादपि न भासते । तदा स्वतन्त्रत्वेन (नयान्तरविमुख्यत्वेन) च मिथ्यात्विनां पार्श्वे स नयो निरन्तरं तिष्ठतीति भावः ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—जो नय है वह ज्ञानमें भिन्नविषय अर्थात् अपनेसे भिन्न दूसरे नयके मुख्य अर्थको सर्वथा गौणतासे भी नहीं भासित करता है ऐसा मानोगे तो वह नय स्वतन्त्रतासे सर्वथा अर्थात् अन्य नयोंसे विमुख होनेसे मिथ्यादृष्टियोंद्वारा विवेचन करने योग्य होवे अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंसे ग्रहण कियाहुआ होवे भावार्थ—दुर्नय ही होवे और सुनय नहीं, ऐसा समझना चाहिये । भावार्थ यह है कि—अनुभवसे विचाराहुआ कोई नय भिन्न विषयको अर्थात् अन्य नयके मुख्य अर्थको गौणतासे भी सर्वथा नहीं कहता है तो वह नय स्व-

१ अनेकान्तवादमें वस्तुका स्वरूप ही अनेकान्त है तब नयस्वरूप अनेकार्थक क्यों न होगा क्योंकि ग्रमाण और नयसे ही तो वस्तुकी विवेचना होती है, यदि वह नय भेद अभेदादि अनेकार्थप्रतिपादक उपचारसे भी न रहा किन्तु किसी एक ही अर्थका प्रतिपादक रहा तब वह नय कुदृष्टियोंका अर्थात् जैनमतसे भिन्न मतानुयायी जनोका ही विषय रहा और कुदृष्टियोंसे गृहीत होनेके कारण वह दुष्ट नय होगया न कि सुनय अर्थात् स्याद्वादके असुकुल वह उत्तम नय नहीं होसकता ।

तत्रभासे अर्थात् अन्य नयसे मिश्र होनेसे मिथ्यादृष्टियोंके ही निकट निरन्तर रहता है न कि स्याद्वादियोंके निकट ॥ ५ ॥

सूत्रम् । विशेषावश्यकैऽयुक्तः समितावर्थ एव च ॥

भेदाभेदोपचाराद्याः सम्भवन्ति नयादिह ॥ ६ ॥

सूत्रभाषार्थः—भेद, अभेदआदिके उपचारआदि स्याद्वादमें नयसे ही होते हैं, यही अर्थ अर्थात् यही अभिप्राय विशेषान्नयक तथा समतिग्रन्थमें कहा है ॥ ६ ॥

व्याख्या । अयमद्या विशेषावश्यकै तथा समतिग्रन्थमध्य उक्तोऽस्ति । तथा च तद्वाथा—
“दोहिं विणयेहिं णीय सत्थ मूलण तहवि मिच्छत्त । जस्स विसय प्पहाण तणेण अणुण्णा निरेवेक्क । १ । ” “स्वार्थग्राही इतराशप्रतिक्षेपी सुनय” इति सुनयलक्षणम् । “स्वार्थग्राही इतराशप्रतिक्षेपी दुर्णय ” इति दुर्णयलक्षणम् । एव नयान्नयविचाराद्य भेदाभेदग्राह्यवद्धार सम्भवति । तथा नयसङ्केतविशेषाद्वाहकवृत्तिविशेषरूप उपचारोऽपि सम्भवेत् । तस्मान्नेदाभेदयोर्मुख्यत्वेन प्रत्येकनयविषयो मुख्यामुत्पत्त्येनोभयनयविषयरूप उपचारश्च सुगृह्यवृत्तिवन्त्यपरिफरो भवेत् परन्तु नयविषयो न भवति । अयं च सरल पन्था श्वेताम्बरप्रमाणशास्त्रसिद्धो ज्ञेय । नीयते येन श्रुतायप्रमाणविषयीकृतस्वार्थस्याशस्तदितरागौदासीन्यतः स प्रतिपन्नरभिप्रायेण विशेषो नय इति । अत्रैकवचनमतत्र तेनाशावशा वा येन परामर्शविशेषेण श्रुतप्रमाणप्रतिपन्नवस्तुनो विषयान्विते तदितरागौदासीन्यापेक्षया स नयोऽभिधीयते । तदितराशप्रतिक्षेपे तु तदा भासता भणियते । प्रत्यपादयाम च स्तुतिद्वान्निशक्तिरे “अहो चित्र चित्र तव चरितमेतन्मुनिपते, स्वकीयानामेव विषयविषयव्याप्तिवशित्ताम् । विपक्षपेक्षाणां कथयसि नयानां सुनयता, विपक्षक्षेपणां पुनरिह विभो दुष्टनयताम् । १ । ” पञ्चाशतिरे च—“निर्देशपाशजुपा प्रमाणविषयीभूय समासेदुपा, वस्तूनां नियताशकल्पनपरा सप्तश्रुता सङ्गिन । ओदासीन्यपरायणास्तदपरे चाग्रे भवेयुर्नया, श्रद्धेकाशकलङ्कपङ्ककलुपाले स्युः सदा दुर्णया । १ । ” इति ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—यह अभिप्राय विशेषान्नयकनामक ग्रन्थ और सम्मति ग्रन्थमें कहा है और उस ग्रन्थकी गाथाका अभिप्राय यह है कि “यद्यपि द्रव्यार्थक और पर्यायार्थिक इन दोनों मूल नयोसे शास्त्र जागजाता है तथापि जो नय अपना ही विषय प्रधान रखता है और परस्परकी अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् दूसरे नयके मुख्य अर्थकों गौणतासे भी नहीं कहता उसको मिथ्यात्व (टर्नय) जानना चाहिये । १ । तथा स्वार्थका ग्राही हो और अन्य अर्थका निषेधक न हो वह सुनय है अर्थात् निज प्रधानशक्ति जो अपने अर्थको कहे उसको तो ग्रहण करे और अन्य नयके अर्थका तिरस्कार न करे किन्तु उपचारसे उस दूसरे नयके अर्थका भी कथन करे वह सुनय है । यही सुनयका लक्षण है । और जो केवल स्वार्थमात्रका ग्राही हो और अन्य अर्थका निषेधक हो वह दुर्नय है । यह दुर्नयका लक्षण है । इस प्रकार नय अर्थात् नयके विचारसे द्रव्य, गुण, पर्यायोंमें भेद तथा अभेदको ग्रहण

करने योग्य व्यवहारका संभव है । और नयके संकेत विशेषसे ग्राहक जो शक्तिविशेष है उसरूप उपचारका भी संभव है । इसलिये भेद तथा अभेदमे मुख्यतासे प्रत्येक नयका विषय है अर्थात् एक अर्थकी प्रतिपादकता प्रत्येक नयमें है । और मुख्यता तथा अमुख्यता—(गौणता)से द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके विषयरूप जो उपचार है वह मुख्य वृत्तिके सदृश नयका परिकर होता है परन्तु नयका विषय नहीं होता—यह सरल मार्ग श्वेताम्बर मतके प्रमाण (न्याय) शास्त्रसे सिद्ध है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि श्रुतनामक प्रमाणसे विषयमे कियेहुए पदार्थका अंश जिसके हुए अन्य अंशकी उदासीनतासे प्राप्त किया जाय वह प्रतिपत्ता (बोद्धा)के अभिप्रायसे जो विशेष है सो नय कहलाता है । ‘श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशः’ यहां पर “अंशः” यह जो एक वचन दिया गया है वह स्वाधीन नहीं है इस कारण ‘अंशौ अंशाः वा’ इस प्रकार द्विवचन बहुवचन लगाकार जिस परामर्श (ज्ञान) विशेषसे श्रुत प्रमाणद्वारा ग्रहण कियेहुए पदार्थका एक अंश दो अंश अथवा बहुतसे अंश विषयगोचर किये जावें और उससे भिन्न अंश वा अंशोंको उदासीनतासे विषयी किये जाय वह नय कहाजाता है । और जो वस्तुके विवक्षित अंशसे भिन्न अंश वा अंशोंका प्रतिक्षेप अर्थात् निषेध करे उसको आगे नयाभास कहेंगे । और स्तुति द्वात्रिंशतिकामे प्रतिपादित भी किया है कि—हे मुनीन्द्र ! हे विभो श्रीजिनेन्द्र ! आपका यह चरित अत्यन्त विस्मयको उत्पन्न करता है वह चरित क्या है कि—आप अपने इन विषम विषयव्याप्तिके वशीभूत हुए जो नय, विपक्षकी अर्थात् अपने स्वीकृत अर्थसे विमुख अन्यनयोंसे विवक्षित अर्थकी अपेक्षा रखते हैं अर्थात् गौणतासे उनका भी कथन करते हैं उन नयोंके सुनयता कहते हो और जो अन्य नयद्वारा स्वीकृत अर्थ है उसको निषेध करनेवाले जो नय है उनको दुष्ट नय (दुर्नय) कहतेहो॥१॥ और पञ्चाशतिक नामक ग्रन्थमे भी प्रतिपादित किया है कि—संपूर्ण अंशोंको अर्थात् अनन्त धर्मोंको धारण करनेवाले और प्रमाणकी विषयीभूतताको प्राप्तहुए पदार्थोंके नियत अंश (धर्म) कल्पना करनेमे तत्पर सात सङ्गी है उनमे जो अपने कल्पित अंशसे भिन्न अंशमें उदासीनताको धारण करते हैं वे नय होते हैं और जो एक अपने ही अंशकी कल्पनारूप कलङ्क पङ्क (दोषमय कर्दम)से मलीन हों अर्थात् एक ही अपने कल्पित अर्थ को तो खीकार करें और अन्य अंशोंका निषेध करें तो वे सातों सदा दुर्नय होते हैं॥२॥६॥

पुनर्भावं कथयन्नाह ।

पुनः नयके भावको कहते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । ये मार्ग सरलं त्यक्त्वोपनयान्कल्पयन्ति वै ।

तत्प्रपञ्चं विबोधाय तेषां जल्पः प्रतायते ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—जो इस सरल श्वेताम्बरमतानुसारी नयमार्गको त्यागकर उपनयों-

की कल्पना करते हैं, उनका प्रपञ्च केवल शिष्योंकी बुद्धिको विवादिनी करनेवाला है ।
तथापि ज्ञानके अर्थ उन उपनयोंके कथनका विस्तार करते हैं ॥ ७ ॥

ध्यात्वा । ये च केचन कल्पका सरल सममेतदुत्कलक्षण मार्गं नयनिगमपन्थान् त्यक्त्वा
विमुन्य उपचारादि ग्रहीतुमिच्छयोपनयात्रयानां समीप उपनयास्तान् कल्पयन्ति । दिगम्बर
शास्त्रे हि द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नेगम ३ सग्रह ४ व्यवहार ५ ऋजुसूत्रम् ६ शब्द ७
समभिरूढ ८ एवभूत ९ इति नव नया स्मृता उपनयाश्च कथ्यन्ते नयानां समीपमुपनया
सद्भूतव्यवहार १ असद्भूतव्यवहार २ उपचरितसद्भूतव्यवहार—३ श्रेत्युपनयास्त्रेधा इति ।
तत्प्रपञ्चं तद्विस्तारं शिष्यबुद्धिद्वन्द्वनमानमेवास्ति । तथापि विवोधाया समानतन्त्रत्वेन परिज्ञा
नाय तेषां नयानां जल्प उद्घाप प्रतायते स्वप्रश्रियया उच्यते इत्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यायार्थः—जो कोई कल्पक (कल्पना करनेवाले) इस पूर्वाक्त सरल नयनि
गममार्गको त्यागकर उपचारआदिक ग्रहण करनेकी अभिलाषासे उपनयोंकी अर्थात्
नयोंके समीप होनेवाले जो उपनय हैं, उनकी कल्पना करते हैं, भावार्थ—दिगम्बरोंके न्याय-
शास्त्रमें द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नेगम ३ सग्रह ४ व्यवहार ५ ऋजुसूत्र ६ शब्द ७
समभिरूढ ८ और एवभूत ९ ये नौ (९) नय माने गये हैं, और सद्भूतव्यवहार १ असद्भूतव्यव-
हार २ तथा उपचरितसद्भूतव्यवहार ये तीन (३) प्रकारके उपनय (उपनयका अर्थ है, न-
यके समीप रहनेवाले क्योंकि—उप अव्ययका समीप अर्थ है, इसलिये उपका नय शब्दके
साथ अव्ययीभान् समास है) कहे गये हैं । उनका विस्तार केवल शिष्योंकी बुद्धिको वि-
वादशील करनेवाला है । तथापि दिगम्बरशास्त्रको हमारे समान ही होनेसे उन नयोंके ज्ञान-
केलिये उनका जल्प (कथन) करते हैं, अर्थात् इन नय तथा उपनयोंका निरूपण
हम हमारी प्रक्रियाके अनुसार करते हैं, इस प्रकार श्लोकका अर्थ है ॥ ७ ॥

सूत्रम् । नया न्यायानुसारेण नव चोपनयास्तयः ।

निश्चयव्यवहारौ हि तदध्यात्ममतानुगौ ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—न्यायके अनुसार नय नौ (९) हैं, और उपनय तीन हैं, तथा एक
अध्यात्मनामक मत है, उसके अनुसार निश्चय और व्यवहार ये दो ही नय हैं ॥ ८ ॥

ध्यात्वा । न्यायानुसारेण तन्मतीयग्रन्थगताभिप्रायेण नया नव सन्ति पूर्वाक्ता ज्ञेया ।
तथोपनयास्तय एव सन्ति । तेष्युपनया सद्भूतव्यवहाराद्यस्तय इति । तथा चाध्यात्माऽपि
मतभेदं कश्चिदस्ति । तत्र च तदध्यात्ममतानुगौ तन्मैत्रीपरिशीलिनौ नयो निश्चयेन द्वावेव
कथितौ तत्रैको निश्चयोऽपरो व्यवहारनयश्चेति द्वावेव नाधिकौ । अमेदानुपचारतया वस्तु
निश्चीयत इति निश्चयः । यथा “जीव शिव शिवो जीवो नान्तर गिवजीवयो”रिति । भेदोप-
चारतया वस्तु व्यवस्थित इति व्यवहारः । यथा “वर्मनद्धो भवेज्जीवः कर्ममुत्तस्तान् शिव”
इति ॥ ८ ॥

व्याख्या । द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकादिक्रमेण नया नव वर्तन्ते तेषु आद्यः प्रथमो द्रव्यार्थिकनय आद्यो दशधा दशप्रकारः समुदाहृतः । तत्र च प्रथमो द्रव्यार्थिकनयः शुद्धद्रव्यार्थिक इति अकर्मोपाधितः कर्मणामुपाधितो रहितः शुद्धद्रव्यार्थिकः कथ्यते । सद्रव्यम् । लक्षणं त्विदम्—सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, अर्थक्रियाकारि च सत् । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् । यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोऽप्यसदिति निज २ प्रदेशसमूहैरखण्डवृत्तात्स्वभावविभावपर्यायाद्भवति, द्रोष्यति, अदुद्रुवदिति द्रव्यम् । गुणपर्यायवद्रव्यम्, गुणाश्रयो द्रव्यं वा । यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ—द्वयद्वय दोरवयवो विकारो गुणाण संदावो द्रव्यं भव्यं भावस्स भूयभावं च जं जोगं । १ । द्र-

यति तासान्पर्यायान् प्राप्नोति मुञ्चति वा । १ । दृश्यते स्वपर्यायैरेव प्राप्यते मुञ्चते वा । २ ।
 दृष्टत्ता तस्या एवावयवो विकारो वेति द्रव्यम् । ३ । ४ । अवान्तरसत्तारूपाणि द्रव्याणि म-
 तासत्ताया अवयवो विकारो भवत्येवेति भावः ॥ गुणा रूपरसादयस्तेषा सद्राव समूहो घटा
 दिरूपो द्रव्यम् । ५ । तथा भवन भावस्तत्तिर्भविष्यतीति भावस्तस्य भाविन पर्यायस्य योग्य
 यद्द्रव्य तत्पि द्रव्यम्, राजपर्यायार्हदुमारवत् । ६ । तथा भूत हि पश्चात्कृतो भाव पर्यायो
 यन्म तदपि द्रव्यमिति दिक् । तदेव द्रव्यमर्थं प्रयोजन यस्यासौ द्रव्यार्थिक । अस्त्यर्थे ठक्
 प्रत्यय । शुद्ध कर्मोपाधिरहितश्चासौ द्रव्यार्थिकश्च शुद्धद्रव्यार्थिक इति ॥ ९ ॥

व्याख्यानार्थः—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिकादि क्रमसे जो नय कहेगये हैं, उनमेसे प्रथम
 नय द्रव्यार्थिक नय है, उसके दश भेद है, उनमे कर्मोंकी उपाधिसे शून्य प्रथम द्रव्यार्थिकनय
 शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहाजाता है । यहापर “सद्रव्यम्” जो सत् है, वह द्रव्य है ।
 जो अपने गुण पर्यायोंको व्याप्त करे सो सत् है, उत्पाद (उत्पत्ति) व्यय (नाश) ध्रुव्य
 (ध्रुवता वा नित्यता) से जो युक्त हो उसको सत् कहते हैं । क्योंकि—उत्पादव्यय-
 धौव्ययुक्तं सत्, यह तत्त्वार्थ शास्त्रका सूत्र है । जो अर्थ कियाका करनेवाला है, वह सत्
 कहलाता है, क्योंकि—जो पदार्थ अर्थक्रियाकारक (प्रयोजनसिद्ध करनेवाला) है,
 वही परमार्थमे सत् है । और जो पदार्थ अर्थक्रिया नहीं करता वह परसे भी असत् है ।
 ये सद्य सत्के लक्षण है ॥ जो निज २ प्रदेशसमूहोंकेद्वारा अखण्डवृत्त स्वभाव तथा
 विभाव पर्यायसे द्रवता है, द्रवेगा अथवा द्रवागया सो द्रव्य है । जो गुण तथा पर्याय-
 वाला है, उसको द्रव्य कहते हैं, अथवा जो गुणोंका आश्रय है, वह द्रव्य कहलाता है ।
 यही विषय विशेषावश्यक सूत्रकी वृत्तिमे कहा है कि—जो द्रवाता है, अथवा द्रवा जाता
 है, सत्ताका अनयन है, सत्ताका विकार है, गुणोंका सद्राव (समूह) है, जो भावका भ-
 व्य है, जिसका पर्याय पहले कियागया है, सो सत् द्रव्य है, अर्थात् ये सत् पृथक् २ द्र-
 व्यके लक्षण हैं, (यह तो गाथाका भावार्थ है, और आगेइस ही गाथाकी व्याख्या करते
 हैं) जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त हो अथवा त्यागे सो द्रव्य है । १ । जो अपने पर्यायोंसे
 प्राप्त किया जाय वा छोड़ा जाय वह द्रव्य कहलाता है । २ । हुं नाम सत्ताका है,
 उसहीका जो अनयन हो सो द्रव्य है । ३ । अथवा सत्ताहीका जो विकार हो उसको
 द्रव्य कहते हैं । ४ । भावार्थ—अवान्तर (मध्यमे होनेवाले) जो सत्तारूप द्रव्य है, वे
 महासत्ताके अवयव अथवा विकार होते ही हैं । गुण जो रूप रसआदि हैं, उनका जो
 सद्राव (संमेलन वा समूह) घटमादिरूप पदार्थ हैं, वह भी द्रव्य है । ५ । जो हो-
 गा सो भाव है, उस भागी पर्यायके योग्य जो पदार्थ है, वह भी द्रव्य है । जैसे राजकुमारमे

१ दृष्टा अप सत्ता घातुवोंकी अनकार्यव मानके किया हैतव दृष्टा दृष्टे ॥ तस्य विकार -पा ४।३।१३४
 द्रव्य अपिधारमे' दोष्ट । पा० ४।३।१६२। इह सूत्रसे यत् प्रत्यय होनेसे दृष्टा X य = ने X य = द्रव्यम् ।
 येन द्रव्य शब्द निह दृष्टा ।

राजापर्यायकी योग्यता है; अतः वह राजकुमार राजारूप पर्यायका द्रव्य है । ६ । और ऐसे ही जिसका भाव (पर्याय) पूर्वकालमें किया गया है; वह भी द्रव्य है । ७ । ये सब द्रव्यके लक्षण है । यही पूर्व अनेक प्रकारसे व्याख्यात द्रव्य ही है; प्रयोजन जिसका उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । द्रव्यार्थिक इस शब्दमें व्याकरणकी रीतिसे प्रयोजन है; इस अर्थमें “ ठक् ” प्रत्यय है; और उसको इक आदेश होनेसे द्रव्यार्थ + इक — होकर द्रव्यार्थिक ऐसा शब्द सिद्ध होता है । शुद्ध अर्थात् कर्मोंकी उपाधिसे रहित ऐसा जो द्रव्यार्थिकनय है; उसको शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ तस्य द्रव्यार्थिकस्य शुद्धताया विषयं दर्शयन्नाह ।

अब उस द्रव्यार्थिकनयकी शुद्धताका विषय दर्शाते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । यथा संसारिणः सन्ति प्राणिनः सिद्धसन्निभाः ।

शुद्धात्मानं पुरस्कृत्य भवपर्यायतां विना ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—जो संसारकी पर्यायताको ग्रहण करके अन्तरङ्गमें विद्यमान शुद्ध आत्माको आगे करके कथन करता है; वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय है; जैसे संसारके प्राणी सिद्धोंके समान है ॥ १० ॥

व्याख्या । प्राणा द्रव्यभावभिन्नाः सन्ति एषां ते प्राणिनः । संसारो गतिचतुष्काविर्भावः सोऽस्ति येषां ते संसारिणः । यथा येन प्रकारेण शुद्धात्मत्वादिलक्षणेन सिद्धसन्निभा अष्टकर्मनिर्मुक्तजीवनिभा विद्यन्ते । किं कृत्वा सन्ति शुद्धात्मानं मूलभावं तथा सहजभावं शुद्धात्मनः स्वरूपं पुरस्कृत्याग्रे कृत्वा कथं विना केन विना भवपर्यायतां भवः संसारस्तस्य पर्यायो भावस्तत्ता भवपर्यायता तां विना । एतावता या चानादिकालिकी जीवस्य संसारावस्था वर्तते सा प्रस्तुतापि न गण्यते । अविद्यमानोऽपि बाह्यकारेण सिद्धाकारस्तथापि गृह्यतेऽन्तरविद्यमानत्वात् । तदायमात्मा शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सिद्धसम एवास्तीति भावः । अत्र भावमात्रपरा द्रव्यसङ्ग्रहगाथा । मग्गणगुणठाणेहि चउदशाहि हवन्ति तह अशुद्धणया । विण्णेया । संसारी सच्चे सुद्धाहु सुद्ध णया । १ ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जैसे भव जो संसार उसका जो पर्याय अर्थात् भाव उसका जो भाव है; उसके विना अर्थात् संसारकी पर्यायताके विना शुद्ध आत्माको अर्थात् मूल भाव अथवा सहजभावरूप शुद्ध आत्माके स्वरूपको आगे करके, नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव इन चारों गतियोंके अविर्भावको संसार कहते हैं, वह संसार जिनके होय अर्थात् जिन जीवोंके पूर्वोक्त नरकआदि चार गतियोंमेंसे किसी एक गतिका आविर्भाव (प्रकटता) है; वे संसारी कहलाते (द्रव्यप्राण और भावप्राणरूप दोनों प्राण जिनके हैं; वे प्राणी हैं;) ऐसे जो संसारी प्राणी वे सिद्धोंके समान हैं; अर्थात् ज्ञानावरणआदि

१ व्याख्या सण्डान्वयसे है परन्तु व्याख्यार्थ अच्छी प्रकारसे अर्थका बोध होनेकेलिये दण्डान्वयके अनुसार लिखा गया है ।

धाटो कर्मोंसे रहित जीवोंके समान विद्यमान हैं । तात्पर्य यह कि—जब जीवोंके जो अनादिकालसे ससारकी अवस्था विद्यमान है, उसकी तो प्रस्तुतकी भी गणना (गिणती) न की जाय और बाह्य आकारसे अविद्यमान जो सिद्ध स्वरूप है, उसको अभ्यन्तरमें विद्यमान होनेसे ग्रहण करें तब यह आत्मा शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे सिद्धोंके समान ही है, यहां पर भावमात्रसे शुद्ध आत्माका बोध करनेमें तत्पर द्रव्यसङ्ग्रहकी गाथा भी है उसका भावार्थ यह है, कि—चतुर्दश १४ गुणस्थान तथा चतुर्दश मार्गस्थानके भेदसे चतुर्दश १४ प्रकारके ससारी जीव अशुद्धनयकी विज्ञासे होते हैं और शुद्धनयकी विवक्षा भावमात्रके ग्रहण करनेसे तो सब जीव शुद्ध ही समझने चाहियें । १ । ॥ १० ॥

अथ द्वितीयभेदमुपलिङ्गामाह ।

अन दूसरे भेदका उपदेश करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । उत्पादव्यययोगौणे सत्तामुच्यतया परः ।

शुद्धद्रव्यार्थिको भेदो ज्ञेयो द्रव्यस्य नित्यवत् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—उत्पाद (उत्पत्ति) और व्यय (नाश) इनकी गौणता माननेसे तथा सत्ता (ध्रुव अथवा नित्यरूप)की मुख्यता माननेसे सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्रव्यकी नित्यताके समान समझना चाहिये ॥ ११ ॥

व्याख्या । उत्पादस्य व्ययस्य च गौणताया तथा सत्ताया ध्रुवात्मकतायाश्च मुख्यतायामपर इति द्वितीयो भेद शुद्धद्रव्यार्थिकस्य ज्ञेय । यत उत्पादव्यययोगौणत्वेन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिको नाम द्वितीयो भेद । २ । अस्य मते द्रव्य नित्य गृह्यते । नित्य तु कालत्रयेऽप्यविचलितस्वरूप सत्तामादायैवेद युज्यते । कथं पर्यायाणां प्रतिक्षण ध्वसिना परिणामित्वेनानित्यत्वोपलब्धे । परन्तु जीवपुद्गलान्द्रव्याणां सत्ता अव्यभिचारिणी नित्यभावमवलम्ब्य त्रिकालाविचलितस्वरूपावतिष्ठते । ततो द्रव्यस्य नित्यवदिति द्रव्यस्य नित्यत्वेन द्वितीयो भेद ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—पर्यायादिके उत्पाद और व्ययकी गौणतासे विज्ञा करनेपर तथा ध्रुव (नित्य) स्वरूप सत्ताकी मुख्यतासे विवक्षा करनेपर अपर अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिक नयका दूसरा भेद जानना चाहिये । क्योंकि—जब उत्पत्ति और नाश गौण हुए तब केवल सत्तामात्रका ग्राहक वह नय रहा इसलिये यह द्रव्यार्थिकनयका सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नामवाला दूसरा भेद है । इस नयके मतमें द्रव्यका नित्य स्वरूपसे ग्रहण होता है । और नित्य जो है, मो भूत, भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालोंमें अविचलितस्वरूप है, और यह त्रिकालमें अविचलितस्वरूप नित्य सत्ताको ग्रहण करके ही ठीक होता है । क्योंकि—क्षण क्षणमें विनाशशील पर्यायोंके परिणामीपना है, अतः उन पर्यायोंमें अनित्यताही उपलब्धि होती है, परन्तु जीव पुद्गलआदि द्रव्योंकी जो मत्ता है, वह सदा अ-

व्यभिचारिणी है अर्थात् नित्यभावका आश्रय करके तीन कालमें अविचलितस्वरूप (अटलरूप) रहती है । इसलिये द्रव्यके नित्यपनेसे यह सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिक नामक द्रव्यार्थिकनयका द्वितीय भेद सिद्ध होगया ॥ ११ ॥

अथ तृतीयभेदमुपदिशन्नाह ।

अब तृतीय भेदको दर्शाते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । कल्पनारहितो भेदः शुद्धद्रव्यार्थिकाभिधः ।

तृतीयो गुणपर्यायादभिन्नः कथ्यते ध्रुवम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—जो गुण तथा पर्यायसे अभिन्न है वह भेदकी कल्पनासे रहित शुद्ध द्रव्यार्थिक नामवाला द्रव्यार्थिकनयका तीसरा भेद कहा जाता है ॥ १२ ॥

व्याख्या । भेदकल्पनया रहितः कल्पनारहितस्तृतीयो भेदः शुद्धद्रव्यार्थिकनामास्ति । ३ यथा जीवद्रव्यं पुद्गलादिद्रव्यं च निजनिजगुणपर्यायेभ्यश्चाभिन्नमस्ति । यद्यपि भेदो वर्तते द्रव्यादीनां गुणपर्यायेभ्यस्तथापि भिन्नविषयिण्यर्पणा न कृता । अभेदाख्यैर्वार्षणा कृता अतःकारणाद्यद्रव्यं तत्तद्रव्यजन्यगुणपर्यायाभिन्नं तिष्ठति यदेव द्रव्यं तदेव गुणो यदेव द्रव्यं तदेव पर्यायो महापटजन्यखण्डपटवत्तदात्मकत्वात् । अत्र हि विवक्षावशाद्भिन्नाभिन्नत्वं ज्ञेयमिति ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—भेदकी कल्पनासे रहित होनेसे कल्पनारहित तृतीय भेद शुद्धद्रव्यार्थिक नामक है; अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके तीसरे भेदका नाम “ कल्पनारहित शुद्धद्रव्यार्थिक है । जैसे जीव द्रव्य तथा पुद्गलआदि द्रव्य अपने अपने गुण तथा पर्यायोंसे अभिन्न है, यद्यपि द्रव्यआदिके गुण तथा पर्यायोंसे भेद भासता है; तथापि भेदके विषयवाली अर्पणा नहीं की, अभेदनामक ही अर्पणा की । इस हेतुसे जो द्रव्य है; वह उस द्रव्यसे उत्पन्न होने योग्य गुण और पर्यायोंसे अभिन्नरूप स्थित है; क्योंकि—जो द्रव्य है; वही गुण है; जो द्रव्य है; वही पर्याय है; तदात्मकपनेसे, जैसे कि—महापट (बड़े वस्त्र)से उत्पन्न खण्ड पट (छोटा वस्त्र) भावार्थ—एक बड़े वस्त्रको फाड़कर उसमेसे छोटा वस्त्र निकालें तो वास्तवमें वह छोटे वस्त्ररूप पर्याय बड़े वस्त्ररूप द्रव्यसे अभिन्न ही है; क्योंकि—वह छोटा वस्त्र बड़े वस्त्रस्वरूप ही है; ऐसे ही जितने गुण और पर्याय हैं; वे तदात्मकतासे द्रव्यरूप ही हैं । यहां द्रव्य और पर्यायका भेद तथा अभेद विवक्षाके वशसे जानना चाहिये अर्थात् जब द्रव्यस्वरूपसे विवक्षा करेंगे तब तो द्रव्यपनेसे सब गुण, पर्याय अभिन्न हैं; और जब पर्यायरूपसे विवक्षा करेंगे तब सब गुण पर्याय द्रव्यसे भिन्न है ॥ १२ ॥

अथ चतुर्थभेदमाह ।

अब चतुर्थभेदका कथन करते हैं ।

सूत्रम् । कर्मोपाधेरशुद्धाख्यश्चतुर्थो भेद ईरितः ।

कर्मभावमयस्त्वात्मा क्रोधी मानी तदुद्भवात् ॥ १३ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—कर्मोंकी उपाधिके कारण अशुद्धद्रव्यार्थिक चतुर्थ भेद कहागया है, क्योंकि—कर्मोंकी प्रकृतिमय होनेसे क्रोधादिकी उत्पत्तिद्वारा आत्मा, क्रोधी मानी इत्यादि व्यवहारयुक्त होता है ॥ १३ ॥

व्याख्या । कर्मोपाधे सकाशात् कर्ममिश्रजीवद्रव्यस्याशुद्धत्व जायते । तत कर्मोपाधेरशुद्धद्रव्यार्थिकश्चतुर्थो भेद कथित । यत कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिक इति भेद । अस्य च लक्षण कथयति । यथा कर्मभावमय कर्मणा ज्ञानावरणादीना भावा प्रकृतयस्ते प्रचुरा यत्रेति कर्मभावमय आत्मा तादृशो लक्ष्यते । येन येन कर्मणा आगत्यात्मा निरुद्धते तदा तत्तत्कर्मस्वभावतुल्यपरिणत सन् व्यवह्रियते । यत क्रोधोदयाजीव क्रोधीति व्यपदिश्यते मानकर्मन्याजीवो मानीति व्यपदिश्यते । एव यदा यद्रव्य येन भावेन परिणमति तदा तद्रव्य तन्मय कृत्वा ज्ञेयम् । यथा लोहोऽग्निना परिणतो यदा काले प्राप्यते तदा अग्निरूप एवोद्भाव्यते न तु लोहरूप । एवमात्मापि मोहनीयकर्मोदयेन यदा क्रोधादिपरिणत स्यात् तदा क्रोधादिरूप एवोद्भव्य । अत एवाष्टावात्मनोभेदा सिद्धान्ते व्याख्याता इति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—कर्मोंकी उपाधिसे अर्थात् आत्मा जब कर्मोंको ग्रहण करता है, तब वह कर्मोपाधिसहित कहाता है, और कर्मसे मिलित होनेसे जीवद्रव्यके अशुद्धता उत्पन्न होती है, इस कारण कर्मरूप उपाधिसे अशुद्ध चोथा भेद द्रव्यार्थिक कहागया है, क्योंकि—कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखनेसे इस चतुर्थ भेदका नाम अशुद्धद्रव्यार्थिक है । इसका लक्षण कहते हैं, कि—जैसे कर्मभावमय जब आत्मा होता है, अर्थात् कर्मजो ज्ञानावरण दर्शनावरणभाटि है, उनकी जो प्रकृतिये है, वे जब आत्मप्रदेशमें प्रचुर (अधिक) रूपसे एकत्र हो जाती हैं, उस समय आत्मा है, वह तादृकरूप अर्थात् कर्मस्वरूप लक्षित होता है, अर्थात् जो जो कर्म आकर आत्माको रोकते हैं, अर्थात् आत्मा जिस २ कर्मरूपी बधनसे बद्ध होता है तब उस उस कर्मके स्वभावके तुल्य व्यवहारमें लाया जाता है, क्योंकि—क्रोधके उदयसे जीवको क्रोधी कहते हैं, एव मानकर्मके उदयसे जीव मानी कहाजाता है । इसी प्रकार जब जो द्रव्य जिस भावसे परिणत होता है तब उसको उस भावरूप करके जानना चाहिये । जैसे अग्निमें गिराहुआ लोह जब अग्निस्वरूपसे परिणत हुआ मिलता है, अर्थात् साक्षात् अग्निके समान बन जाता है, तब उसको अग्निरूप ही कहते हैं, नहि—लोहरूप । ऐसे ही आत्मारूप द्रव्य भी मोहनीयवादि कर्मोंके उदयसे जब क्रोधादिरूपसे परिणत होवे तब उस आत्माको क्रोधादिरूप ही जानना चाहिये । इस ही कारणसे जेनसिद्धान्तमें आत्माके आठ भेद वर्णन किये गये हैं अर्थात् इस अशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे आठ कर्मोंकी उपाधिवश जीवके आठ ८ भेद शास्त्रमें कहे गये हैं ॥ १३ ॥

१ जब आत्मा क्रोधादि कर्मका उदय आता है तब आत्मा उनका स्वरूप ही बनजाता है उनसे अपने स्वरूपको अलग नहीं करसकता किन्तु तन्मय हो जाता है, इससे क्रोधीवादि शब्दाद्वारा व्यवहृत होता है ।

अथ पञ्चमभेदमाह ।

अव पंचम (पांचवें) भेदका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकोऽग्रिमः ।

एकस्मिन्समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक् ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—उत्पत्ति और नाशकी अपेक्षासहित होनेसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक पंचम (पांचवां) भेद कहा गया है; क्योंकि—एक ही समयमें द्रव्य उत्पत्ति, नाश तथा ध्रौव्य (नित्यता)से संयुक्त है ॥ १४ ॥

व्याख्या । उत्पादव्ययसापेक्षः पञ्चमो भेदोऽशुद्धद्रव्यार्थिको ज्ञेयः । यत् उत्पादव्ययसापेक्षः सत्ताग्राहकोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः पञ्चम इति । ५ । यथा एकस्मिन्समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपं कथ्यते । कथं तद्यः कटकाद्युत्पादसमयः स एव केयूरादिविनाशसमयः । परन्तु कनकसत्ता कटककेयूरयोः परिणामिन्यावर्जनीयैव । एव सति त्रैलक्ष्यग्राहकत्वेनेदं प्रमाणवचनमेव स्यान्न तु नयवचनमिति चेन्न । मुख्यगौणभावेनैवानेन नयेन त्रैलक्ष्यग्रहणान्मुख्यनयं स्वस्वार्थग्रहणे नयानां सप्तभङ्गीमुखेनैव व्यापारात् ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—उत्पत्ति तथा नाशके सापेक्ष अर्थात् उत्पत्ति और नाशकी अपेक्षा रखनेवाला अशुद्धद्रव्यार्थिक पांचवां भेद जानना चाहिये क्योंकि—उत्पत्ति और व्ययके सापेक्ष तथा सत्ताका ग्राहक जो है; उसको अशुद्धद्रव्यार्थिक पांचवां भेद माना गया है । ५ । जैसे एक कालमें द्रव्य उत्पाद (उत्पत्ति) व्यय (नाश) तथा ध्रौव्य (नित्य) स्वरूप कहा जाता है । यदि यह कहो कि—ये तीनों (उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य) स्वरूप एक ही कालमें तथा एक ही पदार्थमें कैसे होते हैं; तो उसकी व्यवस्था इस प्रकार है; कि—जैसे सुवर्ण द्रव्यमें जो समय कटक (कड़ा) आदिरूप पर्यायकी उत्पत्तिका है; वही समय केयूर (वाजू) आदि पूर्व पर्यायके विनाशका भी है; परन्तु कटक और केयूर दोनोंमें जो सुवर्णकी सत्ता है वह परिणामिनी नहीं है; किन्तु सुवर्णरूपता पूर्व पर पर्यायोमें एक ध्रुव (नित्य) स्वरूपसे विद्यमान है; अव कदाचित् ऐसी शंका करो कि—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूपका ग्राहक होनेसे यह प्रमाणवचन ही हुआ न कि—नयवचन? सो नहीं कह सकते; क्योंकि—मुख्य तथा गौण भावसे ही इस पंचम नयकेद्वारा उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप तीन लक्षणोंका ग्रहण होनेसे अपने अपने अर्थके ग्रहणमें मुख्य नय है; और पर अर्थमें नहीं क्योंकि—सब नयोंका सप्तभङ्गीनयके द्वारा ही व्यापार होता है ॥ १४ ॥

१ संपूर्णरूपसे वस्तुको सिद्ध करनेवाला प्रमाण कहलाता है; अतः यहाँ जब द्रव्यके तीनों स्वरूपोंका कथन कर दिया तो यह प्रमाण है ।

२ नय वस्तुके एक ही अंशको मुख्यतासे कहता है ।

३ प्रवृत्त नय भी वस्तुकी अनेकान्तस्वरूपता दर्शानेकेलिये सप्तभङ्गीको लेकर ही प्रवृत्त होता है ।

अथ पष्ठभेदमाह ।

अथ द्रव्यार्थिकनयका पष्ठ (छठा) भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । भेदस्य कल्पनां गृह्यन्नशुद्धः पष्ठ इष्यते ।

यथात्मनो हि ज्ञानादिगुणः शुद्धः प्रकल्पनात् ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—भेदकी कल्पनाको ग्रहण करते हुए अशुद्ध द्रव्यार्थिकनामा छठा ६ भेद माना जाता है, जैसे आत्माके ज्ञानादि शुद्ध गुणोंकी कल्पना भेदको कहती है १५

व्याख्या । अशुद्धद्रव्यार्थिक पष्ठो भेदो भेदस्य भेदभावस्य कल्पना गृह्यन् सन् जायते । यथा हि ज्ञानादयो गुणा शुद्धा आत्मनः कथ्यन्ते इत्यत्र पृष्ठीविभक्तिर्भेदकययति । भिक्षो पात्रमिति वत् । परमार्थतस्तु गुणगुणिनोर्भेद एव नास्ति । तस्मात्कल्पितो भेदोऽत्र द्वयो न तु साहजिकः ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—भेदभावकी कल्पनाको ग्रहण करता हुआ अशुद्धद्रव्यार्थिक छठा ६ भेद उत्पन्न होता है, जैसे कि—आत्माके शुद्ध ज्ञानादिगुण कहेजाते हैं, “आत्मन गुणा” (आत्माके गुण) यहापर पृष्ठी विभक्ति भेदको कहती है, जैसे कि—“ भिक्षो पात्रम् ” भिक्षुका पात्र यहापर भिक्षुकसे पात्रको जुदा दिखलाती है, परन्तु यथायमे भिक्षुकके पात्रके समान ज्ञानादि गुण तथा गुणी आत्माके भेद नहीं है, इसलिये यहा कल्पित भेद समझना चाहिये न कि—स्वाभाविक क्योंकि—गुण और गुणी कहीं जुदे २ नहीं मिलते ॥ १५ ॥

अथ सप्तमभेद कथयति ।

अथ सप्तम (सातवें) भेदको कहते हैं ।

सूत्रम् । अन्वयी सप्तमश्चैकस्वभावः समुदाहृतः ।

द्रव्यमेकं यथा प्रोक्तं गुणपर्यायभाषितम् ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—अन्वयी द्रव्यार्थिक सप्तम भेद कहा गया है, जैसे कि—गुण तथा पर्यायोक्ते युक्त द्रव्य एक ही स्वभाव कहा है ॥ १६ ॥

व्या०—अन्वयद्रव्यार्थिक सप्तमो भेद एकस्वभावः उक्तः । यथा द्रव्यैकं गुणैः पर्यायैश्च भाषितं वर्तते द्रव्यमेकं गुणपर्यायस्वभावमस्ति । गुणेषु रूपादिषु पर्यायेषु वस्तुमीवादिषु द्रव्यस्य घटस्थान्वयोऽस्ति । यतस्तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः । अथवा सति सत्तावोऽन्वयो यथा सति दण्डे घटोत्पत्तिः । अत एव यदा द्रव्यं ज्ञायते तदा द्रव्यार्थादेशो तदनुगतसर्वगुणपर्याया अपि ज्ञायन्ते । यथा मामान्वयप्रत्यामत्त्या परस्य सर्वो व्यक्तिरप्यवगन्तव्या । तथात्रापि भेदमित्यन्वयद्रव्यार्थिक सप्तम इति ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—अन्वयद्रव्यार्थिक नामगाला सप्तम भेद एकस्वभाव कहा गया है, जैसे एक ही द्रव्य गुण और पर्यायोक्ते युक्त है, अर्थात् एक द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव है । रूप आदिक गुणोंमें और वस्तुमीवादि पर्यायों में द्रव्य जो घट है, उसका अन्वय है, क्योंकि—

जिसके होते जिसकी विद्यमानता हो अर्थात् गुण पर्यायोंके रहनेपर घटआदि द्रव्यका जो अवश्य रहना है; वह अन्वय कहलाता है; अथवा जिसके रहते जिसकी उत्पत्ति हो वह अन्वय है; जैसे दंडकी सत्तामें घटकी उत्पत्ति होती है; “अर्थात् दण्ड कारण होय तव ही तो घट (कार्य) उत्पन्न हो अन्यथा नहीं” यह भी अन्वय कहा जाता है । द्रव्यस्वरूपका संपूर्ण गुण पर्यायोंमें अन्वय है; इसी कारण जब द्रव्यस्वरूप ज्ञात होता है; तब द्रव्यार्थके आदेशसे उस द्रव्यके साथ अनुगत जितने गुण और पर्याय हैं; वे भी जाने जाते हैं । जिस प्रकारसे कि—सामान्यकी प्रत्यासत्तिसे किसी एक घटआदि व्यक्तिका ज्ञान होनेसे उस जातिसहित संपूर्ण व्यक्तियें जानी जाती हैं । ऐसे ही यहां भी एक स्वभावके अन्वयसे यह अन्वय द्रव्यार्थिक सप्तम नय भी जानलेना चाहिये ॥ १६ ॥

अथाष्टमभेदोत्कीर्तनमाह ।

अब अष्टम भेदके कीर्तनको कहते हैं ।

सूत्रम् । स्वद्रव्यादिकसङ्ग्राही षष्टमो भेद आहितः ।

स्वद्रव्यादिचतुष्केभ्यः सन्नर्थो दृश्यते यथा ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—स्वकीय द्रव्य क्षेत्रादिका ग्राहक होनेसे स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक यह अष्टम भेद कहा गया है; जैसे स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे घटआदि पदार्थ सद्रूपसे ही दृष्ट होता है ॥ १७ ॥

व्याख्या—स्वद्रव्यादिग्राहको द्रव्यार्थिकोऽष्टमो भेदः कथितः । यथार्थो घटादिः स्वद्रव्यतः स्वक्षेत्रतः स्वकालतः स्वभावतः सन्नेव प्रवर्तते । स्वद्रव्याद्धटः काञ्चनो मृन्मयो वा ॥ १ ॥ स्वक्षेत्राद्धटः पाटलिपुत्रो माथुरो वा । २ । स्वकालाद्धटो वासन्तिको वैष्णो वा । ३ । स्वभावाद्धटः श्यामो रक्तो वा । ४ । एवं चतुर्ष्वपि घटद्रव्यस्य सत्ता प्रमाणसिद्धैवास्ति । स्वद्रव्यादिग्राहको द्रव्यार्थिकोऽष्टमो भेद इति ज्ञेयम् ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थः—अपने द्रव्यआदिको ग्रहण करनेवाला अष्टम द्रव्यार्थिक भेद कहा गया है । जैसे घटआदि पदार्थ अपने द्रव्यसे १, अपने क्षेत्रसे २, अपने कालसे ३, तथा अपने स्वभावसे सत् (विद्यमान) रूप ही प्रवृत्त होता है । स्व(निज)द्रव्यसे घट सुवर्णका बनाहुआ है; अथवा मृत्तिकासे बनाहुआ है; १, अपने क्षेत्रसे घट पटनेका वा मथुराका है; २, अपने कालसे घट वसन्त ऋतुका अथवा ग्रीष्म ऋतुका है; ३, अपने भावसे घट श्याम वा रक्त है; ४, ऐसे स्वकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव इन चारोंमें घटद्रव्यकी सत्ता प्रमाणसे सिद्ध है । इसलिये “स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय” यह अष्टम भेद जानना चाहिये ॥ १७ ॥

१ सवपर रहनेवाला सामान्य धर्म, तद्रूप प्रत्यासत्ति अर्थात् एक प्रकारकी व्यक्ति अर्थात् जैसे एक प्रकारकी घटआदि व्यक्तियोंपर रहनेवाले तिर्यक् सामान्यसे सब व्यक्तियोंका बोध होता है; ऐसे ही द्रव्यरूपके अन्वयसे सब गुण पर्यायोंका ज्ञान होता है ॥

अथ नवमभेदमाह ।

अथ नवम भेदको कहते हैं ।

सूत्रम् । परद्रव्यादिकग्राही नवमो भेद उच्यते ।

परद्रव्यादिकेभ्योऽसन्नर्थः सभाव्यते यथा ॥ १८ ॥

मृगभाष्यार्थः—परद्रव्यआदिका ग्रहण करनेवाला नवम ९ भेद कहा जाता है, जैसे परद्रव्यआदिकी अपेक्षासे पदार्थ (घट) असत् रूपसे समावित होता है ॥ १८ ॥

व्याख्या—तेषु द्रव्यार्थादिषु परद्रव्यादिग्राहको द्रव्यार्थिको नवम (९) यथार्थो घटादि परद्रव्यादिचतुष्टयेभ्योऽसन्नं वर्तते । घटापेक्षया परद्रव्य पटोऽवस्तन्त्वादिभ्यो घटोऽसन्नः स्ति । १ । परक्षेत्राद्यथा घटो मथुरो वर्तते न काशीजं किन्तु घटक्षेत्र मथुरा तदपेक्षया काशीभिन्ना अत एव परक्षेत्रात्काशीलक्षणादमन् घट । २ । परकालाद्यथा घटो वसन्ते निष्पन्नोऽतो वासन्तिको घट , वसन्तापेक्षया ग्रीष्मो भिन्नस्ततो ग्रीष्मकालजाद्वासन्तिको घटोऽसन्नः । ३ । परभावाद्विवक्षितश्यामादिभावापेक्षया रक्तो घटोऽसन्वर्तते । ४ । एव परद्रव्यादिग्राहको द्रव्यार्थिको नवम । ९ ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थः—उन द्रव्यार्थआदिमें परद्रव्यआदिका ग्राहक होनेसे परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनामक नवम भेद है । जैसे घटआदि पदार्थ परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप चतुष्टयकी अपेक्षासे असत् (अविद्यमान) रूप ही वर्तता है । घटकी अपेक्षासे परद्रव्य पट है, इस हेतुसे तन्तु (सूत) आदिसे घट असत् है, अर्थात् पटादिरूपसे घट नहीं है । १ । इसी रीतिसे परक्षेत्रकी अपेक्षासे भी जैसे घट मथुरामें बना हुआ है, न कि—काशीमें उत्पन्न हुआ और घटका क्षेत्र (स्थान) जो मथुरा है, उसकी अपेक्षा काशी भिन्न है, इस ही कारण काशीरूप जो परक्षेत्र है, उसकी अपेक्षासे घट नहीं है । २ । परकालकी अपेक्षासे जैसे घट वसन्तकालमें उत्पन्न हुआ इसकारण घट वासन्तिक हुआ और इस वसन्त ऋतुकी अपेक्षासे ग्रीष्म ऋतु भिन्न है, अतः ग्रीष्म (गर्मी) के—कालमें उत्पन्न हुए घटसे वसन्त समयमें उत्पन्न हुआ घट असत् है । ३ । ऐसे ही परभावासे भी विवक्षित श्याम आदि भावकी अपेक्षासे रक्त घट असत् है । ४ । ऐसे परद्रव्यआदिका ग्राहक नवमा द्रव्यार्थिकनय है ॥ १८ ॥

अथ दशमभेदोत्कीर्तनमाह ।

अथ दशम भेदका कथन करते हैं ।

१ सप्त भगोंमें स्यादस्ति और स्यानास्तिवा निरूपण प्रथम करनेके ह उसका यही अभिप्राय है कि स्वकीय द्रव्यादिकी अपेक्षासे तो घट है परन्तु परकीय द्रव्यादिकी अपेक्षासे घट नहीं है अर्थात् पदार्थके स्वरूपसे जैसे अस्तित्व पदार्थका स्वरूप भावता है, ऐसे ही परकीयरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे नास्तित्व भी पदार्थका स्वरूप ही है, यही स्याद्वादका रहस्य है ।

२ जैसे परद्रव्यरूपसे घटकी असत्ताका भाव होता है ऐसे परकाल जो ग्रीष्म है, उसकी अपेक्षासे घट नहीं है, अर्थात् घटकी अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तो सत्ता है, और परद्रव्यादि चतुष्टयसे असत्ता है ।

सूत्रम् । परमभावसद्भाही दशमो भेद आप्यते ।

ज्ञानस्वरूपकस्त्वात्मा ज्ञानं सर्वत्र सुन्दरम् ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थः—परमभावका संग्राही यह द्रव्यार्थिकनयका दशम भेद प्राप्त है; जैसे कि—आत्मा ज्ञानस्वरूप है; क्योंकि—आत्माके सब गुणोंमें सारभूत गुण ज्ञान ही है ॥ १९ ॥

व्याख्या—परमभावसद्भाही परमभावग्राहको दशमो भेदः कथितः । १० । यथा ज्ञान-स्वरूपक आत्मा ज्ञानस्वरूपी कथितः । दर्शनचारित्रवीर्यलेश्यादयो ह्यात्मनो गुणा अनन्ताः सन्ति, परन्तु तेषु एकं ज्ञानं सारतरं वर्तते । अन्यद्रव्येभ्य आत्मनो भेदो ज्ञानगुणेन दर्शयि-प्यते तस्मात्कारणाच्छीघ्रोपस्थितिकत्वेनात्मनः परमस्वभावो ज्ञानमेवास्ते । इत्थमन्येषामपि परमभावा असाधारणगुणा ग्रहीतव्याः । परमभावग्राहको द्रव्यार्थिकदशम इति । अत्रानेक-स्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीत इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः—परमभावका संग्रहण करानेवाला होनेसे परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक यह दशम भेद कहागया है; जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूपी कहा है, यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य तथा लेश्याआदि आत्माके अनन्त गुण हैं; परन्तु उन सबमें एक ज्ञान गुण सबसे अधिक सारभूत है; क्योंकि—हम अन्यद्रव्योंसे आत्माका भेद ज्ञानगुणसे ही दर्शवेंगे, इस हेतुसे तथा सब गुणोंमेंसे शीघ्र उपस्थिति एक ज्ञान गुणकी ही होती है; इसलिये आ-त्माका परम (सर्वोत्तम) स्वभाव ज्ञान ही है । इसी रीतिसे अन्य द्रव्योंके भी असाधारण गुणरूप परम भावोंका ग्रहण करना चाहिये । इसलिये यह परमभावग्राहक द्रव्य-ार्थिक दशम १० भेद है । इस नयमें आत्माके अनेक स्वभावोंके बीचमेंसे ज्ञाननामक परम स्वभाव ग्रहण किया गया है ॥ इस प्रकार नौ नयोंमें प्रथम जो द्रव्यार्थिक है; उसके दश भेदोंका स्वरूप है ॥ १९ ॥

अथाध्यायसमाप्तौ ज्ञानस्य मोक्षहेतोः प्रशंसामाह ।

अब पंचम अध्यायकी समाप्तिमें मोक्षका साक्षात् हेतु जो ज्ञान है; उसकी प्रशंसा कहते हैं ।

सूत्रम् । ज्ञानाख्यमेतन्मकरन्दमिष्टं भव्यालयो वीतभया निपीय ॥

अर्हत्क्रमाभोजभवं सुगन्धं स्वभावसौहित्यमवाप्नुवन्ति ॥ २० ॥

सूत्रभावार्थः—मव्य पुरुषरूपी भ्रमर सबको इष्ट श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंसे उत्पन्न, अत एव अतिसुगन्धताके धारक इस ज्ञानरूपी मकरन्द (पुष्परस)को निर्भय होके पीकर निजभावरूपी तृप्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

व्याख्या—भाव्यालयः भवाय अर्हा भव्यास्त एवालयो भ्रमरा एतदुत्कृष्टज्ञानाख्यं मक-रन्दं मरन्दं निपीय पीत्वा स्वभावसौहित्यं स्वस्य आत्मनो भावः परमभावस्तद्रूपं सौहित्यं तृप्ति-स्तादवाप्नुवन्ति । कीदृशा भव्यालयः वीतभया वीतं गतं भयं येषान्ते वीतभया दिवानिशमा-कस्मिन्साध्वसरहिताः कीदृङ्मकरन्दमिष्टं ब्रह्मं भवविपाकत्वेन परमरुचिप्रदम् । पुनः

कीदृक्मकरन्दमहत्कृमाम्भोजभवमर्हता श्रीतीर्थकराणा क्रमाश्ररणास्त ग्वाम्भोजानि कम
लानि तेभ्यो भव उत्पत्तिर्यस्य तदहत्कृमाम्भोजभव जिनेश्वरचरणपद्मजसभवम् । पुन
कीदृक् सुगन्ध शोभनो गन्ध आसोदो यस्य तत्सुगन्धमिति पदार्थः । यथालयोऽम्भोजनव
सुगन्धमिष्ट मकरन्द निपीय सौहित्यमवाप्नुवन्ति । तथा भव्या एतदज्ञानाख्य परमभावमिष्ट
निपीय स्वभावमवाप्नुवन्ति । अन्यद्विशेषणैस्तुल्यत्वं ज्ञेयम् । भव्यानामलिसादृश्य ज्ञानस्य च
मकरन्दसादृश्य च युक्तोपमात्वं, जिनरुमे कमलोपमानत्वं माधर्म्यतया चेत्यपि बोध्यम् ।
आसन्नसिद्धिका, परमरुचिपरा इहामुत्रफलविरागा, इन्द्रियमात्रविषयावशा, नित्यमवेग
ज्ञान्तद्वया, निपाकलब्धनिसर्गवोद्योदयेन परमभावेन ज्ञानेनाशेषकलुषकर्मसन्ताननिर्नाशन-
प्रकटितशुद्धशुद्ध्यननैमल्यविधूतशेषकर्मप्रकृतिशुभतयोत्कर्माणो, निजभावमनन्तचतुष्टयात्म
कसौहित्यसंपूरितमनस शिवावाप्तमासादयन्तीति भावः ॥ २० ॥

इति श्रीकृतिभोजविनिर्मिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया पञ्चमोऽध्यायः ।

व्याख्यानार्थः—गया है मय जिनका वह वीतभय अर्थात् रात्रि दिन आकस्मिक भयसे रहित
भव्यालि अर्थात् मोक्षके अधिकारी भव्यजनरूपी भ्रमर, इष्ट (प्यारा) अर्थात् भवकी निपाक-
तासे उत्कृष्ट रुचिका टेनेवाला, और श्रीजिनेन्द्रके चरणरूपी कमलसे जिसकी उत्पत्ति है,
ऐसा तथा श्रेष्ठ गन्धके धारक इस उत्कृष्ट ज्ञाननामक मकरन्द (पुष्परस) को पीकर
अपने आत्माका जो परमभावरूप सौहित्य (तृप्ति) है, उसको प्राप्त होते हैं, इस प्रकार
पदार्थका अर्थ है, तात्पर्य इसका यह है, कि—भ्रमर जैसे कमलसे उत्पन्न इष्ट मकरन्दको पान
करके परमतृप्ति को पाते हैं, ऐसे ही भव्य जन इस ज्ञाननामक इष्ट परमभावको पीकर स्वभा-
वको प्राप्त होते हैं । अन्य सब विशेषणोंसे ज्ञान तथा मकरन्दकी तुल्यता समझ लेनी चा-
हिये । और भव्योंके भ्रमरका सादृश्य और ज्ञानको मकरन्दका सादृश्य जो दिया है, यह
उपमाके योग्य ही है । तथा जिन भगवान्के चरणोंके कमलकी जो उपमा दी है, सो भी
साधर्म्यसे ही है, यह भी जानना चाहिये । समीप है, मुक्ति जिनकी ऐसे तथा ज्ञानकी
प्राप्तिमें परम प्रीतिके धारक, इस लोक और पर लोकसम्बन्धी स्वर्गादिकोंके सुखरूप फ-
लोंमें रागरहित, पाचों इन्द्रियोंके निषेधोंकी आधीनतासे मुक्त, निरन्तर सवेगसे ज्ञान्त
हृदयके धारक, विपाकसे प्राप्त स्वाभाविक ज्ञानके उदयरूप परम भाव जो ज्ञान है, उस
करके सपूर्ण मलिन कर्मोंके घाती या कर्मोंके नाश करनेसे प्रकट हुवा जो शुद्ध शुद्ध्यन
उसकी निर्मलतासे नष्ट करी है, वाकिके कर्मोंकी अर्थात् चार अघाती या कर्माँकी प्रकृति-
रूप शुभश्रेणी जिन्होंने आर अत एव कर्मरहित ऐसे भव्यजन अपने भागको अर्थात्
अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यरूप अनन्तचतुष्टयलक्षणतृप्तिसे भरेहुए,
अतरहित ऐसे मोक्षस्थानको प्राप्त होते हैं, यह भाग है ॥ २० ॥

इति श्रीपण्डितठागुरप्रसादशास्त्रिनिरचितभापाटीकासमलङ्कृताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठाध्याये पर्यायार्थिकनयं विवृणोति । तत्रादौ पर्यायार्थिक. पङ्क्तिधोऽतस्तमेव कीर्तयन्नाह । तत्रापि नमस्कारगर्भितं जिनवाक्यस्वरूपं प्ररूपयति ।

अव पष्ठ(छठे) अध्यायमें पर्यायार्थिकनयका विवरण करते हैं; उसमें आरंभमे पर्यायार्थिकके ६ भेद हैं; उनको ही दिखाते हैं, उसमें भी नमस्कार गर्भित जिनेश्वरकी वाणीके स्वरूपका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । एकाप्यनाद्याखिलतत्त्वरूपा, जिनेशगीर्विस्तरमाप तर्कैः ।

तत्राप्यसत्यं त्यज सत्यमङ्गी, कुरु स्वयं स्वीयहिताभिलाषिन् ।

सूत्रभावार्थः—यद्यपि अनादि तथा संपूर्ण तत्त्वोंको धारण करनेवाली जिनवाणी एक ही है; तथापि तर्कोंसे विस्तारको प्राप्त होगई अर्थात् अनेकरूप धारण करलिये हैं; अतः हे निज आत्माके हितको चाहनेवाले भव्य ! उस दिगम्बर मतमें भी जो असत्य है; उसका तो त्याग कर और जो सत्य है; उसको स्वीकार कर ॥ १ ॥

व्याख्या—एकापि जिनेशगीरहृद्वाणी अर्हन्मुखान्निर्गच्छमाना अद्वितीया यथाभाषितं तथा श्रूयमाणा तथा अनाद्या आदिरहिता एकेन तीर्थकृता यदुपदिष्टं तदनेकेषां पूर्वपूर्वतर-तीर्थकृतामपि तथैव निरूप्यमाणत्वादादिरहिता । पुनः कीदृशी अखिलतत्त्वरूपा समस्त-तत्त्वमयी तर्कैर्विचारैर्वहुभेदतां प्राप बहुप्रकारैर्वहुधा विस्तृता । यतो दिग्वाससां मतमपि जिनमतं धृतैतादृशनयानामनेकाकारतां प्रवर्त्तयति । अतस्तन्मतेऽपि यद्विमृश्यमानं सत्यं जायते तदेवाङ्गीकुरु, यच्चासत्यं तत्सर्वमपि त्यज स्वयमात्मना हे स्वीयहिताभिलाषिन् ! निज-हितकाङ्क्षिन् ! शब्दान्तरत्वेन तन्मतमपि न द्वेषविषयीकर्त्तव्यम् । सर्वमप्यर्थैकत्वविवक्षया समञ्जसमेवेति ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—श्रीजिनेश अर्थात् अर्हत् भगवान्के मुखारविन्दसे निःसृत वाणी एक (अद्वितीय)रूप ही है; अर्थात् जिस प्रकार श्रीजिनेश्वर भगवान्ने भाषण किया उसी प्रकारसे श्रूयमाण (सुननेमें) चली आती है; तथा अनादि अर्थात् आदिरहित है; क्योंकि—एक तीर्थकरने जो उपदेश किया है; वह ही अनेक पूर्व पूर्व कालके जिनेश्वरोंने भी निरूपण किया है । पुनः वह जिनेशवाणी कैसी है; कि—संपूर्ण तत्त्वमयी है; अर्थात् उसमें सब तत्त्वोंका निरूपण है; तथापि अनेक प्रकारके तर्कों(विचारों)से अनेक भेदोंको प्राप्त हुई है; अर्थात् अनेक प्रकारके तर्कोंसे अनेक रूपोंसे विस्तारको प्राप्त हुई है; क्योंकि—दिगम्बरियोंका जो मत है; वह भी जिनमतको धारण करके इन द्रव्यार्थिकादि नयोंकी अनेक आकारताको प्रवृत्त करता है; इस कारण हे निजहिताभिलाषी भव्यजनो ! उनके मतमें भी जो विषय विचाराहुआ सत्य हो अर्थात् विचार करनेपर जो तुमको सत्य प्रतीत हो उसीको स्वयं अर्थात् अपने आत्मासे स्वीकार करो और जो उनके मतमें असत्य है; उस सबको त्यागो । शब्दभेद होनेसे दिगम्बरोंके मतसे भी द्वेष न करना चाहिये क्योंकि—अर्थके एकत्वकी विवक्षासे तो उनका भी सब कथन युक्त ही है ॥ १ ॥

अथ पर्यायार्थिकपङ्कभेदानाह ।

अथ पर्यायार्थिकनयके ६ भेदोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकपङ्कभेदस्तत्राद्योऽनादिनित्यकः ।

पुद्गलानान्तु पर्यायो मेरुशैल इवाचलः ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—पर्यायार्थिक नय ६ भेदों सहित है, उनमें पर्यायार्थिकका प्रथम भेद अनादिनित्यशुद्धपर्यायार्थिक है, जैसे पुद्गलोंका पर्याय मेरु पर्यंतकी तरह अवचल (अनादि नित्य) है ॥ २ ॥

व्याख्या । पर्यायार्थिकश्चासौ पङ्कभेदश्च पर्यायार्थिकपङ्कभेद पर्यायार्थिको नय पङ्क प्रकार इत्यर्थं तत्र तेषु पङ्क भेदेषु प्रथमो भेदोऽनादिनित्यशुद्धपर्यायार्थिक कथ्यते । न विद्यत आदिस्थानादि पूर्वकल्पनारहित, उत्पत्त्यभावान्नित्य एव नित्यक, "स्वार्थक" सदैक स्वभावोऽनन्तरत्वात् । अनादिश्च नित्यकश्चेति द्वन्द्वः । अथ च शुद्धपर्यायार्थिक प्रथम । क इवाचलो मेरुरिव । यथा मेरु पुद्गलपर्यायेण प्रवाहतोऽनादिनित्यकोऽस्ति, असंख्यातकाले अन्योन्यपुद्गलसंक्रमेणापि सस्थानतः, स एव मेरुर्वर्तते । एव रत्नप्रभादीनामपि पृथ्वीपर्याया द्योतक्या इति ॥ २ ॥

व्याख्यार्थ — पर्यायार्थिकरूप जो पङ्कभेद इस प्रकारसे यहापर कर्मधारय तत्पुरुष समास है, भावार्थ—पर्यायार्थिकनय पङ्क (६) भेद सहित है । उन पङ्क भेदोंमेंसे प्रथम भेद अनादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक कहा जाता है, नहीं है आदि जिसका उभयो अनादि कहते हैं, पूर्ण कल्पनाशून्य होनेसे यह अनादि कहागया है, तथा उत्पत्तिने अभावेसे यह नित्य कहागया है, नित्य ही जो है, उसको नित्यक कहते हैं, "नित्य एव नित्यक" यहापर स्वार्थ (नित्य शब्दके अर्थ) म क प्रत्यय है, अर्थात् अविनाशी होनेसे जो सदा एक स्वभाव है, वह नित्यक है, अनादि और नित्यक जो होय सो अनादिनित्यक है, यहापर द्वन्द्व समास है । यह शुद्ध पर्यायार्थिक प्रथम भेद है । किसके समान है, कि मेरु पर्यंतके समान, जैसे मेरु पर्यंत पुद्गलपर्यायसे प्रवाहद्वारा अनादि और नित्य है, अर्थात् असंख्यात कालमें परस्पर पुद्गलोंका संक्रम होनेपर भी सस्थानसे वह ही मेरु है, न कि—अन्य । इसी प्रकार रत्नप्रभा भूमिआदि पर्याय भी नित्य तथा अनादि समझने चाहिये ॥ २ ॥

अथ द्वितीयो भेद पर्यायार्थिकस्य कथ्यते ।

अथ पर्यायार्थिकका द्वितीय भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकः सादिर्नित्यः सिद्धस्वरूपवत् ।

सूत्रभावार्थ — सिद्धस्वरूपके तुल्य "सादिर्नित्यपर्यायार्थिक" यह पर्यायार्थिकनयना द्वितीय भेद है ।

व्याख्या । पर्यायार्थिको द्वितीयः सादिर्नित्यः किञ्च सिद्धस्वरूपवत् । यथा

सिद्धस्य पर्यायः सादिरस्त्युत्पत्तिमत्त्वान् । सर्वकर्मक्षयासिद्धपर्याय उत्पन्नः यस्तु नित्योऽवि-
नश्वरत्वात् । सिद्धपर्यायः सदाकालावस्थितो लभ्यते । राजपर्यायसमं सिद्धपर्यायद्रव्यं
भावनीयम् ।

व्याख्यार्थः—द्वितीय पर्यायार्थिक सादि अर्थात् आदिसहित है; और सिद्धस्वरूपके
समान नित्य है, जैसे उत्पत्तिमान् होनेसे सिद्धका पर्याय सादि है; यद्यपि संपूर्ण कर्मोंके
क्षयसे सिद्ध पर्याय उत्पन्न हुआ है; तथापि वह अविनाशी होनेसे नित्य है; क्योंकि—सिद्ध
पर्याय सदा कालमें अवस्थितरूप मिलता है, इसलिये राज पर्यायके समान सिद्धपर्याय
द्रव्यकी भी भावना करनी चाहिये ।

अथ तृतीयपर्यायार्थिकः श्लोकार्धेन पुनरग्रेतनश्लोकार्धेनाह ।

अब तृतीय श्लोकके उत्तरार्द्धसे तथा चतुर्थश्लोकके पूर्वार्द्धसे पर्यायार्थिकका तृतीय
भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । सत्तागौणतयोत्पादव्यययुक् सदनित्यकः ॥ ३ ॥

एकस्मिन्समये यद्वत्पर्यायो नश्वरो भवेत् ।

सूत्रभावार्थः—सत्ताको गौण माननेसे उत्पत्ति नाशसहित अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक
यह तृतीय भेद है ॥ ३ ॥ जैसे एक समयमें जिस पर्यायकी उत्पत्ति होती है; उसका स-
मयान्तरमें नाश भी होता है; अर्थात् एक समयमें पर्याय नाशशील भी है ।

व्याख्या । सत्तागौणतया ध्रुवत्वेनोत्पादव्ययग्राहकः सदनित्यकः संश्वासावनित्यकश्चा-
नित्यशुद्धपर्यायार्थिकः कथ्यते । सच्छब्देन शुद्धमित्यर्थस्तदा अनित्यशुद्धपर्यायार्थिको भवति ।
कीदृश उत्पादव्यययुक् उत्पादश्च व्ययश्चोत्पादव्ययौ ताभ्यां युक् सहितः । सतो हि वस्तुन
उत्पादव्ययौ पर्यायेण भवतस्तस्मात्सत्तागौणतया सत्ताया अप्राधान्येन, उत्पादव्यययोः
प्राधान्येन “अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकः” ॥ ३ ॥ तत्र दृष्टान्तमाह ॥ यथैकस्मिन्समये पर्या-
यो नश्वरः पर्यायो विनाशी भवेत् । यद्वच्छब्दः यथा पर्यायवाचकः । अत्र हि नाशं कथयतः
पर्यायस्योत्पादोऽप्यागतः परं ध्रौव्यं तु गौणत्वेन न दर्शितम् । प्राधान्याप्राधान्ययोः प्राधान्य-
विधिवलीवान् । तस्माद्यस्य प्रधानत्वं तस्यैवोत्पत्तिनागयोः समावेशः । सत्ता हि ध्रुवे नाशे च
विचरन्त्यात्मनो गौणत्वव्यपदेशिवर्त्तमानत्वमुभयत्र निक्षिपतीति ।

व्याख्यार्थः—सत्ताको गौण मानकर अर्थात् अध्रुवत्वका आरोप करके उत्पाद तथा
व्यय (उत्पत्ति और नाश)का ग्राहक सदनित्य अर्थात् अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक तृतीय
भेद कहाजाता है; “सदनित्य” यहांपर जो सत् शब्द है; उसका शुद्ध यह अर्थ करते हैं;
और नित्य अर्थ नहीं करते हैं; तब अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक यह अर्थ हुआ । कैसा है; यह
उत्पाद और व्यय इन दोनों करके सहित है; क्योंकि—विद्यमान वस्तुका उत्पाद तथा नाश
पर्यायसे होता है; इसलिये सत्ताकी अप्रधानतासे और उत्पाद तथा व्ययकी प्रधानतासे
अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक यह तृतीय भेद कहा गया ॥ ३ ॥ इसी विषयमें अग्रिम श्लोकके

पूर्वार्द्धसे दृष्टांत कहते हैं, इस श्लोकमें 'यद्वत्' यह शब्द यथा (जैसे) शब्दके अर्थका वाचक है, इसलिये जैसे एक समयमें पर्याय विनश्वर (विनाशशील) होता है, यहापर पर्यायका नाश कहतेहुएके पर्यायका उत्पाद भी आगया अर्थात् जैसे एक समयमें पर्यायका नाश होता है, ऐसे ही एक समयमें उसकी उत्पत्ति भी होती है, परन्तु धाव्य(नित्यत्व) को तो गौणतासे नहीं दर्शित किया क्योंकि—“प्रधान तथा अप्रधान इन दोनोंमें प्रधान-विधि अधिक बलवान् होती है” इस हेतुसे जिसकी प्रधानता है, उसीका उत्पत्ति और नाशमें समावेश है, और मत्ता जो है, वह तो ध्रुव और नाशमें विचरती हुई पर्यायकी उत्पत्ति तथा नाशद्वयमें अपने गौणत्वव्यपदेशमें वर्तमानताको निक्षिप्त करती है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थभेदमुपदिशन्नाह ।

अथ चतुर्थ भेदका उपदेश करते हैं ।

सूत्रम् । सत्ता गृह्यन् चतुर्थाख्यो नित्योऽशुद्ध उदीरितः ॥ ४ ॥

यथोत्पादव्ययध्रौव्यरूपै रूद्धः स्वपर्ययः ।

सूत्रम् । एकस्मिन्समये-

सूत्रभाषार्थः—सत्ताको ग्रहण करता हुआ नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक चोथा भेद कहागया है ॥ ४ ॥ जैसे उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यरूप तीनों लक्षणोंसे रूद्ध स्वकीय पर्याय एक समयमें है ॥

व्याख्या । सत्तेति । सत्ता ध्रुवत्व गृह्यन् गृह्यन् गृहीतुं चतुर्थाख्यश्चतुर्थो भेदो नित्याशुद्धपर्यायार्थिक उदीरित कथित इति श्लोकार्थ ॥ ४ ॥ अथामुमेव दृष्टान्तेन दृढयति । यथैकसमय मध्ये पर्यायो रूपत्रययुक्त उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणै रूद्ध । किं च कोऽपि पर्यय, उत्तरचरो रूपादि पाकानुबूलघटे श्यामवर्ण पूर्वचरो नष्टस्तत उत्तरो रक्तवर्ण उत्पन्न रूपी घट श्या मो वा रक्तो वेति वितर्क्यमाण सत्तया तथाकारपरिणतपर्यय प्राप्यत इति । अत्र हि पर्यायस्य शुद्धरूप सत्ता सा यदि गृह्यते तदा नित्याशुद्धपर्यायार्थिको भवति । सत्तादर्शनमेवाशुद्धमिति ।

व्याख्यार्थ —सत्ता(ध्रुवत्व)को अंगीकार करता हुआ नित्य अशुद्ध पर्याया-र्थिक यह चतुर्थभेद कहा गया है । यह चतुर्थ श्लोकके उत्तरार्द्धका अर्थ है ॥ ४ ॥ अब पञ्चम श्लोकके पूर्वार्द्धसे पूर्व विषयको दृष्टान्तसे दृढ करते हैं । जैसे एक समयमें पर्याय उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यरूप तीनों लक्षणोंसे अवरूद्ध (युक्त) है, क्योंकि—पाकके अनु-बूल घटमें जब पूर्णचर (पहला) श्यामवर्णरूपी पर्याय नष्ट हुआ तब उत्तरचर रूपादि अर्थात् आगे होनेवाला रक्तवर्ण उत्पन्न हुआ । यहापर घट है, सो रूपवाला है, परन्तु श्याम है, अथवा रक्त है, इस प्रकार जब उसके रूपका विचार कियागया तब सत्तासे उस रक्त आकारको परिणत होकर रक्त पर्यायको प्राप्त होता है, अब यहा रक्तपर्यायका उत्पाद श्यामपर्यायका व्यय (नाश) तथा घट द्रव्यका ध्रौव्य इस प्रकार उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य स्वरूप तीनों लक्षणोंसे युक्त है । यहा पर्यायका

शुद्ध स्वरूप सत्ता है; वह सत्ता जब ग्रहण की जाती है; तब नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक यह चतुर्थ भेद सिद्ध होता है। यहांपर सत्ताका जो दर्शन है; सो ही अशुद्ध है; इस लिये यह नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाया।

अथ पञ्चमभेदोत्कीर्त्तनं करोति ।

अव पंचम भेदका वर्णन करते हैं ।

अथातः पर्यायार्थिकपञ्चमः ॥ ५ ॥

कर्मोपाधिविनिर्मुक्तो नित्यः शुद्धः प्रकीर्त्तितः ।

यथा सिद्धस्य पर्यायैः समो जन्तुर्भवी शुचिः ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—अब इसके आगे पर्यायार्थिकका पंचम भेद ॥ ५ ॥ नित्यशुद्ध पर्यायार्थिक कहागया है। कैसा है; यह नय कर्मजनित उपाधियोसे रहित है। जैसे संसारी जीव सिद्धके पर्यायोंके समान पवित्र है ॥ ६ ॥

व्याख्या । अथातः परं पर्यायार्थिकपञ्चमो ज्ञेयः ॥ ५ ॥ नित्यशुद्धपर्यायार्थिकोऽस्ति । कीदृशः कर्मोपाधिविनिर्मुक्तः कर्मणामुपाधिकानामन्यद्रव्याणां कुतश्चित्सङ्गतानामुपाधिः साहचर्यं तेन विनिर्मुक्तो रहितः कर्मोपाधिविनिर्मुक्तः । यथेति—यथाशब्देन दृष्टान्तविषयीकरोति । यथा भवी भवः संसारोऽस्तीति भवी संसारी जन्तुः प्राणी सिद्धस्य कर्मोपाधिविनिर्मुक्तस्य सिद्धस्य पर्यायैः समः शुचिर्निर्मलः । संसारे संसरतः प्राणिनोऽष्टावपि कर्माणि सन्ति तानि च विचार्यमाणान्युपाधिरूपाणि वर्तन्ते । यद्वदग्नेः शुद्धद्रव्यस्याद्र्धेन्धनसंयोगजनितो धूम उपाधिक एव संभाव्यते । तद्वदिहापि विद्यमानान्यपि कर्माण्यनात्मगुणत्वेनौपाधिकानि सन्ति । अतस्तेभ्यो युक्तोऽप्ययुक्ततया विचिन्त्यमानः प्राणो सिद्ध एवेति कर्मोपाधिभावः सन्नपि न विवक्षणीयः । अथ च ज्ञानदर्शनचारित्राणि छन्नान्यपि बहिः प्रकटतया विवक्षितानि । ततो नित्यशुद्धपर्यायार्थिकभेदस्य भावना संपद्यते ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—अब इस चतुर्थभेदके पश्चात् पर्यायार्थिकका पञ्चम भेद जानना चाहिये ॥ ५ ॥ वह पंचमभेद नामसे “नित्यशुद्धपर्यायार्थिक” है। वह कैसा है; कि—कर्मोपाधिविनिर्मुक्त है; अर्थात् कर्म जो किसी कारणवशसे संगत उपाधिक अन्य द्रव्य है; उनकी जो उपाधि (साहचर्य) अर्थात् आत्माकी साथ सहभाव है; उससे रहित है। जैसे भव (संसार)को धारण करनेवाला जो भवी अर्थात् संसारी जीव है; वह कर्मोंकी उपाधिसे रहित ऐसे जो सिद्ध है; उनके समान शुचि अर्थात् निर्मल है। भावार्थ संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणीके आठ कर्म हैं। और वे विचारे जाते हैं; तो उपाधिरूप है; जैसे शुद्ध अग्निरूप द्रव्यका आर्द्र (गीले) इन्धनसे उत्पन्न धूम उपाधिरूप ही संभावित है; ऐसे ही सहज शुद्धस्वभाव आत्मामें सब कर्म आत्माके निजगुण न होनेसे उपाधिजनित ही है, इसलिये यद्यपि संसारी आत्मा उन कर्मोंसे युक्त है;

तथापि उसको जन्म उन कर्मोंसे अयुक्त (रहित) विचारा जाता है, तो वह सिद्ध ही है, तात्पर्य यह कि—ससारी जीवके कर्मरूप उपाधिमात्र है, वह विद्यमान होते भी विपक्षित न किया जाय और उन कर्मोंसे ढके हुए भी जो ज्ञान, दर्शन चारित्ररूप सहजस्वभाव है, उनको बाह्यमे प्रकट रूपपनेसे कहें तब नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नामक पचम भेदकी भावना सिद्ध होती है ॥ ६ ॥

अथ पर्यायार्थिकस्य पष्ठभेदोपकीर्तनमाह ।

अत्र पर्यायार्थिकं नयके पष्ठ (छठे) भेदके निरूपणार्थं यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । अशुद्धश्च तथानित्यपर्यायार्थिकोऽन्तिमः ।

यथा ससारिणः कर्मोपाधिसापेक्षिक जन्तुः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—तथा अशुद्ध और अनित्य अन्तिम पर्यायार्थिक है, जैसे ससारी प्राणीका जन्म इस ससारमें कर्मरूप उपाधिकी अपेक्षा रखता है ॥ ७ ॥

व्याख्या । कर्मोपाधिमापेक्षोऽशुद्धो विनश्वरत्वादित्य । एवमनित्यमादौ कृत्वा अशुद्ध ततो योजयित्वा पर्यायार्थिकपदेन समुच्चर्यते तदा पष्ठोऽन्तिमोभेदोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको निष्पद्यते । अथ तस्योदाहरणमाह । यथा ससारिणः ससारवासिजनस्य जन्तुर्जन्म कर्मोपाधिसापेक्षिकं प्रवर्त्तते । जन्ममरणव्याधयोर्वर्त्तमाना पर्याया अनित्या उत्पत्तिविनाशशालित्वात् पुनरशुद्धा कर्मसयोगजनितत्वात् । भवस्थिताना प्राणिना भवन्तीति । अत एव मोक्षार्थिनो जीवा जन्मादिपर्यायाणां विनाशाय ज्ञानादिना मोक्षे यतन्ते । तस्मात्कर्माण्यनित्यान्यशुद्धानि तैः सापेक्षिकं जन्माद्यप्यनित्यमशुद्धं चेत्थं योजनया निष्पन्नो नयोऽपि “अनित्याशुद्धपर्यायार्थिक” कथ्यत इत्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—कर्मरूप उपाधिके सापेक्ष होनेसे अशुद्ध, विनाशी होनेसे अनित्य यह नय है, इस प्रकार प्रथम अनित्यशब्दकी तथा पुनः अशुद्ध शब्दकी योजना करके पश्चात् पर्यायार्थिक शब्दके साथ उच्चारण करनेसे यह अन्तिम भेद अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक सिद्ध होता है । इसमें उदाहरण देते हैं, कि—जैसे ससारी जीवका जन्म कर्मरूप उपाधिके सापेक्ष है । भावार्थ—ससागी जीवोंके जन्म मरणरूप जो व्याधियाँ हैं, उनमें वर्त्तमान जो पर्याय है, वे अनित्य हैं, क्योंकि—इन पर्यायोंका स्वभाव उत्पन्न तथा विनाश होनेका है, और कर्मोंके सयोगसे उत्पन्न होते हैं, इस कारण वे पर्याय अशुद्ध भी हैं । इसीमें मोक्षार्थी जीव जन्म मरणआदि पर्यायोंका नाश करनेके अर्थ ज्ञान आदि द्वारा मोक्षके विषयमें प्रयत्न करते हैं । इस कारणसे कर्म अनित्य तथा अशुद्ध हैं, और उन कर्मोंकी अपेक्षा रखनेवाले जन्मआदि भी अशुद्ध हैं, और इस प्रकारकी (अनित्य तथा अशुद्धकी) योजनासे सिद्ध हुआ जो नय है, वह भी अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक कहा जाता है ॥ ७ ॥

अथ नैगमादिनयानां भेदानाह ।

द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयोंके भेदोंको निरूपण करके अब नैगमसंग्रहआदि नयोंके भेदोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । नैगमो बहुमानः स्यात्तस्य भेदास्त्रयस्तथा ।

वर्त्तमानारोपकृते भूतार्थेषु च तत्परः ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—नैगमनय बहुमान अर्थात् सामान्य विशेषआदि अनेकरूपका ग्राही है; और उसके तीन भेद हैं; उनमें भूतार्थके विषयमें जो वर्त्तमानका आरोप करनेके लिये तत्पर है; वह नैगमनयका प्रथम भेद है ॥ ९ ॥

व्याख्या । नैगमो नयो बहुमानः सामान्यविशेषादिबहुतरूपज्ञानस्य ग्राही कथ्यते । नैकैर्मनैर्गम्यते मीयत इति नैकगमः ककारलोपान्नैगम इति व्युत्पत्तिः । तस्य नैगमनयस्य भेदाः प्रकारास्त्रयः । ततश्च तत्र च त्रिषु भेदेषु प्रथमो भेदोऽयं भूतार्थेषु तत्परः भूतार्थविषयेषु वर्त्तमानारोपकृते वर्त्तमानारोपकरणाय तत्परो लीन ईदृशो नैगमो भूतादिनैगमः प्रथमो ज्ञेयः ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—सामान्य तथा विशेषआदि बहुतरूप ज्ञानका ग्राही होनेसे यह नैगमनय बहुमान कहा जाता है । इस नैगम शब्दकी सिद्धि यों मानी है; कि—न एकगम—नैकगम, पुनः ककारका लोप करनेसे नैगम ऐसा हो गया; नहीं जो एक अर्थात् अनेक प्रकारसे जिसका मान किया जाय वह नैगम है । इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति है; इस नैगमनयके तीन (भूतनैगम, भावीनैगम तथा भावीवर्त्तमाननैगम) भेद हैं; और उन तीनों भेदोंमेंसे जो प्रथम भेद है; वह भूतपदार्थमें वर्त्तमानका आरोप करनेमें तत्पर है; ऐसा भूतादि नैगम, नैगमनयका प्रथम भेद जानना चाहिये ॥ ९ ॥

अथास्योदाहरणमाह ।

अब इस प्रथम भेदका उदाहरण कहते हैं ।

सूत्रम् । भूतादिनैगमस्त्वाद्यो यथा वीरजिनेश्वरः ।

दीपोत्सवदिने चास्मिन्गतो मोक्षं निरामयः ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—भूतादिनैगम प्रथम भेद है, जैसे इसी दीपमालिकाके दिन सब विकारशून्य भगवान् श्रीवीर (वर्द्धमान) जिनेश्वर मोक्षको गये हैं ॥ १० ॥

व्याख्या । यथा श्रीवीरजिनेश्वरोऽस्मिन्दीपोत्सवदिने निरामयः कर्मप्रपञ्चरहितो मोक्षं गतः । अत्र ह्यतीतायां दीपमालायां प्रभोर्मोक्षकल्याणकं जातम्, परन्त्वस्मिन्निति पदेनाद्यानुभवत्वं कल्पितम्, अतीतदीपमालायां वर्त्तमानदीपमालाया आरोपः कृतः । वर्त्तमानदिनविषये भूतदिनस्यारोपस्तु तत्कालीनदिने देवागमनादिकमहाकल्याणकभाजनेऽसत्युद्भूतदिने देवागमनादिमहाकल्याणकभाजने सति चातस्मिन्तद्व्यारोप आरोपः, असर्पभूतायां रज्जौ

सर्पारोपवत् । अन्यश्चारजसभूताया शुक्लौ रजतारोपवदित्यारोपस्तु द्रव्यविपथी, अतोऽत्र प्रगुणोऽपि नानुसन्धेय । किञ्च कालावच्छेदेन विचार्यमाण पदार्थ कालान्तरेण प्रदर्शनी यस्तेनार भूतकालो हि तत्सदृशनामवर्त्तमानकालमुपलक्ष्य स्मयतेऽतो भूते वर्त्तमानारोपप्रतीतिरुपपद्यते । अथवातीतदीपोत्सवे वर्त्तमानदीपोत्सवस्यारोप कुर्वन्ति, पुनश्च वर्त्तमानदिने भूतदिनस्यारोप कुर्वन्ति, कस्मैचित्कार्याय, तत्कार्यन्तिवदम्—यदा भगवतो निर्वाण जातम्, तदानेकसुरसम्पातो जात, सुराद्यागमनमहामहोत्सवादिविरचनेन च तद्दिनप्रतीतिर्जाता अतः प्रतीतिप्रयोजनाय भूते वर्त्तमानारोप । यथा “गङ्गाया घोष” अत्र गङ्गायामिति पदेन गङ्गा तटे गङ्गाया आरोप क्रियते । तत्तु शैत्यपावनत्वादिप्रत्यायनप्रयोजनाय । तद्वदिहापि घटमान मस्ति । यदि वीरस्य सिद्धिगमनेनान्ययानुभावकत्वात्प्रकर्षभक्तिलाभाय प्रतीतिर्धिचिन्त्यते, तर्हि तत्तद्दिनसमुदितप्रतीतियुक्त वर्त्तमानदिनमप्यन्वयेनारोप्यते “तत्पत्त्वे तत्सत्त्वमन्वय” इति वचनन्यायाभ्या समन्वेतव्यम् । वस्तुतस्तु “वर्त्तमानारोपकृते” वर्त्तमानारोपाय “भूतार्थेषु” भूतविषयेषु तत्परो लीनो भूतनैगम प्रथम । यथा दीपोत्सवदिनमद्य वर्त्तते, अत्र वीरेण गिर प्राप्तमित्यतीतदिनलभितवीरनिर्वाणकल्याणकत्व वर्त्तमानतन्नामदिनप्राप्तावारोपित महाकल्याणकप्रतीतिप्रयोजनायेति विद् । अलङ्कारनिपुणैरत्रार्थेऽलङ्कारग्रन्थोऽपि द्रष्टव्य ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जैसे सपूर्ण रोगोंसे अर्थात् कर्मरूप प्रपञ्चोंसे रहित होकर श्रीमहा-वीर जिनेश्वर इस दीपोत्सव(दीपमालिका)के दिनमें मोक्षको गये है । यहापर महावीर भगवान्का मोक्ष कल्याणक अतीत दीपमालिका अर्थात् कई दीपमालिकाके पूर्व जो दीपमालिकाका दिन है, उसमे हुआ है, परन्तु “अस्मिन्” इस पदसे आजके ही दिनका अनुभव कल्पित किया गया है, इसलिये अतीत दीपमालिकामें वर्त्तमान दीपमालिकाका आरोप किया, और वर्त्तमान दिनके विषयमें भूत दिनका आरोप तो उस दिन (वर्त्तमान दीपमालिकाके दिन)को देवताओंके आगमनरूप महाकल्याणकका भाजन न होनेपर और भूत दिन (जिस दिन श्रीवीरभगवान् मोक्षको गये उस दिन)को देवताओंके आगमनका भाजन होनेपर अर्थात् वर्त्तमान दिनमे तो देवआदि आके प्रभुके मोक्ष सम्बन्धी महाकल्याणक नहीं करते और भूत दिन (जिस दिन मोक्ष गये उस दिन) देवोंने आके महाकल्याणक किया था ऐसा व्यवहार दृष्ट होता है, इस लिये आरोप होता है, अर्थात् वर्त्तमानमे ही भूतका आरोप होता है, क्योंकि—जो वह नहीं है, उसमें उसका जो धारण करना है, उसको आरोप कहते हैं, इसलिये यहा वर्त्तमान दीपमालिकामें भूत दीपमालिकाका महाकल्याणक नहीं है, तथापि इसमे उसको धारण करलिया अतः यह आरोप हुआ और जिस रज्जु(डोर)में सर्प नहीं है, अर्थात् जो रज्जु सर्परूप नहीं है, उसमे सर्पका आरोप करनेका अर्थात् उस रज्जुको भ्रमसे सर्प मान लेना अथवा जो सीप चाटीरूप नहीं है, उसमे चाटीका आरोप

करना इस प्रकारका जो आरोप है; वह तो द्रव्यके विषयमें है । इसलिये यहांपर प्रगुणका अनुसंधान भी नहीं करना चाहिये। किन्तु जिस पदार्थका कालावच्छेदसे विचार कियाजाय तो उसको अन्य दूसरे कालसे ही दिखलाना चाहिये । इस कारण यहांपर भूत काल जो है; उसके सदृश नामके धारक वर्त्तमानकालको पाकर उस भूतकालका स्मरण किया जाता है । इस कारण भूतमें वर्त्तमानकालके आरोपकी प्रतीति उत्पन्न होती है । अथवा अतीत (गये हुए) दीपोत्सवमें वर्त्तमान दीपोत्सवका आरोप इस नैगमनयसे करते हैं । और वर्त्तमान दिनमें भूत दिनका आरोप करते हैं । और यह आरोप किसी कार्यकेलिये किया जाता है । और वह कार्य यह है; कि— जिस समय भगवान्का निर्वाण हुआ उस समय अनेक देवताओंका यहांपर समागमन हुआ और उस दिन जो देव आदिका आगमन हुआ तथा उन्होंने आके जो महामहोत्सव आदिकी रचना की जिससे उस दिनकी प्रतीति उत्पन्न हुई । इसलिये प्रतीतिरूप प्रयोजनकेलिये भूतमें वर्त्तमानत्वका आरोप कियागया है । जैसे कि—“गंगामें घोष (अहीरोंका ग्राम) है” यहांपर गंगाजीके तटमें गंगारूप अर्थका आरोप किया जाता है; और वह आरोप शैत्य (ठंडापन) पावनत्व (पवित्रपना) धर्मके अधिकताद्योतनरूप प्रयोजनकेलिये किया गया है, इसी प्रकार यहां भी प्रयोजन संघटित हो सकता है । यदि श्रीमहावीरस्वामीके मुक्तिमें जानेसे उसके अन्वयको प्रीतिआदिके विषयमें अनुभवका हेतु होनेसे अधिक भक्तिके लाभार्थ प्रतीतिका विचार किया जाय तो उस दिनमें सम्यक् प्रकारसे उदयको प्राप्त प्रतीतियुक्त वर्त्तमान दिवस भी अन्वयसे आरोपित किया जाता है । और उस कल्याण दिनकी सत्ताहीसे भक्तिआदि लाभकी जो सत्ता है; सो ही अन्वय है । क्योंकि “तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः” अर्थात् “उसके होनेपर उसकी सत्ता अर्थात् कारणके रहनेपर कार्यकी सत्ता” इत्यादि वचन तथा न्यायसे यहां आरोपका अन्वय करना चाहिये । और यथार्थमें तो भूत पदार्थमें वर्त्तमानके आरोपकेलिये जो तत्पर है; वही भूतनैगम प्रथम भेद है । जैसे आज दीपोत्सव दिन है; इसी दिन श्रीमहावीरस्वामीने मोक्षको प्राप्त किया है; यहां भूत दिनसे उपलक्षित श्रीवीरका मोक्ष कल्याणकको प्राप्त होना वर्त्तमानमें उसी (दीपोत्सव) नामक दिनको प्राप्त होनेपर महाकल्याणककी प्रतीतिके प्रयोजनकेलिये आरोपित है; यह संक्षेपसे भूतनैगमनयका मार्ग दर्शायागया है । और अलंकारशास्त्रमें प्रवीण जनोंको इस अर्थमें अलंकारका ग्रंथ भी देखना उचित है ॥ ९ ॥

अथ नैगमस्य द्वितीयभेदमुदाहरति ।

अव नैगमनयके द्वितीय भेदका उदाहरण कहते हैं ।

सूत्रम् । भूतवन्नैगमो भावी जिनः सिद्धो यथोच्यते ।

केवली सिद्धवद्वर्त्तमाननैगमभाषणे ॥ १० ॥

सूत्रभाषार्थः—भूतके साथ भावीनैगम द्वितीय भेद है । जैसे जिन भगवान् सिद्ध है, तथा वर्त्तमान नैगमके कथनमें सिद्धवत् आरोपसे केवली सिद्ध है । ऐसा भी व्यवहार होता है ॥ १० ॥

व्याख्या । भावी नैगमो भूतयुक्तो ज्ञेय । भाविनि भूतवदुपचारो । यथा हि जिन केवली सिद्ध सिद्धवज् ज्ञायते तदा भावी नैगमो भवति । असिद्धोऽपि जिन सिद्धवज्जीर्णज्वलितरज्जुप्रायाघातिकर्मचतुष्टयसद्भावेऽपि शीघ्रभावितक्षयोपस्थितावसिद्धोऽपि सिद्ध एवेति ज्ञेयम् । अथ तृतीयभेदमाह । अनिष्पन्नमपि निष्पन्नतया व्यपदिश्यमान भावि वर्त्तमान-मिवान्वेषणीयमिति । यथा हि केवली केवलज्ञानकलितो भगवान् त्रयोदशगुणस्थानस्थित सिद्ध फलदोषोपधिकल सभाव्यते । वर्त्तमानदशाया हि जिनावस्था वर्त्तते, कियत्काला नन्तर भाविनी सिद्धावस्थानुदिताप्यारोपवलादय केवली सिद्ध इति भाविविषयो वर्त्तमान निषयतया गृहीतस्तस्मात् भाविनैगम । अत्र हि किञ्चित्सिद्धमुत् किञ्चित्सिद्धमेतदुभयमपि जिन सिद्धवद्वर्त्तमाननैगमाद् ज्ञेय इति ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—अत्र भावी नैगमको भूत समुक्त समझना चाहिये अर्थात् भावीमें भूतके समान उपचार होता है । जैसे “जिन भगवान् जो केवली है, सो सिद्ध है, अर्थात् सिद्धकी तरह जाने जाते हैं” ऐसे व्यवहारमें भावीनैगम होता है । असिद्ध भी जिन सिद्धके समान है । अर्थात् जीर्ण (पुरानी या जूनी) तथा अग्निसे प्रज्वलित रज्जु (रस्सी)-के सदृश जन्म अघातिया चार कर्मोंका अर्थात् आयुर्कर्म, गोत्रकर्म, और वेदनी इन अघातियारुर्गचतुष्टयके सद्भाव (विद्यमानता)में भी शीघ्रतासे उन कर्मोंके नाशको उपस्थित होनेसे असिद्ध भी सिद्ध ही है । ऐसा समझना चाहिये । अब तृतीय भेदका वर्णन करते हैं—असिद्ध भी सिद्ध निकट होनेसे जन्म सिद्धतासे कहाजाता है, तब भावी भी वर्त्तमानके सदृश जानना चाहिये, जैसे केवली अर्थात् त्रयोदश १३ के सयोगकेवली नामक गुणस्थानमें विराजमान केवलज्ञानके धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान् सिद्ध अर्थात् कर्मरूप दोषोंकी जो पुष्टि है, उससे रहित समावित होता है । भाषार्थ—वर्त्तमान दशामे जिन अवस्था विद्यमान है, कुछ कालके पश्चात् सिद्ध अवस्था होनेवाली है, यह सिद्धान्तथा इस वर्त्तमान जिन अवस्थामें उदयको प्राप्त नहीं हुई है, तथापि आरोपके बलसे यह केवली (श्रीजिनेन्द्र) सिद्ध है, इस प्रकार भावी जो सिद्ध अवस्थारूप निषय है, वह वर्त्तमान निषयपनेसे ग्रहण कियागया इस कारण यह भावी नैगमनामक नैगमनयका तृतीय भेद है । यहापर श्रीजिनेन्द्र किसी अंशमें तो सिद्ध और किसी अंशमें असिद्ध ऐसे सिद्धासिद्धरूप है, तो भी वर्त्तमान नैगमसे उनको सिद्धके समान जानना चाहिये ॥ १० ॥

अथैतस्यैवोदाहरणं पक्षान्तरव्युदासाय प्रकटीकरोति ।

अब अन्य पक्षोंके निरासार्थ इसी नैगमका पुनः उदाहरण देते हैं ।

सूत्रम् । आरोपाद्वर्त्तमानश्च यथाभक्तं पचत्यसौ ।

अत्र भूतक्रियां लात्वा भूतवाक्यं विलुप्यते ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—आरोपसे भूत तथा भविष्यत् भी वर्त्तमानके तुल्य ही होते हैं; जैसे यह भात पकाता है; यहांपर भूत क्रियाको वर्त्तमानरूपसे ग्रहण करके भूतकालिक वाक्यका प्रयोग नहीं करते ॥ ११ ॥

व्याख्या । आरोपाद्वर्त्तमानो भवति यथा असौ देवदत्तो भक्तं पचतीति वर्त्तमानता परमत्र भक्तस्य कियन्तोऽवयवाः सिद्धाः सन्ति, अथ च कियन्तश्चावयवाः सिद्ध्यमानाः सन्ति । परन्तु पूर्वापरभूतावयवक्रियायाः सन्तानो ह्येकबुद्ध्यारोप्यमाणो वर्त्तमानारोपोऽस्तीति । कथयति अत्र हि कश्चित् । आरोपसामग्रीमहिम्ना अवयवानां भूतक्रियां लात्वा पचतीति स्थाने अपाक्षीदिति प्रयोगं न करोति यतस्तदुक्तिः । नैयायिकस्तु चरमक्रियाध्वंसः पाक इत्यत्रातीतप्रत्ययविषयता तन्मते किञ्चित्पक्वम्, किञ्चिदपक्वम् पच्यत इति प्रयोगान्न भवितुमर्हति तस्मादत्र वर्त्तमानारोपनैगम एव भेदो ज्ञातव्यः । तेनैवात्र भूतक्रियां लात्वा भूतवाक्यं विलुप्यते तदसमञ्जसमेवेति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—आरोपसे भूत तथा भावी भी वर्त्तमान हो जाता है । जैसे यह देवदत्त भात पकाता है । यहांपर भातकी वर्त्तमानदशा प्रतीत होती है । परन्तु पाककालमें भातके कुछ अवयव तो सिद्ध (सीझे) हैं; और कितने ही अवयव सिद्ध होने (पकने) वाले हैं, तथापि पूर्व अपर अवयवभूत क्रियासमूहको एक बुद्धिमें आरोप करनेसे ‘पचति’ (पकाता है) यह वर्त्तमानत्वका आरोप है । ऐसा यहांपर कोई कहता है । और वह आरोपसामग्रीकी महिमासे अवयवोंकी भूतक्रियाको करके ‘पचति’ पकाता है इसके स्थानमें ‘अपाक्षीत्’ (पकाया) ऐसा प्रयोग नहीं करता है; इसीलिये उसका यह पूर्वोक्त कथन है । और नैयायिक तो अन्तिम क्रियाके नाशको पाक कहते हैं; अर्थात् तंडुलोंको चूल्हेपर रखनेसे आदिलेके जब तक अन्तिम क्रिया चांवलोंके सब अवयवोंको पकाकर नष्ट न होजाय तब तक पाक मानते हैं । इसलिये ‘पाक’ यहांपर भूतकालकी विषयता है । उनके मतमें चावलका कुछ अंश पक्व है; और कुछ अंश अपक्व है; इस दशामें “देवदत्तेन ओदनः पच्यते” देवदत्त चावल पकाता है; यह प्रयोग देखनेमें आता है; सो नहीं हो सकता । क्योंकि—अभी तक अन्तकी क्रियाका नाश तो हुआ ही नहीं, इस हेतुसे पचति इस स्थलमें भावि नैगमसे वर्त्तमानका आरो-

१ “वर्त्तमाने लट्” इस पाणिनीय ३।२।१२३। सूत्रसे वर्त्तमान कालमें लट् लकार होता है; और भूतकालमें लृट् होता है; वर्त्तमानमें “पचति” भूतमें “अपाक्षीत्” रूप होता है ।

पही उत्तम जानना चाहिये इसीसे यह भूतक्रियाको लाकर जो भूतवाक्यका लोप किया जाता है, वह असमजस ही है ॥ ११ ॥

अथ सग्रहनय विवृणोति ।

अब सग्रहनयका विवरण करते हैं ।

सूत्रम् । सङ्ग्रहो द्विविधो ज्ञेयः सामान्याच्च विशेषतः ।

द्रव्याणि चाविरोधीनि यथा जीवाः समे समाः ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—सामान्य तथा विशेषसे सग्रहनयके दो (२) भेद हैं, जैसे द्रव्य सत्र अविरुद्ध स्वभावा है, और सब जीव समान हैं ॥ १२ ॥

व्याख्या । सङ्ग्रहातीति सङ्ग्रह, अथवा सङ्ग्रहतेऽनेन सामान्यविशेषाविति सङ्ग्रह । स च द्विविध द्विप्रकार । तयोरेक सामान्यौघात् सामान्यसङ्ग्रह १ द्वितीयो विशेषाव्यक्ते-विशेषसङ्ग्रह २ इत्य द्विभेद । अथानयो प्रत्येकमुदाहरणे द्रव्याणि धर्मास्तिकायादीन्य विरोधीनि परस्परविरोधरहितानीत्यर्थ । एकद्रव्यसङ्गावे द्रव्यपट्टमेव प्राप्यत इति प्रथमोदाहरणम् ॥ १ ॥ यथा च जीवा सर्वेऽविरोधिनो जीवा हि ससृतिविपयिणि सिद्धिविपयिणश्चानन्ता वर्तन्ते तेषा निरुक्ति — जीवति चैतन्यादिति जीव । अथ च जीवप्राणधारणे तत्र प्राणा द्विधा द्रव्यभावभेदात्तत्र च द्रव्यप्राणा दश, भावप्राणश्चत्वार । मोक्षप्राप्तौ यद्यपि द्रव्यप्राणाना कर्मजन्याना सर्वथा क्षयस्तथापि जीवनलक्षणा जीवस्य भावप्राणा महचारिण कर्मासङ्गावेऽपि भवन्ति सिद्धानामपि जीवत्वाद्भावप्राणा भवन्त्यतो मुक्ता ससारिणश्च जीवाः । मुक्ता पुन पञ्चदशभेदा, ससारिणो देवनारकतिर्यङ्मनुष्यभेदाश्चतुर्धा तत्रान्तिमभेदयो पञ्चभेदास्तत्रापि मनुष्यस्य पञ्चाशद्विभक्षण एक एव भेद, तिरश्च एक स्मादारभ्य पञ्च यावत् । अक्षभेदादेकाक्षद्व्यक्षचतुरक्षपञ्चाक्षभेदात्पञ्च भवन्ति । एव भेदतोऽपि जीवा सर्वेऽविरोधिनः सङ्ग्रहाद्विशेषसङ्ग्रहभेद ॥ २ ॥ अथ च सङ्ग्रहस्वरूपमुपवर्णयन्ति । सामान्यमात्रग्राही परामर्श सङ्ग्रह इति, सामान्यमात्रमशेषविशेषरहितम् । स तु द्रव्यत्वादिक गृहातीत्येव शील । समेकीभावेन विशेषपरार्शि गृहातीति सङ्ग्रह । अयमर्थ स्वजातेदृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यङ्ग्रहण स सङ्ग्रह इति । अनुभेदानादर्शयन्ति । अयमुभयविकल्प परोऽपरश्चेति । तत्र परसङ्ग्रहमाहु । अशेषविशेषेष्वादासीन्य भजमान शुद्धद्रव्य सन्मात्रमभिमन्यमान परसङ्ग्रह इति परामर्श इति । अग्रे तनेऽपि योजनीयमुदाहरति । विश्वमेक सद्विशेषादिति यथेति । अस्मिन्ननुक्ते हि सन्ति ज्ञानाभिधानानुवृत्तिलिङ्गानुमितिसत्ताकत्वेनैकत्वमशेषायां सगृह्यते ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जो सग्रह करे अथवा जिसके द्वारा सामान्य तथा विशेष सग्रह किये जायें उसको सग्रहनय कहते हैं । वह दो प्रकारका है । उनमें प्रथम तो सामान्य ओघसे सामान्यसग्रहनामक भेद है, और द्वितीय विशेषसे व्यक्तिका सग्रह करनेसे विशेषसग्रह भेद है । इस रीतिसे सामान्य संग्रह और विशेष संग्रह यह दो (२) भेद सग्रहनयके हुवे । अब इन दोनोंमेंसे प्रत्येकके उदाहरण यह है, जैसे धर्मास्तिकायादि सत्र द्रव्य अनि

रोधी अर्थात् परस्पर विरोधरहित है। क्योंकि—एक द्रव्यके सद्भावमें छहों द्रव्योंकी प्राप्ति होती है। यह प्रथम सामान्यसंग्रहका उदाहरण है। तथा जैसे संपूर्ण जीव अविरोधी हैं। और संसृतिविषयी (संसारी) तथा सिद्धिविषयी (मुक्त) जीव अनन्त हैं। और उनकी निरुक्ति (व्युत्पत्ति) अर्थात् जीव शब्दका अर्थ यह है; कि—जो चैतन्यसे जीता है; उसको जीव कहते हैं। अथवा जीव धातुका अर्थ है; प्राण धारण करना और वह प्राण द्रव्य तथा भाव भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें भी द्रव्यप्राण तो दश १० हैं; और भाव प्राण चार ४ है। और जब जीवके मोक्षकी प्राप्ति होती है; तब यद्यपि कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जो दश १० द्रव्यप्राण हैं; उनका सर्वथा नाश हो जाता है; तथापि जीवके सहचारी जीवनरूप चारों ४ भावप्राण कर्मोंके अभावमें भी जीवके होते हैं; अर्थात् सिद्धोंके भी जीवत्व होनेसे इसलिये उनके भाव प्राण हैं; इसलिये जीव मुक्त तथा संसारी ऐसे दो प्रकारके हैं। फिर मुक्त जीवोंके भी पन्द्रह १५ भेद हैं। और देव नारक तिर्यञ्च और मनुष्य इन भेदोंसे संसारी भी ४ प्रकारके हैं। उनमें भी अन्तके दो भेदोंके अर्थात् तिर्यञ्च और मनुष्योंके पांच भेद हैं, उनमें भी मनुष्यका पञ्चेन्द्रियत्वरूप एक ही भेद है, तिर्यञ्च एकसे लेकर पांच तक है; अर्थात् इन्द्रियजनित भेदसे अर्थात् एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय इन भेदोंसे पांच प्रकारके होते हैं। इस रीतिसे यद्यपि जीव भेदसहित हैं; तथापि सब जीव अविरोधी हैं; अर्थात् जीवन धारण करनेमें किसी जीवका विरोध नहीं है। जीव द्रव्यविशेषका संग्रह करनेसे यह दूसरा भेद विशेष संग्रहनामक है। २। अब संग्रहनयके स्वरूपका वर्णन करते हैं। सामान्यमात्रका ग्रहण करानेवाला जो ज्ञान सो संग्रह है; संपूर्ण विशेषोंसे जो रहित है; उसको सामान्यमात्र कहते हैं; और वह द्रव्यत्वआदिको ग्रहण करनेवाले स्वभावका धारक है। तथा सम् अर्थात् ऐकीभावसे पिण्डीभूत विशेष राशिको जो ग्रहण करे वह संग्रह है। तात्पर्य यह कि—स्वकीय जातिसे जो दृष्ट तथा इष्ट हैं; उनके द्वारा संपूर्ण विशेषोंको जो एक ही रूपसे ग्रहण करे वह संग्रह है। अब इस संग्रहनयके भेदोंको दिखाते हैं। यह संग्रह दो विकल्पोंका धारक है। अर्थात् इसके दो भेद हैं। एक तो परसंग्रह और दूसरा अपरसंग्रह उनमें संपूर्ण विशेषोंमें उदासीन रहे और सत्तामात्रको शुद्ध द्रव्य माने ऐसा जो ज्ञान है; उसको परसंग्रह कहते हैं। आगे इसमें युक्त करने योग्य उदाहरण देते हैं। जैसे यह संसार सद्रूपसे एक है; अर्थात् सब संसार एक है, क्योंकि—सब संसारमें सत्पना एक ही है; उसमें कोई विशेष नहीं। और “विश्व एक है सत्में विशेष न होनेसे” ऐसा न भी कहें तो भी सत्तारूप ज्ञान सब पदार्थमें है, उस सत्स्वरूप ज्ञान तथा सत् शब्दके कथनकी

सर्वत्र अनुवृत्तिरूप लिंगसे अनुमानसिद्ध जो सर्वत्र सत्त्वरूप एकत्व है, उस सत्त्वरूप एकत्वसे सपूर्ण पदार्थोंका संग्रह होता है । तात्पर्य यह कि—इस परसंग्रहम एक सत्त्वरूपसे सपूर्ण वस्तुमात्रका ग्रहण होता है । इसीसे इस संग्रहनयके अनुसार यह कह सकते हैं, कि—यह सपूर्ण विश्व सत्त्वरूपसे एक है ॥ १२ ॥

अथ संग्रहनयभेद दर्शयन्नाह ।

अत्र इस पूर्वोक्त संग्रहनयके भेदक व्यवहारनयको दर्शाने हुण कहते हैं ॥

सूत्रम् । सङ्ग्रहभेदकव्यवहारोऽपि द्विविधः स्मृतः ।

जीवाजीवौ यथा द्रव्य जीवाः ससारिणः शिवाः ॥ १३ ॥

सूत्रभाषार्थः—संग्रहनयका भेदक जो विषय है, उसका दर्शक व्यवहारनय है, वह भी दो प्रकारका है, अर्थात् पूर्ववत् सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रह भेदक व्यवहार इस भातिसे व्यवहारके दो भेद हैं, कमसे दोनोंके उदाहरण यह हैं, कि—जैसे जीव और अजीव ये दोनों द्रव्य हैं । जीव दो प्रकारके हैं, ससारीजीव और मुक्तजीव इन भेदोंसे ॥ १३ ॥

व्याख्या । सङ्ग्रहस्य नयस्य यो भेदको विषयस्तस्य दर्शकः स व्यवहारनय कथ्यते । व्यवह्रियते सङ्ग्रहविषयोऽनेनेति व्यवहार । सोऽपि द्विविध द्विप्रकार स्मृत कथित । तस्यैव पूर्वोदितस्य सङ्ग्रहनयस्य भेदकवदस्यापि भेदभावना कर्त्तव्या । यत् एक सामान्यसङ्ग्रहभेदक व्यवहार १ द्वितीयो विशेषसङ्ग्रहभेदकव्यवहार २ एव भेदद्वयम् । अथ तयो-रुदाहरणे । तत्राद्यन्योदाहरतिर्यथा—जीवाजीवौ द्रव्यम् । अत्र जीवस्य चेतनस्याजीवस्याचे-तनस्य सङ्ग्रहसामान्यविषयत्वाद्द्रव्यमित्येवैव सद्भा, कथं—द्रवति तास्तान्पर्यायान्नाच्छतीति त्रिकालानुयायी यो वस्तुशक्तद्रव्यमिति व्युत्पत्त्या स्वगुणपर्यायवत्त्वेनोभयोरपि जीवाजीव योर्द्रव्यपद साधारणमित्यर्थात्जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति सामान्यसङ्ग्रहभेदकव्यवहार । १ । अथ जीवा ससारिण सिद्धाश्चात्र जीवानामनन्ताना चैतन्यवता ससारित्य सिद्धत्वं च विशेषव्यवहारोऽतो द्वितीयभेदो विशेषसङ्ग्रहभेदकव्यवहार । २ । एवमुत्तरोत्तरविवश्रया सामान्यविशेषत्व भावनीयम् ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—इस संग्रहनयका जो भेदक विषय है, उसके दर्शकको व्यवहारनय कहते हैं । संग्रहनयके विषयका व्यवहार जिसके द्वारा हो वह व्यवहारनय है, यह व्यवहार शब्दकी व्युत्पत्ती है । वह व्यवहारनय भी दो प्रकारका कहा गया है, तात्पर्य यह है, कि—उसी पूर्वोक्त संग्रहनयके भेदके समान इसकी भी भेदभावना करनी चाहिये क्योंकि—एक सामान्यसंग्रहनयका भेदक व्यवहारनय है । और द्वितीय विशेषसंग्रहका भेदक (विशेषसंग्रहके विषयको भिन्नरूपसे व्यवहार करनेवाला) व्यवहारनय है । इस प्रकार सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनय तथा विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय ये दो भेद

१ पद वा, ५१ वा, जीव वा, ६ तथा पुनः ५३ है, इन प्रचारम गमकी अनुवृत्ति गम्य है । उग अनुवृत्तिम निग हेतुमे सङ्ग मर्त्य है एमा गता दाता है ।

हुये । २ । अब इन दोनों भेदोंके उदाहरण कहते हैं । उनमें सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनयका उदाहरण यह है; कि—जैसे जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं, यहांपर चेतन जीव तथा अचेतन अजीव, इन दोनोंके संग्रहका सामान्य विषय होनेसे दोनों द्रव्य हैं । यह व्यवहार होता है । यदि यह कहो कि—चेतन तथा अचेतन दोनोंके विरुद्ध धर्म होनेसे एक द्रव्य संज्ञा कैसे हुई ? तो इस रीतिसे है; कि—द्रुधातुका गमन अर्थ है; उससे यत् प्रत्यय कहनेसे द्रु + य = द्रो + य = द्रव्य शब्द सिद्ध होता है । जो उनसे अनेक पर्यायोंमें प्राप्त हो वह द्रव्य है; अर्थात् संप्रति पर्यायोंमें त्रिकालमें अनुगामी जो वस्तुका अंश है; वह सर्वत्र अनुगत होनेसे द्रव्य है । इस व्युत्पत्तिसे अपने गुण पर्यायोंसे युक्त होनेसे जीव अजीव दोनोंका द्रव्य इस साधारण पदसे ग्रहण होता है, क्योंकि—जीव द्रव्य भी देव, मनुष्य, तथा सिद्ध, पर्यायोंको प्राप्त होता है; परन्तु चेतन जीवरूपता सब पर्यायोंमें अनुगत है, अजीव मृत्तिका सुवर्णआदि द्रव्य भी घट शराव तथा कुंडल कटकआदि पर्यायोंमें प्राप्त होता है; किन्तु मृत्तिका तथा सुवर्ण अंश सर्वत्र अनुगत है, इसलिये द्रव्य यह पद दोनोंकेलिये सामान्यसंग्रह है; उसमें जीवद्रव्य तथा अजीव द्रव्य यह सामान्यभेदक व्यवहारनय है; (अर्थात् द्रव्य सामान्यमें जीव और इस व्यवहारकेलिये इस नयने भेद कर दिया, इसी हेतुसे यह सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार नय प्रथम भेद है) और जीव संसारी तथा सिद्ध (मुक्त) दो प्रकारके होते हैं, इस कथनमें चेतनत्वधर्मयुक्त जीव जो अनन्त संख्यायुक्त है, उनका संसारित्व तथा सिद्धत्व यह विशेष व्यवहार है, तात्पर्य यह है; कि—द्रव्य सामान्यमें जो विशेष द्रव्य जीव है; उस जीव सामान्य द्रव्यमें भी संसारित्व तथा सिद्धत्व यह विशेषव्यवहार हुआ, इस हेतुमें यह विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय द्वितीय भेद है । इसी प्रकार उत्तरोत्तर विवक्षाके अनुसार सामान्यविशेषकी भावना करते चला जाना चाहिये जहांतक व्यवहारका अन्त नहीं है; वहां तक बराबर सामान्यविशेषभाव लगा है । जैसे संसारी तथा सिद्ध ये दो भेद होनेपर भी पुनः संसारीको सामान्य मानकर उनके देव मनुष्य नारक तथा तिर्य्यञ्च-अनेक भेद है, पुनः सामान्य देवोंके वैमानिक, व्यन्तर भवनवासीआदि अनेक भेद हैं, पुनः वैमानिकआदिके भी अनेक भेद हैं । ऐसे ही मनुष्यआदिके भेद, अवान्तर भेदका व्यवहार करते चले जावो । इस व्यवहार नयका यह प्रयोजन है; कि—सामान्य संग्रहसे व्यवहार नहीं चलता क्योंकि—केवल द्रव्य कहनेसे लोक व्यवहार नहीं चलता, द्रव्य लावो वा ऐसा कहनेसे यह आकांक्षा अवश्य होती है; कौन द्रव्य, जीव वा अजीव;

१ द्रव्यसामान्यकी अपेक्षासे तो जीवद्रव्य विशेष है, परन्तु सब प्रकारके जीव जैसे मनुष्य जीव देव जीव द्रव्याविवक्षासे जीव भी सामान्य है । २ इसलिये सब जीवकी अपेक्षासे जीव सामान्य तथा विशेष अपेक्षाभेदसे हैं ।

उस जीवआदि द्रव्यमें भी कोन जीव ससारी अथवा सिद्ध, ससारीमें भी कोन मनुष्य मनुष्यांमं भी कोन मनुष्य जेन अथवा वैष्णव इत्यादि रीतसे सर्वत्र सामान्य विशेषभाव की व्यवस्था समझ लेना ॥ १३ ॥

अथ ऋजुसूत्रनयस्य भेदमाह ।

अत्र ऋजुसूत्रनामकं चतुर्थं नयके भेदको कहते हैं ।

सूत्रम् । स्थानुकूल वर्त्तमान ऋजुसूत्रो हि भाषते ।

तत्र क्षणिकपर्याय सूक्ष्मः स्थूलो नरादिकम् ॥ १४ ॥

सूत्रभाषार्थः—अपने अनुकूल केवल वर्त्तमान कालवर्त्ती विषयको ऋजुसूत्र नय कहता है, उसमें भी सूक्ष्म क्षणिकपर्यायको और स्थूल मनुष्यआदिको कहता है ॥ १४ ॥

व्याख्या । हि निश्चित ऋजुसूत्रो नयो वर्त्तमान केवलमतीतानागतकालरहित भाषते मनुते । तदपि कीदृश स्थानुकूल स्वस्यात्मनोऽनुकूल कार्यप्रत्यय मनुते परन्तु परप्रत्यय न मनुते । सोऽपि ऋजुसूत्रो द्विभेदो द्विप्रकार एक सूक्ष्मऋजुसूत्र, अपर स्थूलऋजुसूत्र । तत्र सूक्ष्मस्तु क्षणिकपर्याय मनुते, क्षणिका पर्याया परतोऽवस्थान्तरभेदात्पर्यायाणां स्ववर्त्तमानताया अक्षणावस्थायित्वमेवोचितमिति । स्थूलस्तु मनुष्यादिपर्याय वर्त्तमान मनुतेऽतीतानागतादिनारादिकपर्याय न मनुते । यो हि व्यवहारनय कालत्रयवर्त्तिपर्यायमाहक स्वरूपात्स्थूलऋजुसूत्रो व्यवहारनयेन सपरत्वं न लभते । अथ च ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयत्रमिप्राय ऋजुसूत्रनय इत्यतीतानागतकालक्षणकौटिल्यवैकल्यात्प्राञ्चलमिति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—निश्चयरूपसे ऋजुसूत्रनय भूत भविष्यसे रहित केवल वर्त्तमान कालको स्वीकार करता है, और वह भी अपने आत्माके अनुकूल कार्यके प्रत्ययको मानता है, न कि—पर प्रत्ययको । यह ऋजुसूत्र नय भी दो प्रकारका है, एक सूक्ष्म ऋजुसूत्र और दूसरा स्थूलऋजुसूत्र । उनमेंसे सूक्ष्मऋजुसूत्र क्षणिक पर्यायको मानता है, क्योंकि—इस नयकी अपेक्षासे सत्र पर्याय क्षणिक है, अथकी अपेक्षासे अवस्थान्तरका भेद होनेसे पर्यायोंकी निजवर्त्तमानतामें क्षणिकस्थायिताका मानना ही उचित है । और स्थूलऋजुसूत्र वर्त्तमान मनुष्यादि पर्यायको मानता है, और अतीत तथा अनागत (भविष्य) नारा आदि पर्यायको नहीं मानता है । जो व्यवहार नय है; वह त्रिकालवर्त्ती पर्यायोंका ग्राहक है, इस कारण उस व्यवहारनयके साथ स्थूलऋजुसूत्र सकर दोषताको नहीं प्राप्त होता क्योंकि—भूतभविष्यरूप कुटिलता दोषसे रहित ऋजु (सरल) केवल वर्त्तमानक्षणस्थायी पर्यायमात्रको सूचित (ग्रहण) करनेरूप जिम नयका प्रधानतासे अभिप्राय है, उसको ऋजुसूत्र कहते हैं ।

अथ शब्दनयमाह ।

अव शब्दनयको कहते हैं ।

सूत्रम् । शाब्दिको मनुते शब्दं सिद्धं धात्वादिभिस्तथा ।

भिन्नं समभिरूढाख्यः शब्दमर्थं तथैव च ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—शब्दनय धातुआदिसे सिद्ध शब्दोंको स्वीकार करता है; परन्तु लिंगवचनादिद्वारा शब्दभेदसे अर्थका भेद मानता है; और ऐसे ही समभिरूढनय अर्थ भेद होनेसे शब्दभेद अवश्य मानता है ॥ १५ ॥

व्याख्या । शाब्दिकः शब्दनयो धात्वादिभिः प्रकृतिप्रत्ययादिविभागेन व्युत्पन्नं शब्दं सिद्धं मनुते परन्तु लिङ्गवचनादिभेदेनार्थस्य भेदं मनुते । यथा—तटः, तटी, तटमिति लिङ्गत्रयभेदादर्थभेदः, तथा आपो जलमित्यत्र बहुवचनैकवचनभेदादर्थभेद इति । अयं हि शब्दनयः ऋजुसूत्रनयं प्रतीदं वक्ति यत्कालभेदेन त्वमर्थभेदं मनुते तर्हि लिङ्गादिभेदेनार्थभेदं प्रस्तुतमपि कथं न मनुते इति । अथ समभिरूढनयमाह । समभिरूढाख्यो नयः शब्दं भिन्नं पुनश्चार्थमपि भिन्नं मनुते । शब्दभेदेऽर्थभेद इति ब्रुवन्नसौ शब्दनयं प्रतिक्षिपति । तथा हि—यदि भवांलिङ्गादिभेदेनार्थभेदमङ्गीकरोति तदा शब्दभेदेनार्थभेदमपि कथं नाङ्गीकरोति तस्माद् घटो भिन्नार्थः, कुम्भो भिन्नार्थः, शब्दभेदादर्थभेद इति । शब्दार्थयोरैक्यं यदस्ति तत्तु शब्दादिनयानां वासनया वर्तते शब्दनयस्यैव भेद इति ज्ञेय इति । अथ च पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढ इति । शब्दनयो हि पर्यायाभेदेऽप्यर्थभेदमभिप्रैति, समभिरूढस्तु पर्यायभेदे भिन्नानर्थानभिमान्यते । अभेदं त्वर्थगतं पर्यायशब्दानामुपेक्ष्यत इति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—शब्दनय धातु, प्रकृति तथा प्रत्ययआदिके विभागसे व्युत्पन्न शब्दको सिद्ध मानता है; परन्तु लिंग, वचन, तथा धातुआदिके भेदसे अर्थका भेद मानता है । जैसे तटः यह पुल्लिंग, तटी यह स्त्रीलिंग तथा तटम् यह नपुंसकलिंगमें रूप होता है । यहां तीनों लिंगोंमें शब्दके स्वरूपमें भेद होनेसे अर्थका भेद मानता है । और आपः तथा जलम् ये दोनों शब्द यद्यपि पर्याय (एकार्थवाचक) हैं; तथापि अप् शब्द नित्य स्त्रीलिंग ही है; और बहुवचन है; और जल शब्द नपुंसकलिंग तथा एकवचन है; इस हेतुसे (बहुवचन तथा एकवचनके भेदसे) अर्थ भेद है । और यह शब्दनय ऋजुसूत्रनयके प्रति यह कहता है; कि—यदि तुम कालके भेदसे पदार्थका भेद मानते हो तो लिंग, वचनआदिके भेदसे उपस्थित जो पदार्थभेद है; उसको भी क्यों नहीं मानते ? अब समभिरूढनामक नय शब्दको भिन्न और अर्थको भिन्न मानता है; क्योंकि—शब्दका भेद होनेपर अर्थका भेद है; ऐसा कहता हुआ यह नय शब्दनयके प्रति आक्षेप करता है; सो ही दिखाते हैं; कि—यदि आप लिंगादिके भेदसे अर्थ भेद मानते हो तो शब्दके भेदसे अर्थके भेदको भी क्यों नहीं अङ्गीकार करते ? शब्दभेदसे अर्थभेद अवश्य है; इसलिये घट

शब्द भिन्न अर्थवाचक है, और कुम्भशब्द भिनार्थवाचक है, क्योंकि—शब्दके घटभेदसे और कुम्भके अर्थमें भेद है, और शब्द तथा अर्थकी जो एकता है, वह तो शब्दभादि नयकी वासनासे है, अर्थात् वह एकता शब्दनयका ही भेद है, ऐसा समझना चाहिये और पर्याय शब्दोंमें व्युत्पत्तिके भेदसे अर्थके भेदको जो आरूढ करे वह समभिरूढ कहलाता है, यह इसका लक्षण है, जैसे—समर्थ होनेसे शक्र (शक्रनात् शक्र) अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंसे समुक्त होनेसे इन्द्र (इन्द्रति ऐश्वर्यं प्राप्नोतीति इन्द्र) शत्रुओंके नगरोंको विदारण करनेसे पुरंदर (पू दारयतीति पुरन्दर) इत्यादि समभिरूढ नयके उदाहरण समझने चाहियें । शब्दनय तो पर्यायके अमेदमें भी लिंग वचनआदिके निमित्तसे अर्थभेद मानता है, और समभिरूढनय तो पर्यायोंके भेदमें भिन्न २ अर्थोंको स्वीकार करता है, जसा कि—पूर्व उदाहरणोंसे दर्शा चुके हैं । और जो अर्थनिष्ठ अमेद पर्यायवाचक शब्दोंका है, वह तो अर्थात् (अर्थसे) प्राप्त होगा जैसे शक्र, इन्द्रआदि शब्दोंका उन उन कार्योंसे भेद रहते भी उसी शचीके पतिरूप अर्थको सत्र कहते हैं ॥ १५ ॥

अथैवभूतनय प्रकाशयन्ति ।

अब एवभूतनयका प्रकाश करते हैं ।

सूत्रम् । क्रियापरिणतार्थ चेदेवभूतो नयो वदेत् ।

नवाना च नवाना स्युर्भेदाः सिद्धिद्वगुन्मिताः ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—क्रियाके परिणाम कालर्म जो अर्थ हो उसको एवभूत सत्तम नय कहता है, इस प्रकारसे द्रव्यार्थिकभादि नय ९ नयोंके भेद सिद्धि ८ और दृक् (दृष्टि) २ “ अद्वाना वामतो गति ” इस न्यायसे २ और ८ अर्थात् अष्टाईस भेद हैं ॥ १६ ॥

व्याख्या । यथा—एवभूतो नय शब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवभूत इति । समभिरूढनयो हीन्दनान्क्रियाया सत्यामसत्या च वासवादेरर्थस्येन्द्रान्द्रिव्यपदेशमभिप्रेति, पशुविशेषस्य गमनक्रियाया सत्याममत्या वा गोव्यपदेशवत्तथा रुढे सद्भावात् । एवभूत पुनरिन्दनान्क्रियापरिणतमर्थं तत्क्रियाकाल इन्द्रादिव्यपदेशभाजमभिमन्यते । न हि पश्चिद्विद्यान्त्रोऽप्यस्ति । गौरश्च इत्यादिजातिशब्दाभिमतानामपि क्रियाशब्दत्वाद्गच्छतीति गाँ, आगुगामित्वाद्गच्छ, इति क्रियापरिणतार्थं क्रियाया परिणतमर्थं वदेत् क्रियासमय एव मनुते । परन्तु क्रियासमयमुद्घात १ मनुत इति भावार्थं यथा राजा इति सभाया सत्या छत्रे शिरसि धियमाणे धामराध्या च वीज्यमाने सत्येन व्यपदेश लभते । अन्यत्र ज्ञानान्त्रियेलाया समाह्वयचामगदिमिस्तथिहैरसङ्गी राजापि नास्तीति । अथ च गुणशब्दा अपि शुद्धो नील इत्याख्यो गुणशब्दाभिमता शब्दा क्रिया एव, पृथिव्यपदेशात् शुद्धो नीलनाम्रील इति । न्येवत्तो यशस्त इति यशस्तशब्दाभिमता अपि क्रियाशब्दान्त्रे एव देयादिति । रायोगिद्रव्यशब्दा समवायिद्रव्यशब्दाभिमता क्रिया

शब्दा एव “दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी”, विषाणमस्यास्तीति विषाणीत्यत्र क्रियाप्रधानत्वान् । पञ्चतयी तु शब्दानां व्यवहारमात्रा न निश्चयादित्ययं नयः स्वीकुरुते । उदाहरन्ति यथेन्दनमनुभवन्निन्द्रः, शकनक्रियापरिणतः शक्रः, पूर्वार्णप्रवृत्तः पुरन्दर इत्युच्यते ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे एवंभूतनय शब्दोंको प्रवृत्तिनिमित्त भूतक्रियासे आविष्ट (युक्त) अर्थको ही वाच्यत्वरूपसे स्वीकार करता है; इसलिये यह एवंभूतनामक है; अर्थात् जिस क्रियारूपमें परिणत अर्थ है; यही वाच्य है । और समभिरूढनय तो इन्द्रनादि क्रिया अर्थात् ऐश्वर्य साहित्य हो वा न हो वासवआदि शब्दोंकी इन्द्रआदि शब्द वाच्यताको अंगीकार करता है; जैसे पशुविशेष (गो)में गमनआदि क्रिया हो वा न हो गो व्यपदेश (कथन) होता है; क्योंकि—ऐसे ही रूढिका सद्भाव होता है; और एवंभूत नय तो इन्द्रन अर्थात् ऐश्वर्यआदिके साहित्यरूप क्रियामें परिणत जब अर्थ है; उस क्रियाके कालमें ही इन्द्रआदि नामको मानता है; और इस एवंभूतनयकी अपेक्षासे कोई अक्रियाशब्द अर्थात् क्रियावाचक न हो ऐसा शब्द नहीं है; क्योंकि—इस नयके अनुसार गो, अश्वआदि शब्द जो जातिवाचकरूपसे इष्ट हैं; वे भी क्रियावाचक हैं; जैसे गमन क्रिया करनेसे गौ, और शीघ्र गमन करनेसे अश्व इस प्रकारसे क्रियापरिणत अर्थको कहता है; और उस अर्थको भी क्रियाके समयमें ही मानता है; और क्रियाके समयको उल्लंघन करके उस अर्थको नहीं मानता तात्पर्य यह है; कि—जैसे “ राजते (शोभते) इति राजा ” अर्थात् छत्र चामरआदिसे जो शोभित हो वह राजा है; यहांपर राजन् शब्दकी पूर्व कथित व्युत्पत्तिसे जब कोई मनुष्य सभामें स्थित होगा और उसके मस्तकपर छत्र धरा हुआ होगा और दो चमरोंसे झूल रहा (वीजित) होगा तभी वह राजा इस व्यपदेशको प्राप्त होता है; और स्नानआदिके समयमें जब कि—सभा; छत्र, चामरआदि राजाके चिन्ह नहीं है; उस समय वही मनुष्य राजा नहीं है; और शुक्र, नील इत्यादिक शब्द गुणवाचकरूपसे अभीष्ट हैं; वे भी इस नयके अनुसार क्रियाशब्द ही हैं; जैसे शुचि होनेसे शुक्र, नील रंग करनेसे नीलआदि भी क्रियाशब्द ही हैं । देवदत्त, यज्ञदत्त आदि जो यहच्छा (संज्ञा वा नामवाचक) शब्दरूपसे अभीष्ट हैं; वह भी क्रियाशब्द ही हैं; जैसे देव इसको देवे, इत्यादि क्रियारूपता इनमें भी विद्यमान है; तथा संयोगी द्रव्यवाचक शब्द तथा समवायी द्रव्यवाचक शब्द अर्थात् संयोग संवन्धसे द्रव्यवाचक और समवाय संवन्धसे द्रव्यवाचकत्वरूपसे जो इष्ट हैं, वह भी इस नयके अनुसार क्रियाशब्द ही हैं; जैसे—दंड है; जिसके वह दंडी तथा जिसके विषाण (शृंग) सींग है; वह विषाणी इत्यादि शब्दोंमें भी क्रियाकी प्रधानता है । और जाति, गुण, संज्ञा, द्रव्य, तथा क्रिया इन पांच प्रकारसे जो शब्दोंकी प्रवृत्ति कही गई है; वह तो केवल व्यवहारनयसे है; न कि—निश्चयनयसे ऐसा यह नय मानता है; और इसी व्यवस्थासे अर्थात् संपूर्ण शब्दोंकी

क्रियावाचकताके अनुसार ही प्रवृत्ति है, ऐसा उत्पत्ति भी देता है, जैसे इन्द्र मजा तभी हो सकती है, जब वह इन्द्रन (पृथ्वीको) अनुभव करता हो ऐसे ही शक्रन (सामर्थ्य संपादनरूप) क्रियाम जब परिणत है, तभी शक्र आर इमी गतिमे पुर (शत्रुके) दारण-म जब प्रवृत्त है, तभी पुरन्दर कहा जाता है ॥ १६ ॥

अथ व्याख्यासमाप्तिर्नयाना कृता तथैवाह ।

अथ जो नो नयोकी व्याख्याकी समाप्ति की है, उसीको कहते हैं ।

सूत्रम् । नया नवैते कथितास्तथोपनयास्त्रय सारतमाः श्रुतस्य ।

विज्ञाय तानेव बुधाः श्रयन्ता जिनक्रमाभोजयुगाश्रय सत् १७

सूत्रभाषार्थः—यह शास्त्रके सारभूत नव ९ नय तथा तीन ३ उपनय कहे गये हैं, बुद्धिमान् उन्हीको पूर्णरूपसे जानकर सद्रूप (सर्वरूपसे समर्थ) श्रीजिनदेवके चरण कमलपुगलका आश्रय ग्रहण करें ॥ १७ ॥

व्याख्या । नयाना नवसद्व्याकाना नयाना द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नैगम ३ समूह ४ व्यवहार ५ ऋजुमूत्र ६ शब्द ७ समभिरूढ ८ एवभूत ९ मुख्याना भेदा प्रकारा सिद्धि अनुष्मिता १० प्रमिता मंथं स्युर्भवन्ति । तत्र द्रव्यार्थिको नैगमेद, पर्यायार्थिक पदेद, नैगमस्त्रिभेद, समूहो द्विभेद, व्यवहारो द्विभेद, ऋजुमूत्रो द्विभेद, शब्द एकभेद, समभिरूढ एकभेद एवमेतेषा भेदा अष्टाविंशति । अयान्त्यनमस्कार प्रकृतप्ररूपण तामो-त्कीर्त्तनमप्याह । एते पूर्वव्याचर्यमाना नया नव सत्यया, तथा तेन प्रकरणोपनया त्रयोऽमे वक्ष्यमाणाश्च श्रुतस्य श्रीवीतरागनेवप्रणीतागमस्य सारतमा अतिशयेन प्रधाना सारतमा वर्त्तन्ते । हृदुक्तमाश्रये नियुक्ता । एहिं त्रिविधा पञ्चवर्णा मुक्त अथ कर्णाय । इह पुण अपुण भवगमो अहिगारो तीहिं उस्सुत्र । १ । इति तानेव नया विज्ञाय शास्त्रा बुधा बुधिय सत्त्वर्त समर्थ जिनक्रमाभोजयुगाश्रय श्रयन्तामित्यर्थ ॥ १७ ॥

इति श्रीश्रुतिभोजमागर्निर्णिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया पटोऽध्याय । ६ ।

व्याख्यार्थ —द्रव्यार्थिक १ पर्यायार्थिक २ नैगम ३ समूह ४ व्यवहार ५ ऋजुमूत्र ६ शब्द ७ समभिरूढ ८ तथा एवभूत इन मुख्य ११ नयोंके दृक् (दृष्टि) तथा सिद्धि पार-मित अर्थात् अष्टाईम १० तत्र अगान्तर भेद है, उनमें द्रव्यार्थिकके दश १० भेद, पर्याया-र्थिकके पद् (छ) ६ भेद, नैगमके तीन ३ १०, समूहके दो २ भेद, व्यवहारके दो २ भेद, ऋजुमूत्रके दो २ भेद, शब्दका एक १ भेद, समभिरूढका एक १ भेद और एवभूतनयका भी एक १ भेद है, इस प्रकार यह सब मिलकर अष्टाईम २८ भेद है । अथ शास्त्रों श्रीजिनदेवके चरणोंका आश्रयरूप नमस्कार तथा प्रकृतप्ररूपण और शेषमे अपने तामसा भी बयन करते हैं । यह पूर्व प्रसंगों व्याख्यात संख्यामे नौ ९ तय तथा भिन्नका बयन आगे करोगे ऐसे तीन ३ उपनय यह मथ श्रुतके अर्थान् श्रीवीतराग जि-नप्रणीत शास्त्रके अन्यत्र प्रधान विषय हैं, अर्थान् अतिउपयोगी हैं, मो एव आश्रयक

निर्युक्तिमें कहा है; कि—दृष्टिवादनामक अंगमें सूत्र और अर्थके कथनकेलिये इनसे ही प्ररूपण है; और यहां मोक्षका अधिकार है; इसलिये अत्यन्तोपयोगी अर्थात् सारभूत हैं ॥ १ ॥ इस कारण इन नयोंको ही पूर्णरूपसे जान कर बुद्धिमान् प्राणी सब प्रकारसे समर्थ श्रीजिनदेवके चरणकमलयुगलका आश्रय करें ॥ १७ ॥

इतिश्रीठाकुरप्रसादशास्त्रिप्रणीतभापाटीकासमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगतर्कणायाम्
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथोपनयानां प्रकारमाह ।

अव उपनयोंके भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । त्रयश्चोपनयास्तत्र प्रथमो धर्मधर्मिणोः ।

भेदाच्छुद्धस्तथाशुद्धः सद्भूतव्यवहारवान् ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—तीन ३ उपनय हैं; उनमें प्रथम उपनय सद्भूतव्यवहार है; वह धर्म और धर्मीके भेदसे शुद्धसद्भूतव्यवहार तथा अशुद्धसद्भूतव्यवहार इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥ १ ॥

व्याख्या । तत्रेत्यधिकारसूचकविषयसप्तमीयम् । नयानां समीपमुपनयास्त्रयस्त्रिसंख्याकाः । तेषु त्रिषु प्रथम आद्यो धर्मश्च धर्मी च तयोर्भेदस्तस्मात् । धर्मधर्मिणोरसाधारणं कारणं धर्मः, स च धर्मोऽस्यास्तीति धर्मी तयोरितिद्वन्द्वसमासेन भेदात् द्विधा द्विप्रकारः । एतावता यः प्रथमोभेदो धर्मधर्मिभेदाज्जातः सोऽपि द्विविधो ज्ञेय एकः शुद्धोऽपरो द्वितीयोऽशुद्धः । कथंभूतः शुद्धस्तथाशुद्धश्च सद्भूतव्यवहारवान् सद्भूतयेत्तेनेति सद्भूतः, व्यवहियत इति व्यवहारः, सद्भूतश्च व्यवहारश्च सद्भूतव्यवहारौ । शुद्धाशुद्धौ तौ विद्येतेऽस्येति सद्भूतव्यवहारवान् । शुद्धयोर्धर्मधर्मिणोर्भेदाच्छुद्धसद्भूतव्यवहारः ॥ १ ॥ अशुद्धधर्मधर्मिणोर्भेदादशुद्धसद्भूतव्यवहारः ॥ २ ॥ सद्भूतस्त्वेकं द्रव्यमेवास्ति भिन्नद्रव्यसंयोगापेक्षा नास्ति । व्यवहारस्तु भेदापेक्षयेत्येवं निरुक्तिः ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—तत्र (उसमें) यह जो सप्तमी विभक्ति है; वह अधिकारके ज्ञापन (जनाने) केलिये है; अर्थात् अव उपनयोंका अधिकार है । नयोंके समीपवर्ती जो हैं वह उपनय हैं; वह तीन अर्थात् तीन संख्यायुक्त हैं, उन तीनोंमेंसे प्रथम भेद धर्म तथा धर्मीके भेदसे है; धर्म और धर्मी इन दोनोंमें जो असाधारण कारण है; उसको धर्म कहते हैं; वह असाधारण कारणरूप धर्म जिसके है; उसको धर्मी कहते हैं । धर्म तथा धर्मिन् शब्दका द्वन्द्व समास करनेसे “धर्मधर्मिणोः” ऐसा पाठ बना है । इन धर्म धर्मीके भेदसे उत्पन्न हुआ प्रथम भेद दो प्रकारका है । अर्थात् धर्म धर्मीके भेदसे जो प्रथम भेद हुआ है; वह भी दो प्रकारका जानना चाहिये । एक शुद्ध और दुसरा अशुद्ध । वह शुद्ध और अशुद्ध कैसा है; कि—सद्भूतव्यवहारसे युक्त है । सद् जिसके द्वारा हो उसको सद्भूत

कहते हैं । जिनके द्वारा व्यवहार किया जाय वह व्यवहार कहलाता है । सद्भूत तथा व्यवहार इन दोनों शब्दोंका द्वन्द्वसमास करके सद्भूतव्यवहार यह एक शब्द बना । यह शुद्ध तथा अशुद्ध सद्भूतव्यवहार जिसके हैं, वह सद्भूतव्यवहारवान् है । इनमेंसे शुद्ध धर्म धर्माके भेदसे तो उत्पन्न शुद्धसद्भूतव्यवहार और अशुद्ध धर्म धर्मके भेदसे उत्पन्न अशुद्धसद्भूतव्यवहारनामक सद्भूतव्यवहारका भेद है । सद्भूत तो एक द्रव्य ही है, उससे भिन्न द्रव्यके संयोगकी अपेक्षा नहीं है । और जो व्यवहार है, वह भिन्न द्रव्यके संयोगकी अपेक्षासे होता है । इस प्रकार सद्भूतव्यवहारशब्दकी व्युत्पत्ति (अर्थ) है ॥ १ ॥

उदाहरणमाह ।

अथ शुद्धसद्भूतव्यवहारका उदाहरण देते हैं ।

सूत्रम् । ज्ञान यथात्मनो विश्वे केवल गुण इष्यते ।

मतिज्ञानादयोऽप्येते तथैवात्मगुणा भुवि ॥ २ ॥

सूत्रभाचार्यः—जैसे इस ससारमें आत्माका केवलज्ञान गुण है, वैसे ही मति ज्ञान आदि भी पृथ्वीपर आत्माके ही गुण हैं ॥ २ ॥

व्याख्या । यथा विश्वे जगत्यात्मन केवल ज्ञान गुण इति पृष्ठीप्रयोग । इदमात्मद्रव्यस्य ज्ञानमिति । तथा मतिज्ञानादयोऽथात्मद्रव्यस्य गुणा इति व्यवहियते । केवलज्ञान यद्वर्तते स एव शुद्ध आत्मास्ति मत्यादयो ज्ञानानि केवलावरणविशेषिता व्यवहारा अशुद्धा लक्ष्यन्ते इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे इस ससारमें आत्माका केवलज्ञान गुण है, “आत्मन ” यह पृष्ठी निभक्तिका प्रयोग सूत्रमें किया है, अर्थात् यह केवलज्ञान आत्मद्रव्यका गुण है, इसी प्रकार मति ज्ञानआदि भी आत्मद्रव्यके ही गुण हैं, ऐसा व्यवहार लोकमें होता है । केवलज्ञान जो है, सो ही शुद्ध आत्मा है, केवलावरणविशिष्ट जो मति ज्ञानआदि हैं, वह व्यवहाररूप हैं, अतः अशुद्ध आत्मगुण है ॥ २ ॥

सूत्रम् । गुणो गुणी च पर्यायः पर्यायी च स्वभावतः ।

स्वभावी कारकस्तद्वानेकद्रव्यानुगा विधाः ॥ ३ ॥

सूत्रभाचार्यः—गुण, गुणी १ पर्याय, पर्यायी २ स्वभाव, स्वभावी ३ कारक तथा कारकान् ४ ये सब भेद एक द्रव्यकेही अनुगामी हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या । गुणो रूपादि, गुणी घट १ पर्याय मुद्राहुण्टलादि, पर्यायी पनकम् २ स्वभावो ज्ञानम्, स्वभावी जीव ३ कारकश्चन्द्राण्डादि, कारकी गुलाब ४ अथवा गुणगुणिनौ १ प्रियाप्रियावन्तौ २ जातिव्यपत्ति ३ नित्यद्रव्यविशेषां चेति ४ एव एवद्रव्यानुगत भेदा लक्ष्यन्ते । ते सर्वेऽप्युपनयनार्थां शातव्या । अत्रयवायविनायिति । अत्रयवायो हि यथाश्ममवयवव्याघ्राभित्ता एव तिष्ठन्तेऽपिनयन्तौ, निमित्तवदवस्थास्त्रागिता एव तिष्ठन्ति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—रूपआदि गुण है, वटआदि गुणी है; १ मुद्रा तथा कटक, कुंडल आदि पर्याय है, पर्यायी सुवर्ण है; जिसमें कि—कटक, कुंडलआदि पर्याय रहते हैं; २ ज्ञान स्वभाव है, और उस ज्ञानस्वभावका धारक जीव स्वभावी है; ३ चक्र (चाक) दंडआदि कारक है; और कारकवान् या कारकी कुंभकार (कुंभार) है; ४ अथवा दूसरी रीतिसे गुण, गुणी १ क्रिया, क्रियावान् २ जाति, व्यक्ति ३ तथा नित्यद्रव्य और उनके विशेष ऐसे ४ यह सब एक द्रव्यमे अनुगत भेद कहे जाते हैं । और उन सब गुण गुणीआदिको उपनयका अर्थ जानना चाहिये । अवयवआदि यथा क्रमसे अवयवीआदिके आश्रय रहते हैं, परन्तु जबतक नाशको प्राप्त नहीं होते तभीतक अवयव अवयवीआदि आश्रय आश्रयीभावसे स्थित रहते हैं । और विनाशको प्राप्त होते हुए तो अनाश्रित ही रहते हैं ॥३॥

अथासद्भूतव्यवहारं निरूपयति ।

अव असद्भूतव्यवहारका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । असद्भूतव्यवहारो द्रव्यादेरुपचारतः ।

परपरिणतिश्लेष, जन्यो भेदो नवात्मकः ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यादिके उपचारसे परवस्तुके परिणमनके संसर्गसे उत्पन्न असद्भूत व्यवहार है; और वह नव ९ प्रकारका है ॥ ४ ॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहार. स कथ्यते यः परद्रव्यस्य परिणत्यामिश्रितः, अर्थात् द्रव्यादे-
र्धर्माधर्मादेरुपचारत उपचरणात्परपरिणतिश्लेषजन्यः परस्य वस्तुनः परिणतिः परिणमनं
तस्य श्लेषः संसर्गस्तेन जन्यः परपरिणतिश्लेषजन्योऽसद्भूतव्यवहारः कथ्यते । अत्र हि शुद्ध-
स्फटिकसंकाशजीवभावस्य परगच्छेन कर्म तस्य परिणतिः पञ्चवर्णादिरौद्रात्मिका तस्याः श्लेषो-
जीवप्रदेशैः कर्मप्रदेशसंसर्गस्तेन जन्य उत्पन्नः परपरिणतिश्लेषजन्योऽसद्भूतव्यवहाराख्यो
द्वितीयो भेदः कथ्यते । स नवधा नवप्रकारो भवति । तथा हि—द्रव्ये द्रव्योपचारः १ गुणे
गुणोपचारः २ पर्याये पर्यायोपचारः ३ द्रव्ये गुणोपचारः ४ द्रव्ये पर्यायोपचारः ५ गुणे द्रव्योप-
चारः ६ गुणे पर्यायोपचारः ७ पर्याये द्रव्योपचारः ८ पर्याये गुणोपचारः ९ ॥ इति सर्वोऽप्य-
सद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः । अत एवोपचारः पृथग्नयो न भवति । मुख्याभावे सति प्रयो-
जने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते । सोऽपि संवन्धाविनाभावः श्लेषः संवन्धः । परिणाम-
परिणामिसंवन्धः; अद्धाश्रद्धेयसंवन्धः, ज्ञानज्ञेयसंवन्धश्चेति । भेदोपचारतया वस्तु व्यव-
हियत इति व्यवहारः । गुणगुणिनोर्द्रव्यपर्याययोः संज्ञासंज्ञिनोः स्वभावतद्वतोः कारकत-
द्वतोः क्रियातद्वतोर्भेदादभेदकः सद्भूतव्यवहारः । शुद्धगुणगुणिनोः शुद्धद्रव्यपर्याययो-
र्भेदकथनं शुद्धसद्भूतव्यवहारः । तत्र उपचरितसद्भूतव्यवहारः सोपाधिकगुणगुणि-
नोर्भेदविषय उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः । निरुपाधिकगुण-
गुणिनोर्भेदकोऽनुपचारी सद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः ३ शुद्धगुण-
गुणिनोर्शुद्धद्रव्यपर्याययोर्भेदकथनमशुद्धसद्भूतव्यवहारः ४ इत्यादिप्रयोगवशाज्ज्ञेयमिति ॥४॥

व्याख्यार्थः—असद्भूतव्यवहार उसको कहते हैं; कि—जो परवस्तुके परिणामसे मिश्रित

रहता है, अर्थात् धर्म अधर्मआदि जो द्रव्य है, उनके उपचारसे जो परवस्तुका परिणाम है, उस परिणामके ससर्गमे उत्पन्न असद्भूतव्यवहार कहा जाता है । यहापर शुद्ध स्फटिकमणिसे समान जीवभावका ग्रहण है । उस जीवभावका परवस्तु कर्म है, उसकी परिणति पचपर्णादि रोद्रात्मिका है, उस पचपर्णादि रोद्रस्वरूप परिणतिका सन्ध जीव प्रदेशोंके साथ कर्मप्रदेशोंका ससर्ग होना है, उस परपरिणतितसे जन्य अर्थात् उत्पन्न असद्भूतव्यवहारनामक द्वितीय भेद कहा गया है । और वह असद्भूतव्यवहार नौ ९ प्रकारका है, जैसे द्रव्यमे द्रव्यका उपचार १ गुणमे गुणका उपचार २ पर्यायमे पर्यायका उपचार ३ द्रव्यमे गुणका उपचार ४ द्रव्यमे पर्यायका उपचार ५ गुणमे द्रव्यका उपचार ६ गुणमे पर्यायका उपचार ७ पर्यायमे द्रव्यका उपचार ८ तथा पर्यायमे गुणका उपचार यह नौ ९ भेद असद्भूतव्यवहारके हैं ॥ इस प्रकार इन सत्र भेदोंको असद्भूतव्यवहारका ही अर्थ समझना चाहिये । असद्भूतमे अन्तर्भाव होनेसे ही उपचार प्रथम् नय नहीं होता है, क्योंकि—मुख्यके अभावमें प्रयोजन तथा निमित्तमे उपचारकी प्रवृत्ति होती है । और वह उपचार भी एक अविनाभाव (व्याप्ति) रूपसन्ध ही है । जैसे कि—परिणामपरिणामिभावसन्ध, श्रद्धाश्रद्धेयभावसन्ध, तथा ज्ञानज्ञेयभावसन्ध । जिसमे भेदके उपचारसे वस्तुका व्यवहार किया जाय सो व्यवहार है । जैसे गुण गुणीका, सज्ञा सज्ञी (नाम नामी) का, स्वभाव म्यभावगान्का, कारक कारकगान् तथा क्रिया और क्रियावान्के भेद रहनेपर भी जो अभेदक है, अर्थात् अभेद दर्शाता है, वह सद्भूतव्यवहार है । और शुद्ध गुण गुणी, तथा शुद्ध द्रव्य और पर्यायका जो भेदका कथन है, वह शुद्धसद्भूतव्यवहार है । उसमे भी उपाधिसहित गुण गुणीके भेदनिपयक जो है, वह उपचरितसद्भूतव्यवहार है, जैसे जीनके मति ज्ञानआदि गुण हैं । और उपाधिरहित गुण गुणीके भेदका कथन करनेवाला अनुपचरित सद्भूतव्यवहार है, जैसे जीनके केवलज्ञानआदि गुण हैं । यहा पूरमे तो जीन कर्मआदि उपाधिसहित है, उसका तथा उसके मति ज्ञानआदि गुणोंका भेद दर्शाया गया है, और अन्तके उदाहरणमे जीन कर्मादि उपाधियोंसे रहित विवक्षित है, अत एव उपाधिरहित जीन गुणी तथा केवलज्ञानआदि उसके गुणोंका भेद अनुपचरितसद्भूत उपनयसे दर्शाया गया है । तथा शुद्ध गुण गुणी और अशुद्ध द्रव्य पर्यायके जो भेदका कथन है, वह अशुद्धसद्भूतव्यवहार है ॥ इत्यादि अन्य भी प्रयोगके अनुसार समझ लेना ॥ ४ ॥

अथ नयभेगात्सद्भूतव्यवहारजन्यान्विशृणोति ।

अत्र जो असद्भूतव्यवहारमे उत्पन्न ना ९ भेद हैं, उनका निरण करने हैं ।

सूत्रम् । द्रव्ये द्रव्योपचारो हि यथापुद्गलजीवयो ।

गुणे गुणोपचारश्च भावद्रव्यारपलेष्ठययोः ॥ ५ ॥

सूत्रभावायर्थः—पुद्गलमे जीवका जो मानना है; सो तो द्रव्यमें द्रव्यका उपचार है; भावलेश्याके जो द्रव्यलेश्याका कथन करना है; सो गुणमे गुणका उपचार है ॥ ५ ॥

व्याख्या । हि निश्चितं द्रव्ये गुणपर्यायवति वस्तुनि द्रव्योपचारः । द्रव्यस्य प्रस्तुतस्योपचार उपचरणमात्रधर्मः । यथेति दृष्टान्तः । श्रीजिनस्यागमे पुद्गलजीवयोरैक्यं जीवः पुद्गलरूपः पुद्गलात्मकः । अत्र जीवोऽपि द्रव्यम्, पुद्गलोऽपि द्रव्यम्, उपचारेण जीवः पुद्गलमय एवासद्भूतव्यवहारेण मन्यते न तु परमार्थतः । यथा च क्षीरनीरयोर्न्यायान् । क्षीरं हि नीरमिश्रितं क्षीरमेवोच्यते व्यवहारादेवमत्र जीवद्रव्ये पुद्गलद्रव्योपचारः ॥ १ ॥ पुनर्गुणे गुणोपचारो गुणे रूपादिके गुणस्योपचारः । यथा भावलेश्याद्रव्यलेश्ययोरुपचारः । भावलेश्या ह्यात्मनोऽरूपी गुणस्तस्य हि यत्कृष्णनीलादिकथनं वर्तते तद्धि पुद्गलद्रव्यजगुणस्योपचारोऽस्ति । अयं ह्यात्मगुणस्य पुद्गलगुणस्योपचारो ज्ञातव्यः ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—निश्चय करके द्रव्यमें अर्थात् गुणपर्यायवान् वस्तुमें प्रस्तुत द्रव्यका उपचार अर्थात् धर्ममात्रका आरोप करना । यथा इस शब्दसे दृष्टान्त कहते हैं । जैसे श्रीजिनदेवके आगममें पुद्गल और जीवकी एकता है; अर्थात् जीव पुद्गलरूप है । यहां जीव भी द्रव्य है; और पुद्गल भी द्रव्य है; इसलिये उपचारसे जीव पुद्गलमय ही है; ऐसा असद्भूतव्यवहारसे माना जाता है; न कि—परमार्थसे । यहांपर जीवको पुद्गलरूपता क्षीर नीरके न्यायसे है; अर्थात् व्यवहारसे जलमिश्रित भी दुग्ध दुग्ध ही कहा जाता है; इसी प्रकार यहां भी जीवद्रव्यमे पुद्गल द्रव्यका उपचार (आरोप) है; तात्पर्य यह कि—जल दुग्धमें मिलकर दुग्धाकार हो जाता है; और दुग्धके ग्रहणसे ही उसका ग्रहण होता है; ऐसे ही पुद्गलमें मिलनेसे जीव भी पुद्गलाकार समझा जाता है । और गुण जो रूपआदि हैं; उनमें गुणका ही आरोप करना सो गुणमे गुणका उपचार है । जैसे भावलेश्यामे द्रव्यलेश्याका उपचार होता है । भावार्थ—भावलेश्या जो है; वह आत्माका अरूपी गुण है । उस आत्माके भावलेश्यानामक रूपरहित गुणको कृष्ण, नील इत्यादिरूपसे कहते हैं । और वह कृष्ण, नीलआदिरूप जो कथन है; सो पुद्गलसे उत्पन्न हुए गुणका उपचार है । इसको आत्माके गुणके पुद्गलके गुणका उपचार जानना चाहिये । क्योंकि—भावलेश्या तो आत्माका अरूपी गुण है; और कृष्ण नीलआदि पुद्गलके गुण हैं ॥ ५ ॥

सूत्रम् । पर्याये किल पर्यायोपचारश्च यथाभवेत् ।

स्कन्धा यथात्मद्रव्यस्य गजवाजिमुखाः समे ॥ ६ ॥

सूत्रभावायर्थः—पर्यायमे पर्यायका उपचार करना यह असद्भूतव्यवहारका तृतीय भेद है; जैसे आत्मद्रव्यपर्यायके तुल्य गज तथा अश्वआदि पर्यायस्कंध होते हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या । पर्याये पर्यायविषये नरत्वादिके पर्यायस्य तदादिकस्यैवोपचारः । यथात्मद्रव्यपर्यायस्य गजवाजिमुखाः पर्यायस्कन्धा उपचारादात्मद्रव्यस्य समानजातीयद्रव्यपर्यायास्तेषां

स्कन्धा कथ्यन्ते । ते चात्मपर्यायस्योपरि पुद्गलपर्यायस्योपचरणात्स्कन्धा व्यपदिश्यन्ते व्यवहारात् ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—पर्यायमे अर्थात् आत्मद्रव्यके मनुष्यआदि पर्यायमे मनुष्यआदि पर्यायका ही उपचार जो है, वह पर्यायमे पर्यायका उपचार कहलाता है । जैसे आत्म-द्रव्यपर्यायके हस्ती (हाथी) अथ (घोडा)आदि पर्यायस्कन्ध उपचारसे आत्माके समानजातीय (तुल्य) जो द्रव्य पर्याय है, उनके स्कन्ध (प्रदेश) कहे जाते हैं । और वह आत्माके पर्यायके ऊपर पुद्गलके पर्यायका उपचार करनेसे व्यवहारकी अपेक्षासे स्कन्ध-रूपसे व्यपदेशित होते हैं । ३ । ॥ ६ ॥

अथ द्रव्ये गुणोपचार ।

अथ द्रव्यमे गुणका उपचार दिखाने हैं ।

सूत्रम् । द्रव्ये गुणोपचारश्च गौरोऽहमिति द्रव्यके ।

पर्यायस्योपचारश्च अहं देहीति निर्णयः ॥ ७ ॥

सूत्रभाषार्थः—ओर मे गोर ह यह तो आत्मद्रव्यमे गुणका उपचार है, तथा मैं देही ह यह आत्माद्रव्यमे पर्यायका उपचार है ॥ ७ ॥

व्याख्या । यथाह गौर इति श्रुतात्महमित्यात्मद्रव्यम्, तत्र गौर इति पुद्गलस्योज्ज्वल-तारयो गुण उपचरित । ४ । अथ द्रव्ये पर्यायोपचार । अथवा 'अहं देहीति निर्णय' इत्यत्राहमित्यात्मद्रव्यम्, तत्रात्मद्रव्यविषये देहीति देहमस्यास्तीति देही । देहमिति पुद्गल-द्रव्यस्य समानजातीयद्रव्यपर्याय उपचरित । ५ । ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे मैं गोरवर्ण ह ऐसा कहनेवालोंकेलिये यहापर 'अहम्' यह आत्म-द्रव्य है, उसमे गोर इस पुद्गलके उज्ज्वल नाम गुणका उपचार किया गया है । अत्र द्रव्यमे पर्यायके उपचारका उदाहरण कहते हैं ।—जैसे कि—मैं देही ह अर्थात् मैं शरीर-वान् ह ऐसा निर्णय करना यहा "अहं देही" (मैं देहवाला ह) इस वाक्यमे "अहम्" पदसे आत्मद्रव्य विवक्षित है, उस आत्मारूप द्रव्यमें देही अर्थात् जिसके देह है, तो देह सहित होना यह पुद्गलद्रव्यके पर्यायका उपचार हुआ है ॥ ७ ॥

सूत्रम् । गुणे द्रव्योपचारश्च पर्यायेऽपि तथैव च ।

गौर आत्मा देहमात्मा दृष्टान्तौ हि क्रमात्तयो' ॥ ८ ॥

सूत्रभाषार्थः—गुणमे द्रव्यका उपचार यह पष्ठ ओर पर्यायमें गुणका उपचार यह सप्तम असद्भूतव्यवहार उपनयके भेद है । "आत्मा गोर है" यह पष्ठ नयका और देह आत्मा है, यह सप्तमका तमसे दृष्टान्त है ॥ ८ ॥

व्याख्या । गुणे द्रव्योपचारश्च तथा पर्याये गुणोपचारश्चैव द्वावुपनयासद्भूतव्यवहारस्य भेदौ । अथ तयोरेवानुक्रमेण दृष्टान्तौ । यथा "अयं गौरो दृश्यते स चात्मा" अत्र गौर मुदिश्यात्मनो विद्या प्रियते यत्तद्विद् गौरात्मारूपपुद्गलगुणोपचारोऽयम्योपचारपठन

मिति । पर्याये द्रव्योपचारो यथा “देहमित्यात्मा” अत्र हि देहमिति देहाकारपरिणतानां पुद्गलानां पर्यायेषु विषयभूतेषु चात्मद्रव्यस्योपचारः कृतः । देहमेवात्मा देहरूपपुद्गलपर्याय-विषय आत्मद्रव्यस्यापौद्गलिकस्योपचारः कृत इति सप्तमो भेदः । “अतति सातत्येन गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्यात्मा” अत्र पर्यायाणां द्रव्यभावभेदितानां गमनप्रयोगो यद्यपीष्टस्तथाप्य-सद्भूतव्यवहारविवक्षावलेनोपचारधर्मस्यैव प्राधान्याद्बहिः पर्यायावलम्बनेन कर्मजशुभाशुभ-पुद्गलपरिणतगौराख्यवर्णोऽपि लक्षित आत्मा भासते तदा गौर आत्मेति प्रतीतिर्जायते । अन्यथात्मनः शुद्धस्याकर्मणः कुतो गौरत्वध्वनिरत एवोपचारधर्मः देहमात्मेत्यत्र त्वादारिकादि-पुद्गलप्रणीतं देहमौदयिकेनाश्रित आत्मा उपलभ्यते तदा देहमात्मेत्युपचारध्वनिः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—गुणमें द्रव्यका उपचार, और पर्यायमें द्रव्यका उपचार यह दोनो क्रमसे पष्ठ तथा सप्तम असद्भूतव्यवहार उपनयके भेद हैं, अब इन दोनोंके क्रमसे उदाहरण यह हैं । जैसे “यह जो गौर देखनेमें आता है; वह आत्मा ही है” इस वाक्यमें गौरको उद्देश्य करके आत्मारूप द्रव्यका जो विधान किया जाता है; वह गौरतारूप पुद्गल द्रव्यके गुणके ऊपर आत्मद्रव्यका उपचारपठन है । अब पर्यायमें द्रव्यका उपचार जैसे यह देह आत्मा है; इस वाक्यमें “देहम्” देह आत्मा है; ऐसा कहनेमें विषयभूत जो देहके आकार पुद्गलोंके पर्याय हैं; उनमें आत्मद्रव्यका उपचार किया गया है; भावार्थ देह ही आत्मा है; यहां देहरूप पुद्गल पर्यायके विषयमें अपौद्गलिक अर्थात् पुद्गलमिन्न जो आत्मद्रव्य है; उसका उपचार किया गया है; ऐसा पर्यायमें द्रव्यका उपचाररूप सप्तम भेद है । ७ । अब आत्मा शब्द निरन्तरगमनार्थक अत् धातुसे मन् प्रत्यय लगानेसे बनता है; इसलिये उन २ पर्यायोंमें जो निरन्तर गमन करे वह आत्मा है । यहांपर द्रव्यभावसे भेदको प्राप्त पर्यायोंका यद्यपि गमनरूपसे प्रयोग इष्ट है; तथापि असद्भूत-व्यवहार उपनयकी विवक्षाके बलसे उपचार धर्मकी ही प्रधानता है, इसलिये बाह्यदेशमें पर्यायोंका अवलम्बन करनेसे कर्मोंसे उत्पन्न शुभ तथा अशुभ पुद्गलोंके परिणामरूप जो गौर(उज्ज्वल)नामा वर्ण है; वह भी देखा हुआ जब आत्मा भासता है; तब यह गौर आत्मा है; ऐसी प्रतीति उत्पन्न होती है, अन्यथा परमार्थमें शुद्ध तथा कर्मरहित आत्माके गौरपनेका कथन कहांसे हो सकता है । इसीलिये उपचार धर्म है । और “देहमात्मा” देह आत्मा है; यहांपर औदारिकआदि शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंसे शरीरकी औदयिकभावसे आश्रित आत्मा प्राप्त होता है; तब यह देह आत्मा है; ऐसे उपचारकी ध्वनि होती है ॥ ८ ॥

अथाष्टमभेदोत्कीर्त्तनमाह ।

अब अष्टम भेदका निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । गुणे पर्यायचारश्च मतिज्ञानं यथा तनुः ।

पर्याये गुणाचारोऽपि शरीरं मतिरिष्यते ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—गुणमें पर्यायका उपचार जैसे मतिज्ञान शरीर है, तथा पर्यायमें गुणका उपचार जैसे शरीर मतिज्ञान है ॥ ९ ॥

व्याख्या । गुणे पर्यायोपचार पर्यायिचार इत्युपचारो वाच्यो भीमो भीमसेन इति वत् । यथा मतिज्ञान तन्नेव शरीर शरीरजन्य वर्तते तत् कारणादत्र प्रतिज्ञानरूपात्मकगुणविषये शरीररूपपुद्गलपर्यायस्योपचार कृत । ८ । अथ नवमभेदोत्कीर्तनमाह । पर्याये गुणोपचार । यथा हि पूर्वप्रयोगजन्यथा क्रियते । यत् शरीरे तदेव मतिज्ञानरूपो गुणोऽस्ति । अत्र हि शरीररूपपर्यायविषये मतिज्ञानरूपाप्यन्य गुणस्योपचार क्रियते । शरीरमिति पर्यायस्तस्मिन्निषये मतिज्ञानाख्यो गुणस्तस्य चोपचार कृत । अत्र चाष्टमनवमविकल्पयो समविषमकरणेनोपचारो विहितस्तत्रापि सहभाविनो गुण, क्रमभाविन पर्याया, । सहभावित्व च द्रव्येण क्रमभावित्वमपि द्रव्येणैव हेयमतो द्रव्यस्यैव गुण, पर्याया अपि द्रव्यस्यैव । गुणपर्याययो पर्यायगुणयोश्च परस्परमुपचारव्यवहार कृत । यत्रोपचारस्तत्र निदर्शनमात्रमेव विसदृशधर्मिद्वयेन धर्मारोपवत् । किञ्चमतिज्ञानमात्मन कश्चिदुद्बुद्धितो गुण । शरीरे च पुद्गलद्रव्यस्य समवायिकारणम् । यथा मृत्पिण्डे घटस्य समवायिकारणमिति वत् । एव सत्युपचारो जायते परेण परस्योपचारात् स्येन स्येनोपचारासम्भव । यथा मृत्पिण्डस्य घटेन, तन्तूना पटेनेत्येव सद्भूतव्यवहारो नवधोपदिष्ट । उपचारबलेन नवधोपचारा कृता ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—यहा गुणमें पर्यायका चार “गुणे पर्यायिचार” इस पदसे पर्यायके उपचारसे तात्पर्य है, जैसे भीम और भीमसेन दोनोंसे एक ही अर्थ होता है, अर्थात् जैसे भीमके कथनसे भीमसेनका बोध होता है, ऐसे ही यहा भी चार इस कथनसे उपचार अर्थसे तात्पर्य है, गुणमें पर्यायके उपचारका उदाहरण जैसे जो मतिज्ञान है, वही शरीर है, अर्थात् शरीरजन्य है, इसलिये यहा मतिज्ञानरूप गुणके निषयमें शरीररूप पुद्गल पर्यायका उपचार किया गया है । ८ । अत्र नवम भेदका कथन करते हैं, पर्यायमें गुणका उपचार जैसे पूर्व प्रयोग जो मतिज्ञान है, वही शरीर है, इसको विपरीत कर देनेने जो शरीर है, वही मतिज्ञानरूप गुण है । यहा शरीररूप पर्यायके निषयमें मतिज्ञानरूप गुणका उपचार है । क्योंकि—शरीर तो पर्याय है, उस शरीरके विषयमें मतिज्ञाननामक गुणका उपचार किया गया है । इन अष्टम, नवम, असद्भूतव्यवहारउपनयके भेदोंम सम विषम करनेसे उपचार किया गया है । इनमें भी सहभावी जोहूँ, वह गुण है, और जो क्रमभावी है, वह पर्याय है । और सहभावित्व अर्थात् साथ होना भी द्रव्यसे ही है, तथा क्रमभावित्व अर्थात् क्रमसे होना यह भी द्रव्यसे ही है, इस कारण द्रव्यके ही गुण हैं, और द्रव्यके ही पर्याय हैं । गुण तथा पर्यायका और पर्याय तथा गुणका परस्पर उपचार व्यवहार किया गया है । जिसम जिसका उपचार होता है, उसमें उसका विसदृशधर्मके धर्मके आरोपके सदृश दृष्टान्तमात्र दर्शाया जाता है । और मतिज्ञान जो है, वह आत्माका कोई उत्पन्न हुआ गुण है, तथा शरीर

पुद्गल द्रव्यका समवायीकारण है। जैसे मृत्तिकाके पिण्डमें घटकी समवायीकारणता है; और ऐसी दशा होनेपर ही उपचार होता है; क्योंकि—परके साथ परका उपचार होता है; और स्वके साथ स्व(निज)का उपचार नहीं हो सकता है। जैसे मृत्पिण्डका घटके साथ तथा तंतुवोंका पटके साथ उपचार नहीं होता। इस रीतिसे असद्भूतव्यवहार नव ९ प्रकारसे निरूपण किया गया। और उपचारके बलसे उपचार भी नव ९ प्रकारके ही किये गये ॥ ९ ॥

अथ तस्यैवासद्भूतव्यवहारस्य भेदत्रयं कथ्यते ।

अब उसी असद्भूतव्यवहारके तीन भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । असद्भूतव्यवहार एवमेव त्रिधा भवेत् ।

नत्राद्यो निजया जात्याप्यणुर्भूरिप्रदेशयुक् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—असद्भूतव्यवहार पूर्व कथित प्रकारसे ही तीन प्रकारका होता है, उनमें आदि भेदका उदाहरण जैसे निज जातिसे परमाणु अनेक प्रदेशोंका धारक है ॥ १० ॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहार एवं पूर्वोक्तरीत्यैव त्रिधा त्रिप्रकारो भवेत् । तत्र त्रिषु भेदेष्वप्यद्यो भेदो यथा परमाणुः बहुप्रदेशी कथ्यते । कथं तर्हि—परमाणुस्तु निरवयवोऽतो निरवयवस्य सप्रदेशत्वं नास्ति तथापि बहुप्रदेशानां सांसर्गिकी जातिः परमाणोरस्ति । यथा हि द्व्यणुकत्र्यणुकादिस्कन्धवत् ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—असद्भूतव्यवहार पूर्व कथित प्रकारसे ही तीन प्रकारका होता है; उन तीनों भेदोंमेंसे प्रथम भेदका उदाहरण यह है; कि—जैसे परमाणु बहुप्रदेशयुक्त कहा जाता है । अब परमाणु अनेक देशभागी है; यह कथन कैसे संगत हो सकता है; क्योंकि—परमाणु तो निरवयव (अवयवरहित) पदार्थ है; इसलिये यद्यपि निरवयवको सप्रदेशता (प्रदेशसहितपना) ही नहीं है; तथापि बहुप्रदेशोंकी सांसर्गिकी अर्थात् संसर्गसिद्ध परमाणुके है; जैसे दो अणुवोंका स्कन्ध, तीन अणुवोंका स्कन्ध इत्यादि ॥ १० ॥

अथ द्वितीयो भेदश्च ।

अब असद्भूतव्यवहारके द्वितीय भेदका भी कथन करते हैं ।

सूत्रम् । विजात्यापि स एवान्या यथा मूर्तिमती मतिः ।

मूर्तिमद्भिरपि द्रव्यैर्निष्पन्ना चोपचारतः ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—विजातिसे भी वही असद्भूतव्यवहार प्रवृत्त होता है, जैसे मूर्तिमान् द्रव्योंके उपचारसे मतिज्ञान मूर्तिमान् सिद्ध होता है, अर्थात् “मतिर्मूर्तिमती” ऐसा व्यवहार दृष्ट है; यह अन्य अर्थात् द्वितीय असद्भूत व्यवहार है ॥ ११ ॥

व्याख्या । यथा स एवासद्भूतो विजात्या वर्तते । यथा वा मूर्तिमती मतिः । मतिर्ज्ञानं

मूर्त्त कथित तत् मूर्त्तविषयलोकमनस्कारादिकेभ्य उत्पन्न तस्मान्मूर्त्त वस्तुतस्तु मतिज्ञान-
मात्मगुणस्तस्य चापौद्गलिकस्य मूर्त्तिमत्पुद्गलगुणोपचार कृत । स तु विजात्या असद्भूत-
व्यवहार ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे वही असद्भूतव्यवहार विजाति अर्थात् अन्यजातिसे भी है । जैसे
मति मूर्त्तिमती है, अर्थात् मतिज्ञान मूर्त्त (आकारसयुक्त) कहा गया है । वह मूर्त्त
विषय लोको तथा मनस्कारआदिसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण मूर्त्त है । यथार्थमें तो
मतिज्ञान आत्माका गुण है, अतः वह अपौद्गलिक है, अर्थात् पुद्गलसे उत्पन्न हुआ नहीं
है, उस अपौद्गलिक मतिज्ञानके मूर्त्तिमान् पुद्गलगुणका उपचार किया गया है, और यह
उपचार चेतन धर्मके विजातीय मूर्त्तिमान् पुद्गल गुण है, इस कारण विजातिसे असद्भूत
व्यवहार है ॥ ११ ॥

अथ तृतीयमाह ।

अत्र असद्भूतव्यवहारका तृतीय भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । स्वजात्या च विजात्यापि, असद्भूतस्तृतीयकः ।

जीवाजीवमयं ज्ञान व्यवहाराद्यथोदितम् ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—स्वजातिसे तथा विजातिसे तृतीय असद्भूतव्यवहार प्रवृत्त होता
है । जैसे व्यवहारमें जीव तथा अजीवमय ज्ञान कहा गया है ॥ १२ ॥

व्याख्या । स एव पुनरसद्भूतव्यवहार स्वजात्या विजात्या च सन्निहित कथित । यथा
जीवाजीवविषय मतिज्ञानम् । अत्र हि जीवो मतिज्ञानस्य स्वजातिरस्त्यात्मनो ज्ञानमयत्वात्,
अजीवो मतिज्ञानस्य विजातिरस्ति । यद्यपि मतिज्ञानस्य विजातिरस्ति । यद्यपि मतिज्ञानादि-
विषयीभूतघटोऽयमिति ज्ञानम् । तथापि विजातिर्जडचेतनसन्निधात् । अनयोर्जीवयोर्विषय
विषयिभावनामा उपचरितसबन्धोऽस्ति । स हि स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारोऽस्ति तद्भा-
वमेव ज्ञेयम् । स्वजात्यशे किंवा सद्भूत इति चेद्विजात्यशे विषयतासन्निध्योपचरितस्य
वानुभवादिति गृहाणेति । व्यवहाराद्यथोदितं तथा विचारयेति पदार्थः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—स्व (निज) जाति तथा विजाति (परजाति) से सबन्धयुक्त होनेसे
तृतीय असद्भूतव्यवहार कहा गया है । जैसे “मतिज्ञान जीव अजीव विषयक है” इस
वाक्यमें जीव तो मतिज्ञानका स्वजाति है, क्योंकि—आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है । और अजीव
मतिज्ञानका विजाति है । यद्यपि “अयं घटः”, यह घट है, यह ज्ञान मतिज्ञानआदिका
विषयभूत है, तथापि यह विजाति है, क्योंकि—इस ज्ञानमें जड तथा चेतनका सन्धि है ।
इन जीव तथा अजीवना विषयविषयीभावनामक उपचरित सन्धि है, और वही
सजातिविजातिसन्धी असद्भूतव्यवहार है । इसलिये असद्भूतका ही भाव होता है,
ऐसा समझना चाहिये । यदि ऐसा कहो कि—स्वजात्यशय यह सद्भूत क्यों नहीं ? तो यह

है; और वस्त्रआदि मैं हूँ यह उपचारसे कथन है; अर्थात् वस्त्रादिमें मत्त्व (आत्मत्व) उपचारसे माना गया है। सम्बंध तथा सम्बन्धीकी कल्पना होनेसे यह सब व्यतिकर (जड़में आत्मबुद्धि तथा आत्मामें वस्त्रादि उलटा ज्ञान) असद्भूतव्यवहारका विषय है; और यह वस्त्रआदि सब मेरे है; यहांपर वस्त्रआदि पुद्गल पर्याय हैं; उनमें मेरे है; इस सम्बन्धकी योजनासे भोज्य भोजक वा भोग भोगीके उपचारकी कल्पना मात्रमें तत्पर है, अर्थात् वस्त्रआदि भोज्य हैं; और आत्मा उनका भोग करनेवाला है; इस कल्पनाके विधायक है। यदि ऐसा न हो तो वृक्षोंके बल्कल (छाल) वा उनके अन्य पत्रादि जो शरीरके आच्छादनमें समर्थ है; तो भी उनमें ये मेरे वस्त्र हैं; अथवा ये मैं हूँ इत्यादि उपचार सम्बन्धकी कल्पना क्यों नहीं कहते। अतः जिन वस्त्रोंमें भोज्य भोजक भाव है; वह ही वस्त्रआदि विजातीय आत्माआदिमें निज सम्बन्धसे उपचरित हैं; यह तात्पर्य है। अब 'वप्रदेशादयो द्विधा' इस वाक्यकी व्याख्या करते हैं। वप्रआदि मैं हूँ और वप्रआदि देश मेरे हैं, ऐसा कहनेवालोंको स्वजातीय तथा विजातीय उपचारसे असद्भूतव्यवहार है, क्योंकि—वप्र, देशआदि जीव तथा अजीव इन दोनोंके समुदायरूप है ॥ १५ ॥

अथ संक्षेपमाह ।

अब संक्षेपसे नय तथा उपनयके विषयका उपसंहार करते हैं ।

सूत्रम् । इत्थं समे चोपनयाः प्रदिष्टाः स्याद्वादमुद्रोपनिषत्स्वरूपाः ।

विज्ञाय तान् शुद्धधियः श्रयन्तां जिनक्रमाभोजयुगं महीयः १६

सूत्रभावार्थः—इस रीतिसे स्याद्वादशैलीसे रहस्यभूत नय तथा उपनय दोनोंका समानरूपसे उपदेश किया है; शुद्धबुद्धिके धारक उनको जान कर सर्वपूजनीय जिन भगवान्के चरणकमलका आश्रय लें ॥ १६ ॥

व्याख्या । इत्थमनया दिशा समे नयाश्च पुनः उपनयाः प्रदिष्टाः कथिताः । कीदृशास्ते स्याद्वादस्य श्रीजिनागमस्य या मुद्रा शैली तस्या उपनिषत्स्वरूपा रहस्यरूपाः सन्ति । तान् सर्वानपि विज्ञाय ज्ञात्वा शुद्धधियः निर्मलबुद्धयः श्रयन्तामङ्गीकुर्वतां किं जिनक्रमाभोजयुगं वीतरागचरणकमलं श्रयन्तामित्यर्थः ॥ १६ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—इस पूर्वाक्त दिशासे अर्थात् पूर्वकथित रीतिके अनुसार समानरूपसे नय तथा उपनय दोनोंका निरूपण किया है, वह नय तथा उपनय कैसे है; कि—श्रीजिनदेव प्रणीत स्याद्वादकी जो मुद्रा अर्थात् शैली है; उसके रहस्य (सार) भूत है; इस हेतुसे निर्मलबुद्धि जन उन सब नय तथा उपनयोंको भेद प्रभेदसहित जानकर सर्व पूजनीय श्रीजिन भगवान्के चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करें यही सूत्रका तात्पर्य है ॥ १६ ॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारक पं० ठाकुरप्रसादप्रणीतभाषाटीकासमलङ्कृतायां

द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमाध्याय विवृणोति ।

अत्र अष्टम अध्यायका विवरण करते हैं ।

सूत्रम् । निश्चयव्यवहारौ हि द्वौ च मूलनयौ स्मृतौ ।

निश्चयो द्विविधस्तत्र शुद्धाशुद्धविभेदतः ॥ १ ॥

सूत्रभाषार्थः—निश्चय तथा व्यवहार यह दो ही मूल नय हैं, इनमें शुद्ध अशुद्धके भेदसे निश्चयनय दो प्रकारका है, अर्थात् शुद्धनिश्चयनय, और अशुद्धनिश्चयनय, यह निश्चयनयके दो भेद हैं ॥ १ ॥

व्याख्या । हि निश्चितमध्यात्मभाषाया मूलनयौ द्वौ स्मृतौ तौ च निश्चयव्यवहारौ निश्चिनोति तत्त्वमिति निश्चय १ व्यवहित इति व्यवहार २ तत्रापि निश्चयो नामा द्विविधो द्विप्रकार । एक शुद्धनिश्चयनय, द्वितीयोऽशुद्धनिश्चयनय । एव द्विप्रकारो ज्ञेय ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—सूत्रमें जो 'हि' शब्द है, उसका अर्थ निश्चय है, इसलिये निश्चय रूपसे अध्यात्मभाषाके अनुसार मूलभूत नय निश्चय तथा व्यवहार यह दो ही हैं । इनमें तत्त्वका जो निश्चय करे उसको निश्चय कहते हैं, तथा जो व्यवहार कियाजाय वह व्यवहारनय है, उनमें भी निश्चयनामक नय दो प्रकारका है, एक तो शुद्धनिश्चयनय है, और दूसरा अशुद्धनिश्चयनय है, इस रीतिसे निश्चयनय दो प्रकारका है ॥ १ ॥

सूत्रम् । यथा केवलज्ञानादिरूपो जीवोऽनुपाधिकः ।

शुद्धो मत्यादिकस्त्वात्माशुद्धः सोपाधिकः स्मृतः ॥ २ ॥

सूत्रभाषार्थः—जैसे उपाधिरहित जीव केवलज्ञानआदिरूप है, यह शुद्धनिश्चय नय है, और उपाधिसहित जीव मतिज्ञानआदिरूप है, यह अशुद्धनिश्चयनय है ॥ २ ॥

व्याख्या । यथा हि केवलज्ञानादिरूपो जीवोऽनुपाधिक उपाधि कर्मजन्यमेन विहीनोऽनुपाधिक शुद्ध इति शुद्धनिश्चयभेदेन प्रथम । अत्र हि केवलज्ञानमासाद्य शुद्धगुणमयात्मरूपेण जीवम्याभेदो दशित । तथा च मतिज्ञानादिक आत्मा अशुद्धनिश्चयभेदेन द्वितीय । अत्र ह्यात्मन सोपाधिकस्यावरणक्षयजनितज्ञानप्रकम्पेनात्मा मतिज्ञानी अशुद्ध उपलक्ष्यते सोपाधिकत्वात् केवलज्ञानात्प्यो गुण शुद्धगुणस्तदुपेत आत्मापि शुद्धस्तन्नामनयो दयाच्छुद्धनिश्चयनय । मतिज्ञानादिगुणोऽशुद्धस्तदुपेत आत्माय शुद्धमन्दाप्यया नयोप्यशुद्ध निश्चयशब्द आत्ममात्रपर, शुद्धश्च कर्मावरणविशिष्ट । आवरणक्षये शुद्ध सति तस्मिन्नशुद्ध ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे केवलज्ञानआदिरूप अर्थात् केवलज्ञानमय जीव अनुपाधिक है, अर्थात् कर्मोंसे उत्पन्न हुई जो उपाधि है उससे रहित है, भावार्थ शुद्ध है । यह शुद्ध निश्चयनय भेदसे प्रथम भेद दर्शाया गया है । और मतिज्ञानआदिक आत्मा है, यह

अशुद्धनिश्चयके भेदसे द्वितीय नय है । इस भेदमें उपाधिसहित आत्माके मतिज्ञाना-
वरणीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न जो ज्ञान है; उसके भेदसे आत्मा मतिज्ञानी है; अर्थात्
मतिज्ञान जीव है; ऐसे अशुद्ध उपलक्षित होता है; क्योंकि—वह मतिज्ञान सोपाधिक है,
अर्थात् कर्मजन्य है । भावार्थ—केवलज्ञाननामक जो गुण है; वह शुद्ध गुण है, इसलिये
उस शुद्ध गुणसे युक्त आत्मा भी शुद्ध है; और शुद्धनामक नयके उदयसे शुद्ध
निश्चय नय है । मतिज्ञानआदि जो गुण है; वह अशुद्ध गुण है, इस कारण उस अशुद्ध
गुणसे युक्त आत्मा भी अशुद्ध है; और उस नामसे नय भी अशुद्ध निश्चय है ।
निश्चय शब्द आत्मामात्रमें तत्पर है; और शुद्ध शब्द कर्मके आवरणविशिष्ट है; अर्थात्
कर्मके आवरणका क्षय होनेपर शुद्ध है; और उस आवरणकी विद्यमानतामें अशुद्ध है;
येह शुद्ध और अशुद्ध शब्दका विवेचन हुआ और शुद्ध अशुद्ध इन दोनोंके साथ
निश्चय शब्द इसलिये लगा है; कि—केवलज्ञान भी आत्माका गुण है; और मतिज्ञान
भी आत्माहीका गुण है; इस कारण शुद्ध भी निश्चयनय है; और उपाधिकी सत्तासे
अशुद्ध भी निश्चयनय है ॥ २ ॥

अथ व्यवहारस्य भेदं दर्शयति ।

अथ व्यवहारनयके भेदको दर्शाते हैं ।

सूत्रम् । सद्भूतश्चाप्यसद्भूतो व्यवहारो द्विधा भवेत् ।

तत्रैकविषयस्त्वाद्यः परः परगतो मतः ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—सद्भूत और असद्भूत इन दो भेदोंसे व्यवहार भी दो प्रकारका
होता है; अर्थात् एक सद्भूतव्यवहारनय और दूसरा असद्भूतव्यवहारनय । उनमें प्रथम तो
एक द्रव्यके आश्रित सद्भूतव्यवहार है; और दूसरा असद्भूतव्यवहार परद्रव्याश्रित है ॥ ३ ॥

व्याख्या । व्यवहारोऽपि सद्भूतः पुनरसद्भूत इति भेदाभ्यां द्विधा द्विप्रकारः । तत्र
आद्यः प्रथम एकविषय एकद्रव्याश्रितः सद्भूतव्यवहारः । अपरः परविषयः परद्रव्याश्रितः
सद्भूतव्यवहार इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—व्यवहारनय भी निश्चयके सहस्र सद्भूत तथा असद्भूत इन दोनों
भेदोंसे दो प्रकारका है । उनमें प्रथम सद्भूतव्यवहार तो एक द्रव्यविषयक है, अर्थात्
एक द्रव्यके आश्रयसे रहता है । और द्वितीय असद्भूतव्यवहार परद्रव्यके आश्रयसे
रहता है ॥ ३ ॥

सूत्रम् । उपचरितसद्भूतानुपचरितभेदतः ।

आद्यो द्विधा च सोपाधिगुणगुणिनि दर्शनात् ॥ ४ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—उपचरितसद्भूत और अनुपचरितसद्भूत इन दोनों भेदोंका कारण प्रथम जो सद्भूतव्यवहार है, वह भी दो प्रकारका है, उनमें सोपाधिक गुण गुणीके भेदसे प्रथम भेद होता है ॥ ४ ॥

व्याख्या । उपचरितसद्भूतभेदानुपचरितसद्भूतभेदेन चाद्य एकद्रव्याश्रितसद्भूतव्यवहारो द्विधा द्विप्रकारः । तत्र च सोपाधिकगुणगुणिभेदात्प्रथमो भेदो भवति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—उपचरितसद्भूतभेदसे तथा अनुपचरितसद्भूतभेदसे आदि जो एक द्रव्यके आश्रित सद्भूतव्यवहार है, वह दो प्रकारका है, उनमेंसे उपाधिसहित गुण और गुणीके भेदसे प्रथम भेद अर्थात् उपचरितसद्भूतव्यवहारनय होता है ॥ ४ ॥

सूत्रम् । यथोपचारतो लोके जीवस्य मतिरुच्यते ।

अनुपचरितसद्भूतोऽनुपाधिगुणतद्वतोः ॥ ५ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—जैसे लोकमें उपचारसे यह कहा जाता है, कि—जीवका मति-ज्ञान है । और अनुपचरितसद्भूतव्यवहार वह है, जो उपाधिरहित गुण गुणीको प्रदर्शन करे ॥ ५ ॥

व्याख्या । यथा जीवस्य मतिज्ञानम् । अत्र हि मतिरुपाधि कर्मावरणकलुषितात्मनः सकलज्ञानत्वेन ज्ञानमिति कल्पन सोपाधिकमुपचारतो जातमिदम् । अथ द्वितीयभेदमाह । उपाधिरहितेन गुणेनानुपाधिक आत्मा यदा सपद्यते तदनुपाधिकगुणगुणिनोर्भेदाभिन्नोऽनुपचरितसद्भूतोऽपि द्वितीयो भेद समुत्पद्यत इति ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—उपचरितसद्भूतका उदाहरण—जैसे जीवका मतिज्ञान इत्यादि लोकमें व्यवहार होता है, इस व्यवहारमें उपधिरूप कर्मके आवरणसे कलुषित आत्माका मलसहित ज्ञान होनेसे जीवका मतिज्ञान यह उपाधिसहित कल्पना उपचारसे हुई है, इस लिये सोपाधिक होनेसे यह उपचरित सद्भूतव्यवहारनामक प्रथम भेद है । अत्र द्वितीय भेदको कहते हैं । उपाधिरहित गुणके साथ उपाधिशून्य आत्मा जन सपन्न होता है, तब अनुपाधिक (उपाधिसे वजित) गुण गुणीके भेदसे भिन्न (भेदको प्राप्त हुआ) अनुपचरितसद्भूतनामक व्यवहारनयका दूसरा भेद भी सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

अथास्योदाहरणमाह ।

अत्र इस अनुपचरितसद्भूतव्यवहारका उदाहरण कहते हैं ।

सूत्रम् । केवलादिगुणोपेतो गुण्यात्मा निरुपाधिकः ।

असद्भूतव्यवहारो द्विधैव परिकीर्तितः ॥ ६ ॥

सूत्रभाष्यार्थ —केवलज्ञानआदिगुणसहित गुणी आत्मा उपाधिरहित है । ओर असद्भूतव्यवहार भी पूर्वोक्त सद्भूतव्यवहारकी भांति दो प्रकारका कहा गया है ॥ ६ ॥

व्याख्या । केवलादिगुणोपेत केवलज्ञानसहित कर्मक्षयाविर्भूतप्रभूतानुभयभावत्मको जीवो निरुपाधिकगुणोपेतो निरुपाधिक गुणी भवति । आत्मा हि ससारावस्थायामष्टकर्म-

जनितावरणपरिस्फुटप्रभावभावितः सोपाधिकगुणैर्मत्यादिभिस्तद्वानिति सोपाधिक आत्मेति व्यपदेशभागभवति । अत्र तु तदभावे तदभावान्निरुपाधिकगुणगुणिभेदभावनासमुत्पादादनुपचरितसद्भूतभेदोऽपि समुत्पन्नः । केवलादिरिति केवलस्यैकत्वादादिरिति तदुत्थानन्तगुणोदयात्केवलादिरिति कथनम् । अथासद्भूतव्यवहारस्यापीत्यमेव भेदद्वयं प्रकटयन्नाह । असद्भूतव्यवहारोऽप्येवं पूर्वोक्तसद्भूतवद्विधा द्विःप्रकारः परिकीर्तितः कथित इति ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे केवलादिगुणके युक्त (केवलज्ञानरूप गुणसे सहित) आत्मा अर्थात् कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न जो प्रभूत (महा) अनुभव है; उस महानुभवस्वरूप भाव मय जो जीव है; वही उपाधिरहित केवलज्ञानसे संयुक्त निरुपाधिक आत्मा है । क्योंकि—आत्मा संसारमयी अवस्थामें अष्ट प्रकारके जो कर्म हैं; उन कर्मोंसे उत्पन्न आवरणोंके अप्रकट प्रभावसे सहित हुआ उपाधिसहित गुण जो मतिआदिक ज्ञान है; उनसे मतिज्ञानी अर्थात् उपाधिसहित आत्मा इस नामका भागी होता है । और यहांपर कारणके अभावसे कार्यका भी अभाव होता है; इस न्यायसे उपाधिसहित मतिज्ञानादि गुणोंके अभावसे उपाधिसहित गुणी आत्मा भी नहीं रहता इसलिये उपाधिसे वर्जित गुण गुणीके भेदकी भावनाकी सम्यक् प्रकारसे उत्पत्तिसे “अनुपचरितसद्भूत” यह नयका भेद सिद्ध होता है । और सूत्रमें जो “ केवलआदिगुणसहित गुणी आत्मा निरुपाधिक है ” इस वाक्यमें “केवल” पदके आगे “आदि” पद दिया है; वह कैसे संगत होसकता है; क्यों कि—केवलज्ञान तो एक है? इसका उत्तर यह है; कि—यद्यपि केवलज्ञान एक ही है; तथापि केवलज्ञानसे उत्पन्न जो अनन्त सुख, अनन्त वीर्यआदि गुण हैं; उन गुणोंकी विवक्षासे “ केवलादि ” यहांपर आदि पद दिया है; अर्थात् केवलज्ञानके सहचारी अनन्त गुण सहित निरुपाधिक आत्मा यह अभिप्राय “आदि” इस पदका है ॥ अब असद्भूतव्यवहारके भी इसी प्रकार दो भेदोंको प्रकट करते हुए कहते हैं ॥ असद्भूत व्यवहार नय भी पूर्वोक्त सद्भूतनयके समान दो ही प्रकारका कहा गया है ॥ ६ ॥

अथैतस्यासद्भूतव्यवहारस्य भेदद्वयं सोदाहरणपूर्वकं प्रकटयन्नाह ।

अब इस असद्भूतव्यवहारके उदाहरणसहित दोनों भेदोंको प्रकट करते हुए आचार्य इस अग्रिम सूत्रको कहते हैं ॥

सूत्रम् । असंश्लेषितयोगेऽग्नौ देवदत्तधनं यथा ।

स्यात्संश्लेषितयोगेऽन्यो यथास्ते देहमात्मनः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—असंमिलित योगमें जहां संबन्धकी कल्पना होती है; वहांपर प्रथम भेद अर्थात् उपचरितअसद्भूतव्यवहार होता है । जैसे देवदत्तका धन । और संमिलित (मिले हुए) योगमें जहां संबन्धकी कल्पना होती है; वहां द्वितीय भेद अर्थात् अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय होता है; जैसे आत्माके देह स्थित है ॥ ७ ॥

व्याख्या । अत्र द्वयोरपि भेदयोर्मध्ये अथ्य अभ्रमेभवोऽप्यो मुख्य प्रथम असंश्लेषितयोगे कल्पितसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो भवेत् । यथा देवदत्तधनम्, इह धनेन देवदत्तस्य सन्ध स्वस्वामिभावरूपश्च जायते तदपि कल्पितत्वादुपचरितम् । यतो देवदत्त पुनर्धनञ्चैकद्रव्य न हि तस्माद्विभक्तद्रव्यत्वादसद्भूतभावनाकरणेनासद्भूतव्यवहार इति । तथा द्वितीयोऽप्य सश्लेषितयोगे कर्मजसबन्धे भवति । यथा आत्मनो जीवस्य देहमित्यास्ते तिष्ठति । अत्र ह्यात्मदेहयो सबन्धे देवदत्तधनसबन्धमिव कल्पन नास्ति विपरीतभावना निवर्त्यत्वाद्यावज्जीवस्थायित्वादनुपचरित तथा भिन्नविषयत्वादसद्भूतव्यवहार इति ॥७॥

व्याख्यार्थः—यहा इन दोनों भेदोंके अर्थात् उपचरितअसद्भूतव्यवहार तथा अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारके मध्यमे अथ्य, आगे (प्रथम) होनेवाला मुख्य भेद अर्थात् पहिला भेद सश्लेष (सबन्ध) का योग न होनेपर अर्थात् कल्पित सन्ध माननेपर उपचरितअसद्भूतव्यवहार होता है, जैसे “देवदत्तका धन” यहापर देवदत्तका धनके साथ स्वस्वामिभावरूपसे सबन्ध माना गया है, वह भी कल्पित होनेसे उपचरित (उपचारसे सिद्ध) है । क्योंकि—देवदत्त और धन यह दोनों एक द्रव्य नहीं हैं, इस हेतुसे अर्थात् भिन्न द्रव्य होनेसे देवदत्त तथा धनमे सद्भूत (यथार्थ) सन्ध नहीं है, अत एव असद्भूतभावना करनेसे उपचरितअसद्भूतव्यवहार है । और अन्य (द्वितीय) भेद जहा मिलित योग है, अर्थात् कर्मजनितसबन्ध है, वहा होता है । जैसे “जीवके देह स्थित है” यहापर आत्मा तथा देहका सन्ध देवदत्त तथा उसके धनके सन्धके तुल्य कल्पित सबन्ध नहीं है, क्योंकि—विपरीतभावनासे निवर्तनीय यहापर यह यावज्जीव स्थायी होनेसे अनुपचरित है, तथा जीव और देहके भिन्न विषयपनेसे असद्भूतव्यवहार है ॥ ७ ॥

अथोक्तविषयस्वामित्वमाह ।

अव उक्तविषयके स्वामित्वका वर्णन करते है ।

सूत्रम् । नयाश्चोपनयाश्चैते तथामूलनयावपि ।

इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—नय, उपनय तथा मूलनय जैसे हमने इस ग्रन्थमें निरूपण किये है, इसी प्रकारसे नयचक्रनामक ग्रन्थमें नयचक्रकारने भी वर्णन किये है ॥ ८ ॥

व्याख्या । एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव द्वौ मूलनयावपि निश्चयेनेत्यममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उत्पादकेन समादिष्ट कथितम् । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रग्रन्थपाठपठित नयोपनयमूलनयादिक सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतन्त्रत्वमेवास्ते न किमपि विसवादितयास्तीति ॥ ८ ॥

१ विपरीतभावना अर्थात् जो भावना देवदत्त और उसके धनके विषयमें है, उससे उलटी भावनासे यह सम्बन्ध रखा गया है

व्याख्यार्थः—यह पूर्वकथित लक्षणसहित नय, उपनय तथा दो मूलनय जैसे हमने निरूपण किये हैं, निश्चयरूपसे ऐसे ही दिगम्बर श्रीदेवसेन आचार्यकृत नयचक्र शास्त्रमें भी उस नयचक्रके उत्पादक (कर्त्ता) अर्थात् दिगम्बर देवसेनाचार्यजीने कहा है। इससे यह वार्ता सिद्ध हुई कि—दिगम्बरमतके अनुगत (अनुसार) नयचक्रनामक ग्रन्थमें पठित नय, उपनय तथा मूलनयआदिक सब ही श्रीसर्वज्ञप्रणीत सत्शास्त्रकथित युक्तिकी योजनाओंसे समानतन्त्र अर्थात् हमारे सिद्धान्तके समान ही है; उसमें किंचित् भी विसंवाद-प्रनसे कथन नहीं है ॥ ८ ॥

अथ पुनरपि श्वेताम्बरदिगम्बरयोः समानतन्त्रत्वमुपदिशन्नाह ।

अब फिर भी श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरोंके मतमें समानतन्त्र (अविरुद्धशास्त्रता) है; इस बातका उपदेश देते हुवे कहते हैं ।

सूत्रम् । यद्यपीहार्थभेदो न तस्यास्माकमपि स्फुटम् ।

तथाप्युत्क्रमशैल्यासौ दृश्यते चान्तरात्मना ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—यद्यपि हमारे तथा श्रीदेवसेनजी दिगम्बरके कथनमें कुछ भी अर्थका भेद नहीं है। तथापि पाठकी शैलीको विपरीतरूपसे करने रचनेसे यह देवसेनजी इर्षा-युक्त अन्तरात्मासे संतप्त हो रहे हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या । यद्यपि तस्य देवसेनस्य दिग्वाससोऽपि तथास्माकं श्वेतभिक्षूणां स्फुटं प्रकटं यथा स्यात्तथेह द्रव्यादिपरिज्ञानोपयोगिनि नयविचारेऽर्थभेदो विषयभेदो नास्ति । उभयोरप्यर्थदेशे विषयाभेदत्वमेव शब्दादेशे किमपि पाठान्तरत्वान्न किमपि दोषः । यथा हि—अर्थे प्रयोजनवन्तस्तार्किकाः शब्दस्याप्रयोजकत्वात् । तथाप्यसौ देवसेनो दिगम्बर उत्क्रमशैल्या विपरीतपरिभाषयार्थस्य तादृशत्वेन शब्दस्यातादृशत्वेन चोत्क्रमशैल्या कृत्वान्तरतमनान्तरङ्गपरिणामेनेर्ष्यालुत्वादृश्यते खिद्यते । ईर्ष्यालवो ह्यन्तरूपतापपरा एव भवन्ति निष्कारणमेवेति । यतो “यद्यपि न भवति हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम् । असमञ्जसं तु दृष्ट्वा तथापि परिखिद्यते चेतः । १ ।” इति वचनाद्यथोक्तभागवतसिद्धान्तशुद्धपरिभाषां त्यक्त्वा स्वकपोलकल्पितसंस्कृतभाषया श्रीवीतरागोक्तार्थविषयमङ्गीकृत्य नवीनग्रन्थं विरचय्य प्रभावं ख्यापयतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—यद्यपि उस दिगम्बर देवसेन तथा हम श्वेतभिक्षुओं (श्वेताम्बरों) के प्रकट जैसे होय तैसे अर्थात् स्पष्टरूपसे इस द्रव्यार्थिपदार्थोंके ज्ञानमे उपयोगी नयके विचारमें अर्थका अर्थात् विषयका भेद नहीं है । अर्थात् श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनोंके ही अर्थके आदेशमे विषयका अभेद ही है, शब्दादेशमें (शब्दकी रचनामें) कुछ पाठभेद है; उस पाठभेदसे कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि—नैयायिकोंका प्रयोजन अर्थमे ही है, शब्दतो नैयायिकोंकेलिये अप्रयोजक है । तथापि यह दिगम्बर देवसेनजी उत्क्रमशैली (विपरीत परिभाषा) अर्थात् अर्थकी समानता और शब्दकी असमानतारूप उत्क्रमशैलीसे अन्तरं-

गपरिणामसे ईर्ष्यायुक्त होनेके कारण सत्तप्त है, क्योंकि—जो ईर्ष्यायुक्त होते है, वह आभ्यन्तरमे विना कारण ही सतापमे परायण होते है । और हमारा चित्ततो “देवसेनजीसे (अन्यके) खेतकी दाख जन गधा चरता है, तब हमारी कोई हानि नहीं होती है, तथापि अयोग्य देखकर चित्त खेदित होता है” इस वचन(न्याय)के अनुसार दुःखित होता है । क्योंकि—देवसेनजी यथोक्त श्रीजिनभगवान्‌के सिद्धान्तसे सिद्ध जो शुद्धपरिभाषा है, उसको त्यागकर निज कपोलकल्पित संस्कृतभाषासे श्रीवीतरागकथित अर्थके विषयको ही अङ्गीकार करके और नयचक्रनामक नवीन ग्रन्थ(शास्त्र)को रचके अपना प्रभाव (प्रभुत्व) प्रतिष्ठित करते है । यह इस श्लोकका अर्थ है ॥ ९ ॥

अथ बोदिकमतभिमतविपरीतपरिभाषा दर्शयन्नाह ।

अथ बोदिकमतके अभिमत जो विपरीत परिभाषा है, उसको दर्शाते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । तत्त्वार्थेऽपि नयाः सप्त पञ्चादेशान्तरेऽपि वा ।

अन्तर्भूतौ समुद्भूतौ नवेति किमु कल्पते ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—तत्त्वार्थसूत्रमे भी सप्त (सात) ही नय कहे हैं, और मतान्तरमे भी ऋजुसूत्र और एवभूतका शब्दनयमे अन्तर्भाव मानकर पांच ही नय माने है, और देवसेनजी इन सातमें अन्तर्भूत जो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक है, उनको उनमेंसे अलगकर नव ९ नय कैसे कल्पते है ॥ १० ॥

ध्यातव्या । तत्त्वार्थसूत्रे नयाः सप्त उक्ता पुनरादेशान्तरे मतान्तरे तत्रैव नयाः पञ्च प्रतिपादिताः । तथा च तत्सूत्रम् “सप्त मूलनयाः पञ्चेत्यादेशान्तर”मिति शब्दः समभिरूढः, एवभूतेति नयत्रिकः शब्दनय इति नाम्ना सगृहीतानां त्रयाणामेवैकं नाम शब्दनय इति जायते । ततः प्रथमे चत्वारोऽतस्तैः सह पञ्चनया इति । अथैकैकस्य भेदनां शतमस्ति । तत्र च सप्तशतं तथा पञ्चशतमेव मतद्वयेऽपि भेदकल्पनम् । तथोक्तमावश्यकं “इक्षिकोय सह-विहो सत्तणयसया हवति एमेवे । अण्णोविहु आप्णो पचेमे सयाण याणतु ॥ १ ॥” एतादृशीं शास्त्रपरिभाषां त्यक्त्वा द्रव्यार्थिकपयायाधिकनामानावेत्त्वन्तर्भावितानेवोद्भूत दूरे कृत्वा नव नयाः कथिता इति किमु कल्पते । देवसेनेन कः प्रपञ्च क्रियते ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—तत्त्वार्थसूत्रमें भी सात ही नय कहे है, और वहा ही मतान्तरमें पांच नय प्रतिपादन किये हैं । और पचनयप्रतिपादक उनका सूत्र भी यह है “सप्त मूलनयाः पञ्चेत्यादेशान्तरम्” अर्थात् मूलनय सात है, और मतान्तरमे पांच नय हैं ॥ शब्द, समभिरूढ तथा एवभूत यह जो तीन नय कहे है, इन तीनोंका संग्रह, करनेसे शब्दनयरूप एक ही नाम होता है ॥ इस कारण नैगम, संग्रह, व्यवहार, और ऋजुसूत्र यह पहिले चार तथा इन तीनों (शब्द, समभिरूढ, एव भूत) का एक शब्दनय ऐसे मिलकर पांच नय होते हैं । और एक एक नयके सो १०० भेद है, उनमें जिस मतमें सात नय हैं, वहापर सातसो

७०० भेद और जिस मतमें पांच नय माने हैं; उसमें ५०० पांचसो भेदोंकी कल्पना है। यही विषय आवश्यकनामक ग्रन्थमें भी कहा है। उसकी गाथाका भाव यह है “एक २ नय सौ सौ भेदसहित है; इस प्रकार सप्त नय सातसो हो जाते हैं; और अन्य मतके अनुसार भी पांच नय पांच सौ हो जाते हैं ॥ १ ॥” इस प्रकारकी शास्त्रीयपरिभाषाको त्यागकर द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नाम दो नयोंको जिनका कि—इन्ही सप्त या पंच भेदोंमें अन्तर्भाव है; उनको उन सात या पांचमेंसे दूर करके देवसेनजीने नव नय कहे हैं; सो इस प्रकार देवसेनजी क्या प्रपंच करते हैं ॥ १० ॥

पुनश्चर्चा कथयन्नाह ।

और भी इस विषयमें विशेष चर्चा (विवाद) कहते हुए इस सूत्रको कहते हैं ॥

सूत्रम् । यदि पर्यायद्रव्यार्थनयौ भिन्नौ विलोकितौ ।

अर्पितानर्पिताभ्यां तु स्युर्नैकादश तत्कथम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनय सप्त भेदोंसे भिन्न (जुदे) देखे गये हैं; तो अर्पित तथा अनर्पित इन दोनों भेदोंसे एकादश ११ (ग्यारह) नय क्यों नहीं मानते ॥ ११ ॥

व्याख्या । यदि पर्यायार्थिकद्रव्यार्थनयौ भिन्नौ विलोकितौ पृथक् दृष्टौ तत्तस्मान्नव नया इति कथितम् । तत्तस्मादर्पितानर्पिताभ्यां सहैकादश नया इति कथं न स्युरपि तु स्युः । भावार्थः स्वयं नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदाद्यो द्रव्यार्थिकस्त्रिधा, पर्यायार्थिकश्चतुर्धा—ऋजुसूत्रं, शब्दः, समभिरूढ, एवंभूतश्चेति । अर्पितानर्पितभेदावपि सामान्यविशेषपर्यायौ तौ च द्रव्यपर्याययोश्चेति । तथा हि सामान्यं द्विप्रकारमूर्द्धतासामान्यं तिर्यक्सामान्यं च । तत्रोर्ध्वतासामान्यं द्रव्यमेव, तिर्यक्सामान्यं तु प्रति व्यक्तिसदृशपरिणतिलक्षणं व्यञ्जनपर्याय एव स्थूलाः कालान्तरस्थायिनः शब्दानां सङ्केतविषया व्यञ्जनपर्याया इति प्रावचनिकप्रसिद्धेः । विशेषोऽपि वैसदृश्यविवर्तलक्षणः पर्याय एवान्तर्भवतीति नैताभ्यामधिकनयावकाशः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—यदि द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नय भिन्नरूपसे अर्थात् पृथक्तासे देखे गये हैं; और उसी कारणसे नव ९ नयका तुमने कथन किया है; तो अर्पित और अनर्पित भेदोंको साथ मिलाके एकादश ११ नय क्यों नहीं होवेंगे किन्तु अवश्य होवेंगे ॥ भावार्थ यह है; कि—नैगम, संग्रह, तथा व्यवहार इन भेदोंसे प्रथम जो द्रव्यार्थिक नय है; वह तीन प्रकारका है; और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूत इन भेदोंसे पर्यायार्थिक चार ४ प्रकारका है । और अर्पित तथा अनर्पितरूप जो दो भेद हैं; यह भी सामान्य और विशेषके पर्याय है; और द्रव्य तथा पर्यायमें रहते हैं । सो ही कहते हैं; कि—सामान्य दो प्रकारका है; एक ऊर्ध्वतासामान्य और दूसरा तिर्यक्सामान्य, इनमेंसे ऊर्ध्वतासामान्य तो द्रव्यरूप ही है; क्योंकि—वह सब पर्यायोंमें साधारणरूपसे रहता है; और तिर्यक्सामान्य प्रति-

व्यक्ति (घट पटआदि व्यक्ति) सदृश परिणाम लक्षण व्यजन पर्यायमे ही रहता है, क्यों कि—स्थूलरूपसे कालान्तरमे ठहरनेवाले और शब्दोंके सकेत गोचर व्यजन पर्याय है, ऐसी प्रावचनिकोंकी प्रसिद्धि है । और वैसादृश्यरूप विवर्त्त लक्षणसहित विशेष है, सो भी पर्यायमे ही अन्तर्गत होता है, इसलिये सामान्य विशेषसे अधिक नयका अवकाश नहीं है ॥ ११ ॥

सूत्रम् । संग्रहे व्यवहारे च यदीमौ युङ्क्थ केवलम् ।

तदाद्यन्तनयस्तोके किं न युङ्क्थ हि तावपि ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि संग्रह तथा व्यवहारनयमे अर्पित तथा अनर्पित युक्त होते हैं, अर्थात् अन्तर्भूत होते हैं, तो द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक यह दोनों आदिके तीन नय और अन्तके चार नय समूहमे क्यों नहीं योजित करते ? ॥ १२ ॥

व्याख्या । अथ सङ्ग्रहे च पुनर्व्यवहारे यदीमावर्पितानर्पितौ युङ्क्थ तर्ह्याद्यन्तनयस्तोके तावपि किं न युङ्क्थ इति । यद्येव कथयथ अर्पितानर्पितसिद्धेरित्यादिसूत्रेण्वर्पिता विशेषा अनर्पिता सामान्या तत्रार्पिता व्यवहारादिविशेषनयेष्वन्तर्भवन्ति, अनर्पिता सङ्ग्रहेऽन्तर्भवन्ति तदा आद्येषु प्रथमेष्वन्त्येषु पाश्चात्येषु नयस्तोकेष्विमौ द्रव्यपर्यायौ कथं न युज्यत सप्त नयसम्बन्धसिद्धेरिति विचारणीयम् । सिद्धान्ते श्रीजिनवाणी सप्तनयावतारिका एवासि न न्यूनाधिका । यत्—संस्कृतं नष्टं सत्तमूलनया पण्णत्ता त जहाणेगमे, सगहे, ववहारे, उज्जु-सुए, सदे, समभिरुडे, एवभूए । इत्यादिसूत्रपाठोऽपि त्रयोऽस्तसत्सूत्रमार्गं त्यक्त्वा “नया नव” इत्यधिकयोजना न साधीयसी । अथान्तर्भूतानां पृथक्करणमपि पिष्टपेपणमेवेति ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—यदि इस अर्पित और अनर्पितको संग्रह तथा व्यवहारनयमे समिलित करते हो तो उस द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयको भी क्रमसे आदिके तीन नयस्तोकमे और अन्तके चार नय समुदायमे क्यों नहीं समिलित करते । यदि आप ऐसा कहें कि—“अर्पितानर्पितसिद्धे ” इत्यादि सूत्रोंमें अर्पित विशेषरूप है, और जो अनर्पित हैं, वह, सामान्य है । इसलिये इन दोनोंमेंसे अर्पित तो व्यवहारआदि विशेषनयोंमें अन्तर्भूत होते हैं, और अनर्पित सङ्ग्रहनयमें अन्तर्गत (शामिल) होते हैं, तो आदिके तीन और अन्त के चार नयोंके जो समुदाय है, उनमें इन द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकको क्यों नहीं युक्त (शामिल) करते हो ? क्योंकि—सात नयोंका जो सङ्ग है, उसकी सिद्धि होती है, ऐसा विचार करना चाहिये । अर्थात् सिद्धान्त(शास्त्र)में श्रीजिनवाणी सात नयोंका ही अवतार करती है, सातसे न्यून (कम) अथवा अधिक नयोंका अवतार नहीं करती उसकी भी सिद्धि होजायगी क्योंकि—“सिद्धान्तमे सात मूलनय कहे गये हैं, वह जैसे नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजुसूत्र ४ शब्द ५ समभिरुद्ध ६ ओर एवभूत । इत्यादिरूपसे सूत्रका पाठ भी जानना चाहिये । इसलिये उस सूत्रके मार्गको त्यागकर “नय नय है ”

ऐसा कह कर जो अधिक नयोंकी योजना करते हो सो अच्छी नहीं है । तथा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक जो क्रमसे प्रथम तीन और अन्तके चार नयोंके स्तोकमें अन्तर्भूत है; इनको उनसे जुदे करना है; सो भी पिष्टपेषण ही है ॥ १२ ॥

अथ नयसप्तके द्रव्यपर्यायौ यथान्तर्भवतस्तद्दर्शयति ।

अब जिस प्रकारसे सात नयोंमें द्रव्य तथा पर्यायका अर्थात् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका अन्तर्भाव होता है; उस प्रकारको दर्शाते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायार्थिकनामानो नयाः स्युरन्तिमास्त्रयः ।

द्रव्यार्थिकनयास्तद्वच्चत्वारः प्रथमे पुनः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक नामके धारक हैं । और इसी प्रकार पहिले चार ४ नय द्रव्यार्थिक नय हैं ॥ १३ ॥

व्याख्या । अन्तिमास्त्रयः शब्दसमभिरूढैवंभूताख्यास्त्रयः पर्यायार्थिकाः कथ्यन्ते । तथा प्रथमे चत्वारो नैगमसङ्ग्रहव्यवहारजुसूत्राख्या द्रव्यार्थिकनया इति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—अन्तके तीन अर्थात् शब्द, समभिरूढ और एवंभूत यह तीन नय पर्यायार्थिक कहे जाते हैं । तथा आदिके नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रनामक यह चार द्रव्यार्थिक नय हैं ॥ १३ ॥

अथ य आचार्या नयावतारं कुर्वन्ति तेषां नामान्याह ।

अब जो आचार्य नयोंका अवतार करते हैं; उनके नामोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । इत्याह च महाभाष्ये क्षमाश्रमणपुङ्गवः ।

जिनभद्रगणिः सर्वसिद्धान्तमतपारगः ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक है; तथा आदिके चार ४ नय द्रव्यार्थिक है; इस पूर्वोक्त कथनको महाभाष्यमें क्षमाश्रमणपुङ्गव तथा सब सिद्धान्तमतके पारंगत श्रीजिनभद्रगणि कहते हैं ॥ १४ ॥

व्याख्या । तत्र महाभाष्ये विशेषावश्यकक्षमाश्रमणपुङ्गवः क्षमाश्रमणप्रधानः श्रीजिनभद्रगणिराचार्य इत्याह । इतीति कि पूर्ववच्च आद्याश्चत्वारो नया द्रव्यार्थिका, अन्तिमास्त्रयो नयाः पर्यायार्थिका इत्याह ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—उस महाभाष्यमें अर्थात् विशेषावश्यकनामग्रंथमें क्षमाश्रमणपुङ्गव अर्थात् क्षमागुणधारी मुनियोंमें श्रेष्ठ तथा संपूर्णसिद्धान्तमतके पारंगत अर्थात् सब सिद्धान्तोंके वेत्ता श्रीजिनभद्रनामक गणि 'आचार्य' आदिके चार ४ नय तो द्रव्यार्थिक हैं; तथा अन्तके तीन नय पर्यायार्थिक है; यह जो पूर्वश्लोकमें कहा है; ऐसा ही कहते हैं ॥ १४ ॥

सूत्रम् । इत्याह सिद्धसेनोऽपि आद्या द्रव्यनयास्त्रयः ।

द्रव्यावड्यकलीनस्तद्वजुसूत्रो न सभवेत् ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—और सिद्धसेनजी भी आदिके तीन नयोंको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं, और शेष चारोंको पर्यायार्थिक कहते हैं, क्योंकि—द्रव्यके वर्तमानमात्र पर्यायके कहनेसे ऋजुसूत्र द्रव्यार्थिकनय नहीं सभर हो सकता ॥ १५ ॥

व्याख्या । पुन सिद्धसेनोऽपि सिद्धसेनदिवाकरो महवादी तार्किक प्रथमे त्रयो नैगम १ सग्रह २ व्यवहारलक्षणा द्रव्यनया अन्तिमाश्रित्वारो नया ऋजुसूत्र १ शब्द २ समभिरूढ ३ एवभूताख्या पर्यायार्थिकनया इत्याह । एवमवरोऽपि सिद्धान्तवेदिन आचार्या एन मेवार्थमाहुरिति । आद्या द्रव्यनयास्त्रय इत्यर्जुसूत्र १ शब्द २ समभिरूढ ३ एवभूतव जिता इति । तथा च

“द्रव्यार्थिकमते सर्वे पर्यायाः खलु कल्पिताः ।

पतत्येष्वन्वयि द्रव्यं कुण्डलादिषु हेमवत् ॥ १ ॥

पर्यायार्थमते द्रव्य पर्यायेभ्योऽस्ति नो पृथक् ।

यत्सैरर्थाक्रिया दृष्टा नित्य कुत्रोपयुज्यते ॥ २ ॥

इति द्रव्यार्थपर्यायार्थनयलक्षणादतीतानागतपर्यायप्रतिक्षेपी ऋजुसूत्र शुद्धमर्थपर्याय मन्यमान कथ द्रव्यार्थिक स्यादित्येतोपामाशय । इति तेषामाचार्याणा मत ऋजुसूत्रनयो द्रव्यावड्यकविषये लीनो न सभवति । तथा च “वजुसुयस्त एगे अणुव उत्ते एग द्रव्याव हसय पुहुत्तणन्थि ।” इत्यनुयोगद्वारसूत्रविरोध । अथ च वर्तमानपर्यायाधारस्वद्रव्या शपूर्वापरपरिणामसाधारणमूर्ध्वतासामान्य द्रव्याश १ सादृश्यास्तित्वरूपतिर्यकसामान्य द्रव्याश । एषु चैकमपि पर्यायनयो न मनुते तदा ऋजुसूत्र, पर्याय इति कथयत एत त्सूत्र कथ मिलति । तत कारणात्क्षणिकद्रव्यवादी सूक्ष्मर्जुसूत्रम्, तत्तद्वर्तमानपर्यायापन्न द्रव्यवादी स्थूलर्जुसूत्र द्रव्यनय इति कथनीयमिति सिद्धान्तवादिना मतम् । अनुपयोगद्रव्याशमेव सूत्रपरिभाषितमाद्योत्सूत्रतार्किकमते नोपर्यायपदमप्युपपद्यत इत्यस्मदेकपरि शीलित यथेति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—पुन महवादी और तार्किक जो सिद्धसेनजी दिवाकर हैं, वह प्रथमके नैगम १ सग्रह २ तथा व्यवहार ३ रूप तीनों नयोंको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं, और अन्तके ऋजुसूत्र १ शब्द २ समभिरूढ ३ तथा एवभूत ४ इन चार ४ नयोंको पर्यायार्थिकनय कहते हैं । और इसी अर्थको सिद्धान्तके जाननेवाले अन्य आचार्य भी कहते हैं, अर्थात् सिद्धसेनजी और उनके अनुगामी अन्य आचार्योंके मतमें भी ऋजुसूत्र १ शब्द २ समभिरूढ ३ और एवभूत ४ इन चार नयोंसे वर्जित आदिने तीन नय द्रव्यार्थिक हैं । और “द्रव्यार्थिकनयके मतमें सत्र पर्याय निश्चयरूपसे कल्पित है, क्योंकि—सब पर्यायोंमें अन्वयी (अनुगामी) द्रव्य समाविष्ट होता है, जैसे कुण्डलादिपर्यायोंमें सुवर्ण द्रव्य ॥१॥

और पर्यायार्थिकके मतमें द्रव्य पर्यायोंसे भिन्न नहीं है । क्योंकि—पर्यायोंसे जो अर्थक्रिया दृढ है; उस अर्थक्रियाका नित्य उपयोग कहा जाता है । अर्थात् सुवर्णके कुण्डलआदि तथा मृत्तिकाके घटआदि पर्यायोंसे जो आभूषण तथा जलधारणआदिरूप अर्थक्रिया दृढ है; वह नित्य नहीं है; क्योंकि—पर्यायोंके नष्ट होनेके पश्चात् वही सुवर्ण तथा मृत्तिका रूपद्रव्य शेष रहता है ॥ २ ॥” यह द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनयका लक्षण है; इस लिये अतीत (भूत) तथा अनागत (भविष्य) पर्यायोंका प्रतिक्षेपी (दूर फेंकनेवाला) शुद्ध अर्थ पर्यायको मानता हुआ ऋजुसूत्रनय द्रव्यार्थिक किस रीतिसे होवे। ऐसा इन आचार्योंका अभिप्राय है । इस कारण उन आचार्योंके मतमें ऋजुसूत्रनय द्रव्यावश्यकके विषयमें लीन नहीं होता है; और उस प्रकार “उज्जुमुयस्य एगे अणुव उत्ते एगं द्रव्या-स्सयं पुहुत्त णन्थि” इस अनुयोगद्वारासूत्रका विरोध होगा । और वर्तमान पर्यायका आधारभूत तथा निजद्रव्यके पूर्वापरपरिणाममे साधारण ऊर्द्धतासामान्य द्रव्यांश है । १ । सादृश्य सब व्यक्तियोंमें समानताके अस्तित्वरूप तिर्यक्सामान्य भी द्रव्यांश ही है । २ । और इनमेंसे एकको भी पर्यायनय नहीं मानता तब ऋजुसूत्र पर्यायार्थिक है; ऐसा कहने-वालोंके यह सूत्र कैसे संगत होता है । इस कारण क्षणिक द्रव्यको कहनेवाला तो सूक्ष्म ऋजुसूत्र है; और उस उस वर्तमानपर्यायको प्राप्त हुए द्रव्यको कहनेवाला स्थूलऋजुसूत्र है; ऐसे ऋजुसूत्रको द्रव्यार्थिकनय कहना चाहिये यह सिद्धान्तवादीयोंका मत है । और सूत्रपरिभाषित (सूत्रोक्त) अनुपयोग द्रव्यांशको लेके सूत्रविरुद्ध चलनेवाले तार्किक (नैयायिक) के मतसे नोपर्यायपद भी सिद्ध होता है । यह हमारा मुख्यरूपसे निर्धारित सिद्धान्त है ॥ १५ ॥

सूत्रम् । एवमन्तर्गतानां स्यादुपदेशः कथं पृथक् ।

पञ्चभ्यो हि यथा सप्तस्वर्थभेदो मनाङ् न हि ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकारसे अन्तर्भूत द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंका पृथक् रूपसे उपदेश कैसे हो सकता है ? और यदि ऐसा कहो कि—मतान्तरमें पांच नय हैं; उनमें दो मिलाकर जैसे सात नय मानते हैं; उसी प्रकार हमारे इन नयोंका भी भिन्न उपदेश होगा सो नहीं क्योंकि—हम जो पांचसे भिन्न दो मानते हैं; उनमें विषयभेद है; और तुल्यारे दो नयोंमें किंचित् भी विषयभेद नहीं अतः भिन्न उपदेश नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

व्याख्या । एवमन्तर्गतानामन्तर्भावितानां द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकानां नयानां पृथग्भिन्न उपदेशः कथं कृतः स्यात् । यद्येवं कथयत मतान्तरे पञ्च नयाः सन्ति तेषु द्वाविमौ मिश्रितौ सन्तौ नयसप्तकमिति व्यवहारो जायते तेन द्वयोः पृथगुपदेशस्तद्वदस्माकमपि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकयोः पृथगुपदेशो भविष्यतीति चेन्न वक्तव्यम् । शब्दसमभिरूढैवभूतानां यथा विषयभेदोऽस्ति तथैव द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोरपि सप्तनयेभ्यो भिन्नविषयत्वं दर्शयत ।

किञ्च त्रयाणां नयानामेका सज्ञा सङ्गृह्य नयपञ्चकं कथितमस्ति परन्तु विषयो भिन्नो वर्तते अत्र तु विषयो भिन्नो न वर्तते । पुनर्ये द्रव्यार्थिकनयस्य दश १० भेदा दर्शितास्ते सर्वेऽपि शुद्धाशुद्धसङ्गहादिष्वन्तर्भवन्ति, ये च पङ्केदाः पर्यायार्थिकनयस्य दर्शितास्ते सर्वेऽप्युपचरितानुपचरितव्यवहारशुद्धाशुद्धसूत्रादिष्वन्तर्भवन्ति । गोवलीवर्दन्यायेन विषयभेदे भिन्ननयत्वकथ्यते तर्हि स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव, इत्यादिसप्तभङ्गीमध्ये कोटिप्रकारैरपि तानर्पितसत्त्वासत्त्वग्राहकनयभेदेन भिन्नभिन्ननयवादेन च सप्तमूलनयप्रक्रिया चम्बज्यते । एतत्सुधीभिर्विमृश्यम् ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—पूर्वोक्त रीतिसे सात अथवा मत भेदसे पाच नयोंमें अन्तर्भाव किये गये ऐसे द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयोंका भिन्नरूपसे उपदेश (निरूपण) कैसे किया जावे? अर्थात् सात या पाच नयसे भिन्न इनका कथन अयुक्त है, क्योंकि— उन्हीं नैगम, सग्रहआदिमें इनका अन्तर्भाव है। कदाचित् ऐसा कहो कि— अन्यमतमें पाच ही नय हैं, उन पाचमें समभिरूढ और एवभूत इन दोनोंको मिला देनेसे “सात नय” ऐसा व्यवहार होता है, जिससे समभिरूढ और एवभूतका पृथक् उपदेश किया गया है, ऐसे ही हमारे भी द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंका भिन्नरूपतासे उपदेश होगा। सो ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि— जैसे शब्द समभिरूढ और एवभूत नयोंके विषयभेद है, ऐसे ही आप भी द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकके सातों नयोंसे विषयका भेद दिलाओ? और शब्द, समभिरूढ तथा एवभूत इन तीनोंकी एक सज्ञाका सग्रह करके पाच नयका कथन किया है, परन्तु विषय भिन्न २ है, और द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकका विषय सात नयसे भिन्न नहीं है, अर्थात् अभिन्न ही है। और शब्दआदिक नय तो भिन्नविषयक है, और जो द्रव्यार्थिकनयके दश १० भेद कहे गये हैं, वह सप्त भी शुद्धसग्रह अशुद्धसग्रहआदिमें अन्तर्गत हो जाते हैं, तथा जो पर्यायार्थिकनयके पद ६ भेद दर्शाये गये हैं, वह भी सप्त उपचरितव्यवहार और अनुपचरितव्यवहार तथा शुद्ध और अशुद्ध ऋजुसूत्रनयमें अन्तर्भूत हो जाते हैं, और यदि “गोत्रलीवर्दन्याय (जो गो है, वही बलीवर्द (बैल) है, इस न्याय) से भिन्न विषय मानकर भिन्न नय कहते हो तो “ स्यादस्त्येव ” कथचित् है, ही “ स्यात्तास्त्येव ” कथचित् नहीं ही है, इत्यादि सप्तभगीके मध्यमें कोटि (विरोधों) प्रकारोंसे अर्पित, अनर्पित, सत्त्व तथा असत्त्वको ग्रहण करनेवाले नयोंके भेदोंसे और भिन्न २ नयके वाद (कथन) में जो सप्त मूलनय माने गये हैं, उनकी प्रक्रियाका सर्वाथा भग हो जायगा अर्थात् मूलनय सात है, यह मिथ्यान्त २ रहेगा यह विषय बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये। तात्पर्य यह कि— गतार्थ विषयको भी यदि भिन्न मानकर नयके भेदकी कल्पना करते हो तो मूल तय मात्र ७ ही है, यह प्रक्रिया सर्वाथा टूट जायगी ॥ १६ ॥

अथ यदि विषयभेदेन नयभेदमङ्गीकारिष्यथ तदा सामान्यनैगमसङ्ग्रहमध्ये, विशेष

नैगमव्यवहारमध्ये, योजयतां युष्माकं पडेव नया निष्पत्स्यन्त इत्येतादृशीं पक्षकर्तुराशङ्कां स्फोटयितुं श्लोकमाह ।

अब यदि विषयके भेदसे ही नयके भेदको अङ्गीकार करते हो तो सामान्य नैगमको संग्रहके मध्यमे और विशेष नैगमको व्यवहारनयके मध्यमे योजित करनेवाले तुल्यारे मतसे पट्ट ६ ही नय सिद्ध होते हैं; अर्थात् नैगमके सामान्य और विशेष यह दोनों भेद जब क्रमशः संग्रह तथा व्यवहारमे अन्तर्भूत हो जायंगे तब नैगमनयका अभाव हो जानेसे छ (६) ही नय रह जायंगे इस प्रकार पक्षकर्त्ताकी शंकाको दूर करनेकेलिये यह अग्रिम श्लोक कहते हैं ।

सूत्रम् । सङ्ग्रहाद्यवहाराच्च नैगमोऽपि पृथक्कचित् ।

तस्मादलग्नकस्ताभ्यां स एतौ तु पृथङ्ग हि ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—संग्रह और व्यवहारनयसे तो नैगमनय कहीं भिन्न भी देखा जाता है; इसलिये संग्रह तथा व्यवहारसे असंलग्न विषयको धारण करनेवाला नैगम इन दोनोंसे पृथक् है; और द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक यह दोनों सप्त नयसे सर्वथा कहीं भी भिन्नविषयक नहीं हैं ॥ १७ ॥

व्याख्या । सङ्ग्रहेति—यद्यपि सङ्ग्रहनये व्यवहारनये च नैगमनयस्य सामान्यविशेषपर्यायावन्तर्भवतस्तथापि सङ्ग्रहाव्यवहाराच्च कचित्प्रदेशादिदृष्टान्तस्थाने नैगमो भिन्नोऽपि भवति उक्तं च—छण्हं तह पंचण्हं पंचविहं तहय होइ भयाणिज्जो । तम्मिय सोयण्णसो सोचेव पायेव सत्तण्हं । १ । इत्यादि तस्मात् कापि भिन्नविषयत्वान्नैगमनयोऽपि ताभ्यां भिन्नः प्रतिपादितः । तु पुनः एतौ द्वौ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ पृथक् भिन्नौ स्थितौ नैगमादिनयेभ्यो न हि संभवतः । अभिन्नविषयत्वात् तेभ्यो वियोज्य नवभेदादेशान्तरः किमु कथ्यत इति ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थः—यद्यपि संग्रहनय तथा व्यवहारनयमें नैगमके सामान्य और विशेष यह दोनों पर्याय अन्तर्भूत हो जाते हैं; तथापि कहीं कहीं प्रदेशादि दृष्टान्त स्थानमें संग्रह तथा व्यवहार नयसे नैगम भिन्नविषयक भी होता है । ऐसा कहा भी है ॥

इस कारणसे कहीं भिन्न विषय होनेसे नैगमनयका भी उन दोनों संग्रह और व्यवहारनयोंसे भिन्न प्रतिपादन किया गया है । और यह द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक तो नैगमसंग्रहआदि नयोंसे भिन्न विषयके धारक नहीं संभव होते क्योंकि—यह सप्त नयोंसे अभिन्नविषय है; अतः उन सातोंसे भिन्न करके सप्त नय भेदके स्थानमे नयोंके नौ भेद हैं; ऐसा भिन्न आदेश कैसे कहते हो ॥ १७ ॥

पुनरेनमर्थं प्रतिदिशन्नाह ।

अब पुनः इस अर्थका उपदेश करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । कुर्वन्नेव समाप्नोति विभक्तस्य विभाजनम् ।

जीवादिवन्न चैवात्र प्रयोजननियोजनम् ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकारसे विभाग किये हुए पदार्थका पुन विभाग प्राप्त होता है, परन्तु यहा जीवआदिके सदृश विभागके प्रयोजनकी नियोजना नहीं है ॥ १८ ॥

व्याख्या । एवमनया रीत्या नव ९ नयान् कुर्वन् रचयन् विभक्तस्य विभागीकृतस्य विभाजन विभागकरण समाप्नोति । विभक्तानां विभागो जायत इत्यर्थः । तदा जीवादिवत् जीवा द्विधा ससारिणो मुक्ताश्च ससारिणः पृथिवीकथिकादिष्वभेदा, सिद्धा पञ्चदशभेदा एतद्वन्नया अपि द्विधा द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकभेदा द्रव्यार्थिकस्त्रिधा नेगमादिभेदात्, ऋजुसूत्रादिभेदाच्चतुर्धा पर्यायार्थिका, इत्थं कथयितुं युक्तं परन्तु न नया इत्येकवाक्यताया विभागो विहितः स तु सर्वथापि मिथ्या ज्ञातव्यः । अन्यथा तु जीवा ससारिणः सिद्धा इत्यादि विभागवान्यमपि भवितुमर्हति । तथैव द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ नयावित्यपि कथयता अन्ये नया आगता स्युस्तथापि वयं स्वप्रक्रियानयेन नव नया इति कथयिष्यामः इतीत्थं वा दिनामेव प्रतिपादनीयम् यथा—अत्र प्रयोजननियोजनजीवाजीवादिवन्नास्ति भिन्नानि भिन्नानि तत्त्वानि व्यवहारमात्रेण माध्यानि तानि च तथैव सम्भवन्ति अत्र त्वितरव्यावृत्तिसाध्यानि तत्र च हेतुकोटिना अनपेक्षितभेदप्रवेशेन वैयर्थ्यदोषो जायते तत्त्वप्रक्रियया इव प्रयोजनमस्ति जीवस्तथा अजीवश्चेतौ द्वौ मुख्यौ द्वौ पदार्थौ कथनीयौ वन्धमोक्षौ मुख्यतया हेयोपादेयौ च कथनीयौ तस्माद्बन्धकारणतः हेय आश्रयः, तथा मोक्षो मुख्यपदार्थोऽस्ति । ततस्तस्य च द्वे कारणे सवरनिर्जराप्ये कथनीये इति सप्ततत्त्वकपनप्रयोजनप्रक्रिया । पुण्य पापरूपशुभाशुभजन्यभेदव्यतिरेकं दूरे कृत्वा अनयैव प्रक्रियया नवतत्त्वानीति ध्येयम् । अत्र तु द्रव्यार्थिकनयेन भिन्नोपदेशस्य किमपि प्रयोजनं नास्तीति ॥ १८ ॥

व्याख्यानार्थः—इस पूर्वोक्त रीतिसे नव ९ नवोंकी रचना करते हुए आपको विभक्त अर्थात् एक बार विभाग कियेहुये पदार्थोंका पुन विभाग करना प्राप्त होता है, तब जीवादिके सदृश अर्थात् जैसे प्रथम द्रव्यके जीव तथा अजीव इस प्रकार दो विभाग करके पुन जीवके ससारी और मुक्त ऐसे दो भेद किये और फिर ससारी पृथिवीकायिकआदि छ भेदके धारक तथा सिद्ध पण्डरह भेदनाले चोतित निये इसी प्रकारसे यह भी द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदसे दो प्रकारके हैं, उनमें नेगमआदि भेदोंसे द्रव्यार्थिक तीन प्रकारका है, और ऋजुसूत्रआदि भेदोंसे चार प्रकारका पर्यायार्थिक है, ऐसा कहना योग्य है, परन्तु नय नय हैं, इस प्रकार जो एकवाक्यतामें विभाग किया है, वह विभाग तो सर्वथा मिथ्या जानना चाहिये । और यदि ऐसा ही विभाग करो तब तो जीव, संसारी सिद्ध इत्यादि रीतिसे भी विभागवाक्य हो सक्ता है, अर्थात् जैसे द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकके भेदोंमें द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकको मिलाकर नव नवोंका कथन किया इसी प्रकार जीवके ससारी और मुक्त इन दोनों भेदोंमें जीवको भी योजित करके जीव, ससारी, सिद्ध ऐसे

तीन भेद कहिये “ जैसे जीव और अजीवके कहनेसे आश्रयआदि तत्त्वोंका ग्रहण सिद्ध है; वैसे ही द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनोंके कथनसे अन्य नैगमादि सब नयोंका ग्रहण हो जावे परन्तु तो भी जैसे आश्रयआदिक भिन्न कहे हैं; उसी प्रकार हम हमारी नय प्रक्रियासे नय नव ९ है ऐसा कहेंगे ” इस प्रकार कहनेवालोंके प्रति ऐसा कहना चाहिये कि—यहांपर जीव अजीवआदिके समान तुल्यारे प्रयोजनकी नियोजना नहीं है; क्योंकि—व्यवहारमात्रसे भिन्न २ तत्त्व साध्य होते हैं; और जो आश्रवादिक भिन्न तत्त्व कहे गये हैं; वह भी व्यवहारमात्रसे ही कहे हैं; और नयके विषयमें तो एक नयसे दूसरेका किसी प्रकार भेद सिद्ध हो तब भिन्न नयकी सिद्धि हो उसमें यदि हेतुकोटिसे अनपेक्षित भेदका प्रवेश हो तो वैयर्थ्य दोष होता है; तात्पर्य यह कि— जिस भेदमें प्रबल हेतु न दिया जाय तो वह भेद व्यर्थ ही है; और तत्त्वप्रक्रियामें जो जीव, अजीव इन दोनोंमें ही सब तत्त्वोंके गतार्थ होनेपर जो सप्त तत्त्व निरूपण किये हैं; उनमें तो यह निम्नलिखित प्रयोजन है; कि—जीव और अजीव यह दो ही मुख्य द्रव्य हैं; अर्थात् इन्हीं दोनोंको मुख्य पदार्थ कहना तथा समझना चाहिये और बन्धको हेय (त्याग करने योग्य) तथा मोक्षको उपादेय (ग्रहण करने योग्य) रूपसे कहना चाहिये और आश्रव है; सो बन्धका कारण है; इसलिये आश्रवको भी हेयरूपसे कहना चाहिये और मोक्ष मुख्य पदार्थ है; क्योंकि—उसीकेलिये सब पदार्थोंका निरूपण है; और वही उपादेय है; इस कारण उस मोक्षके संवर और निर्जरा इन दोनों कारणोंका कथन करना चाहिये इस रीतिसे जीव अजीव आश्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष इन सप्ततत्त्वोंके कथनकी प्रयोजनवाली प्रक्रिया है; और इसी प्रक्रियासे शुभ बंधके कारण पुण्यको भी भिन्न करके कहनेसे नव तत्त्व हो जाते हैं; ऐसा समझना चाहिये । और यहां द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयसे नैगमआदिको भिन्न उपदेश करनेका कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥

सूत्रम् । अभिन्नकारणाः सूत्रे नयाः सप्तैव कीर्तिताः ।

उच्यते तत्कथं वाक्यमधिकं सूत्रवर्जितम् ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थः—सूत्रमें अभिन्नकारण सात ही नय दर्शाये गये हैं; इसलिये तुम सूत्रवर्जित अधिक वाक्य कैसे कहते हो ॥ १९ ॥

व्याख्या । तस्मात्कारणात्सूत्रे नया अभिन्नकारणाः सप्तैव कथिताः तद्यथा सूत्रम् “ सप्त मूल नया पणात्ता ” एतादृशसूत्रे कथितमस्ति तद्वाक्यं सूत्रसदृशमुल्लङ्घाधिकं नव नया इति वाक्यं कथमुच्यते स्वसूत्रपरिरक्षणार्थं यथोक्तमेव न्याय्यम् । इत्थं परिचित्य केषांचिद्वाक्यसङ्कलनामनादृत्य श्रीवीतरागभाषितवचनरचनापवित्रे सूत्रे बुद्धिरारोपणीया स्वसम्पत्कशुद्धि-संसिद्धिवृद्धये ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः—इस कारण भिन्नकारणशून्य सात ही नय सूत्रमें कहे गये हैं; वह

सूत्र यह है, जैसे “ मूलनय सात ही है ” इस प्रकार सूत्रमें स्पष्टरूपसे कहा गया है, सो उस सूत्रमें जैसे वाक्यका उल्लघन करके सप्तसे अधिक अर्थात् नय नव है, ऐसा वाक्य कैसे अथवा किस आधारसे कहते हो । इसलिये अपने सूत्रकी रक्षाकेलिये यथोक्त (सप्तनय) का ही कथन करना योग्य है, ऐसा विचार करके जिस किसीनी वाक्य रचनाका अनादर कर बुद्धिमान् पुरुषोंको अपने शुद्ध सम्यक्त्वकी सिद्धिके अर्थ अथवा सम्यक्त्वकी वृद्धिकेलिये श्रीवीतरागभाषित वचनोंकी रचनासे पवित्र ऐसा जो सूत्र है, उसीमें बुद्धिको लगाना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ साक्षिण दर्शयति ।

अब साक्षीको दिखलाते हैं ।

सूत्रम् । दश भेदादिकाश्चात्र सन्ति युक्तोपलक्षणाः ।

न चेदन्तर्भवेत्कुत्र प्रदेशार्थनयो वद ॥ २० ॥

सूत्रभावार्थः—और द्रव्यार्थिकआदिके जो दश भेद वगैरह देवसेनजीने कहे हैं, वह भी उपलक्षणमात्र हैं । यदि उपलक्षणमात्र न मानें तो कहो प्रदेशार्थनयका किसमें अन्तर्भाव होवे ॥ २० ॥

व्याख्या । अत्र देवसेनरचितनयचक्रग्रन्थे द्रव्यार्थिकादिदशभेदा उपदिष्टास्ते चोपलक्षणत्वेन ज्ञातव्याः । यद्येव न क्रियते तर्हि प्रदेशार्थनय कस्मिन् स्थाने चरितार्थो भवेदित्य विचारणीयम् । दशभेदादिका अत्र देवसेनीये ग्रन्थे युक्तोपलक्षणा, उपलक्षणमात्रपरा सन्ति चेद्यद्येव ते कुत्र न तर्हि प्रदेशार्थनयोऽपि कुत्रान्तर्भवेदिति वद । उक्त च सूत्रे “ दृष्टिया एव पदे सद्रष्ट्या एव द्वन्द्वयुग्म पदे सद्रष्टय ” इत्यादि । तथा कर्मोपाधिसापेक्षजीवभावप्राहक-द्रव्यार्थिको यथोपदिष्टस्तथा जीवसयोगसापेक्षपुद्गलभावप्राहकनयोऽपि भिन्नतया कथयितु योग्य एव । एव सत्यनेके भेदा भवन्ति तथा प्रत्यकादिदृष्टान्तेन नैगमादीनामशुद्ध १ अशुद्धतर २ अशुद्धतम ३ शुद्ध ४ शुद्धतर ५ शुद्धतमादिभेदा भवन्ति ते भेदा कुत्र संगृह्यन्ते । तेषां सङ्ग्रहार्थमुपचारो विहितस्तत्र उपचारेण ते उपनया भवन्तीति यदि कथ्यते तदापसिद्धान्तो भवेत् । अनुयोगद्वारे ते नयभेदा प्रदर्शिता सन्ति तत्र एतदेव दृढीक्रियते उपनया कथिता ये सन्ति तेन व्यवहारनैगमादिभ्यः पृथग् न सन्ति उक्त च तत्त्वार्थसूत्रे “ उपचारबहुलो विस्तृतार्थो लौकिकप्रायः ” ॥ २० ॥

व्याख्यार्थः—इस देवसेनजीरचित नयचक्रनामक ग्रन्थमें जो द्रव्यार्थिकआदि दश भेद द्रव्यार्थिक नयके कहे हैं, उनको उपलक्षणपनेसे जानने चाहिये अर्थात् यह भेद

१ निजका तथा निजके समीपस्थ तथा अपने सव चीका भी घेय करनेवाला शब्द, जैसे “ हाकेभ्यो दधि र दधाम् ” यहापर कारूपद दधिसे उपपातक (नाश करनेवाले) शब्द भाव्यारआदिका उपलक्षण है न कि—यह कि पाकोंमें दधिरी रक्षाकरो और बिनी कुत्ते भाव तो खाने दो ।

दिग्दर्शनमात्र हैं; इनसे अधिक और भी भेद होते हैं । और यदि उन दशको उपलक्षणमात्र नहीं करें तो प्रदेशार्थनय किस स्थानमें चरितार्थ (अन्तर्भूत) हो यह विचारना चाहिये तथा यदि इस देवसेनजीके ग्रन्थमें दश भेद उपलक्षणसहित न हों तो प्रदेशार्थनयका किस नयमें अन्तर्भाव होता है; यह कहो । पुनः इस प्रदेशार्थनयका वर्णन सूत्रमें भी है; जैसे “द्रव्यार्थिकप्रदेशार्थनय” इत्यादि । तथा जैसे कर्मरूप उपाधि-की अपेक्षा रखनेवाले जीवभावको ग्रहण करानेवाला द्रव्यार्थिकनयका उपदेश किया है; इसी रीतिसे जीवके संयोगकी अपेक्षाका धारक जो पुद्गलभाव है; उसका ग्रहण कराने-वाला नय भी भिन्नरूपतासे कथन करनेके योग्य ही है; और जब जीवसंयोगापेक्षपुद्गल भावग्राहक नय माना जायगा तब इसी प्रकार अन्य भी अनेक नय होंगे । और प्रस्थकआदि दृष्टान्तसे नैगमआदि नयोंके अशुद्ध १ अशुद्धतर २ अशुद्धतम ३ शुद्ध ४ शुद्धतर ५ और शुद्धतमआदि जो अनेक भेद होते हैं; उन भेदोंका संग्रह कहाँ किया जायगा अर्थात् तुमको उपलक्षणमात्र ही इन दश भेदोंको मानना चाहिये अन्यथा पूर्वोक्त भेदोंका संग्रह न होगा । अब यदि ऐसा कहो कि—“इन पूर्वोक्त भेदोंके संग्रहके अर्थ हमने उपचार किया है; और इसी कारण उपचारसे वह उपनय होते हैं” तो अपसिद्धान्त होगा अर्थात् सिद्धान्तकी हानि होगी । क्योंकि—अनुयोगद्वारामे उनको नयोंके भेद दिखलाये गये हैं । इसलिये यही पक्ष दृढ किया जाता है; कि—जो उपनय कहे गये हैं; वह नहीं है; अर्थात् व्यवहार नैगमआदि नयोंसे जुड़े नहीं है; और तत्त्वार्थसूत्रमें व्यवहारका लक्षण भी यही कहा है; कि—जो बहुधा उपचारसे पूर्ण हो अर्थात् जिसमें उपचार अधिक हो वह तथा संक्षिप्त अक्षरोंमें विस्तारसहित अर्थका धारक हो और प्रायः लौकिक हो वह व्यवहार है ॥ २० ॥

सूत्रम् । व्यवहारे समायान्ति तथैवोपनया अपि ।

न चेत्प्रमाणमप्यत्रोपप्रमाणत्वमाश्रयेत् ॥ २१ ॥

सूत्रभावार्थः—और वह उपनय भी व्यवहारमें ही गर्भित हो जाते हैं । यदि ऐसा न हो तो प्रमाण भी उपप्रमाणताका आश्रय करे ॥ २१ ॥

व्याख्या । एवं सति नयभेदान् यद्युपनयान् कृत्वा मनुते तर्हि स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणमित्येतदलक्षणेन लक्षितस्य ज्ञानरूपप्रमाणस्याप्येकदेशो मत्यादिरथवा तद्देशोऽवग्रहादिः सोऽप्युपप्रमाणमिति पृथग्भेदो भविष्यति । तस्मान्नयोपनयप्रक्रिया शिष्याणां बुद्धिद्वन्द्वनमात्रेण ज्ञातव्या ॥ २१ ॥

सूत्रम् । निश्चयाद्व्यवहारेण कोपचारविशेषता ।

मुख्यवृत्तिर्यदैकस्य तदान्यस्योपचारता ॥ २२ ॥

सूत्रभाषार्थः—निश्चयनयसे व्यवहारनयमे उपचारकी विशेषता क्या है ? इसका उत्तर यह है, कि—जब एककी मुख्यता होती है, तब अन्य(दूसरे)की उपचारता होती है ॥ २२ ॥

व्याख्या । निश्चयात् निश्चयनयात् व्यवहारेण सहोपचारविशेषता कास्ति । व्यवहार विषय उपचारोऽस्ति निश्चय उपचारो नास्त्येतावद्विशेषता । यदैकनयस्य मुख्यवृत्तिर्गृह्यते तदा परनयस्योपचारवृत्तिरायाति । रत्नाकरवाक्ये स्याद्वादरत्नाकरे च प्रसिद्धमस्ति “स्व स्यादसत्यत्वस्याभिमानोऽस्ति लनयानामन्योन्य वृत्तते फलात्सत्यत्व तु सम्यग्दर्शनयोग एवास्ति” । एवं च प्रकृतमर्थं व्याख्यायते । निश्चयनयाद् व्यवहारनयेन सहोपचारविशेषता कास्ति योपचारविशेषता वर्त्तते ता दर्शयति । यदैकस्य कस्यचिन्नयस्य मुख्यता मुख्यभावो वर्त्तते तवान्यस्यान्यनयस्य उपचारता गौणत्व भवतीति ज्ञेयम् । यथा हि निश्चयेनात्मेति शब्द एतस्य निश्चयार्थस्तु “असत्यातप्रदेशी निरञ्जनोऽनन्तज्ञानादिगुणोपेतो नित्यो विभु कर्मवो-पैरसङ्गत सिद्ध इव देह उपलभ्यते” तदास्य व्यवहारेणौपाधिकस्य जडशरीरादे सङ्गतस्यौ वयिकादिभावोपगतनरतैरयकादिभाजस्पर्शतोऽपि गौणत्व भासते । —अथ च “अतति सातत्येन गच्छति तास्तान्पर्यायानित्यात्मा” ससारस्यो देहादिसङ्गतो जन्ममरणजरायौवनादि क्लेशमनुभवमान प्रत्यक्षप्रमाणेन व्यवहारावेशादेवो मनुष्यो नारकस्तिर्यक् च कथ्यते तत्र सिद्धत्वस्य गौणत्वम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थः—निश्चयनयसे व्यवहारनयके साथ उपचारकी विशेषता क्या है ? इस जिज्ञासा(जाननेकी इच्छा)में कहते हैं, कि—व्यवहारनयके विषे उपचार है, और निश्चयनयमें उपचार नहीं है, इतनी ही विशेषता है, अर्थात् जब एक नयकी मुख्य अर्थमें शक्ति रहती है, तब अन्य नयकी उपचारवृत्ति(गौणता)से उस नयकी अर्थबोधनशक्ति स्वयं आती है । और यह वार्त्ता रत्नाकरवाक्यमें तथा स्याद्वादरत्नाकरमें प्रसिद्ध है । जैसे “अपने २ अर्थकी सत्यताका अभिमान सब नयोंके परस्पर रहता है, और उन नयोंके फलसे सत्यता तो सम्यग्दर्शनके सयोगके होनेपर ही होती है,” जब ऐसा सिद्धान्त है, तब इस प्रकृत अर्थका इस प्रकार व्याख्यान होता है, कि—“निश्चयनयसे व्यवहारनयके साथ उपचारविशेषता क्या है ? जो उपचारविशेषता है, उसको दिखाते हैं । जब किसी एक नयकी मुख्यता रहती है, तब अन्य (दूसरे) नयकी उपचारता रहती है, तात्पर्य यह कि—एक नय प्रधानभावसे जब रहेगा तब अन्य नय गौणत्व(अप्रधानपने)रूपसे आप ही रहेगा, यह गौणत्ववृत्ति होना ही उपचारता है, ऐसा समझना चाहिये । उदाहरणकेलिये जैसे निश्चयनयसे “आत्मा” यह शब्द है, तब इस आत्माका निश्चयनयसे अर्थ असत्यातप्रदेशोंका धारक, निरजन, अनन्त ज्ञानआदि गुणोंसे सहित, नित्य, विभु (व्यापक) और कर्मोंसे उत्पन्न जो दोष है, उनसे रहित सिद्धके सदृश आत्मा ही देहमें जाना जाता है । उस निश्चयार्थदंगामें यद्यपि व्यवहारसे औपाधिक जो जड पदार्थ शरीरआदि है, उनके

सहित तथा औदयिकआदि भावोंसे प्राप्त जो नर नारकी, और तिर्यञ्चआदिपना है; उसको स्पर्शताहुआ भी जो आत्मा है; उसका गौणत्व भासता है। और जब “अतति इति आत्मा” अर्थात् जो निरन्तर उन उन पर्यायोंके प्रति गमन करता है; अथवा निरन्तर उन उन पर्यायोंको प्राप्त होता है; वह आत्मा है; ऐसा व्यवहारसे अर्थ करते हैं; तब यह आत्मा संसारी है, देहआदिकसे सहित है, जन्म, मरण, वृद्धावस्था, और यौवनआदिक दशाओंमें जो दुःख होता है; उसको प्रत्यक्ष प्रमाणसे अनुभवकरताहुआ देव है, मनुष्य है, नारकी है; और तिर्यञ्च है; इत्यादिरूपसे कहा जाता है। उस व्यवहारदशमें इसका निश्चयोक्त अनन्त गुणादिसहित जो सिद्धपना है; उसकी गौणता भासती है ॥२२॥

अथ पुनस्तदेव प्रतिपादयति ।

अब फिर उसी विषयका प्रतिपादन करते हैं ।

सूत्रम् । तेनेदं भाष्यसंदिष्टं गृहीतव्यं विनिश्चयम् ।

तत्त्वार्थं निश्चयो वक्ति व्यवहारो जनोदितम् ॥ २३ ॥

सूत्रभावार्थः—इस कारण भाष्यमें कहाहुआ जो यह विनिश्चय है; कि—“निश्चयनय तत्त्वार्थको कहता है; और व्यवहारनय केवल मनुष्योंसे कहेहुएको ही कहता है” इसको स्वीकार करना चाहिये ॥ २३ ॥

व्याख्या । तेन कारणेनेदं विनिश्चयं निश्चयव्यवहारयोर्लक्षणं भाष्यसंदिष्टं विशेषावश्यक-निरूपितं गृहीतव्यमवधारणीयम् । अथ निश्चयव्यवहारयोर्लक्षणमाह । निश्चयो निश्चयनयः तत्त्वार्थं युक्तिसिद्धमर्थं वक्ति कथयति । पुनर्व्यवहारो व्यवहारनयो जनोदितं लोकाभिप्राहित्वं वक्ति यतो लोकाभिमतमेव व्यवहारस्तस्य ग्राहकं प्रमाणं न भवति । प्रमाणं तु तत्त्वार्थग्राहकमेवास्ति तथापि प्रमाणस्य सकलतत्त्वार्थग्राही निश्चयनयः, एकदेशतत्त्वार्थग्राही व्यवहारश्चायं विवेकः । निश्चयनयस्य विषयत्वमथ च व्यवहारनयस्य विषयत्वमनुभवसिद्धं भिन्नमेवास्ते । असता न निष्ठेति । यथा सविकल्पकज्ञानं नष्टप्रकारतादिकमन्यवादिनो भिन्नमेवामनन्तीति हृदये विमर्शनीयम् ॥ २३ ॥

व्याख्यार्थः—इस कारणसे भाष्य अर्थात् विशेषावश्यकमें कहाहुआ जो यह विनिश्चय अर्थात् निश्चय और व्यवहारका लक्षण है; उसको निश्चित करना चाहिये । अब जो निश्चय और व्यवहारका लक्षण भाष्यमें कहाहुआ है; उसका कथन करते हैं; कि—निश्चयनय जो है; वह तो तत्त्वार्थ अर्थात् युक्तिसे सिद्ध अर्थको कहता है; और व्यवहारनय जो है; वह जनोदित अर्थात् लोकके इष्ट जो ग्रहण है; उसको कहता है, क्योंकि—लोकके ही जो अभिमत होता है; वह व्यवहार है । इसलिये उस व्यवहारका जो ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) है; वह प्रमाण नहीं होता; किन्तु जो तत्त्वार्थका ग्राहक होता है; वही प्रमाण होता है; तथापि प्रमाणके संपूर्ण तत्त्वार्थको ग्रहण करानेवाला निश्चयनय है, और प्रमा-

णके एकदेश तत्त्वार्थको जो ग्रहण करता है, वह व्यवहार कहलाता है, यह निश्चय ओर व्यवहार इन दोनों नयोंका विभेद है । ओर निश्चयनयका विषय तथा व्यवहारनयका विषय तो भिन्न ही है, यह अनुभवसे सिद्ध है । और व्यवहारग्राहक प्रमाण असत् है, इससे उसकी निष्ठा (उत्पत्ति) नहीं है; ऐसा नहीं क्योंकि—जैसे अन्ययादी सविकल्पक ज्ञानको ओर निविकल्पकको भिन्न ही मानते हैं, उसी प्रकार निश्चय ओर व्यवहार है, ऐसा हृत्त्यमें विचारना चाहिये ॥ २३ ॥

अधोपचार निर्दिशति ।

अत्र उपचारका निर्देश करते हैं ।

सूत्रम् । बाह्यस्याभ्यन्तरत्वं बहुव्यक्त्येभेदता ।

यच्च द्रव्यस्य नैर्मल्यमिति निश्चयगोचरा' ॥ २४ ॥

सूत्रभाषार्थः—जो बाह्य पदार्थका अन्तरगत है, जो अनेकव्यक्तिगत अभेदता है, ओर जो द्रव्यकी निर्मलता है, सो सब निश्चयनयका विषय है ॥ २४ ॥

न्याय्या । यद्वाह्यस्य बाह्यार्थस्याभ्यन्तरत्वमन्तरङ्गत्व वर्तते तन्निगोचर निश्चयविषयमित्यर्थं यथा “ समाधिर्नन्दन धैर्यं दमोलि समता समा । ज्ञान महाविमान च वासरश्रीरिय पुन ॥ १ ॥ ” इत्यादि पुण्डरीकाध्ययनाद्यर्थोऽप्येव भावनीय । अथ पुनर्वहुव्यक्त्येनेकविधे पस्याभेदता भेदराहित्य तदपि निश्चयविषय यथा “ एगे आया ” इत्यादिसूत्रम्, तथा वेदान्तदर्शनमपि शुद्धसद्ब्रह्मनयादेशरूप शुद्धनिश्चयनयार्थ समतिग्रन्थे कथित । तथा पुनर्द्रव्यस्य पदार्थस्य नैर्मल्य तदपि निश्चयविषयम् । नैर्मल्य तु विमलपरिणतिर्वाह्यनिरपेक्षपरिणामस्त्वोऽपि निश्चयनयार्थो बोद्धव्यः । यथा “ आयासामाह्य आयासामाह्यस्म अट्टे ” एव मेतेऽभ्यन्तरत्वादयो निश्चयगोचरा एव यथा यया रीत्या लोकातिक्रान्तोऽर्थोऽज्ञाप्यते तथा तया रीत्या निश्चयनयस्य भेदा भवन्ति तस्माच्च लोकोत्तरार्थभावना समायातीति ज्ञेयम् ॥२४॥

व्याख्यार्थः—जो बाह्य पदार्थका आभ्यन्तरत्व अर्थात् अन्तरगपना है, वह निश्चयनयका विषय है, जैसे समाधि, नदनन, दमोलि (वज्र) समता समाज्ञान महाविमान और यह वासरश्री अर्थात् दिनकी शोभा । १ । इत्यादि तथा पुण्डरीकाध्ययनार्थ भी इसी प्रकार विचारना चाहिये । और बहुव्यक्तिगत जो अनेक विशेष है, उनकी अभेदता (भेद-रहितपना) जो है, वह भी निश्चयनयका विषय है, जैसे “ एगे आया ” इत्यादि सूत्र है । इसी प्रकार वेदान्तदर्शन भी शुद्धसद्ब्रह्मनयका आदेशरूप होनेसे शुद्धनिश्चयनयका अर्थरूप समति ग्रन्थमें कहा है । और जो द्रव्य अर्थात् पदार्थकी निर्मलता है, वह भी निश्चयनयका विषय है, यहापर नैर्मल्य शब्दका अर्थ निर्मल परिणाम अर्थात् नाश विषयकी अपेक्षा न रखनेवाला जो द्रव्यका परिणाम है, वह भी निश्चयनयका ही अर्थ (विषय) समझना चाहिये, जैसे “ आया सामाह्य आया सामाह्यस्म अट्टे ” इत्यादि । इम

प्रकार यह पूर्वोक्त अभ्यन्तरत्वआदि निश्चयनयके ही विषय है । और जिस रीतिसे लोकोत्तर अर्थ प्राप्त होता है; उसी प्रकारसे निश्चयनयके भेद होते हैं; और इस हेतुसे लोकोत्तर अर्थकी भावना प्राप्त होती है । ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ व्यवहारविषयं दर्शयति ।

अव व्यवहारनयके विषयको दर्शाते हैं ।

सूत्रम् । यो हि भेदो भवेद्व्यक्तेर्यश्चैवोत्कटपर्यवः ।

कार्यकारणयोरैक्यमिति व्यवहृतेर्विधाः ॥ २५ ॥

सूत्रभावार्थः—जो व्यक्तिका भेद होता है; जो उत्कट पर्याय है; तथा जो कार्य और कारणकी एकता है; सो सब व्यवहारके भेद है ॥ २५ ॥

व्याख्या । हि निश्चितं यो भेदो व्यक्तेर्भवेत् स च व्यवहारभेदो ज्ञेयः । यथा अनेकानि द्रव्याणि, अनेके जीवाः, इत्यादि प्रकारेण व्यवहारनयार्थः । तथा च पुनरेव निश्चयनय उत्कटपर्यवः उद्धतपर्यायः सोऽपि व्यवहारनयस्य भेदः । अत एव “ निष्ठयणणं पंचवर्णे भमरे व्यवहारणण कालवणे ” इत्यादिसिद्धान्ते प्रसिद्ध उत्कटपर्यायोऽपि व्यवहारः । तथा च कार्यकारणयोर्निमित्ती निमित्तश्च एतयोरैक्यं यद्भवति तदेवापि व्यवहारविषयम् । यथा हि आयुर्धृतमित्यादि, यथा वा गिरिर्दहते, यथा वा कुण्डिका स्रवति, मञ्चाः क्रोशन्ति, कुन्ताः प्रविशन्ति, गङ्गायां घोष इत्यादिव्यवहारभाषा अनेकरूपा वर्तते । सा च सर्वापि व्यवहारनयविषयिणी ज्ञेया । इति किं यो व्यक्तेर्भेदः, यः पुनरुत्कटपर्यवः यदपि कार्यकारणयोरैक्यम्, इत्यादि व्यवहृतेर्व्यवहारस्य विधाः प्रकारा इत्यर्थः ॥ २५ ॥

व्याख्यार्थः—जो व्यक्तिका भेद होता है; उसको निश्चयरूपसे व्यवहारका भेद जानना चाहिये, जैसे अनेक द्रव्य है, अनेक जीव है, इत्यादि रीतिसे व्यवहारनयका अर्थ है; और फिर जो निश्चयनयमें उद्धत पर्याय है; सो भी व्यवहारनयका भेद है । इसी हेतुसे ऐसा कहा भी है; कि—निश्चयनयसे भ्रमर (भंवरा) पंचवर्ण अर्थात् पांच रंगका है; और व्यवहारनयसे केवल कृष्णवर्ण (काले रंगका) ही है; इत्यादि रीतिसे सिद्धान्तमें प्रसिद्ध जो उत्कट पर्याय है; वह भी व्यवहारनयका भेद है । और फिर कार्य कारण अर्थात् निमित्ती और निमित्तकी जो एकता है; वह भी व्यवहारनयका विषय है; जैसे आयु धृत है; यहां धृतरूप जो आयुका कारण है; उसमें आयुरूपता मानी है; अथवा जैसे पर्वत जलता है; ‘ कुंडी करती है ’ ‘ मंच (मांचे) शब्द करते है ’ ‘ भाले घुसते है ’ ‘ गंगामें घोष (अहीरोंका ग्राम) है ’ इत्यादि जो अनेकरूप व्यवहारभाषा (व्यवहारमें कहनेकी परिपाटी) है; वह सब व्यवहारनयके विषयको धारण करनेवाली ही जाननी चाहिये । तात्पर्य यह है; कि—जो व्यक्तिका भेद है, और जो उत्कट पर्याय है; तथा जो कार्य कारणकी एकता है; इत्यादि यह सब व्यवहारनयके भेद है ॥ २५ ॥

अथ प्रपञ्चितस्य सक्षेपमाह ।

अत्र जो पूर्वोक्त प्रपञ्च है, उसको सक्षेपसे कहते हैं ।

सूत्रम् । इत्याद्यनेकविषयांश्च नयान्विहाय
सक्षिप्य ताश्च वचसाध्यधिकांस्त्रिधा ।
बालावबोधनकृते किल देवसेन-
स्तत्प्रपञ्चनमचीकरदासशून्यम् ॥ २६ ॥

सूत्रभावार्थः—इत्यादि अनेक विषयोंको धारण करनेवाले निश्चय व्यवहारआदि नयोंको त्यागकर और फिर उनको ही उपचारसे सक्षिप्तकर और सूत्रवाक्यसे भी अधिक नयोंको अपनी बुद्धिसे करके मद्बुद्धियोंको वचने(उगने)फैलिये देवसेनजीने आपस-शून्य इस प्रपञ्चको किया है ॥ २६ ॥

व्याख्या । इत्यादि अनेकविषयान् अनेकैः भूयासो विषया गोचरा अर्थात् वा एषान्तेऽनेकविषयास्ताननेकविषयान् नयान् न्यायान् निश्चयव्यवहारात्मकान् विहाय त्यक्त्वा च पुनस्तानेव नयान् सक्षिप्य सक्षेप कृत्वा उपचारपदेन सकोचयित्वा अपि पुनर्वचसा वचनान्तरेण अधिकां अतिरेकान् विहाय रचयित्वा सूत्रे सप्त नया आदेशान्तरेण पञ्च नयास्तत्र च 'नय नया' इत्याधिक्य कृत्वा बालावबोधनकृते बालानां मन्दमतीनामवबोधन प्रतारण "अवबोधन प्रतारणे वचने शिक्षणे चेत्यनेकार्थात्" मन्मतविषयनकृते प्रतारणार्थाय किल इत्यस्य "सत्केलीके भावनाया निश्चयेऽपि किल स्मृतमिति" देवसेन नयचक्रग्रन्थनिर्मायको दिगम्बरमतप्रणी एतत् प्रागुक्त प्रपञ्चन नयवित्सारण अचीकरण चकार । कीदृशचीकरत् आप्रशून्य आप्तोवीतरागस्तस्य चान्य सिद्धान्तस्तेन शून्य वर्जितम्, आप्रशून्यमिति मध्यमपद लोपी समास आप्तवाक्येन शून्यमाप्रशून्य स्वमत्या असंभावित विरचन्य लोके ग्रन्थगौरवो दर्शित इति ॥ २६ ॥

व्याख्यार्थः—इत्यादि बहुतसे गोचर अथवा अर्थोंके धारक निश्चय और व्यवहार स्वरूप नयोंको छोड़कर और फिर उन्ही नयोंका सक्षेप करके अर्थात् उपचारपदसे सकोच करके पुन वचनान्तरसे अधिक नयोंकी रचना करके अर्थात् सूत्रम सप्त नय है, और मतातरसे पाच नय है, वहापर अर्थात् सात तथा पाच नयोंके स्थानम् "नय नय है" ऐसी अधिकता करके मद्बुद्धियोंको वचनेफैलिये अवबोधन शब्द प्रतारण वचन तथा शिक्षणआदि अनेकार्थका वाची है, इसलिये सूत्रमें जो अवबोधन शब्द है, उसका यहा वचनरूप अर्थ लियागया है" इसलिये उन मद्बुद्धियोंको धोखा देनेके अर्थ मिथ्या ही "सूत्रमें जो किल शब्द है, वह सत्य, झूठ, समाजना और निश्चय इन चार अर्थोंमें वर्तता है, इस कारण यहा झूठरूप अर्थका ग्रहण कियागया है" दिगम्बरमतके अग्रम्बर नय चक्रग्रन्थके बनानेवाले देवसेनजीने श्रीवीतरागके सिद्धान्तमें रहित इस पूर्वोक्त प्रपञ्चन अ

र्यात् नयके विस्तारको किया तात्पर्य यह कि—देवसेनजीने अपनी बुद्धिसे सर्वज्ञमतके विरुद्ध असंभावितको रचकर लोकमें ग्रन्थका गौरव दिखाया है ॥ २६ ॥

सूत्रम् । इत्थं नयानां बहुभङ्गजालैरेकं पदार्थं च त्रिधा परीक्ष्य ।

अर्हत्कमाम्भोजयुगोपयोगिचेतः कुरुष्व आत्मसुखं लभस्व २७

सूत्रभावार्थः—हे भव्य ! इस प्रकार नैगम संग्रहआदि नयोंके अनेक भेद समूहोंके द्वारा एक पदार्थको द्रव्य, गुण पर्यायरूप निश्चय करके श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलयुगलमें लीन चित्तको कर और आत्मसुखको प्राप्त हो ॥ २७ ॥

व्याख्या । इत्थं अमुना प्रकारेण श्रीजिनदेवभाषितसूत्रप्रक्रमेण नयानां नैगमादीनां सप्तानां तथापि पञ्चानां बहुभङ्गजालैः बहवोऽनेके भाङ्गा भेदास्तेषां जालैः समूहैः एकं कमपि स्वेषितं पदार्थं जीवादिपदार्थं त्रिधा द्रव्यगुणपर्यायरूपं परीक्ष्य निश्चित्य अर्हत्कमाम्भोजयुगोपयोगि अर्हतां वीतरागाणां क्रमाश्चरणास्त एवाम्भोजानि कमलानि तेषु उपयोगि लीनं एतादृशं चेतः चित्तं कुरुष्व भोभव्य ! त्वमित्यध्याहारादित्यन्वयः पुनर्भो भव्यप्राणिन् ? त्वमात्मसुखमात्मनो जीवस्य सुखं निरावाधानुभवं लभस्व प्राप्नुहि । नयज्ञानाजीवादीन्परीक्ष्य कर्मभ्य आत्मानं वियोज्यानन्तसुखभागभवेत्यर्थः ॥ २७ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—इस प्रकार श्रीजिनदेवभाषित सूत्रोंके क्रमसे नैगमआदि सप्त नय अथवा पंच नयोंके अनेक भेद समूहोंसे इच्छानुसार किसी भी एक जीवआदिक पदार्थको द्रव्य, गुण तथा पर्यायरूप निश्चित करके श्रीवीतरागोंके चरण कमलोंमें आसक्त ऐसे चित्तको कर “ हेभव्य ? तू यह अध्याहारसे लगा लेना चाहिये ” और हेभव्यजीव ? तू जीवका जो वाधारहित अनुभवस्वरूप सुख है; उसको प्राप्त हो । तात्पर्य यह है; कि—भोभव्य ? नयोंके ज्ञानसे जीवआदि पदार्थका निश्चय कर कर्मोंसे आत्माको भिन्न कर अनंत सुखका भागी हो ॥ २७ ॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारिद्विवेदिपण्डितठाकुरप्रसादविरचितभाषाटीकासमलङ्कृत-
द्रव्यानुयोगतर्कणायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमाध्याये द्रव्यगुणपर्यायाणामेकं स्वरूपं कथयन्नाह ।

अब नवम अध्यायमें द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकरूपता कहतेहुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । लक्षणैस्त्रिभिरेकोऽर्थः सहितः कथ्यते जिनैः ।

यथार्थार्थमन्विच्छन्प्राप्नोति सकलेप्सितम् ॥ १ ॥

सूत्रभाषार्थ — जैसे श्रीजिनभगवान् एक पदार्थको तीन लक्षणोंमें युक्त करते हैं, उसी रीतिसे पदार्थको चाहताहुआ भव्य सप्त अभिलषित वस्तुको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

व्याख्या । एकोऽद्वितीयोऽर्थो जीवपुद्गलादिर्घटपटादिवर्वा यथा येन प्रकारेण त्रिभिर्लक्षणैरुत्पादव्ययध्रौव्याख्यै सहितो युक्त श्रीजिने परमेश्वरै कथ्यते भण्यते वाक्यप्रबन्धेन । यत् — “उत्पत्ते इवा १ ध्रुवे इवा २ विगमे इवा ३” इति त्रिपदीमूलात्पदार्थ सर्वोऽपि त्रिविध इत्यर्थः । तथेति उत्तप्रकारेण अर्थ पदार्थमन्विच्छन् वाञ्छन् धारयन् सन्लेप्सित सर्वथा ऋतुत सम्यक्त्वान्सिद्धिपर्यन्त काम प्राप्नोति भव्य इति पदार्थः । भावार्थस्त्वयम्—एतस्या त्रिपदा सर्वेषामर्थाना व्यापकस्त्वमवधारणीयम् । जिनमते केचित्पदार्था नित्या, केचिदनित्या इत्य नैयायिकादय कथयन्ति तद्वन्नास्ति । नित्यैकान्तानित्यैकान्तपक्षयोरपि लोकयुक्त्यापि विरोधो दृश्यते । ततो दीपादारभ्याकाशपर्यन्तमुत्पादव्ययध्रौ यलक्षण प्रमाणयितव्यम् । तदुक्त श्रीहेमाचार्य — “आनीपमाव्योम समस्वभावा स्याद्वात्सुद्रानतिभेदिवस्तु । तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाशाद्विपत्ता प्रत्याप ” ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—एक अर्थात् दूसरेसे रहित केवल एक जीव पुद्गलआदि तथा घट पटआदि पदार्थ जिन रीतिसे उत्पत्ति, नाश और ध्रौव्यरूप तीनों लक्षणोंसे समुक्त श्रीजिन परमेश्वर वाक्यप्रबन्धसे कहते हैं, अर्थात् कथंचित् उत्पन्न होता है, कथंचित् नष्ट होता है, और कथंचित् ध्रौव्य है, इस प्रकार जो तीन पदोंका मूलसूत्र है, उससे सप्त पदार्थ तीनों प्रकारका है । उसी श्रीजिनेन्द्रके कहेहुए प्रकारसे पदार्थको चाहताहुआ अर्थात् अतः ऋणमें धारण करताहुआ भव्यप्राणी संपूर्ण अभीष्टको अर्थात् सम्यग्दर्शनको आदित्ये शुक्तिपर्यन्त कामनाको प्राप्त होता है, वम यही श्लोकका अर्थ है । आश्रय तो यह है, त्रि—इस त्रिपदीम संपूर्ण पदार्थोंकी व्यापकताका निश्चय करना चाहिये । क्योंकि—कोई पदार्थ नित्य है, कोई पदार्थ अनित्य है, ऐसा जो नैयायिकादि कहते हैं, उसके समान जिन मतमें कोई पदार्थ नहीं है । और नैयायिकादिके अभिमत जो एकान्त नित्य तथा एकान्त अनित्य पक्ष हैं, इन दोनोंमें ही लोकयुक्तिसे भी विरोध ऐसा जाता है । इसलिये हीपक्षमें ऐसे आकाशपर्यन्त संपूर्ण पदार्थ पूराक उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यरूप त्रिविध लक्षणमहित प्रमाणभूत करना चाहिये । वही विषय श्रीहेमाचार्यजीने कहा है, त्रि—दीपकसे ऐसे आकाशपर्यन्त समस्त पदार्थ एक स्वभावे धारक हैं, और स्याद्वात्सुद्राका दृष्टपत्र नहीं करते हैं, इसलिये उनमें एक नित्य ही है, दूसरा अनित्य ही है, इस प्रकार जो पक्ष है सो आपकी आज्ञासे विरोध रगतेवालोका प्रत्याप है ॥ १ ॥

अधेयमेवार्थं विद्वन् कथयन्माह ।

अथ इमी त्रिविधलक्षणतारूप अर्थका विवरण करने निरूपण करते हैं ।

सूत्रम् । उत्पादध्रुवनिर्नाश परिणाम क्षणे क्षणे ।

द्रव्याणामपिरांशाय प्रत्यक्षादि दृष्टं दृष्टं ॥ १ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—उत्पाद ध्रौव्य तथा नाशरूप त्रिविध लक्षणोंसे द्रव्योंका परिणाम क्षण क्षणमे परस्पर विरोधरहितपनेसे और प्रत्यक्षसे दीख पड़ता है ॥ २ ॥

व्याख्या । उत्पादव्ययनिर्नाजैर्लक्षणैस्त्रिभिर्द्रव्यस्य क्षणे क्षणे समये समये परिणामोऽस्ति । अत्र कश्चिदाह । यत्रोत्पादव्ययौ भवतस्तत्र ध्रौव्यं नास्ति यत्र च ध्रौव्यं तत्रोत्पादव्ययौ न स्यातामिति विरोधस्तिष्ठति तदा एकत्र लक्षणत्रयं कथं संभवेत् । यथा—छायातपावेकत्र न स्यातां तद्वदेतावेकत्र न भवेतां चेति । तत्रोत्तरं—यथोष्णाशीतस्पर्शों क्रमेणानलजलयोः परस्परपरिहारेण दृष्टौ तयोरेकत्र स्थान उपसंहारेण विरोधोऽप्यस्ति । परमत्र तु सर्वलक्षणान्येकत्र प्रत्यक्षं विलोक्यन्ते । परस्परपरिहारेण कुत्रापि प्रत्यक्षसिद्धत्वं नास्ति । तदा कथमेतद्विरोधस्थानं भवेत् । अनादिकालीनैकान्तवासनया मोहिताः प्राणिन एतेषां विरोधं पश्यन्ति, परंतु परमार्थतो विचार्यमाणो विरोधो न ह्यस्ति । समयनैयत्येन प्रत्यय एव विरोधनाश हेतुरिति ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों लक्षणोंसे संसारके द्रव्योंका परिणाम (परिवर्तन) क्षण क्षण (समय २) मे होता है । अब यहांपर कोई कहता है; कि—जहांपर उत्पाद तथा नाश है; वहांपर ध्रौव्य नहीं है, और इसी प्रकार जहांपर ध्रौव्य है; वहां उत्पत्ति तथा नाश नहीं रह सकते । इस प्रकार विरोध रहता है; तब एक वस्तुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप तीनों लक्षण कैसे संभव होते हैं । जैसे छाया और आतप (धूप) यह दोनों एक जेगह नहीं रह सकते वैसे ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्य यह दोनों भी एक पदार्थमे नहीं रह सकते हैं ? अब इस शंकाका उत्तर कहते हैं; कि—जैसे उष्ण और शीत स्पर्श परस्परके परिहारसे क्रमसे अग्नि तथा जलमे दृष्ट है; अर्थात् परस्परके परिहारसे उष्णस्पर्श अग्निमे और शीतस्पर्श जलमे देखाजाता है; और उन दोनों स्पर्शोंका किसी एक स्थानमे अर्थात् केवल अग्नि अथवा जलमें उपसंहार (ग्रहण) करो तो विरोध भी है; परन्तु यहां तो सब लक्षण (उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप तीनों लक्षण) एक वस्तुमे प्रत्यक्ष रूपसे देख पड़ते हैं; और परस्परके परिहारसे अर्थात् एक दूसरेको दूर करके (उत्पादके विना व्यय, व्ययके विना उत्पाद) कहीं भी प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं है; अर्थात् किसी एक भी पदार्थमे केवल उत्पाद व्यय अथवा ध्रौव्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं देखा जाता है; तब यह विरोधका स्थान कैसे है ? अनादि कालकी जो एकान्तकी वासना है; उससे मोहित होकर प्राणी इनके परस्परविरोध देखते हैं; परन्तु परमार्थसे विचार किया जावे तो कोई विरोध नहीं है; क्योंकि—समयकी नियततासे जो विश्वास हुआ वही विरोधके नाश करनेमे कारण है ॥ २ ॥

पुनस्तदेव कथयन्नाह ।

पुनः उसी लक्षण प्रस्तुताका विस्तार करते हैं;

सत्रम् । कुम्भमौलिसुवर्णेषु व्यथोत्पत्तिस्थिरात्मसु ।
दुःखहर्षोपयुक्तेषु हेमत्व निश्चल त्रिषु ॥ ३ ॥

सूत्रभावायः—नाश, उत्पत्ति तथा स्थिरतायुक्त और दुःख तथा हर्षसे उपयुक्त सुवर्णमयघट सुवर्णमयमुकुट तथा सुवर्ण इन तीनोंमें सुवर्णरूपता स्थिरतासे है ॥ ३ ॥

व्याख्या । कुम्भो घटो हेमघटहेममौलिहेमसु नाशोत्पत्तिध्रुवरूपेषु दुःखहर्षाभ्यामुप-
युक्तेषु हेमत्व सुवर्णत्व तिष्ठति । द्रव्ये चेकस्मिन्नेव घटाकारनाशान्मुकुटाकारोत्पत्ति, पुनर्हे-
माकारेण स्थिरत्वमित्येतद्वक्ष्यमाणं प्रकटाकारेण दृश्यते । तस्माद्धेमघट भङ्ग्या हेममुकुट नि-
ष्पाद्यते उभयत्र हेमत्व स्थिरम् । हेमघटार्थं दुःखवान् भवति घटाकारहेमव्ययसत्त्वात् ।
हेममुकुटार्थं हर्षवानस्ति हेममुकुटाकारेण सत्यत्वात् । पुनर्हेममात्रार्थस्तु तदा दुःखवानपि सुख-
वानपि न, स्थितिपरिणामेन विद्यमानत्वात्, ध्रुवताश्च । तस्माद्धेमसामान्यस्थिति सत्या
इति । एव सर्वत्रोत्पादव्ययध्रौव्यपर्याया द्रव्यरूपेण ज्ञेया । अत्रोत्पादव्ययभागं भिन्न द्रव्य
तथा स्थितिभाक् द्रव्य भिन्न किमपि न दृश्यते ततो घटमुकुटाद्याकारस्पर्शहेमैव केवल
द्रव्यम् । न हि यद्द्रव्य भवेत् ध्रुवत्वस्य प्रतीतिरप्यस्ति ततश्च “तद्भावाव्यय नित्य” इति
लक्षणेन परिणामेन च ध्रुवमपरमद्रव्यमपि । सर्वमपीत्थ भावनीयम् ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—नाश उत्पत्ति तथा ध्रुवतारूप लक्षणसयुक्त और दुःख तथा हर्षसे
उपयुक्त सुवर्णके घट, सुवर्णके मुकुट सुवर्ण इन तीनोंमें सुवर्णपना स्थिर है, अर्थात् सुव-
र्णत्व सधमें है, जैसे एक ही सुवर्णरूप द्रव्यमें घटके आकारका नाश मुकुटके आकारका
उत्पत्ति और सुवर्णरूप आकारकी स्थिति है । और सुवर्णरूप द्रव्यमें घटके आकारके
नाशसे मुकुटके आकारकी उत्पत्ति होती है, और सुवर्ण आकारसे उसमें स्थिरता (ध्रौव्य)
है, इस प्रकार यह तीनों लक्षण एक ही द्रव्यमें प्रकटतासे दीखते हैं । इस कारण सुवर्णके
घटको तोड़कर सुवर्णका मुकुट बनाया जाता है । और सुवर्णपना घट तथा मुकुट इन
दोनोंमें स्थिर है । अत्र जिस समय सुवर्णघटको तोड़कर उसका मुकुट बनता है, तब
सुवर्णके घटको चाहनेवाला पुरुष दुःखी होता है, क्योंकि—घटके आकारका जो सुवर्ण था
उसका व्यय (नाश) होता है, और जो पुरुष हेमके मुकुटको चाहनेवाला है, वह प्रसन्न
है, क्योंकि—वह सुवर्ण हेम मुकुटके आकारसे विद्यमान है, और जो केवल सुवर्णको ही
चाहनेवाला है, वह उस समयमें न दुःखी है, और न सुखी है, क्योंकि—स्थितिरूप परि-
णामसे जो सुवर्ण घटमें था वही मुकुटमें भी विद्यमान है, और नित्य है । इसलिये सुव-
र्णकी सामान्यस्थिति सत्य है । इस प्रकार सत्र उद्गाढ व्यय तथा ध्रौव्य पर्याय द्रव्य
रूपसे जानने चाहिये । यहापर उत्पाद और व्ययको धारण करनेवाला द्रव्य भिन्न है,
तथा स्थिति (नित्यता) का भागी द्रव्य भिन्न है, ऐसा उक्त भी कहा दीख पड़ता है,
अर्थात् उत्पाद व्यय और स्थिति का धारक एक ही द्रव्य है । इस कारण घट मुकुट

इत्यादि आकारको धारण करनेवाला सुवर्ण ही केवल द्रव्य है। और वह केवल ध्रुव ही है; किन्तु उसमें ध्रुवताकी प्रतीति भी है; इसीलिये “उसके भावका जो नाश न होना सो नित्य है” इस प्रकारके लक्षणसे द्रव्यरूप ध्रुव है; और अन्य सब पर्यायआदि अध्रुव हैं। इसी प्रकार सब ही विचारने चाहियें अर्थात् सर्वत्र ऐसा ही विचार करना चाहिये ॥३॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्यानामभेदसंबद्धं भेदं च दर्शयन्नाह ।

अब उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनोंका अभेद संबद्ध भेदको भी दिखाते हुवे सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । घटव्ययो हि सोत्पत्तिर्माँलेध्रौव्यं च भर्षणः ।

इत्येकस्मिन्दलेऽनेका युगपत्कार्यशक्तयः ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—घटका जो नाश है; वही मुकुटकी उत्पत्ति है; और सुवर्णकी नित्यता है; इसी प्रकार एक पदार्थमें एक ही कालमें अनेक कार्योंकी शक्तियें हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या । यो हि हेमघटव्ययः सा च मौलेर्मुकुटस्योत्पत्तिः, एककारणजन्यत्वान् । यतो यद्रव्यं यद्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयमिति । ततो विभागपर्यायोत्पत्तिसन्तानादेव घटनाशव्यवहारोऽपि संभवेत्, उत्तरपर्यायोत्पत्तेश्च पूर्वपर्यायनाशोऽपि संभाव्यश्च । काञ्चनस्य ध्रौव्यमपि तथैव भावनीयम्, प्रतीत्य पर्यायोत्पादेनैकसन्तानत्वं तदेव द्रव्यस्य लक्षणतो ध्रौव्यमस्ति । इत्येकस्मिन्निति—लक्षणत्रयात्मके एकस्मिन् दले एतद्व्ययत्रयमेकदा यद्यपि वर्तते तथापि शोकप्रमोदमाध्यस्थरूपा अनेकाः कार्यशक्तयो दृश्यन्त इत्यनेकत्वेन च भिन्नत्वमपि ज्ञेयम् । सामान्यरूपेण ध्रौव्यं विशेषरूपेणोत्पादव्ययौ चेत्यं प्रमाणयतां विरोधोऽपि नास्ति । व्यवहारतः सर्वत्र स्यादर्थानुप्रवेशेनैव स्यात्, विशेषपरतापि व्युत्पत्तिविशेषेण स्यात् । अत एव स्यादुत्पद्यते, स्यान्नश्यति, स्याद् ध्रुवम्, इत्थमेव वाक्यप्रयोगोऽपि । “उत्पन्नेइ वा” इत्यादौ वा शब्दो व्यवस्थायां स च स्याच्छब्दसमानार्थः । अत एव “कृष्णः सर्पः” एतल्लौकिकवाक्यमपि स्याच्छब्दं गृहीत्वैवास्ति । ततः सर्पस्य पृष्ठावच्छेदेन श्यामत्वं वर्तते परन्तु उदरावच्छेदेन नास्ति । तथैव सर्पमात्रेणापि कृष्णत्वं न दृश्यते शेषाल्यो नागः शुक्ल एवास्ति । तस्माद्विशेषणविशेष्यनियमार्थो यदि स्याच्छब्दप्रयोगोऽस्ति तदा त्रिपदीमहावाक्यमपि स्यात्कारभजनया संभवेदिति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—जो सुवर्णघटका व्यय है; वही सुवर्णमुकुटकी उत्पत्ति है; क्योंकि—घटका नाश और मुकुटकी उत्पत्ति यह दोनों कार्य एक ही कारणसे जन्य है । कारण कि—न्यायका सिद्धान्त है; कि—जो द्रव्य जिस द्रव्यके नाशसे उत्पन्न होता है; वह उसी (नश्यमान) द्रव्यके उपादान कारणसे उपादेय है; भावार्थ—जैसे यहां सुवर्णघटके नाशसे मुकुट उत्पन्न हुआ है; तो घटद्रव्य नाशका जो उपादान कारण सुवर्ण है; वही मुकुटका भी उपादान कारण है, इस रीतिसे घटका नाश तथा मुकुटकी उत्पत्ति एक ही सुवर्णरूप कारणसे जन्य (पैदा हुई) है । और इसीसे विभाग पर्याय (मुकुट पर्याय) की

उत्पत्तिके सतानमे ही घटके नाशरूप व्यवहारकी सभावना होती है । और उत्तर पर्याय जो यहापर मुकुटरूप पर्याय है, उसकी उत्पत्तिमे पूर्ण घटरूप पर्यायका नाश भी विचारने योग्य है । और उसी प्रकारसे सुवर्णका ध्रौव्य भी विचारना चाहिये क्योंकि—जिसको निमित्त मानकर पूर्वपर्यायका नाश और उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति है उसका निरवच्छिन्न एक सतानत्व (सुवर्णका स्थिरत्व) जो है, वही द्रव्यके लक्षणसे उसका ध्रौव्य है । इस प्रकार त्रिविधलक्षणसहित एक दल (वस्तु) में यद्यपि तीनों ही लक्षण एक समयमें हैं, तथापि शोक, प्रमोद और माध्यस्थ्यरूप अनेक कार्योंकी शक्तिये दीख पड़ती है, इस रीतिसे अनेकत्व होनेसे भिन्नता भी समझनी चाहिये । इस प्रकार सामान्यरूपसे तो ध्रौव्य तथा विशेषरूपसे उत्पाद और व्ययको प्रत्येक वस्तुमें प्रमाणीभूत न करनेवालोंके कोई विरोध भी नहीं है, क्योंकि—व्यवहारसे सर्वत्र स्यात् (कथञ्चित्) इस अर्थके अनुप्रवेशसे सामान्यपरता भी है, और व्युत्पत्तिविशेषसे विशेषपरता भी है । इसी कारणसे स्यात् उत्पन्न होता है, स्यात् नष्ट होता है, स्यात् (कथञ्चित्) ध्रुव है, ऐसे वाक्यका प्रयोग भी होता है । और उष्णत्वे वा इत्यादिक मूलपाठमें जो वा शब्द हैं, वह व्ययस्था अर्थमें है, और वह अर्थ स्यात् इस शब्दके समान है । इसी कारण 'वृष्णसर्प' (काला साप) यह लोचिकवाक्य भी 'स्यात्' इस शब्दको गृहण करके ही वर्तता है, क्योंकि—सर्पके पृष्ठ (पीठ) देगमें श्यामता (कालापन) है, परन्तु उसके उदर देशमें (पेटमें) नहीं है । और वेसे ही सर्पमांस भी श्यामता नहीं है, क्योंकि 'जेष'—इस नामका धारक जो नाग है, वह शुक्ल (सफेद) ही है । इसलिये विशेषण विशेष्यके नियमार्थ 'स्यात्' शब्दका प्रयोग है, तो त्रिपदीमहावाक्य भी स्यात्कारका भागी हो सकता है ॥ ४ ॥

सूत्रम् । द्रव्यस्वभाव आख्यातो बहुकार्यककारणः ।

तदा कृते हेतुभेदात्कार्यभेदः कथं भवेत् ॥ ५ ॥

सूत्रभाषार्थः—पूर्व प्रसंगमें "एक कारणरूप अनेक कार्योंका जनक द्रव्य है" यह द्रव्यका स्वभाव वर्णन किया है, तब हेतु (कारण) के भेदके बिना कार्योंका भेद कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥

व्याख्या । अयं यतोऽयं कथ्यते द्रव्यस्वभावो बहुकार्यककारणोऽस्ति । यथा हेमद्रव्यमेवानिष्ठतमस्ति विकारो मिथ्यास्ति । शोरादिकार्यत्रयजननैव शक्तिस्वभाव यत्तदेव द्रव्यं ततो द्रव्याशोरादिकार्यत्रय जायते तदा कारणभेदं विना कार्यस्य भेदं कथं भवेत् । जेष साधन यत्तत्प्रमोदजनकम्, अनिष्टसाधन यत्तच्छोरात्मकम्, तदुभयाभिन्न माध्यस्थ्यजनकमित्येतद्विधेय कार्यभेदस्माद्वैकल्यान्त्य भवेत् । शक्तिरपि दृष्टान्तानुसारिण्येव कल्पनीया । न चेदेव तद्विनाशोऽज्ञात्वात् दाहजननरूपमात्रमिलात्ति प्रकल्पनमन्यनिवार्यम् । तस्माच्छक्तिभेदं कारणभेदं कार्यभेदानुसारणायमनुसर्तव्यम् । अनेकाननैव शक्तिः शब्द एव एकत्वानेनैव न्यासाद् सृज्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—अब यदि ऐसा कहते हो कि—एक कारणरूप अनेक कार्योंका जनक यही द्रव्यका स्वभाव है। जैसे सुवर्णद्रव्य एक ही अविकृतरूप है; मुकुटआदि जो उसका विकार है; वह मिथ्या है। शोक, प्रमोद और माध्यस्वरूप तीन कार्योंको उत्पन्न करनेवाला जो शक्तिस्वभाव है; वही द्रव्य है; उस द्रव्यसे शोकआदिरूप तीन कार्य होते हैं; तब कारणके भेदके बिना कार्यभेद कैसे हो सकता है। क्योंकि—जो कल्याणका साधन है; वह प्रमोदका जनक है, जो अनिष्टका साधन है; वह शोक (खेद)को उत्पन्न करनेवाला है, और दोनोंसे भिन्न अर्थात् श्रेयस्त्व तथा अनिष्टतासे भिन्न जो साधन है; वह न हर्षको उत्पन्न करता है; और न खेदको, इसलिये यह तीन प्रकारके कार्य एकरूप कारणद्रव्यसे कैसे उत्पन्न होते हैं; कार्यगत दृष्टान्तके अनुसार ही कारणगत शक्तिकी भी कल्पना करनी चाहिये। यदि ऐसा न मानो तो “अग्निकी समीपतासे जल है; सो दाहको उत्पन्न करनेवाले स्वभावका धारक है” इत्यादि कल्पना भी अनिर्वारणीय होगी। इसलिये शक्तिभेदरूप जो कारण है; उसका भेद कार्यभेदके अनुसार अवश्य अनुसरण करना चाहिये अर्थात् कार्यभेद होनेपर कारणका भेद अवश्य मानना पड़ेगा। और अनेक कार्योंको उत्पन्न करनेवाली शक्ति है; यह शब्द ही एकत्व अनेकत्वरूप स्याद्वादको सूचित करता है। यह श्लोकका अर्थ है ॥ ५ ॥

अथ बौद्धमतमाह ।

अब इस विषयमे बौद्धका मत कहते हैं ।

सूत्रम् । शोकादिजननं लोकवासनाभेदतो भवेत् ।

वस्तुभेदो नेति बौद्धो निर्निमित्तोऽशुचिः स्मयी ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यमें शोकादिका जो उत्पाद है; वह लोकवासनाके भेदसे होता है; और शोकादिके जननमे कोई वस्तुका भेद नहीं है। ऐसा कहनेवाला बौद्ध निमित्तशून्य है; और अपवित्र तथा स्मयी है ॥ ६ ॥

व्याख्या । यत्तुलानमनोन्नमनवदुत्पादव्ययावेकदा भवतः क्षणिकस्वलक्षणस्य ध्रौव्यं नास्त्येव तच्छोकादिकार्यजननमपि भिन्नभिन्नलोकवासनातो भिन्नभिन्नभेदोपकारकमस्ति । यत एकं किमपि वस्तु वासनाभेदात् कस्यापीष्टं कस्याप्यनिष्टं स्यात्, यथेक्षु मनुष्याणामिष्टम्; करभानामनिष्टम्, परन्तु तत्रेक्षुभेदो नास्त्येव । तद्वदिहापि बोध्यमिति वदन् बौद्धो निर्निमित्तो निमित्तभेदं विना वासनारूपमनस्कारस्य भिन्नत्वं कथं जहाति । अत एवाशुचिः कलुषचित्तः पुनः स्वीकारेण स्मयीति । वस्तुतस्तु शोकादिकानामुपादानं यथा भिन्नं तथा निमित्तमपि भिन्नमवश्यं मन्तव्यम् । एकस्य वस्तुनः प्रमादभेदेनेष्टानिष्टत्वमस्ति तत्राप्येकस्य द्रव्यस्येष्टानिष्टज्ञानजननशक्तिरूपाः पर्यायभेदा अप्यनुसरणीया एवेति ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे तुला (तराजू) एक कालमे ऊची नीची हो जाती है; उसी

प्रकार वस्तुके उत्पाद तथा नाश एक कालमें ही होते हैं । क्योंकि—क्षणिकस्वरूप अपने लक्षणको धारण करनेवाला जो पदार्थ है, उसके ध्रुवता (नित्यपना) है, ही नहीं । इसलिये शोकआदिका उत्पाद है, सो भी भिन्न भिन्न लोककी वासनासे होता है, और भिन्न भिन्न भेदका उपकार करता है । क्योंकि—एक ही कोई भी वस्तु वासनाके भेदसे किसीको इष्ट है और किसीको अनिष्ट है जैसे—इक्षु (ऊख वा ईख अथवा गन्ना) मनुष्योंको इष्ट (प्यारा) है, और ऊंटोंको अनिष्ट है, परन्तु यहापर ईखका भेद नहा है, अर्थात् वही इक्षु । परन्तु मनुष्योंके इष्ट और ऊंटोंके अनिष्ट है । ऐसे ही यहा घट मुकुटआदिम भी जानना चाहिये ऐसा कहताहुआ बौद्ध निमित्त (कारण)के भेदके विना वासनारूप मनस्कार (मनके व्यापार)से जो चित्तकी सुखादि परकतारूप भेद है, उसको कैसे छोड़ता है । इसी कथनसे अशुचि अर्थात् मलिनचित्त है, पुन इस मतके स्वीकारसे गर्वयुक्त भी है । यथार्थमे तो जैसे शोकआदिके उपादान भिन्न भिन्न है, वैसे ही उनके निमित्त भी अवश्य ही भिन्न २ मानने चाहियें । जहा प्रमाता (इष्ट अनिष्टको अनुभव करनेवाले)के भेदसे एक पदार्थके इष्टता तथा अनिष्टता है, वहा भी एक द्रव्यका इष्ट तथा अनिष्ट ज्ञानको पैदा करनेमे शक्तिरूप ऐसे पर्याय भेदोंका ही अनुसरण करना चाहिये अर्थात् उस पदार्थमे ऐसे शक्तिभेद है, कि—जो किसीके इष्ट ज्ञानजनक है, और किसीके अनिष्ट ज्ञानके जनक है ॥ ६ ॥

सूत्रम् । चेन्निमित्तं विना ज्ञानाच्छक्तिसकल्पकल्पना ।
तदा बहिर्वस्तुलोपाद् घटते न घटादिकम् ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि निमित्तके विना ही वासनाविशेषरूप ज्ञानसे शक्तिरूप सकल्पकी कल्पना होती है, तो बाह्य वस्तुके लोपसे घटआदि आकारकी कल्पना केवल वासनासे क्यों नहीं होती ॥ ७ ॥

व्याख्या । अथ चेद्यदि निमित्त निमित्तभेद विना ज्ञानात् वासनाविशेषजनितज्ञानस्य भावाच्छक्तिसकल्पकल्पना भवति । शोकप्रमोदादिकसकल्पविकल्पना जायते तदा बहिर्वस्तु लोपाद्वासनाविशेषेण घटपटादिनिमित्तं विनैव वासनाविशेषेण घटपटाद्याकारज्ञानं भवेत् । बाह्यवस्तु सर्वं विलुप्यत इत्यर्थः । अथ च निष्कारणं तत्तदाकारज्ञानमपि न सम्भवेत्, अन्तर्नहिराकारविरोधेन बाह्याकारो मिथ्याप्रजल्पमानश्चित्रस्तुविषयनीलपीताद्याकारज्ञानमपि मिथ्यैव जायते । तथा उपाद्याकारनीलाद्याकारावपि विरुद्धावेव भवतः । तन् सर्वशून्यवादिनो माध्यमिकबौद्धस्य मतमायाति । उक्तं च—किं स्यात्मा चेन्न ते किं स्यान्न स्यात्तस्मान्मत्तावपि । अदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥ शून्यवादोऽपि प्रमाणसिद्धसिद्धिभ्यां व्याहतोऽस्ति । तव सर्वे नया शुद्धस्याद्वादवीतरागप्रणीता आहतव्या ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—अब यदि निमित्त (कारण) भेदके विना ही वासनाविशेषसे उत्पन्न

जो ज्ञान स्वभाव है; उससे शक्ति अर्थात् शोक प्रमोदआदिके संकल्पकी कल्पना होती है; ऐसा कहो तो बाह्य वस्तुका नाश हो जानेसे घट पटआदि निमित्तके बिना केवल वासनाविशेषसे घट पटआदि आकाररूप परिणाम नहीं उत्पन्न होता है; और घट-पटादि निमित्त बिना ही वासनाविशेषसे घटपटादिके आकारका ज्ञान होवे तो समस्त बाह्य वस्तुका नाश हो जायगा। यह तात्पर्य है; और कारणके बिना घटपटआदिके आकारका ज्ञान भी नहीं होसकता। तथा आन्तरंगिक और बाह्य आकारके विरोधसे बाह्य आकारको मिथ्या कहनेवाले बौद्धके मतसे चित्र (चित्राम)के पदार्थ (तसवीर) वगैरह)में रहनेवाला नील, पीत (पीला)आदि वर्णोंके आकारका ज्ञान भी मिथ्या ही होता है। एवं उपा (दिन)आदि आकार तथा नीलआदिका आकार भी विरुद्ध ही होता है। तब अर्थात् वासनाके ही विशेषसे आकारका परिणाम तथा आकारका ज्ञान होता है; बाह्य निमित्तकी उसमें कोई आवश्यकता नहीं है; ऐसा माननेसे सबको शून्य कहनेवाला जो माध्यमिक बौद्ध है; उसका मत आता है; क्षणिकवादीका मत नहीं रहता। और कहा है; कि—यदि वासना है; तो क्या नहीं होगा अर्थात् सब कुछ हो जायगा और जो बाह्य पदार्थ तो है; और वासना नहीं है; तो उन बाह्य पदार्थोंसे क्या हो सकता है; अर्थात् कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि—वासनाके बिना वह बाह्य पदार्थ बुद्धिमें ही नहीं आसकते हैं; इसलिये जो वासना पदार्थोंको स्वयं रुच रही है; उसको दूर करनेवाले हम कौन है ॥ १ ॥ और शून्यवाद भी प्रमाणकी सिद्धि तथा असिद्धिरूप जो दो पक्ष हैं; उनसे खंडित है। इस कारण सर्वज्ञवीतरागप्रणीत शुद्धस्याद्वादके धारक संपूर्ण नयोंका आदर करना चाहिये ॥ ७ ॥

पुनस्तदेव कारणमिति ।

पुनः “कारणं” इत्यादि सूत्रसे उसी विषयको कहते हैं ।

सूत्रम् । कारणं घटनाशस्य मौल्युत्पत्तेर्घटः स्वयम् ।

एकान्तवासनां तत्र दत्ते नैयायिकः कथम् ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—घटके नाश तथा मुकुटकी उत्पत्तिमें स्वयम् घट ही कारण है, जब ऐसा है; तब नाश तथा उत्पत्तिमें एकान्त (सर्वथा)भेदकी वासना नैयायिक कैसे देता है; अर्थात् उत्पत्ति और नाशका सर्वथा भेद क्यों मानता है ॥ ८ ॥

व्याख्या । एवं शोकादिकार्यत्रयस्य भेदेनोत्पादन्ययग्रौव्यानि साधितानि, अत एव घट-नाशस्य हेमघटनाशस्य हेममुकुटोत्पत्तेश्च कारणं हेतुरेकः स्वयं घट एव । हेमघटनाशाभि-न्नहेममुकुटोत्पत्तिविषये हेमघटावयवविभागादिको हेतुरेव । अत एव महापटनाशाभिन्नखण्ड-पटोत्पत्तिविषयेऽप्येकादितन्तुसंयोगापगमहेतुरेवास्ति । “खण्डपटे महापटनाशस्य हेतुताग्र-

रूपना महागौरवाय स्यात्" इत्थ जानन्नपि लाघवप्रियो नैयायिको नाशोत्पत्तिकस्यैका
न्तभेदवासना कथं दत्ते । तथा च तन्मतम्—“कल्पनागौरव यत्र न पक्ष न सहामहे । कल्प-
नालाघव यत्र न पक्ष तु सहामहे १ ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—इस प्रकार शोकादि कार्ययुक्ते भेदसे उत्पाद व्यय तथा प्रौढ्य
लक्षण सिद्ध कियेगये, इसीमे (लक्षणत्रययुक्त होनेसे) सुवर्णघटके नाशका तथा
सुवर्णके मुकुटकी उत्पत्तिका कारण केवल स्वयं घट द्रव्य ही है । क्योंकि—सुवर्णघटके
नाशसे अभिन्नरूप सुवर्णमुकुटकी उत्पत्तिके विषयमें सुवर्णघटके अवयवोंके विभागआदि
हेतु ही है । इसी कारणसे महापटके नाशसे अभिन्न खण्डपट (बड़े प्यानसे छोटे टुकड़े
टुकड़े होने)की उत्पत्तिके विषयमे भी एक टोआदि तन्तुओंके संयोगका नाश ही कारण है,
और खण्डपटकी उत्पत्तिके विषयमे महापटका नाश कारण है, यह कल्पना तो अति
गौरवकेलिये होगी इस प्रकार जानताहुआ भी लाघवप्रिय (१) एकको आदि लेके, जितने
तन्तुओंके संयोगके नाशसे वह खण्डपट उत्पन्न है, उन सब तन्तुओंके नैयायिक नाश और
उत्पत्तिके संस्था भेदवासना कैसे देता है । क्योंकि—उस नैयायिकके मतका यह वचन है
कि “जिस पक्षमे कल्पनाका गौरव है, उसको हम नहीं सहन करते (मानते) और
जिस पक्षमें कल्पनाका लाघव है, उसको सहन करते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तदेव कथयन्नाह ।

पुनः उसी विषयका प्रतिपादन करते हैं ।

सूत्रम् । पयोव्रतो न दध्यव्यान्नैव दुग्धं दधिव्रतः ।

अगोरसव्रतो नोमे तेन स्याल्लक्षणत्रयम् ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—केवल दुग्धको खानेवाला दही नहीं खा सकता और दहीमा-
त्रको खानेवाला दूध नही पीता तथा जो गोरसमात्रका त्यागी है, वह दुग्ध तथा दही
इन दोनोंको नहीं खाता ह, इस रीतीसे भी उत्पत्तिआदि त्रिविधलक्षणयुक्त वस्तु सिद्ध
होता है ॥ ८ ॥

व्याख्या । पयोव्रतो दुग्धाम्बानी दुग्धमेव व्रतनीय भोक्तव्यमिति प्रतिज्ञापरः स पयोव्रत
उच्यते । ततः पयोव्रतो दधि नाद्यादपि न भुङ्क्ते, दधिव्रतः पुनर्दुग्धं नाद्यानः, तस्य दधिमक्षण
एव प्रतिज्ञास्त्वो धर्म एवास्ति । वस्तुतस्तु “दुग्धपरिणाम्येव दध्यस्ति” इत्थं यत्रभेदकता
कथ्यते तथा तु पयोव्रतस्य दध्यग्नेऽपि व्रतमङ्गो न जातः पुनश्च दुग्धं दधि न भवति परि-
णाद्रव्यरसाद्विन्नद्रव्यमेव । अभेदविवक्षया दुग्धमाम्बान्यतः दधिव्रतमङ्गो न जायते,
दधि भुञ्जानस्य दुग्धव्रतमङ्गोऽपि नैव संपश्यत इति । अथ गौरवमत्वेन द्वयोरप्यभेदोऽस्ति ।
अत्र दधित्वेऽतोत्पत्तिः दुग्धत्वेन नाशो गौरवमत्वेन ध्रुवत्वं च प्रत्यक्षम् । एतदुपस्थाप्य सर्व-
त्रगद्विभागानां लक्षणत्रयमुच्यते कथयिष्यम् । अथ च ‘पयोव्रतो न दध्यस्ति न पयोऽस्ति

दधिब्रतः। अगोरसब्रतो नोभे तस्माद्वस्तुत्रयात्मकम् ॥१॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां द्रव्यपर्यायौ सिद्धान्ताविरोधिनौ सर्वत्रावतारणीयाविति । भक्षणत्रयं कथनीयम् । केचन भावा अन्वयिनः, केचन भावा व्यतिरेकिणः, एवमन्यदर्शनिनः कथयन्ति, तत्र त्वन्येषामपि भावानां निदर्शनं स्याद्वाद्युपपत्त्या समञ्जसं स्यादिति । अन्यच्च वस्तुतः सत्ता विलक्षणरूपैवास्ति “उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” इति तत्त्वार्थसूत्रवचनात् । ततः सत्ताप्रत्यक्षं तदेव त्रिलक्षणं साक्षादस्ति । तथारूपेण सत्त्ववहारसाध्यानुमानादिकप्रमाणान्यप्यनुष्ठीयन्ते ॥ ९ ॥

व्याख्यानार्थः—दूध ही सेवन करना चाहिये इस प्रकारकी प्रतिज्ञामें जो तत्पर हो उसे पयोव्रत कहते हैं; वह पयोव्रत अर्थात् दूधको खानेवाला पुरुष दही नहीं खाता है; और जो दहीको ही सेवन करनेवाला है; वह दुग्ध नहीं पीता है क्योंकि—उसको दहीका खाना ही प्रतिज्ञारूप धर्म है । अब यहां “परमार्थमें तो दूधका परिणामरूप ही दही है” इस प्रकार यदि दुग्ध दधिका अभेद कहते हो अर्थात् दूध दही एक ही है; ऐसा मानते हो तब तो दूध पीनेवालेके दहीके खानेसे भी व्रतका भंग नहीं होगा । और यदि परिणामी द्रव्य होनेसे दही दूध नहीं हो सकता ऐसा कहो तो इस भेद विवक्षासे दही दूधसे भिन्न द्रव्य है । भावार्थ—अभेदविवक्षासे दूध पीतेहुयेके दहीके व्रतका भंग नहीं होता है; और दही खातेहुए मनुष्यके दुग्धके व्रतका नाश भी नहीं होता है । और गोरसपनेसे दूध और दही इन दोनोंमें अभेद ही है; इसलिये जिसके गोरसका त्याग है; वह दूध और दही दोनोंका सेवन नहीं करता है । यहांपर दहीपनेसे उत्पत्ति (उत्पाद) है; और दुग्धत्वरूपसे नाश है; तथा गोरसत्वरूपसे ध्रुवत्व प्रत्यक्षसे सिद्ध है । इसी प्रकार इस दृष्टान्तसे संपूर्ण संसारके पदार्थोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप त्रिलक्षण सहितता कहनी चाहिये । ऐसा कहा भी है; “पयोव्रत दधिका भोजन नहीं करता, दधिब्रत दुग्धका भोजन नहीं करता और गोरसका त्यागी दुग्ध दधि इन दोनोंको नहीं खाता इसलिये समस्त वस्तु तीन लक्षणोंका धारक है ॥ १ ॥ और अन्वय तथा व्यतिरेकसे सिद्धान्तके अविरोधी द्रव्य तथा पर्यायकी अवतारण सर्वत्र करनी चाहिये इसलिये जहां द्रव्य पर्याय है; वहां उत्पत्तिआदि तीनों लक्षण कहने चाहियें । कितने ही पदार्थ अन्वयी है; और कितने ही पदार्थ व्यतिरेकके धारक है; ऐसा अन्य दर्शनवाले कहते हैं । और इस सिद्धान्तमें तो अन्य भी पदार्थोंका दृष्टान्त स्याद्वादकी व्युत्पत्तिसे ठीक हो सकता है । और वस्तुकी सत्ता भी विलक्षण रूप ही है; क्योंकि—उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यसे सहित जो होय सो सत् है; ऐसा तत्त्वार्थसूत्रका वचन है; इसलिये जो सत्ताका प्रत्यक्ष है; वही साक्षात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप त्रिलक्षण है । ऐसी दशामे सद् इस व्यवहारसे साध्य अनुमानआदिक प्रमाणोंका भी अनुष्ठान किया जाता है ॥ ९ ॥

सूत्रम् । उत्पन्नकलशे स्वार्थस्योत्पत्तिविगमौ कथम् ।

शृण्वद्यौ मिश्रितौ ध्रौव्ये शक्त्या चानुगमाख्यया ॥१०॥

सूत्रभावार्थः—उत्पन्न घटमे निजद्रव्यसबन्धकी उत्पत्ति तथा नाश कैसे हो सकते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर सुनो कि—उत्पत्ति तथा नाश यह दोनों एकतारूपशक्तिसे ध्रौव्यमे मिले हैं ॥ १० ॥

व्याख्या । उत्पत्तिर्जाता यन्मेत्युत्पन्नो घटस्तस्मिन् उत्पन्नघटे द्वितीयादिकक्षणे स्वार्थस्य स्वद्रव्यसद्वन्धस्योत्पत्तिनाशौ कथं भवतो यतो हेतोः प्रथमक्षणसबन्धरूपोत्तरपर्यायोत्पत्तिरस्ति सैव पूर्वपर्यायिनाशता इत्य युष्माभिः पुरा स्थापितमस्ति ? इत्येतत्प्रश्नं शिष्येण घृतस्तदा गुरु कथयति । हे शिष्य ! शृणु । तद्यथा—प्रथमक्षणे आतावुत्पत्तिविनाशौ ध्रौव्ये मिश्रितौ मिलितौवनुगमाख्यया शक्त्यैकतालक्षणया शक्त्या नित्यौ स्तः । असत्यप्याद्ये क्षण उपलक्षणीभूय आगामिनि क्षणे द्रव्यरूपेण तत्सबन्धतामनुभवत । उत्पन्नो घटो नष्टो घट इति सर्वप्रयोगात् । अथ चेदानीमुत्पन्नो नष्ट इत्येव प्रतिपाद्यते तदा त्वेतत्क्षणविशिष्टता उत्पत्तिनाशयोरेवास्ति तद्य द्वितीयादिकक्षणे नास्ति । अतो द्वितीयादिकक्षण इदमुत्पन्नमित्यादिप्रयोगोऽपि न स्यात् । घटेति शब्देनेह द्रव्यार्थादेशेन मृद्व्यं ग्राह्यम् । तत्र उत्पत्तिनाशाधारता सामान्यरूपेण तत्प्रतियोगिता विशेषरूपेण च कथनीयेति भावः ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जिसकी उत्पत्ति होगई है, ऐसा जो घट है, उस उत्पन्न घटमें उत्पत्तिके द्वितीयआदि क्षणमें स्वार्थके अर्थात् निजघटरूप द्रव्यके सबन्धके उत्पत्ति नाश कैसे होते हैं, क्योंकि—प्रथमक्षणसबन्धरूप उत्तर पर्यायकी जो उत्पत्ति है, वही पूर्वपर्यायकी नाशता है, ऐसा आप पूर्व प्रसंगमें स्थापित कर चुके हैं ? ऐसा प्रश्न शिष्यने किया उसपर गुरु उत्तर देते हैं, कि—हे शिष्य ! उत्तर सुनो—वह उत्तर इस प्रकार है, कि—प्रथम क्षणमें जो उत्पत्ति विनाश हुये हैं, वह अनुगमानामिका अर्थात् एकतास्वरूप शक्तिसे ध्रौव्यमें मिले हुये हैं, और नित्य है, तथा प्रथम क्षणके न होनेपर भी उत्पत्ति और नाश दोको उपलक्षणीभूत होकर आगामी क्षणमें द्रव्यरूपसे उसकी संबन्धताका अनुमन करते हैं । क्योंकि—“उत्पन्नो घटः, नष्टो घटः” “घट उत्पन्न हुआ, घट नष्ट हुआ” इत्यादि प्रयोग सर्वत्र देखा जाता है । और यदि ऐसा कहते हो कि—‘इम समय घट उत्पन्न हुआ, इस समय नष्ट हुआ तब तो उत्पत्ति और नाशके इम (प्रथम) क्षणकी विशिष्टता ही होगई क्योंकि—वह उत्पत्ति नाशकी विशिष्टता द्वितीयआदि क्षणमें नहीं है, इसलिए द्वितीयआदि क्षणों “वह उत्पन्न हुआ” इत्यादि प्रयोग भी न होगा तथा घट इम शब्दसे यशपर द्रव्यार्थने आदेशसे मृत्तिकारूप द्रव्यका ग्रहण करना योग्य है । इससे मृत्तिका सामान्यरूपमें घटकी उत्पत्ति तथा नाशका आधार है, और विशेष (घट) रूपमें उत्पन्न हुआ तथा नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग भी होता है, ऐसा क्या करना योग्य है ॥ १० ॥

सूत्रम् । उत्पत्तेरपि नाशस्यानुगमे पर्ययार्थतः ।

भूतादिप्रत्ययोद्धानं घटते समयप्रमम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—उत्पत्ति तथा नाशकी ऋजुसूत्रादि पर्यायार्थिकनयसे एकता मान-
नेपर भूतआदि प्रत्ययका भान समयप्रमाण निश्चयनयसे घटित होता है ॥ ११ ॥

व्याख्या । उत्पत्तेरपि पुनर्नाशस्य चानुगमे एकतायां पर्ययार्थतः ऋजुसूत्रादेः सकाशाद्
भूतादिप्रत्ययोद्धानं समयप्रमं घटत इति यतो निश्चयनयात् “कज्जमाणेकडे” एतद्वचनमनु-
सृत्योत्पद्यमान उत्पन्न एवं यदि कथ्यते परन्तु व्यवहारनयादुत्पद्यते, उत्पन्नः, उत्पत्स्यते,
नश्यति, नष्टं, नङ्घयति । एतद्विभक्त्या कालत्रयप्रयोगोऽस्ति । स प्रतिक्षणपर्यायोत्पत्तिना-
शनयवादी ऋजुसूत्रनयस्तेनानुगृहीतो यो व्यवहारनयस्तमनुगृह्य कथ्यते । कथं तद्वजुसूत्र-
नयस्तु समयप्रमाणं वस्तु मनुते तत्र यौ पर्यायस्य वर्त्तमानावुत्पत्तिनाशौ विवक्षितौ तांवेव
गृहीत्वोत्पद्यते नश्यतीति कथनीयम् । वर्त्तमाने यदतीतत्वं तद्गृहीत्वोत्पन्ननष्ट इति कथ्यते ।
अत्रैव तदतीतं तदनागतमिव विचिन्त्योत्पत्स्यते नङ्घयत्येवं कथ्यते । इतीयमनागते व्यवस्था
सर्वापि स्याच्छब्दप्रयोगेण संभवेदिति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—उत्पत्ति तथा नाश इन दोनोंकी एकतामे पर्यायार्थिक जो ऋजुसूत्र
आदि नय हैं; उनसे भूतआदि प्रतीतिका ज्ञान समयप्रमाण घटता है; क्योंकि—निश्चय-
नयसे “कज्जमाणे कडे” (जो भविष्यत्में कट अर्थात् चटाई बनेगी उसमें) इस वच-
नका अनुसरण करके उत्पन्न होनेवाले घटमें उत्पन्न हुआ ऐसा यद्यपि कहा जाता है;
परन्तु व्यवहारनयसे “उत्पन्न होता है; उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होगा तथा नष्ट होता
है, नष्ट हुआ और नष्ट होगा इस विभक्तिसे जो कालत्रय(तीनकाल)का प्रयोग है;
वह प्रयोग प्रतिक्षणमें पर्यायोंकी उत्पत्ति तथा नाशरूप मतको कहनेवाला जो ऋजुसूत्र
नय है; उससे अनुगृहीत (प्राप्त) जो व्यवहार है; उस व्यवहारनयको ग्रहण करके कहा
जाता है; यह कैसे कि—ऋजुसूत्रनय तो समय प्रमाण वस्तुको मानता है; उसमें जो
पर्यायके वर्त्तमान उत्पत्ति तथा नाश विवक्षित हैं; उन्हींको लेके उत्पन्न होता है; नष्ट
होता है; ऐसा कथन करना योग्य है । और वर्त्तमान पर्यायमे जो भूतत्व है; उसको लेके
उत्पन्न हुआ नष्ट हुआ ऐसा कथन होता है; और उसीमें जो भूतत्व है; उसको अनागत
(भविष्य)की तरह विचार कर उत्पन्न होगा नष्ट होगा ऐसा कथन किया जाता है;
तात्पर्य यह कि—वर्त्तमानकाल ही भूतकी अपेक्षासे भविष्य है; आगामी कालकी अपेक्षासे
वही भूत है; और वर्त्तमान तो वह स्वयं है; एवं एक कालमे ही सर्वत्र तीनों कालका भी
व्यवहार हो सकता है । इसी प्रकारसे अनागत कालमें भी यह सब व्यवस्था स्यात्
शब्दके प्रयोगसे संमती है; अर्थात् कथंचित् (किसी अपेक्षासे) भूतकाल इत्यादि कथन
युक्त है; क्योंकि—सभी कालमें सब कालका व्यवहार हो सकता है ॥ ११ ॥

सूत्रम् । यद्युत्पत्तिविशिष्टस्य व्यवहारो व्ययस्य चेत् ।
नाशनिष्ठोद्भव तत्र व्यवहारेऽप्युरीकुरु ॥ १२ ॥

सूत्रभाषार्थः—यदि उत्पत्तिसहित नाशका व्यवहार होता है, तो उस व्यवहारमें नाशनिष्ठ उत्पत्ति होती है, ऐसा मानो ॥ १२ ॥

व्याख्या । यद्युत्पत्तिविशिष्टस्य व्ययस्य व्यवहारोऽस्ति चेत्तदा व्यवहारेऽपि तत्र नाशनिष्ठोद्भवमसद्विशिष्टमुत्पत्तिरसुरीकुरु इति । भावार्थस्त्वय यद्युत्पत्तिधारानाशविषये भूतादि प्रत्ययो न कथ्यते अथ च नशधातोरर्थे नाशोत्पत्तिद्वय गृहीत्वा तदुत्पत्तिकालत्रयस्यान्वयस्य भवश्च कथ्यते । एव च कथयता नश्यत्समयेन नष्ट इत्ययं प्रयोगो नो जायते तत्कथं तस्मिन्काले नाशोत्पत्त्योरतीतत्वं नाशोत्पत्त्येव समर्थता व्यवहारस्य यदि क्रियते भग्नद्विस्तदा व्यवहार उत्पत्तिक्षणसमयधमात्रमेव कथयत । तत्र प्रागभावध्वंसताकालत्रयरूपात् कालत्रयस्यान्वयसमर्थनं कुरुत । अथ च यद्येव विचारयिष्यथ घटस्य वर्तमानत्वादिकेऽपि नाशवर्त्तमानत्वादिकेऽपि नाशवर्त्तमानादि व्यवहारो न जायते । किञ्च क्रियानिष्ठापरिणामरूपवर्त्तमानत्वमतीत गृहीत्वा नश्यति नष्ट उत्पद्यत उत्पन्न एतद्विभक्तिव्यवहारसमर्थनं करणीयम् । अत एव क्रियाकालयौगपद्यविवक्षया उत्पद्यमान उत्पन्न विगच्छद्विगतमित्यनया दिशा सैद्धान्तिकप्रयोगः सम्भवेत् । परमते त्विदानीं ध्वस्तो घट इति आद्यक्षणो व्यवहार सर्वथा न घटमादीनते, नयमेदे तु सम्भवेत्, यथाप्रास्ताक समति । स्वाधिकरणक्षणत्वव्यापकस्वाधिकरणक्षणध्वंससाधिकरणादिकत्वमनुत्पन्नत्वम्, “उपज्जमाणकाल उपपणति विगच्छ । भेदविय पन्नवतो तिकाविसय विसेसेइ ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—यदि उत्पत्तिसहित नाशका व्यवहार होता है, तो उसी व्यवहारमें नाशनिष्ठ जो उद्भव (उत्पत्ति) है, अर्थात् असद्विशिष्ट जो उत्पत्ति है, उसको स्वीकार करो । भावार्थ यह है, कि—उत्पत्ति धारारूप नाशविषयमें भूतकालादि प्रत्यय (अनुभूत) नहीं कहते हो और नश धातुके अर्थमें नाश तथा उत्पत्ति दोनोंका ग्रहण करके उस नाशकी उत्पत्ति कालत्रयके साथ अन्वय(सत्व)का समग्र कहते हो तब ऐसा कहने वालोंको नाश होतेहुये समयके साथ नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग नहीं होता । क्योंकि—उस कालमें नाश तथा उत्पत्तिकी अतीतकालता नहीं है, ऐसी समर्थता यदि आप व्यवहारकी करते हो तो व्यवहारमें उत्पत्ति क्षणकी समन्वयमात्रा ही कहो । तब वहापर प्रागभावध्वंसता कालत्रयरूपसे कालत्रयमें अन्वय(सत्व)का समर्थन करते हो । और यदि ऐसा विचार करते हो कि—घटके वर्तमानत्वादिम तथा नाशके वर्तमानत्वादिका व्यवहार नहीं होता किन्तु क्रियानिष्ठ जो अपरिणामरूप वर्तमानत्व तथा अतीतत्व है उसको लेके नष्ट होता है, नष्ट हुआ, तथा उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआ इस रीतिसे इस नश धातुके आगे वर्तमानके तथा भूत कालके प्रत्ययोंको व्यवहारका समर्थन करना चाहिये । इसीसे अर्थात् एक कालमें दूसरे कालकी अपेक्षासे भूतकालादि मान कर

व्याख्यार्थः—इस प्रकार प्रतिक्षणके परिणामसे संपूर्ण द्रव्योंमें त्रिविध लक्षणका योग सिद्ध किया गया; इसी अभिप्रायसे संमति ग्रंथमें भी इसी भावका उपदेश किया गया है। क्योंकि—संहननआदि भवके भावसे सिद्ध होते हुए अर्थात् अष्टविध कर्मोंका क्षय करते हुये जीवके मोक्षसमयमे केवल (केवलज्ञान) जाता है; अर्थात् भवस्थ जो केवल पर्याय है; उससे केवलज्ञानका नाश होता है; यह अर्थ मान अर्थात् प्रमाण है; इसके सिद्ध होनेपर सिद्ध केवलज्ञान उत्पन्न होता है; और केवलज्ञानपनेमे वही ध्रुवभाव अर्थात् नित्यपना है। क्योंकि—मोक्ष जानेके समयमें भी व्यय तथा उत्पाद होते हैं; और उस असिद्ध द्रव्यसे परिणत सिद्ध द्रव्यका जो अनुगम (ज्ञान) होता है; इससे मोक्षमें भी तीन लक्षण प्रकट होते हैं। और इसी भावके भावार्थ बोधनकेलिये गाथाको कहते हैं। जैसे “जो संहननआदि भवस्थ केवल विशेषके पर्याय है; वह सिद्धदशाको प्राप्त होते हुये जीवके नहीं होते इसलिये उसका व्यय होता है; और सिद्धत्वसे जो यह अर्थ पर्याय उत्पन्न हुआ है; उससे सिद्ध केवलज्ञानकी उत्पत्ति है; क्योंकि—सूत्रमें कहा है; कि—केवल भाव तो नष्ट होकर वदलेमें केवलज्ञानको ही देता है; अर्थात् उत्पन्न करता है ॥ २ ॥” और इसी भावकी अपेक्षासे “केवलज्ञान दो प्रकारके जानने एक भवस्थ केवलज्ञान और एक सिद्ध केवलज्ञान” इत्यादि सूत्रमें उपदेश है। और इस प्रकार स्थूलव्यवहारनयसे सिद्धोंमें भी त्रिविधलक्षणयुक्तताका आगमन हुआ परन्तु सूक्ष्म नयसे सिद्ध पर्यायमें त्रैलक्षण्य नहीं आया क्योंकि—ऋजुसूत्रआदि जो सूक्ष्मनय हैं; वह समय समयमें उत्पाद तथा व्ययको धारण करते हैं; इसलिये उन प्रतिक्षणके उत्पादादिको लेके तथा द्रव्यार्थिकनयसे पूर्वोत्तर पर्यायमें द्रव्यत्वरूपसे उत्पत्ति तथा नाशको एकताको ग्रहण करके जो सिद्ध पर्यायके साथ केवल ज्ञान है; उसमे त्रिविध लक्षणकी संगति भले प्रकार होती है और इसीको सूक्ष्मता जाननी चाहिये ऐसा विचारके अब दूसरे पक्षको प्रकट करते हैं, वह क्या है; सो निरूपण करते हैं; कि—मोक्षमे जो उत्पत्तिआदि त्रिविध लक्षणता होती है; वह सिद्ध द्रव्यकी एकताके अनुगमसे होती है; जो कैवल्य पहले भवस्थ भावमे स्थित था वही सिद्धत्वदशामे कैवल्य है, भवस्थ पर्यायका तो नाश होता है; और उस भवस्थ पर्यायके नाशके सन्निधानसे मोक्षसंज्ञक पर्यायकी उत्पत्ति होती है; और पूर्व भवस्थपर्याय तथा उत्तर सिद्ध पर्याय इन दोनों दशाओंमें कर्मोंके वियोगसे उत्पन्न जो केवलज्ञान है, वह ध्रुव है; इस कारण यह तीनों लक्षण मोक्षमे भी जानने चाहियें। भावार्थ तो यह है; कि—जो संहननादि भवस्थ केवल विशेषके पर्याय है; वह पर्याय सिद्ध दशाको प्राप्त होते हुए जो भगवान् है; उनके सिद्ध्यमान समयमें नहीं होते हैं; इसलिये उनके चले जानेसे तो व्यय होता है; और सिद्धत्वरूपसे जो मोक्षलक्षण अर्थ पर्याय उत्पन्न हुआ है; इस कारण उसकी उत्पत्ति होनेपर सिद्धत्वपर्यायकी उत्पत्ति होती

है, और दोनों दशामें केवल ज्ञानपना प्रतीत होता है, इसलिये ध्रुवत्व अव्याहत है । वह किस प्रकारसे ? कि—भोक्षके पूर्वमनस्थ जीवके चार घातिया कर्मोंका नाश होनेपर जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, उससे उत्पन्न होनेपर सिद्ध दशाको प्राप्त हुये जीवके सह-ननादिका अभाव होगया उसकी अपेक्षा तो व्यय है, और सिद्धत्व उत्पन्न हुआ उसकी अपेक्षासे उत्पाद है, तथा पूर्व ससारदशामें उत्पन्न जो केवल पर्याय है, उसका नाश न होनेसे ध्रौव्य है । इस प्रकार उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्यस्वरूप तीनों लक्षण मोक्षदशाम भी पूर्णतया हैं ॥ १४ ॥

तदुपरि श्लोकमाह ।

इसी विषयको आगेके श्लोकसे सिद्ध करते हैं ।

सूत्रम् । तत्सिद्धत्वे पुनश्चेति कैवल्यं यत्पुरास्थितम् ।

व्ययोत्पत्त्यैकतो नित्य पक्षे स्याल्लक्षणत्रयम् ॥ १५ ॥

सूत्रभाषार्थः—पूर्व भग्नमे जो कैवल्य स्थित था वह पूर्वमनस्थ पर्यायकी अपेक्षासे सिद्ध अवस्थामें भी होता है, इसलिये व्यय तथा उत्पाद है, और व्ययोत्पत्तिकी एकतासे नित्य है, ऐसे मोक्षमें तीन लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

ध्याय्या । यत्पुरास्थित कैवल्य भवस्थपर्यायापेक्षि तत्सिद्धत्वेऽपि सिद्धावस्थायामपि । क्षीणे भवस्थ उत्पन्ने सिद्धत्वे व्ययोत्पत्ती स्याताम् । पुनर्नित्य ध्रौव्य कुतो न्ययोत्पत्त्यैकतो व्ययश्चोत्पत्तिश्च व्ययोत्पत्ती तयोरेक्य ध्रौव्य तस्माद्व्ययोत्पत्त्यैकतो नित्य ध्रौव्य केवलम् । एव मोक्षे लक्षणत्रय स्यात्काल्पनिकमेवेद् भावाना विमर्शना बहुप्रकारा । अत एव “उत्पन्ने वा विगमे वा ध्रुवे वा इति योजना ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—जो भवस्थपर्यायकी अपेक्षाका धारक केवलज्ञान पहले भवस्थ दशामें स्थित था वह सिद्धावस्थामें भी होता है । यहा भवस्थके क्षीण होनेपर तथा सिद्धत्वके उत्पन्न होनेपर व्यय तथा उत्पाद होता है । और नित्य अर्थात् ध्रुवपना कहासे हुआ ? इसका उत्तर यह है, कि—व्यय और उत्पत्ति इन दोनोंकी जो एकता है, उससे केवल ज्ञान ध्रुव है, इस रीतिसे मोक्षमें लक्षणत्रय संगत होते हैं, परन्तु यह लक्षणत्रय काल्पनिक ही है, क्योंकि—पदार्थोंके विचार करनेके अनेक प्रकार हैं । इसी कारण “उत्पन्ने वा, विगमे वा ध्रुवे वा” कथञ्चित् उत्पन्न होता है, कथञ्चित् नष्ट होता है, और कथञ्चित् ध्रुव है, इत्यादि वाक्योंकी योजना होती है, अर्थात् यह उत्पादवादि किसी अपेक्षासे निरूपित होते हैं ॥ १५ ॥

सूत्रम् । ज्ञानाद्या निजपर्याया ज्ञेयाकारेण ये स्थिताः ।

व्यतिरेकेण ते चैव सिद्धस्य स्युस्त्रिलक्षणाः ॥ १६ ॥

सूत्रभाषार्थ —जो केवलज्ञान केवलदर्शनवादि निजपर्याय नेयके आकारसे

स्थित है; वह प्रतिक्षण सिद्धके अन्य अन्य होते रहते हैं; इस हेतुसे तीन लक्षणोंके धारक हैं ॥ १६ ॥

व्याख्या । ज्ञानाद्याः केवलज्ञानकेवलदर्शनादयो निजपर्याया ज्ञेयाकारेण वर्त्तमानादिवि-
पयाकारेण स्थिताः परिणताः सन्ति । ते च निजपर्याया व्यतिरेकेण प्रतिक्षणमन्योन्यत्वेन
सिद्धस्य मुक्तस्य एवमनया दिशापि त्रिलक्षणा लक्षणत्रयवन्तः स्युर्भवन्ति । तद्यथा प्रथमा-
दिसमयेषु वर्त्तमानाकारेण सन्ति ये पर्यायास्तेषां पुनर्द्वितीयादिसमयेषु नाशः पुनरतीता-
कारेणोत्पादाकारभावो भवेदिति । पुनः केवलज्ञानदर्शनभावेनाथवा केवलमात्रभावेन ध्रुव-
त्वमित्थं भावत्रयभावना कर्त्तव्या । इत्थमेव ज्ञेयदृश्याकारसंबन्धेन केवलस्य त्रैलक्षण्यं
कथितम् ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—जो केवलज्ञान केवलदर्शनआदि निजपर्याय ज्ञेयाकारसे अर्थात्
वर्त्तमानआदि विषयोंके आकारसे परिणत है; वह निजपर्याय व्यतिरेकसे अर्थात् प्रतिक्षणमे
अन्य २ पनेसे सिद्ध अर्थात् मुक्त जीवके हैं । इस प्रकारसे भी वह ज्ञानादि पर्याय तीन
लक्षणोंके धारक हैं; वह इस प्रकार कि प्रथमआदि क्षणमे जो पर्याय वर्त्तमान आकारसे
स्थित है; उनका फिर द्वितीयआदि क्षणोंमें नाश होगा और भूत आकारसे उत्पादका
आकारत्व होगा । और केवलज्ञान तथा केवलदर्शनरूपसे अथवा केवलमात्र भावसे
उनमें ध्रुवत्व है; इस प्रकार केवलज्ञानादि पर्यायोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनों
भावोंका विचार करना चाहिये । ऐसे ज्ञेय (जानने योग्य पदार्थ) और दृश्य (देखने
योग्य पदार्थ)के आकारके संबन्धसे केवलके त्रिलक्षणताका कथन किया है ॥ १६ ॥

तथा सिद्धादिशुद्धद्रव्यस्य कालसंबन्धात्रैलक्षण्यं कथयन्नाह ।

अब इसी प्रकार सिद्धआदि शुद्ध द्रव्यके भी कालके संबन्धसे त्रिविधलक्षणता
दर्शाते हुए यह सूत्र कहते हैं ॥

सूत्रम् । एवं ये क्षणसंबन्धे वर्त्तयन्ति पदार्थकाः ।

तेभ्यस्त्रिलक्षणत्वं च, अन्यथा स्युरभावकाः ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—ऐसे ही जो पदार्थ क्षणके संबन्धसे पर्यायोंको प्रवर्त्तित करते हैं; वह
उन्हीं भावोंसे त्रिविधलक्षणयुक्त हैं; यदि ऐसा न माना जाय तो वह अभावरूप ही
होंगे ॥ १७ ॥

व्याख्या । एवं ये पदार्थका भावाः क्षणसंबन्धेऽपि पर्यायतो वर्त्तयन्ति परिणामयन्ति ।
तेभ्यो भावेभ्यस्त्रिलक्षणत्वं संभवेत् । अन्यथा वैपरीत्येन असंभवा अभावाः स्युरित्यर्थः ।
यथा हि द्वितीयक्षणे इति भावे इति । आद्यक्षणे संबन्धपरिणामनाशो प्राप्तः, द्वितीयक्षणसंब-
न्धेन परिणामादुत्पन्नः, क्षणसंबन्धमात्रेण ध्रुवस्ततः कालसंबन्धात्रैलक्षण्यासंभव उक्तः । न
चेदेवं तर्हि वस्तु अवस्तु भवेत् । उत्पादव्ययध्रौव्ययोगजभावलक्षणमस्ति तद्राहित्ये शशवि-
षाणादिवदभावरूपतामासादयेत् ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थः—इस प्रकारसे जो पदार्थ अर्थात् भाव क्षणके सन्धमे भी पर्यायसे परिणमनको प्राप्त होते हैं, वह उ-ही भावसे त्रिविधलक्षणसहित समर्थ है । और यदि इसके विपरीत मानो अर्थात् उक्त सिद्धादि भावको त्रिविधलक्षणसपन्न न मानो तो वह अभावस्वरूप ही हो जायेंगे । यह श्लोकका अक्षरार्थ है । अत्र इसका विशेष निरूपण इस प्रकार है, जैसे श्लोकमे क्षण यह जो पद है, उससे द्वितीयआदि क्षणका ग्रहण है । प्रथम क्षणमे भावोंके साथ सन्धसे परिणामका नाश प्राप्त हुआ और द्वितीय क्षणके सन्धसे परिणाम उत्पन्न हुआ और दोनों क्षणके सन्धमात्रसे ध्रुत्व है । इस प्रकार कालके सन्धसे त्रिविधलक्षणका समर्थ कहा गया । और यदि ऐसा न हो तो वस्तु (पदार्थ) अवस्तु हो जायगा, क्योंकि—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य सन्धजन्यता ही भाव (पदार्थ)का लक्षण है, और उस त्रिविधलक्षण सन्धके अभावमे तो पदार्थ शशविपाण (खरगोशके सींग) आदिके समान अभावरूपताको प्राप्त होगा ॥ १७ ॥

सूत्रम् । एकदा निजपर्याये बहुसन्धरूपता ।

उत्पत्तिनाशयोरेव सम्बन्धियता ध्रुवे ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थः—एक कालमे निजपर्याये उत्पत्ति, नाश तथा ध्रुवके विषयमे अनेक सन्धकारिता निश्चित रूपसे सम्भवती है ॥ १८ ॥

व्याख्या । एकस्मिन्काल एवमनया दिशा निजपर्याये जीवपुद्गलयोस्तथा परपर्याये आकाशधर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायानामेतेषां द्रव्यानामुत्पत्तिनाशयोर्ध्रुवे बहुसन्धरूपता अनेक योगाकारता नियता निश्चिता सम्भवेत् । यतश्च यावन्तो निजपर्याया स्वपर्यायान्नावन्त उत्पत्तिनाशाश्च जायन्ते । ततश्च नियता नियमकता ध्रुवे ध्रौव्यस्वरूपे यावन्तो ध्रुवस्वभावात्ता वन्तो नियताकारा सन्ति । तथा च पूर्वापरपर्यायानुगत आधाराशलावन्मात्र एव भवेत् । तस्मादत्र समति । तथा च तद्वथा—एगसमयमि एगो दविपस्स बहुयानिहोति उप्पापा । उप्पापसमाविगमा ठिडपवस्सुगाओ नियमा । १ । एकस्मिन्समये एकैकस्य द्रव्यस्य ध्रुवोऽनेके उत्पादा उत्पत्तयो भवन्ति । तथा पुनरुत्पादसमानास्तत्तुल्यानागपर्याया अपि ज्ञेया । इति व्यवहारमार्गः । उत्सर्गतो विशेषभावतः स्थिति स्यैर्य नियमा निश्चिता अस्ति । ध्रुवत्व नियतमित्यर्थः । उन्मज्जननिमज्जनभावशालिनो जलकल्लोला ध्रुवो भवन्ति जल तु तावन्मिताकारस्थित्या परिणमति । तत एव तेषां सम्भवाविर्भावतिरोभावता भवतीति ज्ञेयम् ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थः—एक कालमे इसी पूर्वोक्त मार्गमे निजपर्याय अर्थात् जीव पुद्गलके तथा परपर्याय अर्थात् आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इनके ऐसे इन पाचों द्रव्योंके उत्पत्ति नाश तथा ध्रौव्यके विषयमे अनेक प्रकारके सन्धके आकार निश्चित रूपसे सम्भवते हैं । क्योंकि—जितने अपने पर्याय हैं, उतने ही उत्पत्ति तथा नाश भी होते

हैं; और उत्पत्ति विनाशमें अनेकाकार होनेसे ध्रौव्यमें भी वही नियत है; अर्थात् जितने ध्रुव स्वभाव हैं; उतने ही उनके आकार नियत हैं। और पूर्वपरपर्यायोंमें अनुगत जो आधारांश है; वह भी उतना ही होगा जितने कि—उत्पत्ति तथा नाश हैं। इसीलिये यहांपर संमतिग्रंथका प्रमाण है। और ग्रंथकी गाथा यह है; गाथार्थ—एक समयमें एक एक द्रव्यके अनेक उत्पाद होते हैं; और उत्पादके तुल्य ही उनके नाश पर्याय भी जानने चाहियें यह कथन व्यवहारमार्गसे है। और उत्सर्गमार्ग अर्थात् विशेषतासे स्थिरता निश्चित है; अर्थात् ध्रुवत्व नियत है। भावार्थ—उन्मज्जन निमज्जन भावशाली (क्षण क्षणमें) विनाश (तथा उत्पत्तियुक्त) जलके कल्लोल (तरंग) अनेक होते हैं; और जल उसी अपने परिमित आकारकी स्थितिसे परिणत है। उसीसे उन (जलकल्लोलों)के संभवसे उनकी प्रकटता तथा अप्रकटता होती रहती है; ऐसा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अथोत्पादस्य भेदान्कथयन्नाह ।

अब उत्पादके भेदोंका कथन करते हुवे कहते हैं ।

सूत्रम् । प्रयोगविश्रसाभ्यां स्यादुत्पादो द्विविधस्तयोः ।

आद्यो विशुद्धो नियमात्समुदायविवादजः ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थः—नैमित्तिक तथा स्वाभाविक भेदसे उत्पाद दो प्रकारका होता है; उनमेंसे प्रथम प्रयोगजनित नैमित्तिक उत्पाद अविशुद्ध होता है; क्योंकि—नियमसे वह समुदाय-विवादसे उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

व्याख्या । उत्पादो द्विविधो द्विप्रकारोऽस्ति, काभ्यां द्विविधः प्रयोगविश्रसाभ्यां, एकः प्रयोगजनित उत्पादः । १ । अपरो विश्रसाजनित उत्पादः । २ । पुनस्तयोर्द्वयोर्मध्ये आद्यो-ऽविशुद्धो व्यवहारोत्पन्नत्वात् । स च निर्धारणनियमात्समुदायवादजनितो यत्नेन कृत्वा अवयवसंयोगेन सिद्धः कथितः । तथा चात्र संमतिगाथा—उत्पादो दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससाचेव । तत्थयपओगजणिओ समुदयवाओ अपरिशुद्धो । १ । उत्पादो द्विविकल्पो द्विविधस्तत्राद्यः प्रयोगजनितोऽपरो विश्रसाजनितस्तत्र च प्रयोगजनितः समुदायवादादपरिशुद्धः कथितो व्यावहारिकत्वात् ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः—उत्पाद दो प्रकारका है; किनसे दो प्रकारका है? प्रयोग और विश्रसासे अर्थात् एक तो प्रयोग (निमित्त) जनित उत्पाद है; और दूसरा (विश्रसा) स्वभाव जनित उत्पाद है; और उन दोनोंके मध्यमें प्रथम प्रयोगजनित उत्पाद व्यवहारसे उत्पन्न होनेसे अविशुद्ध है; तथा वह निर्धारित नियमसे समुदायके विवादसे उत्पन्न होता है; अत एव यत्नसे अवयवोंके संयोगसे सिद्ध कहा गया है। और इस विषयमें संमतिग्रंथकी गाथा भी है; गाथार्थ—“उत्पादके दो विकल्प अर्थात् दो भेद हैं; एक प्रयोगजनित

दूसरा विश्रसाजनित उत्तमेसे प्रयोगजनित उत्पाद समुदायवाचसे व्यावहारिक होनेसे अपरिशुद्ध कहा गया है ॥ १ ॥" ॥ १९ ॥

अथोत्पादस्य द्वितीयभेद कथयन्नाह ।

अथ उत्पादके द्वितीय भेदको कहते हैं ।

सूत्रम् । विश्रसा हि विना यन्न जायते द्विविधः स च ।

तत्राद्यचेतनस्कधजन्यः समुदयोऽग्रिमः ॥ २० ॥

सूत्रभावार्थः—विश्रसाजनित उत्पाद वह है, जो विना यन्न उत्पन्न होता है, यह विश्रसाजनित उत्पाद भी दो प्रकारका है, उनमेंसे प्रथम अचेतन स्कधसे उत्पन्न समुदय नामसे कहा गया है ॥ २० ॥

व्याख्या । विश्रसाख्यो द्वितीय उत्पाद, विश्रसाशब्दस्य कोऽर्थ, सहज विना यन्नमुत्पद्यते य स विश्रसोत्पाद सोऽपि पुनर्द्विविधो द्विप्रकार, एकस्तत्र समुदयजनित, द्वितीय एकत्विक । उक्त च साहाविओवि समुदयकचञ्चणुणत्ति ओत्थहोज्जाहि । तत्रापि तयोर्द्वयोर्मध्य आद्य समुदयजनितो विश्रसोत्पाद अचेतनस्कधजन्य समुदय कथित । अन्नादीना समुदयपुद्गलाना यथोत्पाद ॥ २० ॥

व्याख्यार्थः—विश्रसानामक द्वितीय उत्पादका भेद है । "विश्रसा" इस शब्दका अर्थ क्या है? जो विना यन्नके सहज स्वभावसे उत्पन्न हो वह विश्रसाउत्पाद है । वह भी दो प्रकारका है, एक समुदयजनित है, द्वितीय एकत्विक है । ऐसा ही गाथामें कहा है, कि—"विश्रसाउत्पाद भी समुदय तथा एकत्विक भेदसे दो प्रकारका है" उन दोनोंमेंसे अचेतन स्कधसे उत्पन्न समुदयज प्रथम विश्रसाउत्पाद है । जैसे अचेतन मेघादिके समुदय पुद्गलोंका उत्पाद होता है ॥ २० ॥

सूत्रम् । सचित्तमिश्रजश्चान्यः स्यादेकत्वप्रकारकः ।

शरीराणां च वर्णादिसुनिर्धारो भवत्यतः ॥ २१ ॥

सूत्रभावार्थः—सचित्त मिश्रसे उत्पन्न, दूसरा एकत्विक विश्रसोत्पाद है । शरीरके वर्णादिकोंका सुनिर्धार इसीसे होता है ॥ २१ ॥

व्याख्या । तथा पुनर्द्वितीय सचित्तमिश्रज शरीरवर्णादिकाना निर्धारो ज्ञेय । सचित्ता पुद्गला वर्णादीना तथा तथाकारवर्णादिपुद्गलाना परिणत्या परिणतानामेकत्वप्रकारक एकता रूपेण परिगत अनेकेषा वर्णादीना संगताना परस्परमुत्पादधारया पिण्डीभूतानामवयवा तामवयवविधर्मत्वेन देहदृश्याकारभूतानामणूना शरीरादिसुनिर्धारो भवति । देहादिपिण्डाना "सु" अतिशयोक्ता निर्धारो वपुरुषावस्थित्य सपद्यते । तथा च प्रज्ञापनाया स्थानाग्ने च-निविष्टा पुगलापन्नता, त जहा पतोगपरिणता १ मीससापरिणता २ बीसनापरिणता ३ तत्र च प्रथम प्रयोगपरिणता पुद्गला ये भवन्ति ते जीवप्रयोगेण समुत्ता शरीरादय

सचित्ताः १ तथा मिश्रपरिणताश्च ते ये जीवेन पुद्गला मुक्ताः कलेवरादयः २ पुनश्च विश्रसा-
परिणताः स्वभावेन परिणताः । यथाभ्रेन्द्रधनुरादयः ३ एवं च सत्यत्र विश्रसाख्यस्य भेदस्य
स्वभावजनितस्य द्वैविध्यं प्रदर्शितम् । अचेतनस्कन्धजन्यसमुदायाख्यः प्रथमस्तत्र सचित्त-
मिश्रजन्यैकत्वप्रकारकशरीरादिवर्णादिसुनिर्धारसंज्ञो द्वितीयः । अत्रायं विशेषः स्वाभाविके
परिणमनेऽचित्तपुद्गलैरेवायत्नसाध्यव्यवहार उपदिष्ट इह तु द्वयमपि ॥ २१ ॥

व्याख्यार्थः—दूसरा सचित्तमिश्रसे उत्पन्न हुआ विश्रसाउत्पाद है; शरीरवर्णादिका
निर्धार इसीसे समझना चाहिये । वर्णादिकोंके जो पुद्गल हैं; वह सचित्त है । परिणतिसे
परिणमनको प्राप्त हुए उन उन आकारके वर्णादिरूप पुद्गलोंका एकत्व प्रकार अर्थात्
एकतारूपसहित सुनिर्धार होता है; अर्थात् अनेक प्रकारके वर्णआदिरूप मिले हुए
तथा उत्पादकी धारासे परस्पर पिण्डरूप हुए अवयव स्वरूप और अवयवोंके धर्मसे देह
रूप देखनेमें आने योग्य आकारके धारक परमाणवोंके, जो शरीरआदि पिण्डोंका
अतिशयरूपसे निर्धार अर्थात् शरीरके रूपकी अवस्था होती है; सो सचित्तमिश्रसे उत्पन्न
एकत्व प्रकारक दूसरा विश्रसाउत्पाद है । यही विषय प्रज्ञापना और स्थानाङ्ग शास्त्रमें
कहा गया है; वह पुद्गल तीन प्रकारसे परिणत है; जैसे—प्रयोगपरिणत १ मिश्रपरिणत
२ विश्रसापरिणत ३ इन तीनोंमें प्रथम जो प्रयोगपरिणत पुद्गल हैं; वह जीवके प्रयोगसे
अर्थात् जीवके व्यापारसे संयुक्त शरीरादि सचित्त हैं । मिश्रपरिणत वह है; कि—जो पुद्गल
जीवसे मुक्त हैं; जैसे कलेवरआदि । और विश्रसा परिणत पुद्गल वह है; जो स्वभावसे ही
परिणत हैं, जैसे इन्द्रके धनुषआदि । इस प्रकारका सिद्धान्त होनेसे यहांपर स्वभावसे
उत्पन्न होनेवाला जो विश्रसानामक भेद है; उसके दो प्रकार दिखाये । उनमें अचेतन
स्कन्ध(अचेतन पुद्गलोंके समुदाय)से उत्पन्न समुदयनामक तो प्रथम भेद है; और
सचित्तमिश्रसे उत्पन्न अर्थात् चेतनसहित पुद्गलोंसे मिलेहुए पुद्गलोंसे उत्पन्न एकत्व
प्रकारका धारक शरीरआदिके वर्णआदिका निर्धारसंज्ञक द्वितीय भेद है । इन दो-
नोंमें यह विशेषता है; कि—स्वाभाविक परिणमनमें अचित्त (चेतनरहित) पुद्गलोंसे ही
अयत्नसाध्य व्यवहारका उपदेश किया गया है, और एकत्विक विश्रसाउत्पादमें सचित्त
अचित्त दोनों प्रकारके पुद्गलोंसे साध्य व्यवहारका उपदेश है ॥ २१ ॥

पुनर्भेदं दर्शयन्नाह ।

फिर भी उत्पादके ही भेदको दिखाते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । यत्संयोगं विनैकत्वन्तद्रव्यांशेन सिद्धता ।

यथा स्कन्धविभागाणोः सिद्धस्यावरणक्षये ॥ २२ ॥

सूत्रभावार्थः—जो संयोगके बिना ही विश्रसाउत्पाद है; वह एकत्व है; और
उसीको द्रव्यांशसे उत्पाद जानना चाहिये । जैसे द्विप्रदेशस्कन्धके विभागसे अणुका
उत्पाद होता है; और कर्मोंके विभागसे जीवके सिद्धता उत्पन्न होती है ॥ २२ ॥

व्याख्या । सयोग विना विश्रसोत्पादो यद्वेत्तेकत्व ज्ञेयम् । तदेकैकत्व द्रव्याशेन द्रव्यविभागेन सिद्धता नाम उत्पन्नत्व ज्ञेयम् । यथा द्विप्रदेशादिस्कन्धविभागेनापो परमाणो-
र्द्रव्यस्योत्पाद , तथा आवरणक्षये कर्मविभागे जाते सति सिद्धस्य सिद्धपर्यायस्योत्पाद इति ।
“अवयवसयोगेनैव द्रव्यस्योत्पत्तिर्भवति परन्तु विभागेन द्रव्यस्योत्पत्तिर्न भवति” इत्यमेक-
नैयायिकादय कथयन्ति । तेषा मत एकतन्वादिविभागेन स्रण्डपटोत्पत्ति कथ जाघटीति
प्रतिग्रन्धकालभावम्यावस्थितावयवसयोगस्य हेतुताकल्पने महागौरवात् । तस्मात् कुत्रचित्स
योगात् कुत्रचिद्विभागाद्रव्योत्पादकता मन्तव्या । तदा विभागजपरमाणुत्पादोऽप्यर्थत सिद्ध
स्यात् । समतिशास्त्र इत्य सूचितमस्ति । तदुक्तम् “द्वयतरसयोगादि केईदवियस्मरिति उप्पा
यत्या । कुशलविभागजायण इच्छति अणुहुणुएहि वरुने आ । १ । द्वेति अणुयत्ति दविए
मोततो असुणविभक्तो । त पिहु विभागजाणिओ अणुत्तिजाओ अणू होइ । २ ।” आभ्या
गाथाभ्या भावार्थोऽवधार्य । यथा परमाणोरुत्पाद एकत्वजन्यस्तथा येन सयोगेन स्कन्धो न
निष्पद्यते एतादृशो धर्मास्तिकायादीना जीवपुद्गलयोस्सयोगसद्वारा यश्च मयुक्तद्रव्योत्पादोऽ
सयुक्तावस्थविनाशपूर्वक , तथा ऋजुसूत्रनयाभिमतो यश्च क्षणिकपर्यायप्रथमद्वितीयसमया
विन्यवहारहेतुस्तद्वारा यश्चोत्पादश्च तत्सर्वमेकत्व ज्ञेयम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थः—सयोगके विना जो विश्रसानामक उत्पाद है, वही एकत्व है । और
उसी एकत्वको द्रव्याशसे अर्थात् द्रव्यके विभागसे सिद्धता अर्थात् उत्पन्नत्व जानना
चाहिये । जैसे दो प्रदेशादि स्कन्धके विभागसे परमाणु द्रव्यका उत्पाद है, तथा
आवरणक्षय अर्थात् कर्मोंका विभाग (नाश) हो जानेपर सिद्ध पर्यायका उत्पाद है ।
अवयवोंके संयोगसे ही द्रव्यकी उत्पत्ति होती है, परन्तु विभागसे उत्पत्ति नहीं होती”
इस प्रकार कोई कोई नैयायिकआदि कहते हैं । उनके मतमे एक तनुआदिके विभा
गसे खडपटकी उत्पत्ति कैसे घटित हो सकती है । प्रतिबधक काल भावको अथवा
शेष अवस्थित अवयवसंयोगको कारणता माननेसे अतिगौरव है । इसलिये कहीं
सयोगको कहीं विभागको द्रव्यकी उत्पत्तिमे कारणता माननी चाहिये । इससे विभागसे
परमाणुकी उत्पत्ति भी अर्थसे सिद्ध हो गई । और समतिशास्त्रमें भी इसी प्रकार सूचित
किया है, जैसे “कोई कोई द्रव्यांतरके संयोगसे ही द्रव्यकी उत्पत्ति मानते है, और तर्कमे
कुशल विद्वान् तो विभागसे भी द्रव्यकी उत्पत्ति चाहते है । १ । क्योंकि—अणु तथा
द्वयणुक द्रव्योंमे भी अणु द्रव्योंमे उत्पत्ति मानी गई है । अत एव द्विप्रदेश अणु स्कन्धके
विभागसे अणुपरिमाण द्रव्यकी उत्पत्ति होनेसे अणुजन्य अणु होता है । २ ।” इन
दोनों गाथाओंसे यह भावार्थ मनमे धारण करना योग्य है, कि—जैसे परमाणुकी उत्पत्तिसे
अर्थात् द्विप्रदेश स्कन्धके विभागसे ज्ञेय है, वैसे ही जिस मयोगसे स्कन्ध नहीं सिद्ध होता
है, ऐसा जो धर्मान्निवायादिकोंका और जीव तथा पुद्गलका संयोग है, और उसके द्वारा
जो सयुक्त द्रव्यकी उत्पत्ति है, यह असयुक्त अवस्थाके विनाशपूर्वक है, तथा ऋजुसूत्र

नयके अभिमत जो क्षणिक पर्याय प्रथम द्वितीय समयआदिके व्यवहारका कारण है; उसके द्वारा जो उत्पाद है; वह सब एकत्वउत्पाद समझना चाहिये ॥ २२ ॥

अत्र न किञ्चिद्विवादस्तत्र श्लोकमाह ।

यहां कुछ विवाद नहीं है; इस विषयमें श्लोक कहते हैं ।

सूत्रम् । स्कन्धहेतुं विना योगः परयोगेण चोद्भवः ।

क्षणे क्षणे च पर्यायाद्यस्तदैकत्वमुच्यते ॥ २३ ॥

सूत्रभावार्थः—स्कंध हेतुके विना जो संयोग है, परके योगसे जो उत्पत्ति है; तथा क्षणिक पर्यायसे जो उत्पाद है; वह सब एकत्वउत्पाद है ॥ २३ ॥

व्याख्या । स्कन्धहेतुं विना यः संयोगः, परयोगेन धर्मास्तिकायादिना यश्चोत्पादः, तथा च क्षणिकपर्याये प्रथमद्वितीयादिद्रव्यव्यवहारहेतवस्तद्वारा य उत्पादः, तत्सर्वमेकत्वं कथ्यते तत्र न कोऽपि विसंवाद इति ॥ २३ ॥

व्याख्यार्थः—स्कंधकी हेतुताके विना जो संयोग है, परयोग जो धर्मास्तिकाय आदिक है; उनसे जो उत्पाद है, तथा प्रथम द्वितीयआदि द्रव्य व्यवहारके कारण जो क्षणिक पर्याय हैं; उनके द्वारा जो उत्पाद है; वह सब विश्रसाका भेदरूप एकत्वउत्पाद कहा जाता है । इसमें किसी प्रकारका विवाद नहीं है ॥ २३ ॥

पुनर्भेदं कथयन्नाह ।

फिर उत्पादके ही भेदको कहते हुए अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । उत्पादो ननु धर्मादेः परप्रत्ययतो भवेत् ।

निजप्रत्ययतो वापि ज्ञात्वान्तर्नययोजनाम् ॥ २४ ॥

सूत्रभावार्थः—धर्मास्तिकायआदिकी उत्पत्ति परप्रत्ययसे होती है; अथवा आन्तरिक नययोजनाको जानके निजप्रत्ययसे भी होती है ॥ २४ ॥

व्याख्या । ननु धर्मादेरुत्पादः परप्रत्ययो भवेत्, अपि पुनर्निजप्रत्ययाद्भवेदन्तर्नययोजनां ज्ञात्वा इति । भावार्थस्त्वयम्—धर्मास्तिकायादीनामुत्पादो नियमेन परप्रत्ययः स्वोपष्टभ्यगत्यादिपरिणतजीवपुद्गलादिनिमित्त उक्तः । य उभयजनितस्स चैकजनितोऽपि भवेत् । ततस्तस्य निजप्रत्ययतापि कथयितुं युक्ता निश्चयव्यवहारावधारणात् । अयमर्थः “आगासाइयार्ण तिण्हं परपच्चओ नियया” इति संमतिगाथायामकारप्रश्लेषणया वचनान्तरेण कृतोऽस्ति वृत्तिकारेण तमर्थमनुस्मृत्येहापि लिखितोऽस्ति । तस्माद्धर्मास्तिकायादीनामुत्पादो नियमात्परप्रत्यय एव । सोऽपि स्वोपष्टभ्यगत्यादिपरिणतजीवपुद्गलादिनिमित्तः, उभयजनितोऽप्येकजनितोऽपि स्यात् । तस्य च निजप्रत्ययताप्यन्तर्नयवादेनोक्तास्ति भावना चैत्थं ज्ञेया ॥ २४ ॥

व्याख्यार्थः—धर्मास्तिकायआदिकी उत्पत्ति परप्रत्ययसे होती है; और आभ्यन्तरिक (अन्दरूनी) नय योजनाको समझके निज प्रत्ययसे होती है । भावार्थ यह है; कि—धर्मा-

स्तिकाय (धर्मद्रव्य) आदिकी उत्पत्ति नियमसे परप्रत्ययसे अर्थात् धर्मास्तिकाय आदिके आधारभूत गमन आदिमें परिणत जो जीव पुद्गल है, उनके निमित्तसे होती है, ऐसा कथन किया गया है, और जो उभय (स्वप्रत्यय तथा परप्रत्यय) से जन्य होता है, वह एक जन्य भी होता है, इस वाक्यसे उस धर्मास्तिकाय आदिके उत्पादके निजप्रत्ययसे जन्यता भी कहनी योग्य है, क्योंकि—निश्चय तथा व्यवहारनयसे यह निश्चय होता है । “आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इन तीनोंके नियमसे परप्रत्ययजन्य उत्पाद है” इस समतिप्रथकी गायामें वृत्तिकारने यह पूर्वोक्त अर्थ आकार प्रश्लेषण करके वचनान्तरसे किया है । उस अर्थका ही अनुसरण करके यहाँ भी लिखा गया है । इसलिये धर्मास्तिकाय आदिका उत्पाद नियमसे परप्रत्यय जन्य ही है । और वह भी अपने आधारभूत गति आदिमें परिणत जीव पुद्गल आदिके निमित्तसे है । और जो उभयजनित है, वह एकजनित भी होता है । और इसके जो निजप्रत्ययता कही है, वह अन्तर्नयवादसे कही है । ऐसी भावना समझनी चाहिये ॥ २४ ॥

अथ नाशस्वरूपमाह ।

अन नाश (व्यय) का स्वरूप कहते हैं ।

सूत्रम् । नाशोऽपि द्विविधो ज्ञेयो रूपान्तरविगोचरः ।

अर्थान्तरगतिश्चैव द्वितीयः परिकीर्तितः ॥ २५ ॥

सूत्रभाषार्थः—उत्पादके समान नाश भी दो प्रकारका है, उनमें एक रूपान्तर विगोचर और दूसरा अर्थान्तरगति नामसे कहा गया है ॥ २५ ॥

व्याख्या । नाशोऽपि द्विविधो ज्ञातव्य । एकस्तत्र रूपान्तरविगोचर रूपान्तरपरिणाम । द्वितीयस्तु अर्थान्तरगतिरर्थान्तरभावगमन चेति । भाषार्थस्त्वयम् “परिणामो ह्यर्थान्तर, गमन न च सर्वथा व्यवस्थान न च सर्वथा विनाश, परिणामस्तद्विदामिष्ट । १ । सत्पर्यायेण विनाश, प्रादुर्भावोऽस्तता च पर्यायत । द्रव्याणां परिणाम, प्रोक्त खलु पर्यवलयस्य । २ । एतद्वचन समतिप्रज्ञापनावृत्तिविषयी । कथंचित्सद्रूपान्तर प्राप्नोति सर्वथा न त्रिनश्यति यत्तद्रव्यार्थिकनयस्य परिणामत्व कथितम् । पूर्वं सत्पर्यायेण विनश्यति, उत्तरासत्पर्यायेणोत्पद्यते यत्तत्पर्यायाधिकनयस्य परिणामत्व कथितम् । एतदभिप्राय विचारयत्तामेकरूपान्तरपरिणामविनाश, एकस्वार्थान्तरगमनविनाश, इत्य विनाशस्यापि भेदद्वय सप्तमम् ॥ २५ ॥”

व्याख्यानार्थः—नाश भी दो प्रकारका जानना चाहिये । उनमेंसे प्रथम रूपान्तर विगोचर अर्थात् एक रूपसे रूपान्तर (दूसरे रूपमें) परिणाम है, और द्वितीय अर्थान्तरगति अर्थात् एक पदार्थसे दूसरा पदार्थ हो जाता है । भाषार्थ यह है । एक पदार्थसे अन्य पदार्थतामें गमन हो जाता है, सो परिणाम है, और सर्वथा विद्यमानता अथवा

नाश होना यह परिणामका स्वरूप परिणामके जाननेवालोंके इष्ट नहीं है ॥ १ ॥ और सत् (विद्यमान) पर्यायसे नाश तथा अविद्यमान पर्यायसे उत्पाद जो है; सो पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे द्रव्योंका परिणाम कहा गया है । २ । यह वचन संमतिप्रज्ञापना वृत्तिमेंका है; उसका अभिप्राय यह है; कि—जो सत् (विद्यमान) पर्याय कथंचित् रूपान्तरको प्राप्त होता है; और सर्वथा नष्ट नहीं होता वह द्रव्यार्थिकनयका परिणाम कहा गया है । और पूर्व सत् पर्यायसे तो नष्ट हो और उत्तर जो अविद्यमान पर्याय है; उससे उत्पन्न होता हो वह पर्यायार्थिकनयका परिणाम कहा गया है । इस अभिप्रायको विचारनेवालोंके मतमें एक तो रूपान्तर परिणाम विनाश है; और एक अर्थान्तर गमन विनाश है; ऐसे विनाशके भी दो भेद सिद्ध हुए ॥ २५ ॥

पुनराह ।

पुनः दो प्रकारके नाशोंका स्वरूप दिखाते हैं ।

सूत्रम् । तद्वान्धतमसस्तेजो, रूपान्तरस्य संक्रमः ।

अणोरण्वन्तरापातो ह्यर्थान्तरगमश्च सः ॥ २६ ॥

सूत्रभावार्थः—इन दोनोंमेंसे अतिघनीभूत अंधकारका प्रकाशरूपमें जो संक्रमण है; वह परिणामरूप नाश है । और अणुसे जो अन्य अणुके साथ संयोग होता है; अर्थात् अणुसे जो द्यणुक स्कन्धरूप प्राप्ति है; वह अर्थान्तरगमनरूप नाश है ॥ २६ ॥

व्याख्या । तत्र नाशेऽन्धतमसोऽन्धकारस्य तेजोरूपान्तरस्य संक्रम उद्योततावस्थित-द्रव्यस्य रूपान्तरपरिणामरूपनाशो ज्ञेयः । च पुनरणोः परमाणोरण्वन्तरापादोणोरण्वन्तर-संक्रमो द्विप्रदेशादिभावमनुभवन् पूर्वपरमाणुत्वं विगतमित्यनेनार्थान्तरगमः स्कंधपर्याय उत्पन्नस्तेन कृतवार्थान्तरगतिरूपनाशस्य स्थितिर्भवति । निष्कर्षस्त्वयम्—यत्राकारस्तत्रापि तदाकारपरमाणुप्रचययोनिरन्धतमः समस्ति तत्रैव पुनरुद्योतपरमाणुप्रचयसंचारनिरस्तान्धकारपरमाणुत्वतत्स्थानतत्तत्परमाणुसंक्रमिततेजः परमाणुत्वलक्षणः रूपान्तरसंक्रमो जातः यथा अवयवानां परमाणुनामवयवस्कन्धत्वसंक्रमेणार्थान्तरत्वोद्भावनयार्थान्तरगतिलक्षणो नाशः समुत्पन्न इति ॥ २६ ॥

व्याख्यार्थः—उस नाशमें अंधकाररूप द्रव्यका तेजोरूपमें जो संक्रमण (मिलता) है; अर्थात् अन्धकारसे प्रकाशरूप द्रव्यमें जो परिवर्तन (बदलना) है; उसको रूपांतर परिणामरूप नाश जानना चाहिये और अणु(परमाणु)का दूसरे परमाणुके साथ जो संयोग है; अर्थात् द्विप्रदेशादिभावको अनुभव करते हुए पूर्व परमाणुत्वरूपका नाश हो जाता है; इस कारणसे अर्थान्तरगमन हुआ अर्थात् अणुपर्यायसे स्कंधपर्याय उत्पन्न हुआ इससे अर्थान्तरगतिरूप नाशका स्थिरत्व (ठहराव) होता है । भावार्थ तो यह है; कि—जहां आकार (काला रंग) है; वहां भी उस आकारके धारक परमाणुओंके समूहसे

उत्पन्न हुआ अन्धतम (गहरा अधेरा) है, और फिर वहा ही (जहापर अधिकार या उसी जगह) प्रकाशके परमाणवोंके समूहका संचार हुआ तब अधिकारके परमाणु तथा उन परमाणवोंका स्थान दूर हुआ और वह अधिकारके परमाणु उन तेज(प्रकाश)के परमाणुओंमें मिलगये वस यही रूपान्तरसंक्रम (अधिकारके परमाणुओंका तेजके परमाणु-वोंमें मिलजाना) है, इसीको रूपान्तरविगोचरनाश कहते हैं । और अवयवरूप परमाणुओंका अवयवी स्वरूपमे जो संक्रम है, उससे जो अर्थान्तरका उद्भाव है, उसीसे अर्थान्तरगतिरूप नाशका द्वितीय भेद सिद्ध होता है ॥ २६ ॥

पुनराह ।

पुन उसी विषयको कहते हैं ।

सूत्रम् । रूपान्तराणुसबन्धात्स्कन्धत्व यद्यणोरपि ।

तत्संयोगविभागाभ्यामपि भेदप्रयन्धता ॥ २७ ॥

सूत्रभाषार्थः—रूपान्तर अणुके सन्धसे यद्यपि स्कन्धता होती है, तथापि संयोग और विभागसे ही भेदकी प्रयन्धता होती है ॥ २७ ॥

व्याख्या । यद्यप्यणो रूपान्तरपरमाणुसबन्धात्स्कन्धत्वमणुसन्धस्कन्धतास्ति । तदिति तथापि संयोगविभागाभ्या कृत्वा द्रव्योत्पादनाशाभ्या द्विप्रकाराभ्यामेव भेदप्रयन्धता द्रव्य विनाशद्वैविध्यमेव ज्ञेयम्, एतदुपलक्षणं ज्ञेयम् । यतो द्रव्योत्पादविभागेन यथा पर्यायोत्पादविभागस्तथा द्रव्यनाशविभागेनैव पर्यायनाशविभागो भवेन्निति । तत् समुदयविभागस्तथार्थान्तरगमनं चेति द्वयमेव व्यवहियते । तत्र प्रथमस्तन्तुपर्यन्तपटनाश, द्वितीयो घटोत्पत्तिपर्यन्तमृत्पिण्डादिनाशश्च ज्ञेयः । उक्तं च समिति-विगमस्सविण्डादिनाशसमुदयजनिममिसोऽदुविषयो । समुदयविभागमित्त अत्यन्तरभावगमनं च । १ ।" इत्यादिगाथया ज्ञेयम् ॥ २७ ॥

व्याख्यार्थः—यद्यपि एक परमाणुके अन्य परमाणुके सन्धसे अणुसन्धस्कन्धता है, तथापि संयोग और विभागसे अर्थात् द्रव्यके उत्पाद और नाशरूप जो दो प्रकार है, इनसे ही भेदप्रयन्धता अर्थात् द्रव्यके नाशके दो प्रकार समझने चाहिये । यह उपलक्षणसे जानना चाहिये क्योंकि—द्रव्यके उत्पादरूप विभागसे जैसे पर्यायका उत्पादरूप विभाग होता है, वैसे ही द्रव्यके नाशरूप विभाग(भेद)से पर्यायका नाशरूप विभाग होगा । इसी हेतुसे समुदयविभाग तथा अर्थान्तरगमन ऐसे दो ही व्यवहारमें लाये जाते हैं । उनमें तत्तुपर्यायके अन्ततक जो पटका नाश है, वह प्रथम समुदयविभाग है, तथा घटकी उत्पत्तितक जो मृत्पिण्डादिका नाश होता है, वह द्वितीय अर्थान्तरगमन है । और समितिम कहा भी है । इसी प्रकार नाश भी समुदयजनित तथा मिश्र ऐसे दो प्रकारका है, इससे समुदयविभाग तथा अर्थान्तरगमन ऐसे दो प्रकारका नाश

(व्यय) होता है। इत्यादि गाथासे संयोग विभाग इन दोनोंसे भेदकी कल्पना समझनी चाहिये ॥ २७ ॥

सूत्रम् । ध्रौव्यं स्थूलऋजुसूत्रस्य पर्यायः समयादिकः ।

संग्रहस्य निजद्रव्यजात्या कालत्रयात्मकः ॥ २८ ॥

सूत्रभावार्थः—स्थूलऋजुसूत्रनयका ध्रुवभाव समयआदिक (समय प्रमाण) पर्याय है। और संग्रहनयका निजद्रव्यजातिसे त्रिकालात्मक ध्रुवत्व है ॥ २८ ॥

व्याख्या । ध्रौव्यं ध्रुवस्वभावोऽपि स्थूलऋजुसूत्रस्य ऋजुसूत्रं द्विधा स्थूलसूक्ष्मभेदात्तत्र स्थूलऋजुसूत्रस्य पर्यायो मनुष्यादिकः समयप्रमाणमस्ति । प्रथमः स्थूल ऋजुसूत्रनयस्तदनुसारेण मनुष्यादिपर्यायाणां समयमानं ज्ञेयमिति भावः । पुनर्द्वितीयः संग्रहनयस्य सम्मतो निजद्रव्यजात्या जीवपुद्गलादिकनिजद्रव्यजात्या कालत्रयात्मकस्त्रिकालव्यापको ज्ञेय इति । किं च आत्मद्रव्येण गुणपर्याययोरात्मद्रव्यं समानाधिकरणत्वेन अन्वयानुगम एव ध्रौव्यमिति । पुद्गलद्रव्येण गुणपर्याययोः पुद्गलद्रव्यानुगम एव ध्रौव्यमिति । एवं निजनिजजात्या निर्धारो ज्ञेय इति ॥ २८ ॥

व्याख्यार्थः—स्थूल और सूक्ष्म इन भेदोंसे ऋजुसूत्रनय दो प्रकारका है; उनमें स्थूल ऋजुसूत्रके मतमें समयप्रमाण जो मनुष्यआदिक पर्याय है; सो ध्रुवस्वभाव है; भावार्थ यह है; कि—प्रथम जो स्थूल ऋजुसूत्रनय है; उसके अनुसार मनुष्यआदि पर्यायका जो समय है; उस प्रमाण (उतना) ध्रौव्य है; जैसे कोई जीव मनुष्यपर्यायमें पचास वर्ष रहा तो स्थूल ऋजुसूत्रके मतमें मनुष्यपर्यायके पचास वर्ष ही ध्रौव्य है। और दूसरा संग्रहनयके संमत निजद्रव्यजातिसे अर्थात् जीवपुद्गलआदि निजद्रव्यकी जातिसे त्रिकालमें व्यापक ध्रौव्य जानना चाहिये। तथा आत्मद्रव्यसे गुण और पर्यायमें आत्मद्रव्यसमानाधिकरणाका जो अन्तयानुगम है; सो ही ध्रौव्य है। पुद्गलद्रव्यसे गुण और पर्यायमें पुद्गलद्रव्यका अनुगम है; वही ध्रौव्य है। इस प्रकार अपनी अपनी जातिसे ध्रौव्यका निर्धार (निश्चय) समझना चाहिये अर्थात् आत्मद्रव्यके गुणपर्यायोंमें आत्मद्रव्यकी और पुद्गलद्रव्यके गुणपर्यायोंमें पुद्गलद्रव्यका ध्रौव्य रहेगा और इनकी अनन्तर जातिमें भी यही व्यवस्था समझनी चाहिये जैसे मृत्तिकाके गुणपर्यायों (घटादिक) में मृत्तिका द्रव्यका ध्रौव्य रहता है ॥ २८ ॥

सूत्रम् । अर्थाः समर्थाः समये निरुक्ता इत्थं त्रिधालक्षणवन्त आसैः ।

सम्यग्धिद्या तान्परिभाव्य भव्या अर्हत्कमाम्भोजयुगं

श्रयन्ताम् ॥ २९ ॥

सूत्रभावार्थः—हे भव्य जीवो? इस पूर्वोक्त रीतीसे यथार्थ तत्त्वको जाननेवाले तीर्थ-करोंने शास्त्रमें शक्तिके धारक धर्म अधर्मआदि पट् द्रव्य तीन प्रकारके लक्षणोंसहित

निरूपित किये हैं । उनको बुद्धिसे भरी भाति विचारके श्रीअर्हत् देवके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करो ॥ २९ ॥

व्याख्या । अर्था पद पदार्था धर्माधर्माकागुपुटलकालजीवा समर्था शाश्वतपरिणामभाज शक्तियुक्ता समये सिद्धान्ते निरुक्ता कथिता आप्तैर्यथार्थतत्त्ववेदिभिस्तीर्थकृद्भिः । ते कीदृशा इत्युक्त्यर्थे पूर्वोक्तप्रकारेण त्रिलक्षणवन्तो लक्षणत्रयविराजमाना । भावार्थस्त्वयम्—सिद्धान्ते सर्वेऽर्था विविधप्रकारेण त्रिलक्षणा कथ्यन्ते । लक्षणत्रय तूत्पादव्ययध्रौव्यात्मक तच्छील तत्त्वभाव च भाषितमिति । भव्या भवाय अर्हा भव्यास्तान् अर्थान् पठपि लक्षणत्रयभावनया सम्यग्बुद्ध्या परिभाव्य पर्यालोच्यार्हत्त्वमाप्नोत्युगमं जिनचरणपङ्कजद्वय श्रयन्तामाश्रित्यन्तामिति । तज्ज्ञाने सति तच्चरणमुक्त्युत्पत्तिफल लक्ष्यकृतम् । भोजेति श्लेषेण ग्रन्थकर्तृनाम सङ्केतश्चेति । यथा च ये पुरुषास्त्रिलक्षणभावनाया विस्ताररुचिचिह्नेन सम्यक्त्वमवगाहान्तरङ्गमुत्पानुभवाम्भिलाषपरा भवन्तु । पुनस्तथैव सम्यक्त्वपूर्वकमुक्तिप्राप्ति सुलभेति ध्येयम् ॥ २९ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरविनिर्मिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया सप्तमयगर्भितपङ्कजद्रव्याणा त्रिलक्षणवर्णनादयो नवमोऽध्याय परिकल्पित ॥ ९ ॥

व्याख्यानार्थः—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुटल और जीव यह पद पदार्थ जो कि—निरन्तर परिणामके भागी तथा शक्तियुक्त हैं, उनको यथार्थ तत्त्वके वेत्ता (जाननेवाले) तीर्थकरोंने सिद्धान्तमें पूर्वोक्त उत्पाद, व्यय और प्रोव्यस्वरूप तीन लक्षणोंसे विराजमान वर्णन किये हैं । भावार्थ यह कि—जैनसिद्धांतमें सम्पूर्ण पदार्थ अनेक प्रकारसे त्रिविध लक्षणसहित कहे जाते हैं, और लक्षणत्रय यह है, जैसे उत्पाद, व्यय और प्राव्य अर्थात् सपूर्ण पदार्थ उत्पाद, व्यय, प्रोव्यरूप शील अथवा स्वभावके धारक हैं, ऐसा कहा गया है । इस हेतुसे है भवके योग्य जीवों ? उन पद पदार्थोंको लक्षणत्रयकी भावनासे सम्यक् प्रकार बुद्धिद्वारा जाकर अर्थात् पूर्णरीतिसे विचार करके श्रीअर्हत् भगवान्के चरण कमलयुगलका सेवन करो अर्थात् आदर करो । तात्पर्य यह कि—पद पदार्थोंका ज्ञान होनेपर श्री जिनदेवके चरणोंमें भक्तिका उत्पन्न होना यही मुख्य फल है । और श्लोकमें जो “क्रमामोज” यह पद है, उसमें श्लेषसे “भोज” इन प्रकार ग्रन्थकर्त्ताके नामका भी संकेत है । आर जो भव्य जीव हैं, वह इस प्रकार पदार्थमें त्रिलक्षणताके विचारमें उत्पन्न हुई जो विस्ताररुचि समये सम्यक्त्वका अवगाहन करके अंतरगमुगम (मोक्षमुगम) के अनुभवकी अभिलाषामें तत्पर होन आर उनको उमी प्रकारसे पहले सम्यक्त्व होकर तत्पश्चात् मुक्तिकी प्राप्ति युगम होगी ऐसा विचार करना चाहिये ॥ २९ ॥

इति श्रीभाचार्यापाधिधारक प० द्रुमुगप्रसादविरचितभाषाटीकासमलङ्कृताया द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्याया नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

अथ दशमाध्याये द्रव्यगुणपर्यायाणां भेदान् वितत्य विवृणोति ।

अब इस दशम (१०) अध्यायमें द्रव्य गुण तथा पर्यायोंके भेदोंको पृथक् पृथक् करके विवरण करते हैं ।

सूत्रम् । भिन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थं निरूप्याथ स्वरूपतः ।

द्रव्यादीनि प्रवक्ष्यामि भेदानागमसंमतान् ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—कथंचित् भिन्न, कथंचित् अभिन्न तथा त्रिविध लक्षणयुक्त द्रव्य-गुण पर्यायआदि अर्थका निरूपण करके अनन्तर सिद्धान्तके संमत द्रव्यादिके भेदोंको इस दशम (१०) अध्यायमें कहूंगा ॥ १ ॥

व्याख्या । द्रव्यं गुणाः पर्याया भिन्नाः पुनरभिन्नाः पुनस्त्रिविधाः पुनस्त्रिलक्षणवन्तः अर्थाः । भिन्नान्यभिन्नानि च त्रिधा च त्रिलक्षणानि चेति द्वन्द्वः । आदिशब्दाद् भवभावादीनि तेषामर्थः प्रतिपादनं तद्विन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थं निरूप्य कथयित्वा । अथेति । पुनः स्वरूपतः स्वरसात् द्रव्यादीनां भेदानागमसंमतान्सिद्धान्तोक्तान्प्रवक्ष्यामि कथयिष्ये ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—द्रव्य गुण तथा पर्याय भिन्न भी हैं; और अभिन्न भी हैं; और त्रिविध लक्षणयुक्त है । भिन्न अभिन्न और त्रिधा इनका यहां द्वंद्व समास है; और “त्रिधाआदि” यहां आदि शब्दसे भव, भावआदिका ग्रहण है; उनका जो अर्थ अर्थात् प्रतिपादन सो भिन्नाभिन्नत्रिधाद्यर्थ है; उसको अर्थात् भिन्न अभिन्न तथा त्रिधालक्षणयुक्त द्रव्य-गुण, पर्याय, भव और भावआदिके अर्थको वर्णन करके तदनन्तर शास्त्रमें कहे हुए जो स्वभावसे द्रव्यआदिके भेद हैं; उनको कहूंगा ॥ १ ॥

सूत्रम् । सम्यक्त्वं हि दयादानक्रियामूलं प्रकीर्तितम् ।

विना तत्संचरन्धर्मे जात्यन्ध इव खिद्यति ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—इन द्रव्यादिके ज्ञानसे जो सम्यक्त्व होता है; वह दया दान और क्रिया इन सबका मूल कारण कहा गया है । इस सम्यग्दर्शनके विना धर्मरूप मार्गमें प्रवृत्त हुआ पुरुष जन्मांधके सदृश दुःखको पाता है ॥ २ ॥

व्याख्या । अथैतेषां विज्ञानान्निश्चितं सम्यक्त्वं प्रकीर्तितम् । कीदृशं दया जीवरक्षा, दानमभयादि पञ्चधा, क्रिया कर्तव्यानि एता मूलं यस्य तत् । यदुक्तं—जीवा इ नवपइत्ये जो जाणइ तस्य होइ सम्मत्तं” पुनार्वैशिकायां “दाणाइआ ओ एअं मि चेवसहलाओहुंति किरियाओ । एयाओ विहु जम्हा मोक्त्वफलाओ पराओ अण ॥ १ ॥ इति वचनात् । तत्स-म्यक्त्वं विना धर्मे धर्ममार्गे संचरन् प्रवर्तन् खिद्यति क्लिश्यति क इव जात्यन्ध इव । यथा जात्यन्धो जन्मान्धः पुमान्मार्गे पथि संचरन् खिद्यति गर्त्तापातादिदुःखमनुभवति तथैव सम्य-क्त्वहीनोऽपि भवकूपनिपाती स्यात् । ततः सम्यक्त्वं विना येऽगीतार्थास्तथाऽगीतार्थनिश्चिताः स्वस्वाभिनिवेशेन हठमार्गे पतिताः सन्तः सर्व एते जात्यन्धप्राया ज्ञातव्याः । भव्यं ज्ञात्वा

सुगन्धि तदपि तेषां निष्फलमेव भवेत् । उक्तं च “सुन्दर बुद्धी इत्यत्र बहुयः पिण सुन्दर होई” ततो द्रव्यगुणपर्यायभेदपरिज्ञानाच्छुद्ध सम्यक्त्व आदर्तव्यम् ॥ ७ ॥

व्याख्यानार्थः—इन द्रव्यआदिके ज्ञानसे निश्चित सम्यक्त्व कहा गया है, वह सम्यक्त्व कैसा है, सो कहते हैं, समस्त जीवोंकी रसरूप दया, अभयआदि भेदसे पांच प्रकारका दान, और क्रिया अर्थात् शास्त्रोक्त कर्तव्य यह जिसके मूल है । इस विषयमें अन्यत्र कहा भी है, कि—“जो जीवआदि न ९ पदार्थोंको जानता है, उसीके सम्यग्दर्शन होता है । पुन बिंशिकानामक ग्रंथमें ऐसा वचन है, कि—एक सम्यक्त्वके होने-पर दानादिक समस्त क्रिया सफल होती है, और इसीसे यह मोक्षफला अर्थात् मोक्षरूप फलको देनेवाली है, और सम्यक्त्वके बिना जो क्रिया है, वह मोक्षरूप फलको देनेवाली नहीं है । इसलिये सम्यक्त्वके बिना धर्मरूप मार्गमें प्रवृत्तहुआ मनुष्य ऐसे दुखोंको पाता है, जैसे मार्गमें चलता हुआ जमान्ध । तात्पर्य यह कि—जैसे जन्मसे ही अथा जीव मार्गमें चलताहुआ खड्डेमें गिरनेआदिरूप दुखका अनुभव करता है, वैसे ही सम्यक्त्वसे जो हीन है, वह भी ससाररूपी कूपमें गिरनेवाला होता है । इस हेतुसे सम्यक्त्वके बिना जो अगीतार्थ है, अथवा अगीतार्थनिश्चित है, वह सन अपने अपने दुराग्रहके वशसे हठरूप मार्गमें गीरे हुए है, इसलिये इन सर्वोंको जन्मान्धोंके सदृश समझने चाहिये । और वह लोग जिस कर्म धर्मको आच्छादित करते हैं, वह भी उनके निष्फल ही होता है । ऐसा कहा भी है “सुन्दर बुद्धिसे अर्थात् उत्तम परिणामोंसे कियाहुआ उत्तम काम भी सम्यक्त्वके बिना सुन्दर नही होता” इसलिये द्रव्यगुण तथा पर्यायोंके जाननेसे जो शुद्ध सम्यक्त्व होता है, उसका आदर करना चाहिये अर्थात् द्रव्यादिके ज्ञानसे सम्यक्त्वको शुद्ध करके उसका ग्रहण करना चाहिये ॥२॥

अथ नामतः पण्णा द्रव्याणां कीर्तनमाह ।

अथ नामसे स्वगाननीय पद द्रव्याका कथन करते हैं ।

सूत्रम् । धर्माधर्मौ नभःकालौ पुद्गलौ जीव इत्यमी ।

अर्थाः पद समये ख्याता जिनैराद्यन्तवर्जिताः ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इस प्रकार इन आदि अन्तर्जित छे द्रव्योंको श्रीजिनेन्द्रोंने जिनगमन करा है ॥ ३ ॥

व्याख्या । धर्मश्चाधर्मश्च धर्माधर्मा धर्माभिरायाधर्माभिराया । तथा नभःकालौ ऋश्च पाश्च नभःकालाकाशान्तरिकायाकालौ । पुद्गलः पुद्गलद्रव्यम्, जीवो जीवद्रव्यम्, इत्यमी पद । न न्यूना तादिका । अर्थाः पदार्थाः समय आचिन्तप्रणीतागते ख्याता धिया श्रीजिने श्रीवीतरागे । पीदशा आद्यन्तवर्जिता आकाशनिधना इत्यर्थः । एतदा पण्णा काल वर्जयित्वा पञ्चात्मिकाया जस्य प्रवेशान्नै कायन्ते प्राप्यन्त इति पञ्चा

स्तिकायाः । कालस्यास्तिकायात्वं कथं नास्ति तत्राह । “अपएसिए काले” कालद्रव्यस्य प्रदेशसंघातो न विद्यते यतः—एकः समयोऽन्यस्मात्समयान्न प्रक्षिप्यत एवमन्येषामपि । तथा हि “धर्माधर्माकाशादावैकैकमतः परं त्रिकमनन्तम् । कालं विनास्तिकाया जीवमृते चाप्यकर्तृणि ॥ १ ॥ इत्यादि साधर्म्यवैधर्म्यादिभेदपरिज्ञापनाय प्रशमरत्यादिग्रन्था विलोकनीयाः । पुनरेतेषां भेदाः परिणामजीवमुक्ता सपणसाइयारित्तिकिरियाय । निञ्च कारणकत्ता सन्वगदइयर अपदेशा ॥ १ ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य यह पद पदार्थ न इनसे न्यून (कम) और न अधिक श्रीवीतरागदेवने अथवा आचार्योंने श्रीजिनविरचित आगममें कहे हैं । कैसे हैं; यह छ पदार्थ? कि—आदि अन्त शून्य है; अर्थात् न तो कभी इनकी आदि हुई और न कभी इनका अन्त होगा । इन छहों पदार्थोंमेंसे कालको छोड़कर बाकीके पांच अस्तिकाय हैं । अस्ति प्रदेशका नाम है; अतः प्रदेशोंसे जो कायन्ते “कहे जाय” वह अस्तिकाय कहलाते हैं । अब कालके अस्तिकायता क्यों नहीं है; इस विषयमें कहते हैं; कि—काल अप्रदेशी है; अर्थात् कालद्रव्यके प्रदेशोंका संघात नहीं है; क्योंकि—एक समय दूसरे समयसे भेदको प्राप्त नहीं होता है । इस प्रकार अन्य घटिकाआदिका भी भेद नहीं हो सकता है । और धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह तीनों एक एक हैं; और इनके आगेके तीन अर्थात् काल पुद्गल और जीव ये तीनों द्रव्य अनन्त हैं । तथा कालको छोड़के सब अस्तिकाय हैं; और जीवके सिवाय सब अकर्त्ता है । इत्यादि साधर्म्य, वैधर्म्यआदि भेदोंके जाननेके लिये प्रशमरतिआदि ग्रन्थ देखने चाहियें । और इन छहों द्रव्योंके समस्त भेद यह है. परिणामित्व, जीवत्व, मूर्त्तत्व, सप्रदेशत्व, एकत्व, क्षेत्रत्व क्रियावत्त्व नित्यत्व कारणवत्त्व कर्त्तृत्व सर्वगतत्व असर्वतत्त्व और प्रदेशत्व । इन भेदोंसे साधर्म्य वैधर्म्यका ज्ञान करना चाहिये अर्थात् जो धर्म जीवमें और पुद्गलमें दोनोंमें एकसे हों उनमें तो जीव पुद्गलके साधर्म्य है; और जो भिन्न २ हों उनमें वैधर्म्य है; ऐसे सबमें समझना ॥ ३ ॥

अथ धर्मास्तिकायस्य लक्षणमाह ।

अव धर्मास्तिकायका लक्षण कहते हैं

सूत्रम् । परिणामी गतेर्धर्मो भवेत्पुद्गलजीवयोः ।

अपेक्षाकारणाल्लोके मीनस्येव जलं सदा ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—लोकमें अपेक्षा कारण होनेसे पुद्गल तथा जीवके गमनका परिणामी धर्मास्तिकाय है; जैसे मीनके सदा गतिपरिणामी जल है ॥ ४ ॥

व्याख्या । गतेर्गमनस्य परिणामी अर्थाद्वृत्तिपरिणामी पुद्गलजीवयोर्धर्मो धर्मास्तिकायो भवेत् । कस्माल्लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मकाकाशखण्डे अपेक्षाकारणात् परिणामव्यापारहितत्वात्, अधिकरणरूपौदासीन्यहेतोश्च तत्र दृष्टान्तमाह । मीनस्येव जलं सदेति सदा निर-

न्तर जल यथा मीनस्य मत्स्यस्य गतिपरिणामि अस्ति अपेक्षाकारणात् । गमनागमनादि त्रियापरिणतस्य मत्स्यस्य जल अपेक्षाकारणमस्ति तथैव धर्मद्रव्यमपि ज्ञेयम् । निष्कर्षस्त्वयम्—स्थले अपक्रियान्याकुलतया चेष्टा हेत्वच्छाभावादेव न भवति । न तु जलाभावादिति गत्यपेक्षाकारणे मानाभाव इति चेन्न । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां लोकसिद्धव्यवहारादेव तद्वेतुत्वसिद्धेरन्यथान्त्यकारणेनेतराखिलकारणासिद्धिप्रसगादिति निष्कृ ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—जीव तथा पुद्गलके गति अर्थात् गमनमे परिणामी धर्मास्तिकाय द्रव्य होता है, क्योंकि—वह धर्म द्रव्य लोकमें अर्थात् चतुर्दश (चोदह १४) रज्जुप्रमाण जो आकाशसद है, उसमें यह धर्म द्रव्य अपेक्षा कारण है, और गमनरूप अथवा गमनकरानेरूप व्यापारसे रहित अधिकरणस्वरूप उदासीन कारण है । इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं । जैसे जल मीन (मत्स्य) की गतिमें सदा परिणामी है क्योंकि—वह जल अपेक्षा कारण है, अर्थात् गमन तथा आगमनभावि क्रियामें परिणत मत्स्यके जल अपेक्षा कारण है । उसी प्रकार गमनमें परिणत जीव पुद्गलके धर्मद्रव्य भी अपेक्षा है, ऐसा जानना चाहिये । भावार्थ तो यह है, कि—वह मीन स्थलमें अपनी गमनक्रियामें व्याकुलित होता है, और उस-व्याकुलतासे जो गमनकी चेष्टाकी कारणभूत इच्छा है, वह इच्छा ही नहीं होती इसीसे वह मीन स्थलमें गमन नहीं करता है । वहा कोई शका करता है, कि—मीन स्थलमें जो गमन नहीं करता है, सो जलके अभावसे नहीं करता है, और तुम जो जलको गतिमें अपेक्षा कारण मानते हो इसमें कोई प्रमाण नहीं है ? उसका समाधान यह है, कि—यह ठीक नहीं क्योंकि—अन्वय और व्यतिरेकसे जो लोकमें प्रसिद्ध व्यवहार है, उसीसे उस जलमें गमनकी कारणता सिद्ध होती है, अर्थात् जिसके होनेपर कार्य हो और न होनेपर न हो वही अन्वयव्यतिरेक है, और जिसमें अन्वयव्यतिरेक घट जाय वही लोकमें कारण माना जाता है, इस प्रसिद्ध व्यवहारसे जल भी मीनकी गतिमें कारण है, क्योंकि—जलके होनेपर मीन गमन करता है, और जलके अभावमें नहीं इसलिये जल गमनमें कारण है । यदि ऐसा न मानोगे तो अन्तर्के कारणसे अथ सप्त कारणोंकी असिद्धिका प्रसंग होगा । यह सक्षेपसे धर्मद्रव्यका लक्षण हुआ ॥ ४ ॥

अथाधर्मास्तिकायस्य लक्षणं कथयत्तह ।

अत्र अधर्मास्तिकायका लक्षणं कहते हैं ।

सूत्रम् । स्थितिहेतुरधर्म स्यात्परिणामी तयोः स्थितेः ।

सर्वसाधारणो धर्मो गत्यादिर्द्रव्ययोर्द्वयोः ॥ ५ ॥

सूत्रभाष्यार्थ — जीव तथा पुद्गलकी स्थितिका परिणामी और स्थितिका हेतु अधर्मद्रव्य है, और यह गति तथा स्थितिरूप अखिल साधारण धर्म इन धर्म अधर्म-रूप दो ही द्रव्योंमें है ॥ ५ ॥

व्याख्या । तयोः पुद्गलजीवयोः स्थितिपरिणामी अपेक्षाकारणं स्थितिहेतुश्चाधर्मास्तिका-
यद्रव्यं भवेत् । गतिस्थितिपरिणतो गत्यादिरुच्यते । ईदृशोऽखिलसाधारणो धर्मो द्वयोर्द्रव्य-
योरेव नान्येषां धर्माधर्मौ विहाय गतिस्थिती कापि न जायंते । तथा च गतिस्थितिपरिण-
तानां सर्वेषां द्रव्याणां यदेकैकद्रव्यलाघवेन कारणं सिद्ध्यति तत्कारणमेतयोरेव द्वयोर्द्रव्य-
योरित्यर्थः । तेनच अपादिगत्यपेक्षाकारणं जलादिद्रव्येषु वर्तते । तत्र धर्मास्तिकायादिद्रव्यल-
क्षणस्य नातिव्याप्तिर्भवतीति निष्टङ्कः ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—जीव तथा पुद्गलके स्थितिपरिणामी अर्थात् अपेक्षाकारण और
स्थितिका हेतु अधर्मद्रव्य है । गति और स्थितिमें परिणत जो धर्म सो गत्यादि कह-
लाता है । ऐसा समस्तमे साधारण धर्म दो ही द्रव्योंमें है; अन्य द्रव्योंमें नहीं अर्थात्
धर्मद्रव्यको छोड़कर अन्य किसी द्रव्यमे गति नहीं है; और अधर्मद्रव्यके सिवाय अन्य
किसी द्रव्यमें स्थिति नहीं है । और इससे यह सिद्ध हुआ कि—गति तथा स्थितिमें परि-
णत जो सर्व द्रव्य है; उनमे एक एक द्रव्यके लाघवसे जो कारणता सिद्ध होती है; वह
कारणता इन्हीं दोनों द्रव्योंमें है । इससे मत्स्यादिके गमनकी जो अपेक्षा कारणता जल
आदि द्रव्योंमें है; वहां धर्मास्तिकायादिद्रव्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं हुई क्योंकि—
वहां भी धर्मद्रव्यादि ही गतिआदिमे कारण है; यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥

अथ धर्मास्तिकायद्रव्यस्य विषयिप्रमाणं प्रतिदिशन्नाह ।

अव धर्मास्तिकाय द्रव्यकी सत्ताके विषयमे प्रमाणका उपदेश कहते हुए आगोका
श्लोक कहते हैं ।

सूत्रम् । सहजोर्ध्वगमुक्तस्य धर्मस्य नियमं विना ।

कदापि गगनेऽनन्ते भ्रमणं न निवर्त्तते ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करनेवाले मुक्त जीवके धर्म द्रव्यके नियम
विना अनन्त आकाशमे परिभ्रमण जो है; वह कभी भी नहीं निवृत्त होगा ।

व्याख्या । सहजोर्ध्वगमुक्तस्य निसर्गोर्ध्वगामिसिद्धजीवस्य धर्मास्तिकायप्रतिबन्धं विना
अनन्ते अतटे गगने लोकालोकव्यापिनि भ्रमणं गतिर्न निवर्त्तते न व्याहन्यत इति । किं
च यदि गत्यां धर्मास्तिकायद्रव्यस्य प्रतिबन्धकत्वं न स्यात्तदा सहजोर्ध्वगामिसिद्धानामेकस्मि-
न्समये लोकाग्रयायिनां तथैवालोकेऽनन्ते प्रसर्पतामद्यापि गमनस्योर्ध्वप्रवृत्तिलक्षणस्य निवृ-
त्तिरपि न स्यात् । कथं तत् अनन्तलोकांशप्रमाणमलोकाकाशमस्ति । लोकाकाशस्य गति-
हेतुत्वं चास्ति ततोऽलोके सिद्धगतिर्नास्ति इत्थं च कथयितुं न शक्यते । यतो धर्मास्तिकायं
विना लोकाकाशस्य व्यवस्थैव न संपद्यते । धर्मास्तिकायविशिष्टाकाश एव हि लोकाकाश-
स्तस्य च प्रतिहेतुत्वे घटादावपि दण्डविशिष्टाकाशात्वेनैव हेतुतास्यादिति न किञ्चिदेतत् ।
अस्यच अन्यस्वभावत्वेन कल्पिताकाशस्वभावान्तकल्पना चायुक्ता । तस्माद्गतिनिवधनोधर्मा-
स्तिकायोऽवश्यमेव प्रमाणयितव्यः । तदुक्तं “चलणसहावो धम्मो पुग्गलजीवाण” इत्यादि
समयप्रमाणमप्यत्र ध्येयम् ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—स्वभावसे ऊर्ध्वगामी सिद्ध जीवका यदि धर्मास्तिकाय द्रव्यके प्रतिबन्ध विना अनन्त अर्थात् अतट (अपार) तथा लोह और अलोक दोनोंमें व्याप्त ऐसे आकाशमें परिभ्रमण जो है, सो नहीं रुक सकता है । और यदि गमनमे धर्मास्तिकाय द्रव्यका प्रतिबन्धकत्व न हो तो एक समयमें लोकके अग्रभागमे जानेवाले और जैसे लोकमे गमन किया उसी प्रकार अलोकमें गमन करनेवाले तथा स्वभावसे ऊर्ध्वगमन-कारक ऐसे सिद्धोंके ऊर्ध्वगमनरूप जो गमन है, उसकी निवृत्ति (रहितता) अतक भी न हो क्योंकि—अनन्तलोकाशप्रमाण अलोकाकाश है, अर्थात् लोकसे अनन्त गुणा अलोक है । “लोकाकाश गतिमे हेतु है, इसलिये अलोकमे सिद्धोंका गमन नहीं है” ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि—धर्मास्तिकायके विना लोकाकाशकी व्यवस्था ही नहीं हो सकती है । क्योंकि—धर्मास्तिकायविशिष्ट (सहित) जो आकाश है, वह ही लोकाकाश है, और उस लोकाकाशको ही यदि गमनका कारण मानें तो घट आदिमें भी दण्डविशिष्ट जो आकाश है, वह हेतु हो जावे । इसलिये लोकाकाशको गतिमे कारण मानना यह पक्ष अकिंचित्कर (अयुक्त) है । और भी अन्यस्वभावयुक्तत्वरूपसे जो कल्पित आकाश है, उसके अन्य स्वभावकी कल्पना करना यह भी अयुक्त है, अर्थात् गतिहेतुता धर्मद्रव्यका स्वभाव है, उस गतिहेतुतासे युक्त जो आकाश उसकी लोकाकाश यह कल्पना की गई है, तब उस कल्पित लोकाकाशमें धर्मद्रव्यके स्वभावकी कल्पना अयोग्य ही है । इसलिये धर्मास्तिकायको गतिका हेतु अवश्य प्रमाणमें लाना चाहिये अर्थात् मानना चाहिये । और “धर्मद्रव्य पुद्गल और जीवोंको गमन करानेरूप स्वभावका धारक है” इत्यादि कहा हुआ जो सिद्धान्तका प्रमाण है, उसका भी यहा विचार करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ धर्मास्तिकाये प्रमाणमाह ।

अन अधर्मास्तिकायद्रव्यके विषयमें प्रमाण कहते हैं ।

सूत्रम् । स्थितिहेतुर्यदा धर्मो नोच्यते कापि चेद्भयोः ।

तदा नित्या स्थितिः स्थाने कुत्रापि न गतिर्भवेत् ॥ ७ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—अब यदि जीव पुद्गलकी कही भी स्थितिका हेतुभूत अधर्म द्रव्य नहीं कहोगे तो पुद्गल और जीवकी नित्य स्थिति ही होगी कही भी उनकी गति नहीं हो सकेगी ॥ ७ ॥

व्याख्या । यदा द्वयोः पुद्गलजीवयोः कापि स्थितिहेतुवस्थानकारणमधर्मास्तिकायो नोच्यते तदा स्थाने सर्वत्र स्थाने नियता नियामका स्थितिरेव स्यात्, न कुत्रापि गतिर्भवेदिति । यदि च सर्वजीवपुद्गलसाधारणस्थितिहेतुत्वमधर्मद्रव्यं न कथ्यते किन्तु धर्मा

स्तिकायाभावप्रयुक्तगत्यभावेनालोके स्थित्यभाव एवं निगदतामलोकाकाशेऽपि कश्चिद्विदपि स्थानके गतिं विना पुद्गलजीवद्रव्ययोर्नित्यस्थितिः प्रापयितव्या न्यायः । इत्यभिव द्वितीयं गतिस्थितिस्वातन्त्र्यपर्यायरूपं चान्ति । यथा गुरुत्वलघुत्वयोरेकस्यैकाभावरूपाद्विशेषप्रादुक्-प्रमाणात् । तन्मात्तयेति । ततः कार्यभेदोपेक्षाकारणद्रव्यभेदोऽवश्यं सन्तव्यः । धर्मास्तिका-याभावप्रयुक्तस्थित्यभावेन गतिभावरुथनाद्धर्मास्तिकायस्याप्यपलापो भवेत्, निरन्तरगति-स्वभावेन वा द्रव्यमकर्तुं वा शक्यं नहि निरन्तरस्थितिस्वभावेनापि कथं क्रियते । तस्मान्द्वी-जिनवाणीनिष्कर्षमासाद्य धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायेति द्रव्याद्वयमसंकीर्णस्वभावेन भावनी-यमिति ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—यदि जीव तथा पुद्गलद्रव्यकी कहीं भी स्थितिका कारण अधर्म द्रव्य नहीं मानोगे तो सब जगह नियतरूपसे जीव पुद्गलकी स्थिति ही सिद्ध होगी कहीं भी गति न होगी तात्पर्य यह कि—यदि सब जीव तथा पुद्गलके प्रति साधारण रूपसे स्थितिका हेतुभूत अधर्मद्रव्यको नहीं कहते हो किन्तु धर्मास्तिकायके अभाव-प्रयुक्त जो गतिका अभाव है; उसीसे अलोकमें स्थितिका अभाव है; ऐसा कहते तो तो इस प्रकार कहनेवाले तुम्हारे मतमें अलोकाकाशमें भी किसी भी स्थानमें गतिके विना पुद्गल और जीवद्रव्यकी नित्य स्थिति प्राप्त करनी होगी यदि अलोकमें धर्म द्रव्य के न होनेसे गति नहीं होती ऐसा कहो तब तो अन्वय व्यतिरेकसे जैसे धर्म-द्रव्यको गतिमें कारणता है; ऐसे ही स्थितिमें अधर्मद्रव्यको कारण मानना पड़ेगा इन प्रकार गतिकी स्थिति एक स्वतन्त्र पर्याय है; और उसका कारण अधर्मद्रव्य है; न कि—गतिका अभाव स्थिति और धर्मका अभाव अधर्म है; जैसे विशेषसत्ताग्राहक प्रमाण होनेसे गुरुत्व लघुत्वमें एकका एक अभावरूप है; ऐसे ही धर्म अधर्म भी भावरूप हैं; क्योंकि—एक(धर्म)का कार्य गति; और दूसरे(अधर्म)का कार्य स्थिति है; तब कार्यके भेदसे अपेक्षाकारण द्रव्यका भी भेद अवश्य सन्तव्य है; और धर्मास्तिकायके अभावप्रयुक्तस्थितिके अभावसे गतिभावका कथन होनेसे धर्मास्तिकाय द्रव्यका भी अपलाप (अभाव) हो जायगा यदि यह कहो कि—निरन्तर गतिस्वभावसे द्रव्य (द्व्यणुकादिद्रव्य) कैसे कर सकते हैं; तो निरन्तर स्थितिशीलतासे भी द्रव्यकी सिद्धि कैसे कर सकते हैं; क्योंकि—जीव पुद्गलोमें गति क्रिया विना कुछ भी नहीं होसक्ता इस कारणसे श्रीजिनदेवकी वाणीसे तत्त्वको ग्रहण करके धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय यह दोनों द्रव्य असंकीर्ण(भिन्नभिन्न)स्वभाव हैं; ऐसी भावना अवश्य करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथाकाशद्रव्यस्य लक्षणमाविष्करोति ।

अब आकाशद्रव्यके लक्षणको प्रकट करते हैं ।

सूत्रम् । यो दत्ते सर्वद्रव्याणां साधारणावगाहनम् ।

लोकालोकप्रकारेण द्रव्याकाशः स उच्यते ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—जो साधारणरूपसे सन द्रव्योंको अवगाहन अर्थात् रहनेको देता है, वह आकाशद्रव्य है, और लोक तथा अलोक इन दो प्रकारोंसे कहा जाता है॥८॥

व्याख्या । य आकाशास्तिकाय सर्वद्रव्याणा साधारणावगाहन सामान्यावकाश दत्ते स द्रव्याकाशो लोकालोकप्रकारेणोच्यते इति । यत् सर्वद्रव्याणा य सर्वदा साधारणा वकाशदाता सोऽनुगत एक आकाशास्तिकाय कथित सर्वाधार इति । यथा पक्षिणा गगनमिवेति व्यवहारनयदेशभेदेन भवेत् । तद्देशीयानुगत आकाश एव पर्यवसन्न स्यात् । तथा च सत्तद्देशोर्ध्वभागावच्छिन्नमूर्त्ताभावादिना तद्व्यवहारोपपत्तिरिति वर्धमानाद्युक्त नान वयम् । तस्याभावादिनिष्ठत्वेनानुभूयमानद्रव्याधाराशालापप्रसगात्, तावद्वतिसधानेऽपि लोकव्यवहारेणाकाशदेशप्रतिसधयोक्तव्यवहाराच्च । आकाशस्तु लोकाकाशादिभेदेन द्विधोक्त । यत् सूत्रम् “दुविहे आगासे षण्त्ते लोयागासेय अलोयागासेय” एतद्वेदद्वयम् ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—जो सन द्रव्योंको साधारण (सामान्य) रूपसे अवकाश देता है, वह आकाशास्तिकाय लोक और अलोक इन भेदोंसे आकाशद्रव्य कहलाता है । क्योंकि—जो सन द्रव्योंको सदा अवकाश देनेवाला है, वह अवकाशदातृत्वरूप एक ही आकाशास्तिकाय सर्वाधार कहा गया है । जैसे कि—पक्षियोंका आधार गगन (आकाश) है, यद्यपि यह व्यवहार नयदेशभेदसे होता है, परन्तु उन २ देशोंमें अनुगत जो एक आकाश है, उसीकी इस व्यवहारसे सिद्धि होती है । और उन उन प्रदेशोंमें ऊर्ध्वदेशावच्छेदसे मूर्त्तिमत्ताके अभावआदिसे अत्रकाशदातृत्वरूपसे आकाशके व्यवहारकी उपपत्ति होती है, ऐसा जो वर्धमानआदिका कथन है, सो अयुक्त वा दुष्ट नहीं है । क्योंकि—आकाश अभाव (शून्य) रूपताकी प्रतीति है, तथा सर्वदा अनुभूयमान जो सपूर्ण द्रव्योंकी—आधारताका अंश है, उसके अपलाप (नाश) होनेका प्रसंग है, और जहातक गतिका सधान है, वहातक भी लोकव्यवहारसे आकाशदेशप्रतिसधयोक्त व्यवहार है । और वह आकाश लोकाकाश, और अलोकाकाश इन भेदोंसे दो प्रकारका कहा गया है क्योंकि—“आकाश दो प्रकारके कहे गये हैं, एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश” ऐसा सूत्र है ॥ ८ ॥

अयेनमेवार्थ मीमांसयन्नाह ।

अत्र इसी अर्थका विचार करते हुये कहते हैं ।

सूत्रम् । धर्मादिसयुतो लोको ऽलोकस्तेषा वियोगतः ।

निरवधिः स्वय तस्यावधित्व तु निरर्थकम् ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—धर्मादि द्रव्योंसहित जो आकाश है, वह लोकाकाश है, और जो धर्मआदि द्रव्योंसे शून्य है, वह अलोकाकाश है । और वह स्वय अवधिरहित है, उसकी अपरिधा मानना निरर्थक ही है ॥ ९ ॥

व्याख्या । धर्मास्तिकायादिसंयुक्त आकाशो लोकस्तदितरस्त्वलोकः । स च पुनर्निरव-
धिरपारोऽलोकस्तस्यालोकस्य स्वयमात्मना अवधित्वमन्तर्गडु इति । कश्चिदाहात्र यथा लो-
कस्य पार्श्वेऽलोकस्यापि पारोऽस्ति तथैवाग्रेऽपि द्वितीयतटे पारो भविष्यतीति ब्रुवाणमुत्तरयति ।
लोकस्तु भावरूपोऽस्ति तस्यावधित्वं घटते परन्त्वग्रेऽलोकस्य केवलमभावात्मकस्यावधित्वं
कथं कल्पते शशशृङ्गवत् । यथा असद्विद्यमानं शशशृङ्गं न कुत्रापि निरीक्ष्यमाणं विद्यमानव-
दाभाति, तथैवैतस्याप्यलोकस्य अविद्यमानस्यावधित्वं न घटामाटीकते । अथ च भावरूपा-
त्मकत्वमङ्गीक्रियते तदा तु पडतिरिक्तमन्यद्रव्यं नास्तीति व्यवहारादाकाशदेशरूपस्य तु तद-
न्तत्वं कथयतां बुद्ध्याघातो जायते । तस्मादलोकाकाशस्त्वनन्तमेव मन्तव्य इति । आकाशो
यथा सान्तः शंसितो धर्माधर्मानुभावात् तस्य भावस्तदभावात्तदभावः । अलोकाकाशोऽपि
सान्तो धर्माधर्मानुभावी भवन्नतिरिक्तद्रव्यत्वमापत्स्यते । तस्माद्यथोक्तमेव न्याय्यम् । यावता
आकाशेन धर्माधर्मौ व्याप्य स्थितौ तावता तत्परिणामशालिना आकाशेनापि भवितव्यम् ।
तयोरभावात्तस्याप्यभावः सुपरिशीलनीय इति ॥ ९ ॥

व्याख्यानार्थः—धर्मास्तिकायादि द्रव्योंसे संयुक्त जो आकाश है; वह लोकाकाश है;
और उन द्रव्योंसे जो असंयुक्त है; वह अलोकाकाश है; और वह अलोक निरवधि अर्थात्
अपार (अन्तरहित) है; क्योंकि—उस अलोकके अपने स्वरूपसे अवधित्व कहना यह
निरर्थक है; अर्थात् अलोकाकाश अवधिसहित है; यह कहना व्यर्थ है । अब यहां कोई
शंका करंता है; कि—“जैसे लोकाकाशके पासमें अलोकाकाशका पार होता है; ऐसे ही
आगे भी अर्थात् दूसरे तटमें भी उसका पार अवश्य होगा” ? इस प्रकारकी शंका
करनेवालेको उत्तर देते हुये कहते हैं; कि—लोकाकाश तो धर्मादिद्रव्योंका अधिकरण
होनेसे भावरूप है; इसवास्ते उसका तो अन्त घटित होता है; परन्तु उसके
आगे धर्मादि द्रव्योंसे शून्य केवल अभावस्वरूप जो सुस्तेके सींगके समान अलोकाकाश
है; उसके अवधिसहितता कैसे कल्पित हो सकती है । जैसे अविद्यमान जो सुस्तेका
सींग है; उसको देखो तो वह कहीं भी विद्यमान पदार्थके समान देखनेमें नहीं
आता है; ऐसे ही अविद्यमान जो अलोक है; इसके भी मर्यादाका कथन करना है; सो
संगत नहीं है । और यदि इस अलोकाकाशको भावस्वरूप अङ्गीकार करो तो छ
द्रव्यसे अतिरिक्त (सिवाय) कोई अन्य द्रव्य नहीं है; इस व्यवहारसे आकाशदेशस्वरूप
जो अलोकाकाश है; उसके सान्तता कहनेवालोंकी बुद्धिका घात होता है । इसलिये
अलोकाकाशको तो अनन्त (अपार) ही मानना चाहिये । आकाश अर्थात् लोकाका-
शको जो सान्त कहा है; सो धर्म और अधर्मद्रव्यकी सामर्थ्यसे कहा गया है; और
इसीसे वह भावरूप है; और धर्मादिके अभावसे अलोकाकाश अभावरूप है । यदि
अलोकाकाशको भी सान्त मानोगे तो वह अलोकाकाश धर्म अधर्मका अनुभावी
(सामर्थ्ययुक्त) होताहुआ छ द्रव्योंसे भिन्न द्रव्यताको प्राप्त हो जायगा । इसलिये

अलोकाकाशके विषयमें पूर्णकथित जो अग्रधिरहितता (अनन्तपना) है, सो ही युक्ति-युक्त है । तात्पर्य यह है, कि-जितने आकाशदेशमें धर्म अधर्म व्याप्त होकर स्थित है, उतने ही परिमाणमहित आकाशको भी होना चाहिये और जहां धर्म अधर्म इन दोनोंका अभाव है, वहां आकाशका भी अभाव ही समझना चाहिये अर्थात् अलोकाकाश अनन्त है, न कि सान्त ॥ ९ ॥

अथ कालभेदानाह ।

अत्र कालके भेदोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । वर्त्तनालक्षणः कालः पर्यायद्रव्यमिष्यते ।

द्रव्यभेदात्तदानन्त्य सूत्रे ख्यातं सविस्तरम् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—वर्त्तनालक्षण जो काल है, वह पर्यायद्रव्य माना गया है, और द्रव्यके भेदसे उस कालका अनन्तपना उत्तराध्ययनसूत्रमें विस्तारसे कहा गया है ॥ १० ॥

व्याख्या । कालस्तु परमार्थतो द्रव्य नास्तीति शङ्कमान निराकुरुते । वर्त्तनेति—सर्वेषां द्रव्याणां वर्त्तनालक्षणो नवीनजीर्णकरणलक्षण काल पर्यायद्रव्य इष्यते । तत्कालपर्याये-ष्वनादिकालीनद्रव्योपचारमनुसृत्य कालद्रव्यमुच्यते । अत एव पर्यायेण द्रव्यभेदात्तस्य कालद्रव्यस्यानन्त्यम् । अनन्तकालद्रव्यभावन सूत्रे उत्तराध्ययने सविस्तर रयातम्, तथा च तत्सूत्रम्—“धन्मो अधन्मो आगास द्ध्वमिक्किमाहिय । अणताणि य द्ध्वानि कालो पुग्गल जतवो” । १ । एतदुपजीव्यान्यत्राप्युक्तम् । धर्माधर्माकाशादेकैकमत पर त्रिकमन्तन्तमिति । ततो जीवद्रव्यमप्यनन्त तस्य च वर्त्तमानपर्यायस्यार्थ कालद्रव्यमथा नन्तमित्युच्यमाणम् । विस्तरस्तु ततोऽवधारणीय ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—परमार्थमें कालद्रव्य नहीं है? ऐसी शंका करनेवालेको “वर्त्तना” इत्यादि सूत्रसे निराकृत करते हैं । सत्र द्रव्योंका वर्त्तनालक्षण काल है, अर्थात् द्रव्योंको नवीन (नये) और जीर्ण (पुराने) करनेवाला जो है, वही काल है, और यह पर्यायद्रव्य माना गया है । उन कालके पर्यायोंमें अनादि कालसे द्रव्यके औपचरिक व्यवहारका अनुसरण करके “कालद्रव्य” यह कहा जाता है । इसीलिये पर्यायके द्वारा द्रव्यका भेद होनेसे उस कालद्रव्यकी भी अनन्तता है । कालद्रव्य अनन्त है, इसकी सिद्धि उत्तराध्ययनसूत्रमें विस्तारसहित कही गई है । और उस उत्तराध्ययनका सूत्र यह है, “धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह एक एक कहेगये हैं, और काल पुद्गल तथा जीव यह अन्तके तीनों द्रव्य अनन्त हैं ॥ १ ॥” इसी सूत्रके आधारसे अन्यत्र भी कहा है, कि—धर्म, अधर्म, तथा आकाश यह तीनों एक एक हैं, और इनसे आगेके तीनों द्रव्य अर्थात् काल, पुद्गल और जीव यह अनन्त हैं । इस हेतुसे जीवद्रव्य भी अनन्त है, और उस अनन्त जीव द्रव्यके वर्त्तमान जो अनन्त पर्याय हैं, उनकेलिये कालद्रव्य भी अनन्त है, ऐसा आगममें

कहा है । और इस कालद्रव्यका विस्तारसे वर्णन भी उन्हीं आगमोंसे अवधारण करना चाहिये ॥ १० ॥

अथ कण्ठतोऽपि सूत्रे जीवाजीवाभ्यामतीतकालः कथितोऽतस्तमेव तथैव सूत्रयन्नाह ।

अब कंठसे भी सूत्रमें जीव और अजीवसे अतीत काल कहागया है; इसलिये उस कालको उसी प्रकार सूत्रित करते हुये कहते हैं ।

सूत्रम् । जीवाजीवमयः कालः समये न पृथक्कृतः ।

इत्येके संगिरन्तेऽत्र धारयन्तः शुभां मतिम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—कितने ही शुभ बुद्धिको धारण करते हुये आचार्य इस विषयमें यह कहते हैं; कि—सिद्धान्तमें कालको जीव, अजीवरूप ही माना गया है; जुदा नहीं किया गया ॥ ११ ॥

व्याख्या । “समये सिद्धान्ते जीवाजीवमयो जीवाजीवरूपः कालः कथितः पृथग् भिन्न-स्ताभ्यां न कृतस्ततो भिन्नः कथं कथ्यते” इति पूर्वोक्तमेक आचार्याः संगिरन्ते भाषन्ते अत्र । किं कुर्वन्तः शुभां विशुद्धां मतिं बुद्धिं धारयन्तः शुद्धबुद्धिमतां सुधाराणां यथोक्तश्री-जिनप्रणीततत्त्ववेत्तृणां प्राणिनां सम्यक्त्वावाप्तिः सुलभा भवतीति ध्येयम् । तथा च गौत-मेन भद्रकपरिणामशालिना भगवान् पृष्ठः । तदाहेति भगवन् किमयं कालो जीवस्तथा जीवश्चेति प्रश्ने भगवान्नाह । गौतम जीवोऽपि कालः, अजीवोऽपि कालः तदुभयं काल एव जीवाजीवयोः कालेतोपजीव्योपजीवकभावसंबन्धः संतिष्ठत इति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—समय अर्थात् जिनसिद्धान्तमें जीव तथा अजीवमय अर्थात् जीव और अजीवरूप काल कहागया है; तात्पर्य यह कि—कालको जीव और अजीव इन दोनोंसे भिन्न नहीं किया इस कारण इस कालद्रव्यको तुम जीव अजीवसे भिन्न कैसे करते हो अर्थात् जीव अजीवसे जुदा कालद्रव्य क्यों मानते हो । इस प्रकार यह पूर्वोक्त सिद्धान्त विशुद्ध वृद्धिके धारक एक आचार्य कहते हैं । इस कथनसे शुद्ध बुद्धिके धारक उत्तम धारणावाले और श्रीजिनेन्द्र देवने जैसे कहे वैसे ही तत्त्वोंके ज्ञाता भव्यजीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्ति सुलभ होती है; यह विचार करना चाहिये । सो ही दिखाते हैं; कि—भद्र परिणामोंके धारक गौतमस्वामीने एक समय श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा कि—हे भगवन् ! यह काल जीव है; वा अजीव है ? इस प्रकार प्रश्न करनेपर श्रीभगवान् बोले कि—हे गौतम ! जीव भी काल है; और अजीव भी काल है; इसलिये जीव तथा अजीव दोनों काल ही हैं; क्योंकि—जीव तथा अजीवका कालके साथ उपजीव्यउपजीवकभाव सम्बन्ध पूर्णरूपसे स्थित है । ऐसा भगवान्का वचन है; इसलिये यह काल जीव अजीवरूप ही है, इनसे भिन्न नहीं ॥ ११ ॥

पुनस्तदेवाह ।

पुन उसी कालद्रव्यके विषयमे कहते हैं ।

सूत्रम् । आहुरन्ये भवक्रस्य विश्वेचारेण या स्थितिः ।

कालोऽपेक्षाकारण च द्रव्यमित्यपि पञ्चमे ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—और अन्य आचार्य कहते हैं, कि—ससारमे ज्योतिश्चक्रके सचारसे जो स्थिति है, वह काल है, और कितनेही कालको अपेक्षाकारण कहते हैं, तथा कितने ही कालको द्रव्य कहते हैं ॥ १२ ॥

व्याख्या । अन्ये आचार्या एव कथितवन्तो भवक्रस्य ज्योतिश्चक्रस्य चारेण या विश्वे स्थितिरवस्थाविशेष स काल इत्यभिधीयते । तथा च वर्तुलाकार ज्योतिश्चक्र तस्य चारेण परत्वापरत्वनवपुराणादिभावस्थितिहेतु तस्यापेक्षाकारण मनुष्यलोके दार्थस्य सूर्यक्रियोपना यकद्रव्यचारक्षेत्रप्रमाणमेवोपकल्पन घटते । तत एतादृश कालद्रव्य कथ्यते । तत एन भगवत्यङ्गे “कर्ण भते दन्ना पन्नत्ता । गोयमादन्न पणत्ता । त जहा धमच्छिकाए जाव अद्धासमये ।” एतद्वचनमस्ति तस्य निरूपचरितव्याख्यान घटते । तथा च वर्तनापर्यायस्य साधारणापेक्षा न कथ्यते तदा तु गतिस्थित्यवगाहनापेक्षासाधारणकारणत्वेन धर्माधर्मास्ति-कायौ सिद्धौ जातौ तत्राप्यनाश्वास आयाति । अथ च “अर्थयुक्त्या ग्राह्यमस्ति तस्मात्केनल माह्वयैव ग्राह्यास्ति परन्तु कथ सतोपवृत्ती भवेताम् ॥ १२ ॥

व्याख्यानार्थः—अन्य आचार्योंने इस प्रकार निरूपण किया है, कि—ज्योतिश्चक्रके सचारसे जो ससारमें स्थिति अर्थात् अवस्थाविशेष है, वही काल इस प्रकार कहा जाता है । सो ही स्पष्ट करके दिखाते हैं, कि—गोलाकार जो ज्योतिश्चक्र है, उसके सचारसे परत्व अपरत्व तथा नवीन पुराणआदिरूप जो पदार्थोंकी स्थिति है, उसका हेतु अर्थात् अपेक्षा कारण काल है । क्योंकि—मनुष्यलोकम सूर्यकी जो गतिरूपा क्रिया है, वही पदार्थोंकी उपनायिका है, अर्थात् उन २ पर्यायोंमें पदार्थोंकी प्राप्त करनेवाली सूर्यकी क्रिया है, और यह कल्पना जहातक द्रव्योंका सचार क्षेत्र है, अर्थात् जहातक द्रव्योंका सचरण होता है, वहातक कालद्रव्यकी कल्पना घटित होती है । अत एव श्रीभगवत्तागसूत्रमें भी यह वचन है । “कर्ण भते दन्नापन्नत्ता गोयमादन्न पणत्ता त जहा धमच्छिकाए जाव अद्धासमये” अर्थात् हे भगवन् ! द्रव्य के हैं, तन स्वामीने कहा कि—हे गौतम ! ६ द्रव्य हैं, वर जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, जीव पुटल और काल । उसका यह निरूपचरित व्याख्यान सगत होता है । और यदि वर्तनापर्यायके साधारण अपेक्षा न करें तो गति और स्थितिके अवगाहनमें अपेक्षारूप साधारण कारणतासे धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय सिद्ध होजाय परन्तु वहा भी अनिश्वास होता है, और यह बात अर्थयुक्तिमें ग्राह्य है । उससे केनल आशासे ही ग्रहण करने योग्य है, परन्तु सतोप ओर धर्म कैसे हों ॥ १२ ॥

सूत्रम् । एतन्मतद्वयं धर्मसंग्रहिण्यां च भाष्यके ।

अनपेक्षितद्रव्यार्थिकमते तस्य योजना ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—कालके विषयमें यह दोनों मत धर्मसंग्रहणीमे तथा भाष्यमें प्रतिपादित है; और अनपेक्षित द्रव्यार्थिकनयके मतमें इसकी योजना होती है ॥ १३ ॥

व्याख्या । एतन्मतद्वयं धर्मसंग्रहिण्यां श्रीहरिभद्रसूरिणा व्याख्यातम् । तथा च तद्वाथा “जं वत्तणाई रूवो कालो दव्वस्स चैव पज्जाओ । सो चैव तवो धम्मो कालस्सवजस्स जोण लोएत्ति । १ ।” एवमेतन्मतद्वयमलं श्रीहरिभद्रसूरिसंमतधर्मसंग्रहिणीसूत्रोक्तं ज्ञेयम् । तथा च एतन्मतद्वयं भाष्यके श्रीतत्त्वार्थभाष्येऽपि वाचकैस्तथैव प्रणीतमस्ति । तथा च तद्वन्थः— “कालश्चेत्येके” इति वचनाद्वितीयमतं श्रीतत्त्वार्थव्याख्याने समर्थितम् । पुनस्तस्य कालस्यानपेक्षितद्रव्यार्थिकनयमते योजना युक्तिश्च भवति । तथा हि स्थूललोकव्यवहारसिद्धोऽयं कालोऽपेक्षारहितश्च ज्ञेयः । अन्यथा वर्तनापेक्षाकारणत्वेन यत्कालद्रव्यं साधितं तत्पूर्वापरादिव्यवहारविलक्षणपरत्वापरत्वादिनियामकत्वेन दिग्द्रव्यमपि सिद्धं स्यादिति । अथ च “आकाशमवगाहाय तदनन्या दिगन्यथा । तावप्येवमनुच्छेदात्ताभ्यां चान्यदुदाहृतम् । १ ।” इति सिद्धसेनदिवाकरकृतनिश्चयद्वात्रिशिकार्थं विमृश्याकाशादेव दिक्कार्यं प्रसिद्धयतीति । इत्थमङ्गीकुर्वतां कालद्रव्यं कार्यमपि कथंचित्त एवोपपत्तिः स्यात् । तस्मात्कालश्चेत्येके इति सूत्रमनपेक्षितद्रव्यार्थिकनयेनैवेति सूक्ष्मदृष्ट्या विभावनीयम् ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—यह दोनों मत श्रीहरिभद्रसूरीके मान्य जो धर्मसंग्रहणी सूत्र है; उसमें कहे हुवे जानने । उस धर्मसंग्रहणीसूत्रकी गाथा यह है; “जं” वत्तणाई रूवो कालो दव्वस्स चैव पज्जाओ । सो चैव तवो धम्मो कालस्सव जस्स जोण लोएत्ति । १ । और यह ही दोनों मत श्रीतत्त्वार्थाधिगमभाष्यमे श्रीसिद्धसेनजीने भी इसी प्रकार कहे है । और तत्त्वार्थसूत्र यह है “कालश्चेत्येके” (काल भी द्रव्य है; ऐसा एक आचार्य कहते हैं) इस सूत्रमें एके इस पदमें दूसरा मत इस सूत्रके व्याख्यानमें समर्थित किया गया है । और उस कालकी योजना अनपेक्षित द्रव्यार्थिकनयके मतमे होती है । सो ही दिखाते हैं; कि—यह काल स्थूल (मोटा) जो लोकव्यवहार है; उससे सिद्ध है; और अपेक्षारहित है । यदि ऐसा न हो तो जैसे वर्तनाका अपेक्षारूप कारण होनेसे काल द्रव्यको सिद्ध किया उसी प्रकार काल जिस पूर्वापरको साधता है; उससे विलक्षण (भिन्न) परत्व अपरत्वआदि व्यवहारका नियामक होनेसे दिशानामक द्रव्य भी सिद्ध हो जाय । और “आकाश अवगाहन होनेके लिये है; और दिशा उस आकाशसे भिन्न नहीं है; यदि ऐसा न हो और काल तथा आकाशसे भिन्न दिशारूप द्रव्यका उदाहरण दें तो काल और आकाश इन दोनोंके अनुच्छेदसे अर्थात् काल भी रहेगा आकाश भी रहेगा और यह दिशा एक और हो जायगी ऐसे पृथक् द्रव्य सिद्ध होगा । इस

प्रकार सिद्धसेनजीकृत निश्चयद्वात्रिशिकाके अर्थको विचारके आकाशसे ही दिशाका काम सिद्ध होता है, ऐसा जानना । और इस प्रकारके सिद्धान्तको स्वीकार करनेवालोंके कालद्रव्य कथंचित् कार्य ही है, अर्थात् मानना ही चाहिये ऐसा विचार होगा और इसीसे परत्व अपरत्वकी सिद्धि होगी । इसलिये “कालश्चेत्येके” यह सूत्र अनपेक्षित द्रव्यार्थिक नयसे ही कहागया है, इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टिसे विचारलेना चाहिये ॥ १३ ॥

अथ कालद्रव्याधिकार दिगम्बरप्रक्रिययोपन्यसनाह ।

अथ कालद्रव्यका अधिकार दिगम्बरमतकी प्रक्रियासे उपन्यसित करते हुये कहते हैं ।

सूत्रम् । मन्दगत्याप्यणुर्यावत्प्रदेशे नभसः स्थितौ ।

याति तत्समयस्यैव स्थानं कालाणुरूप्यते ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—आकाशके प्रदेशके स्थानमें मन्दगतिसे परमाणु जितने समयमें गमन करता है, उस समय अर्थात् उस समयप्रमाण जो काल है, उसके स्थानमें कालाणु यह व्यवहार होता है ॥ १४ ॥

व्याख्या । मन्दगत्या मन्दगमनेनाणु परमाणुर्नभस आकाशस्य प्रदेशे स्थितौ स्थाने यावदिति यावता कालेन गच्छति तत्समयस्य तत्कालपरिमितस्य कालस्य स्थानं कालाणुरिति व्यवहारे जायत इति । एकस्य नभस स्थाने मन्दगतिरणुर्यावता कालेन सञ्चरति तत्पर्यायेण समय उच्यते तदनुरूपश्च यः स काल पर्यायसमयस्य भाजनं कालाणुरिति । स चैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैक एव कुर्वता समस्तलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा कालाणवो जायन्त इति । इत्थं कश्चिदपरो वदन् जैनाभासो दिगम्बर एवास्ति । उक्तं च द्रव्यसङ्गहे “रयणाण रासी इव ते कालाणु असत्पञ्चाणि” इति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—आकाशके प्रदेश स्थानमें जितने कालमें मन्दगतिसे परमाणु जाता है, उतने समयपरिमाण जो काल है, उस कालके स्थानमें “कालाणु” यह व्यवहार होता है । और एक आकाशके स्थानमें मन्दगमनका धारक परमाणु जितने कालमें जाता है, उन्ही कालको पर्यायरूपसे समय कहते हैं । और समयरूप जो काल है, वह पर्यायरूप समयका भाजन कालाणु है । और वह कालाणु एक आकाशके प्रदेशमें एक है, एक आकाश प्रदेशमें एक है, इस प्रकार जब करते हैं, तब लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंके समान कालाणु होते हैं । अर्थात् लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं, और एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु है, इस प्रकार असंख्यात ही कालाणु होते हैं । सो ही द्रव्य सग्रहमें कहा है, कि—“स्मोकी रागिनी तरह वह कालाणु असंख्यात द्रव्य है ॥ १४ ॥

इति दिगम्बरमतगनुसृत्य योगशास्त्राभ्यासनापरोक्षि ब्रह्मिदेतद्वचनमुदाहराह ।

इस दिगम्बरमतका अनुसरण करके योगशास्त्रके अभ्याससे अन्य किसीने भी यह अग्रिम सूत्रोक्तार्थका उदाहरण दिया है ।

सूत्रम् । योगशास्त्रान्तरश्लोके मतमेतदपि श्रुतम् ।

लोकप्रदेशोऽत्यणवो भिन्ना भिन्नास्तदग्रता ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—योगशास्त्रके अन्तर्गत श्लोकमें हमने यह भी सुना है; कि—लोकाकाश प्रदेशमें जो भिन्न भिन्न कालाणु स्थित हैं; वह भिन्न स्थिति कालद्रव्यकी प्रधानता है ॥ १५ ॥

व्याख्या । योगशास्त्रान्तरश्लोक एतदपि मतं श्रुतं दिगम्बरमतेऽपि अन्तरश्लोकव्याख्यानमयीष्टमस्ति । यतो-लोकप्रदेशेऽपि अणवः भिन्ना भिन्नाः अणवस्तन्मुख्यत्वमापादयन्ति । लोकप्रदेशे भिन्ना भिन्नाः कालाणवस्त एव मुख्यकाल इति व्यवहारः । तथा च तत्पाठः “लोकाकाशप्रदेशस्थाः भिन्नाः कालाणवस्तु ये । भावानां परिवर्त्ताय मुख्यः कालः स उच्यते । १ । इति” अस्य भावार्थः—लोकाकाशे यावन्तः प्रदेशास्तेषु तिष्ठन्तीति लोकाकाशप्रदेशस्था भिन्नाः पृथक् पृथक् एकनभोदेशे एक इत्थं सर्वत्र सर्वे ये कालाणवः सन्ति त एव तावन्त कालाणव इति । तु पुनर्भावानां परिवर्त्ताय “नूतनं कृत्वा जीर्णं करोति जीर्णं कृत्वा नूतनं करोति” एवं भावानां परिवर्त्ताय वर्त्तते स एव मुख्यः सर्वप्रधानपदार्थः काल उच्यते इत्यर्थः ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—योगशास्त्रके अन्तर्गत श्लोकमें यह भी मत सुना है; और दिगम्बर-मतमें इस योगशास्त्रान्तरश्लोकका व्याख्यान भी इष्ट है; क्योंकि—योगशास्त्रमे यह श्रवण किया कि—लोकाकाशके प्रदेशमें जो पृथक् (भिन्न भिन्न) कालाणु स्थित हैं; वह कालाणु कालद्रव्यकी मुख्यताका प्रतिपादन करते हैं; अर्थात् लोकप्रदेशमें जो भिन्न भिन्न कालाणु हैं; वह ही मुख्यकाल है; ऐसा व्यवहार है । सो ही उस योगशास्त्रका पाठ है; कि—“लोकाकाश प्रदेशस्था भिन्नाः कालाणवस्तु ये । भावानां परिवर्त्ताय मुख्यः कालः स उच्यते । १ ।” भावार्थ इसका यह है; कि—लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं; उन सब प्रदेशोंमें जो रहते हैं; उनको लोकाकाशप्रदेशस्थ कहते हैं; लोककाशप्रदेशस्थ जो भिन्न भिन्न अर्थात् एक आकाशके प्रदेशमें एक इस प्रकार सब लोकाकाशके प्रदेशोंमें जो सब कालाणु हैं; वह उतने ही हैं; जितने कि—आकाशके प्रदेश है । और जो भावों(पदार्थों)के परिवर्त्तनके लिये अर्थात् पदार्थको नूतन (नया) करके जीर्ण (पुराना) करता है; और जीर्ण करके नूतन करता है” इस प्रकारका जो पदार्थोंका परिवर्त्तन है; उसकेलिये जो वर्त्तना है; वही मुख्य अर्थात् सर्वप्रधान पदार्थ काल कहागया है । इस प्रकार अर्थ है ॥ १५ ॥

पुनस्तदेव चर्चयन्नाह ।

फिर उसी कालकी चर्चा करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । प्रचयोर्ध्वत्वमेतस्य द्वयोः पर्याययोर्भवेत् ।

तिर्यक्प्रचयता नास्य प्रदेशत्वं विना कचित् ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—इस कालद्रव्यके पूर्वापर दो पर्यायोंमें ऊर्ध्वताप्रचय होता है; और प्रदेशरहितपनेसे तिर्यक्प्रचय कही भी नहीं होता ॥ १६ ॥

व्याख्या । एतस्य कालाणुद्रव्यस्य प्रचयोर्ध्वत्वमूर्ध्वताप्रचयो द्वयो पर्याययो पूर्वापरयोर्म-
वेत् । यतो यथा मृद्रव्यस्य स्थासकोशकुशूलादिपूर्वापरपर्याया सन्ति तथैतस्य कालस्य
समयावलीमुहूर्त्तादय पूर्वापरपर्याया, वर्तन्ते । परन्तु स्कन्धस्य प्रदेशसमुदाय कालस्य नास्ति
तस्माद्धर्मास्तिकायादीनामिव तिर्यक्प्रचयता न सम्भवति, एतावता तिर्यक्प्रचयत्व नास्ति । तेनैव
कालद्रव्यमस्तिकाय इति नोच्यते । परमाणुपुद्गलस्येव पुनस्तिर्यक्प्रचयता नास्ति । तस्मादुपचा-
रेणापि कालद्रव्यस्यास्तिकायता न कथनीया इति ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—इस कालद्रव्यके पूर्वापर दो पर्यायोंका ऊर्ध्वताप्रचय होता है, क्योंकि—
जैसे मृत्तिकारूप द्रव्यके स्थास कोश कुशूलआदि पूर्व अपर पर्याय होते हैं, ऐसे ही इस-
कालद्रव्यके भी समय, आवली, और मुहूर्त्तआदि पूर्व अपर पर्याय विद्यमान हैं । परन्तु
स्कन्धका प्रदेश समुदाय कालके नहीं है इसलिये धर्मास्तिकायआदिके समान तिर्यक्प्र-
चयताका सम्भन नहीं है, अर्थात् कालके तिर्यक्प्रचयपना नहीं है । इसी कारणसे इस
कालद्रव्यको अस्तिकाय नहीं कहते हैं । और परमाणु पुद्गलके तुल्य भी इसकी तिर्यक्प्र-
चयता नहीं है, इसलिये उपचारसे भी कालद्रव्यके तिर्यक्प्रचयता नहीं कहने योग्य है ॥ १६ ॥

अथैतद्दिगम्बरमतं धानेन दूषयन्नाह ।

अथ इस दिगम्बर मतको वादसे दूषित करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । एवमणुगतेर्लात्वा हेतु धर्माणवस्तदा ।

साधारणत्वमेकस्य समयस्कन्धतापि च ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकार कालाणुके माननेसे परमाणुके गमनका हेतु मानकर
धर्मद्रव्यके भी अणुसिद्ध हो जायगे और तब एक पदार्थकी साधारणताको ग्रहण करनेसे
समयस्कन्धता भी सिद्ध हो जायगी ॥ १७ ॥

व्याख्या । एवमनया रीत्या यद्यणुगते परमाणुगमनस्य हेतुमिति हेतुत्व लात्वा गृहीत्वा
धर्माणवो धर्मद्रव्याणयो भवन्ति । तदैकस्य कस्यचित्पदार्थस्य साधारणत्व गृहीत्वा समयस्क-
धता स्यादिति । अथ योजना—एव यदि मन्दाणुगतिकार्यहेतुपर्यायसमयभाजन द्रव्यसमयाणु
कल्पते तदा मन्दाणुगतिहेतुतामप्यणुगणभाजन धर्मास्तिकायोऽपि सिद्धयति । एवमधर्मास्तिका
यस्याप्यणुप्रसङ्गता स्यात् । अथ च सर्वसाधारणगतिहेतुतादिकं गृहीत्वा धर्मास्तिकायाऽप्येक-
न्यरूपं द्रव्यं कल्पते तदा देशप्रदेशादिकल्पनापि तस्य व्यवहारानुगोधेन पश्चात्कर्त्तव्या न्या ।
यदि च सर्वजीवाजीन्द्रव्यसाधारणवर्त्तनाहेतुतागुणं गृहीत्वा कालद्रव्यमपि लोकप्रमाण
कल्पयितुं युज्यते । धर्मास्तिकायादीनामधिकारेण साधारणगतिहेतुतागुणस्थितिरेवास्ति । अस्या
कल्पनायास्त्रभिनिवेश विना द्वितीय किमपि कारण नास्ति ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थः—इस रीतीसे परमाणुके गमनरूप हेतुताके ग्रहणमे धर्मद्रव्यके भी अणु
होसकते हैं, तब एक किसी पदार्थकी साधारणताके ग्रहणसे समयस्कन्धता भी सिद्ध हो
जायगी । अब इस श्लोककी योजना इस भाति है, कि—इस प्रकार यदि मन्दाणुगतिका

यका अर्थात् अणुवोंका मन्द गमनरूप जो कार्य है; उसका हेतु जो पर्यायसमयभाजन है; उसको द्रव्य समयाणु कल्पन करते हो तो मन्द अणुगतिमें हेतुतारूप गुणका धारक धर्मास्तिकाय द्रव्य भी सिद्ध होता है। और इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय द्रव्यको भी अणुका प्रसंग होय। अब कदाचित् यह कहो कि—सर्वसाधारणगति हेतुताआदिका ग्रहण कर धर्मास्तिकायआदि एक स्कंधरूप द्रव्यकी कल्पना करते हैं; तो देश प्रदेशआदिकी कल्पना भी उस स्कंधके व्यवहारके अनुरोधसे पीछे करनी पड़ेगी। और जो सब जीव अजीव द्रव्योंमें साधारण ऐसा जो वर्तना हेतुरूप गुण है; उस गुणको ग्रहण करके काल-द्रव्यकी भी लोकप्रमाण कल्पना करना युक्त है; ऐसा कहो तो धर्मास्तिकायआदि द्रव्यके अधिकारसे साधारणगति हेतुता(साधारण गतिरूप कार्यकी कारणता)आदिकी उपस्थिति है; उसीकी कल्पना हो सकती है। और इसपर भी कालद्रव्यकी कल्पना करनेवाले मतमें मन्द अणुकी वर्तनारूप हेतुकी ही उपस्थिति है। और इस कल्पनाका आग्रहके सिवाय दूसरा कोई भी कारण नहीं है ॥ १७ ॥

अथ पुनस्तदेव ।

अब फिर भी उसीका वर्णन करते हैं ।

सूत्रम् । अप्रदेशत्वमासूत्र्य यदि कालाणवस्तदा ।

पर्यायवचनोद्युक्तं सर्वमेवौपचारिकम् ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि कालको अप्रदेशी सूत्रित करके और उस कालके अणु कहते हो तब यह सब उपचारसे पर्यायवचनमें योजित होता है ॥ १८ ॥

व्याख्या । अप्रदेशत्वं प्रदेशरहितत्वं यद्यासूत्र्य प्रकल्पितस्य कालस्य अणवः कथ्यन्ते तदा पर्यायवचनेन योजितं क्रियते सर्वमप्युपचारेणदमिति । तथा च यदैवं कथयत सूत्रे कालोऽप्रदेशी कथितस्तस्यानुसारेण कालाणवः कथ्यन्ते तदा तु सर्वमपि जीवाजीवपर्यायरूपमेव काल इति कथितमस्ति तत्र विरोधो नास्ति द्रव्यकालोऽपि कथं कथ्यते । ततस्तदनुसारेण कालस्यापि द्रव्यत्ववचनम् । तथा लोकाकाशप्रदेशप्रमाणानुवचनादीनि सर्वाण्युपचारेण योज्यानि । मुख्यवृत्त्या स पर्यायरूपः काल एव सूत्रसंमतोऽस्ति । अत एव “कालश्चेत्येके” अत्रैकवचनेन सर्वसंमतत्वाभावः सूचयामासेति । तेनाप्यत्राप्रदेशत्वं प्रदेशाभावं सूत्रेणानुसृत्य तस्य कालस्याणुः कथ्यते तदा सर्वमप्येतदुपचारेण पर्यायवचनादिकेभ्यो युज्यमानं चारिमाणमश्वतीति । अथ च परमाणुमयो विभागोऽवयवस्तदितरस्तु प्रदेश इति वचनाद्योमाद्यपरिमाणजतया सप्रदेशं स्यान्न तु सावयवमित्याचक्षीथास्तथापि “दोषोल्लासवशप्रसृत्त्वरतमस्काण्डे तिदेदीपया, मासेनोऽद्यवप्रदेशविषयो भेदस्त्वया दीपकः । अस्माभिः परमाणुतां प्रकटतामानेप्यमाणं पुरो दुर्वारव्यभिसारदीर्घरसनं निध्याय विध्वंसितः । १। ननु पूर्वं तावदम्बरादेर्विभागाः परमाणुमया एव सन्ति न खलु कल्ललचूर्णपूर्णसमृद्धकवन्निरन्तरपुद्गलपूरिते लोके स

कश्चिन्नभसो विभागोऽस्ति यो निर्भर न निभरावभूवेष्णुभिस्तत्कथ न हेतुरेव व्यभिचरिष्णु रिति ॥ १८ ॥

व्याख्यार्थः—यदि कालको प्रदेशरहित निरूपण करके उस कल्पित कालके अणु कहते हो तब यह सब उपचारसे पर्याय वचनमे योजित किया जाता है । इसका स्पष्टीकरण करते हैं, कि—यदि आप यह कहो कि—सूत्रमे काल प्रदेशरहित कहा गया है, उसके अनुसार हम कालाणु कहते हैं, तब तो सपूर्ण जीव अजीव पर्यायरूप ही काल है, ऐसा कहा हुआ है, उसमे विरोध नहीं है । कालद्रव्य कैसे कहा जाता है ? इस शकाका समाधान यह है, कि—उसीके अनुसार कालको भी द्रव्य कहा गया है । और लोकाकाश प्रदेशोंके प्रमाण काल है, ऐसे जो वचन है, वह भी सब उपचारसे युक्त करने योग्य है । मुख्यवृत्तिसे अर्थात् मुख्य शक्तिसे तो वह पर्यायरूप काल है, सो ही सूत्रसमत है । अत एव “काल-श्चेत्येके” (काल भी द्रव्य है, ऐसा एक आचार्य कहते हैं) इस सूत्रमे “एके” इस पदसे यही सूचित किया है, कि—काल सर्वसमत द्रव्य नहीं है । इससे भी प्रदेशका अभाव सूत्रके अनुसार मानकर जो कालके अणुपनेका कथन करते हो तब भी यह सब उपचारसे पर्याय वचनभादिके साथ नियुज्यमान (युक्त हुआ) ही चारुता(रमणीयता)को प्राप्त होता है । यदि “परमाणुमयरूप जो विभाग है, सो अवयव है, और इससे भिन्न अर्थात् जो परमाणुरूप विभाग नहीं है, वह प्रदेश है” इस वचनसे आकाशादिक अपरिमाणज होनेसे सप्रदेश है, सावयव नहीं ऐसा कहो तो भी “दोषोंकी अधिकताके वशसे फैलते हुये अधिकारके समूहमें जो तुमने हमारे आगे अवयव ओर प्रदेशमे भेद है” इस कथनस्वरूप दीपक जाज्वल्यमान किया उस दीपकका हमने परमाणुताको प्रकटमे लाकर दुखसे निवारण करने योग्य व्यभिचार दोषरूपी सर्पको आगे रखके बुझा डाला अर्थात् परमाणुताकी सिद्धिसे यह भेद न ठहरेगा । पहले तो आकाशभादिके विभाग भी परमाणुरूप ही हैं, क्योंकि—काजलके चूर्णसे पूर्ण पिटारीके समान निरन्तर पुद्गलोंसे भरे हुए जगत्मे वह कोई भी आकाशका प्रदेश नहीं है, जो परमाणुवोंसे खूब न भरा हुआ हो इस कारण यह जो तुमने हेतु दिया है, वह व्यभिचारी कैसे नहीं ? अर्थात् है, ही ॥ १८ ॥

अथोपचारप्रकारमेव दर्शयन्नाह ।

अब उपचारका प्रकार ही दिखाते हुए यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । पर्यायेण च द्रव्यस्य रुपचारो यथोदितः ।

अप्रदेशत्वयोगेन तथाणुना विगोचरः ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थः—जैसे पर्यायरूपसे कालद्रव्यकी पर्यायरूपता उपचारसे कही है, ऐसे ही अप्रदेशत्वके योगसे कालकी अणुताके विषयके उपचार ही शरण है ॥ १९ ॥

व्याख्या । पडेव द्रव्याणीति संख्यापूरणार्थं यथा पर्यायेण पर्यायरूपेण द्रव्यस्य कालद्रव्यस्य एतावता पर्यायरूपकालद्रव्यविषये हि निश्चितं द्रव्यस्योपचारो यथा उदितः द्रव्यत्वोपचारकल्पना विहिता भगवत्यादिसूत्रविषये कृता तथैव सूत्रे कालद्रव्यस्याप्यप्रदेशत्वयोगेन कालाणूनां विगोचरो विषयता ज्ञेयः । एतावता सूत्रे कालस्यात्र प्रदेशता सूत्रिता तथैव कालाणुतापि सूत्रितास्ति तद्योजनया लोकाकाशप्रदेशस्थपुद्गलाणूनां विषय एव योगशास्त्रान्तरश्लोकेषु कालाणूनामुपचारो विहितः । मुख्यकाल इत्यस्य चानादिकालीनाप्रदेशत्वव्यवहारनियामकोपचारविषय इत्यर्थं अत एव मनुष्यक्षेत्रमात्रवृत्तिकालद्रव्यं ये वर्णयन्ति तेषामपि मनुष्यक्षेत्रावच्छिन्नाकाशादौ कालद्रव्योपचार एव शरणमिति दिङ्मात्रमेतत् ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः—जिनसिद्धान्तमें पद (६) ही द्रव्य है; इस संख्याकी पूर्तिकेलिये जैसे पर्यायरूपसे कालद्रव्यका अर्थात् पर्यायरूप कालद्रव्यके विषयमें द्रव्यत्वके उपचारकी कल्पना भगवतीआदि सूत्रमे की गई है; उसी प्रकार सूत्रमे कालद्रव्यके जो अप्रदेशताका योग है; उससे कालाणुके विषयमें भी उपचार जानना । तात्पर्य यह कि—सूत्रमें कालको प्रदेशरहित कहा है; उसी प्रकार कालाणुता भी सूत्रित की है; उसकी योजनासे लोकाकाशके प्रदेशमें स्थित पुद्गल परमाणुओंके विषयमें ही योगशास्त्रान्तर श्लोकोंमें कालाणुओंका उपचार किया गया है । और “लोकाकाशप्रदेशस्था” इत्यादि श्लोकमें जो कालके विषयमे “मुख्यः कालः स उच्यते” इस प्रकार मुख्य कालरूपसे व्यवहार किया है; इसका यह अभिप्राय है; कि—अनादि कालसे अप्रदेशत्व व्यवहारका नियामक उपचारकी विषयतासे वह काल मुख्य है । इसी कारणसे जो मनुष्य क्षेत्रमात्रवृत्ति अर्थात् मनुष्य क्षेत्रमात्रमे रहनेवाला कालद्रव्य है; ऐसा जो कहते हैं; उनको भी मनुष्यक्षेत्रावच्छिन्न जो आकाशादि है; उनमें कालद्रव्यका उपचार ही शरण है । यह दिग्दर्शनमात्र हमने कथन किया है ॥ १९ ॥

अथ पुद्गलजीवयोः संक्षेपेण स्वरूपमाह ।

अव पुद्गल तथा जीवद्रव्यका स्वरूप संक्षेपसे कहते हैं ।

सूत्रम् । वर्णादिकगुणैर्भेदो ज्ञायते पुद्गलस्य च ।

निसर्गचेतनायुक्तो जीवोरूपी ह्यवेदकः ॥ २० ॥

सूत्रभावार्थः—वर्ण गंध तथा रसादि गुणोंसे पुद्गलद्रव्यका धर्मास्तिकायआदिसे भेद जाना जाता है । और स्वाभाविक चेतनाका धारक, रूपरहित तथा वेदरहित जीव पदार्थ है ॥ २० ॥

व्याख्या । वर्णगन्धरसस्पर्शादिकगुणैः पुद्गलद्रव्यस्यान्येभ्यो धर्मादिद्रव्येभ्यो भेदो ज्ञायते । वर्णाः पञ्च शुक्लपीतहरितरक्तकृष्णभेदात्, गन्धौ द्वौ सुरभ्यसुरभी चेति, रसाः पद्विक्तकटुककपायाम्लमधुरलवणभेदात्, स्पर्शा अष्टौ शीतोष्णो, खरमृदू, लघुमहती स्निग्धपरुषे चेति । सर्वमप्येतत्पुद्गलभेदाद्भिद्यते । च पुनरर्थे निसर्गा सहजा या चेतना तथा युक्तो

निसर्गचेतनायुक्त सर्वेभ्योऽचेतनेभ्यो भिन्नो जीवो व्यवहारनयेन रूपवेदसहितोऽपि निश्च-
यनयेन रूपरहितो रूपात्यन्ताभावयुक्त, वेदरहितो वेदात्यन्ताभाववान्, सत्तामात्र निर्गुणो
निर्विकारो जीव । उक्त च-अरसमरूपमगन्ध अवण्ण चेपणागुणमसह । जाणअलिंगगहण
जीवमणिदिसठाण । १ । इत्युक्ते जीवविशेषणानि ज्ञेयानि ॥ २० ॥

व्याख्यार्थः—वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्शआदि गुणोंसे युक्त होनेसे पुद्गलद्रव्यका
अन्य धर्मास्तिकायआदि द्रव्योंसे भेद जाना जाता है । शुक्ल (सफेद) पीत (पीला) हरित
(हरा) रक्त (लाल) तथा कृष्ण (काला) इन भेदोंसे वर्ण (रूप) पाच हैं । सुगंध, दुर्गंध,
भेदसे गंध दो प्रकारका है । तिक्त, (तीखा) कटुक (कड़वा) कषाय (कसापला) आम्ल
(खट्टा) मधुर (मीठा) और लवण (खारा) इन भेदोंसे रस छ(६)प्रकारका है । शीत (ठंडा)
उष्ण (गरम) खर (कठोर) मृदु (कोमल) लघु (हल्का) महत् (भारी) स्निग्ध चिकना
परुष (रूखा) इन भेदोंसे स्पर्श आठ प्रकारका है । यह सब पुद्गलके भेदसे भेदको प्राप्त
होते हैं । सूत्रमे जो “च” शब्द है, सो पुन के अर्थमे है, अत और निसर्ग अर्थात्
स्वभावसे उत्पन्न जो चेतना उस करिके युक्त होनेसे सब अचेतन द्रव्योंसे जीव भिन्न है ।
और व्यवहारनयसे रूप तथा वेदका धारक है, तो भी निश्चयनयसे जीन रूपरहित
अर्थात् रूपके अत्यंत अभावसे युक्त और वेदरहित अर्थात् वेदके अत्यन्ताभावसे सयुक्त है,
क्योंकि—यह जीन सत्तामात्र, निर्गुण तथा विकाररहित है । ऐसा अन्यत्र कहा भी है ।
“रूपरहित, रसरहित, गंधरहित, वर्णरहित, चेतनायुक्त, शब्दरहित लिंगसे रहित और
अनिदिष्ट सत्त्वात्त एसा जीव जानना” इत्यादि कथनसे यह रूपरहितआदि सब जीवके
विशेषण है, ऐसा जानो ॥ २० ॥

अथाध्यायपरिसमाप्तिवाम आह ।

अत्र अध्यायको समाप्त करनेकी इच्छासे अग्रिम काव्य कहते ह ।

सूत्रम् । एव समासेन पदेव भेदान्द्रव्यस्य विस्तारतयागमेभ्यः ।

श्रुत्वा समभ्यस्य च भव्यलोका अर्हत्क्रमान्भोजयुग

श्रयन्तु ॥ २१ ॥

सूत्रभावार्थः—हे भव्य जीनो २ इस प्रकार संक्षेपसे द्रव्यके छ ६ ही भेद ह, उनको
विस्तारसे शास्त्रोंमे श्रवण करके तथा पूर्णरूपसे अभ्यस्त करके श्रीजिनदेवके चरणकम
लोंके युगलका सेवन करो ॥ २१ ॥

व्याख्या । एव पूवात्प्रनारेण समामेन संक्षेपेण च पदेव पद सख्यायते जीनधर्माध
माकाशकालपुद्गलभेदान्द्रव्यस्य पदार्थस्य पणामपि द्रव्यज्ञानं प्रययुक्तं सन पदद्रव्यत्तमा-
पादयति । अतो द्रव्यस्य पदेव भेदान्सूत्रोक्तान् श्रुत्वा निस्तारतया विस्तारयुक्तया आगमेभ्य
स्याद्वादिसमुपदिष्टेभ्य आकर्ष्य अरणविपरीकरण श्रवण तत्र निस्तारेणैव श्रुतानामवगमो

जायतेऽतो विस्तारतया श्रुत्वा च पुनः समभ्यस्य वाचा उद्धोषणद्वारा कण्ठे कृत्वा मनसि निदिध्यास्य भो भव्यलोकाः सम्यक्तिप्राणिनः ? अर्हत्कमाम्भोजयुगं श्रीजिनचरणभजनस्थैर्यं भजन्तु । श्रुत्वा स्मृत्वा च श्रीप्रभुस्मृतिरेव साधीयसी तत्कृत्वा तत्करणं श्रेयोनिबन्धनमिति । तथा भोजेति सङ्केतेन सन्दर्भकर्तुर्नामनिदर्शनमिति । अत्राध्याये सम्यक्त्वदाढ्याय सर्वभेदाख्यानमिति प्रयोजनं चेति ॥ २१ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरविनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां दशमोऽध्यायः ।

व्याख्यार्थः—इस पूर्वकथित रीतिसे संक्षेपसे द्रव्यके सूत्रमें कहे हुए छ ६ संख्याके धारक जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल इन भेदोंको अर्थात् यहांपर जीव आदि छहोंके साथ जुदा २ द्रव्यशब्द लगानेसे षड्द्रव्यता सिद्ध होती है; इस कारण द्रव्यके छ हों ही भेदोंको स्याद्वादियोंसे उपदिष्ट ऐसे आगमोंसे अर्थात् जैनशास्त्रोंसे विस्तारपूर्वक अनेक युक्तियों द्वारा श्रवण करके “कर्णके विषयमें प्राप्त जो करना है; सो श्रवण है; उसमें विस्तारसे सुने हुए पदार्थोंका ही ज्ञान होता है; इसलिये विस्तारसे श्रवण करके” और वचनसे घोषणद्वारा कण्ठ करके और मनमें धारण करके भो भव्य जीवो ? अर्थात् सिद्ध होने योग्य प्राणिवर्गों ? श्रीजिनेन्द्रके चरणोंकी सेवामे स्थिरताको धारण करो। इस द्रव्योंके स्वरूपको सुनकर तथा स्मरण करके श्रीजिनेन्द्रकी भक्ति ही साधने योग्य है; इसलिये द्रव्यके स्वरूपका सुनना और धारण करना कल्याणका कारण है । यहांपर भोज इस संकेतसे टीकाकारने अपना नाम भी दिखाया है । और इस अध्यायमें सम्यक्त्वको पुष्ट (दृढ) करनेकेलिये सब द्रव्योंके भेदोंका कथन करना है; सो ही प्रयोजन है ॥ २१ ॥

इति श्री पं० ठाकुरप्रसादशास्त्रिविरचितभाषाटीकासमलङ्कृतायां

द्रव्यानुयोगतर्कणायां दशमोऽध्यायः ॥

अथैकादशाध्याये गुणभेदान् व्याचिख्यासुराह ।

अब इस एकादशवें अध्यायमें गुणके भेदोंके वर्णनकी इच्छासे यह सूत्र कहते हैं ।

सूत्रम् । श्रीनाभेयजिनं नत्वा गुणदेष्टृगुरुं तथा ।

गुणभेदानहं वक्ष्ये क्रमप्राप्तान्यथामति ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—मैं श्रीनाभिराजके पुत्र श्रीऋषभदेवजी तीर्थकरको तथा वाणीके गुणोंके उपदेशक गुरुजीको नमस्कार करके अब क्रमप्राप्त गुणोंके भेदोंको इस एकादशवें अध्यायमे निजमतिके अनुसार कहूंगा ॥ १ ॥

व्याख्या । नाभेरपत्यं नाभेयः श्रीयुक्तो नाभेयः स चासौ जिनश्च श्रीनाभेयजिनस्तं श्रीनाभेयजिनं श्रीऋषभनाथं नत्वा नमस्कृत्य तथा तेनैव प्रकारेण गुणदेष्टृगुरुं गुणावाणीगुणास्तान् दिशतीति गुणदेष्टा स चासौ गुरुश्च गुणदेष्टृगुरुस्तं नत्वा नमस्कृत्येति । निर्विघ्नसमाप्तिकामाय मङ्गलमिति । अहं गुणभेदान् क्रमप्राप्तान् द्रव्यव्यावर्णनानन्तरं

प्रस्तुतान् यथामति यथा स्यात्तथा पूर्वप्रणेतृणा विस्तारदुर्बोधत्वेन स्वमतिविषयी यथा स्यात्तथा वक्ष्ये कीर्तयिष्यामीति ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—नाभिराजाके जो पुत्र हैं उनको नामेय कहते हैं, अनेक प्रकारकी लक्ष्मीसे जो युक्त हों उनको श्रीनामेय कहते हैं, श्रीनामेय ऐसे जो जिन, सो श्रीनामेय जिन हैं, उनको अर्थात् श्रीऋषमनाय तीर्थंकरजीको नमस्कार करके तथा गुण जो वाणीके गुण उनका उपदेश करनेवाले जो श्रीगुरु हैं, उनको नमस्कारकरके अर्थात् निर्विघ्न समाप्तिकी इच्छासे इष्ट देव तथा गुरुको प्रणामरूप भगलाचरण करके भेद्रव्योके निरणके पश्चात् प्रस्तुत ऐसे गुणोंके भेदोंको निजबुद्धिके अनुसार अर्थात् पूर्वाचार्यप्रणीत ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन है, तथा कष्टसे उनका ज्ञान होता है, इस कारण अपनी बुद्धिके गोचर जैसे हो तैसे कहंगा ॥ १ ॥

अथात्र गुणभेदान्समानतन्त्रप्रक्रियया प्रतिपादयन्नाह ।

अत्र यद्वा समानतन्त्रप्रक्रियासे गुणके भेदोंका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । तत्रास्तित्व परिज्ञेयं सद्भूतत्वगुण पुनः ।

वस्तुत्वं च तथा जातिव्यक्तिरूपत्वमुच्यते ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—उनमें सद्भूतत्व जो गुण है, उसको अस्तित्व जानना चाहिये और जाति (सामान्य) व्यक्ति(विशेष)रूप जो है, उसको दूसरा वस्तुत्वगुण कहते हैं ॥ २ ॥

व्याख्या । अस्तित्व । तत्रेद परिज्ञेय सत्तातो यो गुणो भवति तस्मात्सद्भूतताया व्यवहारो जायते स चास्तित्वगुण । १ । वस्तुत्व च जातिव्यक्तिरूपत्वम् । जाति सामान्य यथा-घटे घटत्व । व्यक्तिविशेषो यथा-घट सौवर्ण, पाटलिपुत्र, वासन्तिक, कम्बुग्रीव इत्यादि । अत एवावग्रहेण सर्वत्र सामान्यरूप भासते, अपा (वा) येन विशेषरूपाभासो जायते । पूर्णापयोगेन सपूर्णवस्तुग्रहो जायते, इत्य वस्तुत्व द्वितीयो गुण ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—उनमें सत्तासे जो गुण होता है, और जिससे लोकमें सद्भूतताका व्यवहार होता है, वह अस्तित्व प्रथम गुण है, इसीको अस्तित्व जानना चाहिये । और जातिव्यक्तिरूप जो हो सो वस्तुत्व है । जाति सामान्यको कहते हैं, जैसे घटमें घटत्व, व्यक्ति विशेषका नाम है, जैसे यह घट द्रव्यसे सुवर्णका है, क्षेत्रमें पटना नगरका है, कालसे वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुआ है, और कपुग्रीवआदि आकारका धारक है, इत्यादि । इसी कारणसे अत्रग्रहनामक मतिज्ञानके प्रथम भेदरूप ज्ञानसे सत्र स्थानोंमें सामान्य-रूपका ही भान होता है, और मतिज्ञानका तृतीय भेद जो अपाय अथवा अवाय है, उसके द्वारा विशेषरूपका ज्ञान होता है । तथा परिपूर्ण ज्ञानसे सामान्य तथा विशेष दोनों रूप वस्तुका ग्रहण होता है । ऐसे वस्तुत्वनामक दूसरा गुण है ॥ २ ॥

सूत्रम् । द्रव्यत्व द्रव्यभावत्वं पर्यायाधारतोन्नयः ।

प्रमाणेन परिच्छेद्य प्रमेय प्रणिगम्यते ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—पर्यायके आधारसे जाननेमें आता हुआ जो द्रव्यभाव है; उसको द्रव्यत्वनामा तृतीय गुण कहते हैं। और जो प्रमाणसे जाननेमें आता है; वह प्रमेयत्व नामक चतुर्थ गुण है ॥ ३ ॥

व्याख्या । द्रव्यं द्रवति तांस्तान्पर्यायान्गच्छतीति द्रव्यं तस्य भावस्तत्त्वम् । द्रव्यभावो हि पर्यायाधारताऽभिव्यङ्ग्यजातिविशेषः । “द्रव्यत्वं जातिरूपत्वाद् गुणो न भवति” ईदृग् नैयायिकादिवासनया आशङ्का न कर्तव्या । यतः सहभाविनो गुणाः, क्रमभुवः पर्यायाः, ईदृश्येव जैनशासने व्यवस्थास्तीति । द्रव्यत्व चेद्गुणः स्याद्रूपादिवदुत्कर्षापकर्षभागी स्यादिति तु कुचोद्यमेकत्वादिसंख्यायाः परमतेऽपि व्यभिचारेण तथा व्याप्त्याभावादेव निरसनीयम् । ३ । प्रमाणेन प्रत्यक्षादिना परिच्छेद्यं यद्रूपं प्रमाणविषयत्वं प्रमेयत्वं तदित्युच्यते । तदपि कथंचिदनुगतसर्वसाधारणं गुणोऽस्ति । परम्परासंबन्धेन प्रमात्वज्ञानेनापि प्रमेयव्यवहारो जायते । ततः प्रमेयत्वं गुणस्वरूपादनुगतमस्तीति ॥ ४।३ ॥

व्याख्यार्थः—जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त हो उसे द्रव्य कहते हैं; और उस द्रव्यका जो भाव है; उसको द्रव्यत्व कहते हैं । तथा द्रव्यका जो भाव है; वह पर्यायरूप आधारतासे अभिव्यंग्य (जानने योग्य) जातिविशेष है । “द्रव्यत्व यह जातिरूप है; इसलिये गुण नहीं होता है” इस प्रकारकी आशंका नैयायिकोंकी वासनासे न करनी चाहिये । क्योंकि—सहभावी गुण है और क्रमसे भावी (होनेवाले) पर्याय है; ऐसी ही व्यवस्था जैनशास्त्रमें की गई है । और द्रव्यत्वमें जो गुण मानोगे तो रूपादिके समान उत्कर्ष तथा अपकर्षका भागी द्रव्यत्व होगा अर्थात् द्रव्यत्व जब गुण होगा तब रूपआदि गुणोंमें जैसे हीनता अधिकता रहती है; वैसे द्रव्यत्वमें भी रहैगी इत्यादि कुचोद्यका तो “परमत्तमें जो एकत्वआदि संख्याको गुण माना है; इसलिये व्यभिचारसे और नित्य परमाणुआदिगत एकत्वको नित्य माना है; इसलिये जहां गुणत्व है वहां उत्कर्ष (अधिक) अपकर्ष (हीन) की भांगिता है; ऐसी व्याप्तिका अभाव होनेसे ही तिरस्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥ प्रत्यक्षआदिरूप प्रमाणसे जो परिच्छेद्य (जाना जाय) ऐसा जो प्रमाणका विषय उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं । वह प्रमेयत्व भी कथंचित् सर्व प्रमेयोंमें अनुगत गुण है । और परम्परासंबन्धसे प्रमात्वरूप ज्ञानसे भी प्रमेयका व्यवहार होता है । इसलिये प्रमेयत्वगुण स्वरूपसे अनुगत है । ऐसे प्रमेयत्वनामक चतुर्थ गुण है । ४ । ॥ ३ ॥

सूत्रम् । अगुरुलघुता सूक्ष्मा वाग्गोचरविवर्जिता ।

प्रदेशत्वमविभागी पुद्गलः स्वाश्रयावधि ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—वाणीका अविषय तथा सूक्ष्म अगुरुलघुता नाम पंचम गुण है । तथा विभागरहित पुद्गलके अधिकरणमात्र अवधिसहित प्रदेशत्वं यह षष्ठ गुण है ॥ ४ ॥

व्याख्या । अगुरुलघुता अगुरुलघुनाम गुण सा कीदृशी सूक्ष्मा आज्ञाप्राप्तत्वात्, यत्
“सूक्ष्म जिनोन्ति तत्त्वं हेतुमिनव हन्यते । आज्ञासिद्ध तु तद्ग्राह्य नान्यथावादिनो जिना
। १ ।” पुन कीदृशी वाग्वोचरविवर्जिता वचनद्वारा वक्तुमशक्या । यत् —“अगुरुलघुपर्याया
सूक्ष्मा अवाग्वोचरा ” इति अगुरुलघुनाम्ना पञ्चमो गुणोऽगुरुलघुत्वमिति ध्येयम् । अथ
“प्रदेशत्वमविभागी पुद्गल स्वाश्रयावधि” इति । अविभागी पुद्गल इति यावत् क्षेत्रे तिष्ठ
तीति तावत् क्षेत्रव्यापिष्णुत्व प्रदेशत्वगुण । यस्य विभागो न जायते विभक्त्यवहा
रता न स्यात् पुनर्यावत् क्षेत्रमास्थाय तिष्ठति स्थितौ तावत्क्षेत्रावगाहित्व प्रदेशत्वम् । पुन की
दृश स्वाश्रयावधि स्वशब्देनात्मा पुद्गलात्मकस्तस्य य आधार आश्रय स एवावधिर्मर्यादा
यस्य तत्स्वाश्रयावधि । एतावता तदेवार्थत्व स्वेन यावत्क्षेत्रे स्थित तावति क्षेत्र आश्रयावधि-
त्वमप्यस्तीति ध्येयम् । इति पष्ठो गुण । ६ । ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—अगुरुलघुता अगुरुलघुनामा गुण है, वह अतिसूक्ष्म है, अत एव
जिनशास्त्रकी आज्ञासे ग्रहण करने योग्य है । क्योंकि—“जिन भगवान्से कहाहुआ जो
सूक्ष्म तत्त्व है, वह हेतुओंसे खण्डित नहीं होता अत सूक्ष्मतत्त्वोंको उनकी आज्ञासे ही
मानलेना चाहिये क्योंकि—जिनेन्द्र देव मिथ्यावादी नहा है । १ ।” ऐसा कहा है ।
पुन वह अगुरुलघुतारूप गुण कैसा है, कि—वाणीकी गोचरतासे वर्जित है, अर्थात् उसका
कथन वाणीसे नहीं होसकता क्योंकि—“अगुरुलघुपर्याय सूक्ष्म है, वचनके अगोचर है”
ऐसा वचन है । ऐसे अगुरुलघु नामसे जो पंचम गुण है, उसको अगुरुलघुत्व समझना
चाहिये । ५ । अब “प्रदेशत्वमविभागी पुद्गल स्वाश्रयावधि” इस उत्तरार्धका
व्याख्यान करते हैं । विभागरहित पुद्गल जितने क्षेत्रमे स्थित रहता है, उस क्षेत्रमे
व्यापनशील प्रदेशत्व गुण है । तात्पर्य यह कि जिस पुद्गलका विभाग नहीं
होता अर्थात् विभक्तव्यवहारता नहीं हो सकती ओर ऐसा वह अविभाग पुद्गल परमाणु
जितने क्षेत्रमे रहे उतने ही क्षेत्रका अपनी स्थितिमे अग्राह्य करनेवाला जो है, वह प्र-
देशत्व है । पुन वह प्रदेशत्व कैसा है, कि—स्वाश्रयावधि है । यहा स्वशब्दसे अपना ग्रहण
है इससे अविभागी पुद्गलात्मक अपना आधार (अधिकरण) ही जिसकी मर्यादा है,
इससे यह सिद्ध हुआ कि वह जितने क्षेत्रमे स्थित है, उतने ही क्षेत्रमे आश्रयावधित्व भी
है ऐसा जानना । यह प्रदेशत्वनामक पष्ठ गुण है । ६ । ॥ ४ ॥

सूत्रम् । चेतनत्वमनुभूतिरचेतनमजीवता ।

रूपादियुक्तत्वमूर्तत्वममूर्तत्व विपर्ययात् ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—आत्माका जो अनुभव है वह चेतनत्व तत्त्वगुण है । जीवरहितता
स्वरूप अचेतनत्व अष्टम गुण है । रूपआदिसहित मूर्तत्वनामक नवम गुण है । इसके
विपर्ययसे अर्थात् रूपआदिरहित अमूर्तत्वनामा दशम गुण है ॥ ५ ॥

व्याख्या । चेतनत्वमात्मनोऽनुभूतिरित्यनुभवरूपगुण कथ्यते । योऽहं सुखदुःखादि

चेतये, अहं सुखी, अहं दुःखी इति चेतनाव्यवहारः । ततो जातिवृद्धिभग्नक्षतसंरोहणादि-
जीवनधर्मा भवन्तीति चैतन्यं सप्तमो गुणः । ७ । एतस्माद्विपरीतमचैतन्यमजीवमात्रम-
जीवता जडत्वाच्चेतनावैकल्यमित्यचेतनत्वं गुणः । ८ । रूपादियुक् मूर्तत्वं मूर्तता गुणः ।
रूपादिसन्निवेशाभिव्यङ्ग्यपुद्गलद्रव्यमात्रवृत्तित्वम् । ९ । अमूर्तत्वं गुणो मूर्तत्वाभाव-
समनितत्वमिति । १० । इति दशैव । अत्राचेतनत्वामूर्तत्वयोश्चेतनत्वमूर्तत्वाभावरूपत्वान्न
गुणत्वमिति नाशङ्कनीयम् । अचेतनामूर्तद्रव्यं वृत्तिकार्यजनकतावच्छेदकत्वेन व्यवहार-
विशेषनियामकत्वेन च तयोरपि पृथग् गुणत्वात् तन्न पर्युदासार्थकत्वात्तत्र गर्भपदवाच्य-
ताश्चानुष्णाशीतस्पर्श इत्यादौ व्यभिचारेण परेषामप्यभावत्वानियामकत्वाद्भावान्तरम् ।
अभावोऽहि कयाचित्तु व्यपेक्षया इति नयाश्रयणेन दोषाभावाच्चेति ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—आत्माका जो अनुभवरूप गुण है; वह चेतनत्व है । अर्थात् यह मैं
सुख तथा दुःखआदिका अनुभव करता हूं, अथवा मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं यह जो
व्यवहार होता है; सो चेतनत्वगुणसे ही होता है; और इस चेतनत्वसे ही उत्पन्न होके
बड़ा होना, छिदे हुए कटे हुएका उत्पन्न होना व उगनाआदि जीवनधर्म होते हैं; इस
लिये चेतनत्व यह सप्तम गुण है । और इस चैतन्यसे विपरीत अचेतनत्व गुण है; वह
अजीवमात्रमें है; यह जड़ है इसलिये चेतनासे रहित है । ऐसे अचेतनत्वनामक अष्टम
गुण है । रूपआदिका धारक मूर्तत्वनामक नवम गुण है । यह मूर्तत्व गुणरूप रस
आदिकी स्थितिसे जानने योग्य है; और पुद्गल द्रव्यमें ही रहता है । और मूर्तत्वके अ-
भावके साथ समनियत अमूर्तत्वनामा दशम गुण है । ऐसे ये सब मिलके दश गुण
हुए । यहांपर अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व ये दोनो चेतनत्व तथा मूर्तत्वके अभावरूप
हैं; अर्थात् चेतनत्वका अभाव अचेतनत्व है; और मूर्तत्वका अभाव अमूर्तत्व है; इसलिये
अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व पृथक् गुण नहीं है; ऐसी शंका न करनी चाहिये; क्योंकि—अचेतन
(चेतनधर्मरहित जड पदार्थ) तथा अमूर्त (धर्म जीवआदि) द्रव्यवृत्ति जो कार्य उस
कार्यके जनकतावच्छेदकत्वरूपसे विशेष व्यवहार अर्थात् अचेतन तथा अमूर्तरूप व्यवहार-
विशेषके नियामक कारणतावच्छेदक होनेसे अचेतनत्व और अमूर्तत्वको भी पृथक्
गुणत्व है; और अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व इन दोनो पदोंमें नञ् समास जो है सो पर्युदा-
सार्थमें है; इसलिये यहां अचेतनका अर्थ “चेतनसे भिन्न चेतनसदृश कोई द्रव्य
और अमूर्तका अर्थ मूर्तसे भिन्न मूर्तसदृश द्रव्य” है । उन अचेतन तथा अमूर्त द्रव्योंमें
रहनेवाला जो धर्म वही अचेतनत्व तथा अमूर्तत्व है । क्योंकि—चेतनभिन्न तथा चे-
तनसदृश अचेतनत्वमें समासगर्भ वाच्यताका ही अंगीकार है । और अनुष्णाशीतस्पर्श

(१) नञ् दो प्रकारका है, एक पर्युदास और दूसरा प्रसज्य, इनमें पर्युदास तो सदृशका ग्राही होता है;
जैसे “अब्राह्मणको लाओ ” यहां ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृश किसी मनुष्यको लाओ ऐसा तात्पर्य है;
और प्रसज्य निषेधक है; जैसे “अद्रव्य” से द्रव्याभावका ग्रहण होता है ।

अर्थात् शीत तथा उष्णसे भिन्न स्पर्श इत्यादि पदोंमें व्यभिचार होनेसे नेयायिकको भी नञ्को अभाजनियामकता सर्वत्र नहीं है, इसलिये अमूर्त इससे मूर्तके अभावका नहीं किन्तु मूर्तसे भिन्न भावका ग्रहण करना चाहिये । अभाज तो किसी अपेक्षासे है । और इस नयके आश्रयसे कोई दोष नहा ॥ ५ ॥

सूत्रम् । सामान्येन समाख्याता गुणा दश समुचिताः ।

परस्परपरिहारात् प्रत्येकमष्ट चाष्ट च ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—सामान्यरूपसे ये दश १० गुण सपूर्ण द्रव्योंको मिलाके कहे गये हैं, इनमें परस्परके परिहारसे अर्थात् परस्परनिरोधी चेतनत्व अचेतनत्वआदिको छोटके शेष प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण रहते हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या । एते दश गुणा सामान्यगुणा समुचिता सर्वेषां द्रव्याणां समुच्चयेन कथिता । तत्र मूर्तत्वममूर्तत्वम्, चेतनत्वमचेतनत्व चेति चत्वारो गुणा परस्परपरिहारेण तिष्ठन्ति । तत एकैकस्मिन् द्रव्ये प्रत्येक प्रत्येकमष्टौ प्राप्यते । तत्कथं, यत्र चेतनत्व तत्रा चेतनत्व नास्ति, यत्र च मूर्तत्व तत्र चामूर्तत्व नास्ति, एव द्वयोरपसरणाच्छेषमष्टकमेव तिष्ठति । तेन प्रतिद्रव्यमष्टैव गुणा सामान्या सन्तीति ध्येयम् ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—ये पूर्वोक्त दश गुण सामान्यरूपसे सप्त द्रव्योंके मिलाके कहे गये हैं । इनमेंसे मूर्तत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व, तथा अचेतनत्व ये चार गुण परस्परके परिहारसे द्रव्यमें रहते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि—एक एक द्रव्यमें आठ आठ गुण होते हैं, यह इस प्रकारसे है, कि—जहा चेतनत्व है, वहा अचेतनत्व नहा है, ऐसे ही जहा मूर्तत्व है, वहा अमूर्तत्व नहीं रहता है । इस रीतिसे दोनोंके निकालनेसे शेष आठ गुण प्रत्येक द्रव्यमें रहते हैं, इस कारणसे प्रत्येक द्रव्यमें आठ ही सामान्य गुण हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ विशेषगुणान् व्याचिख्यामुराह ।

अत्र विशेषगुणोंका वर्णन करनेकी इच्छासे कहते हैं ।

सूत्रम् । ज्ञान दृष्टिः सुख वीर्य स्पर्शगन्धौ रसेक्षणे ।

गतिस्थित्यवगाहत्ववर्त्तना हेतुतापराः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—ज्ञान, दर्शन, सुख, तथा वीर्य ये चार आत्माके विशेष गुण हैं, तथा रस, गन्ध, स्पर्श तथा वर्ण ये चार पुद्गलके विशेष गुण हैं, तथा गति, स्थिति, अवगाहन, और वर्त्तना ये धर्मादि द्रव्योंके हेतुतापरक गुण हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या । ज्ञानगुण, दृष्टिदर्शनगुण, सुखमिति सुखगुण, वीर्यमिति वीर्यगुण, एते चत्वार आत्मनो विशेषगुणा । पुन स्पर्शगन्धौ स्पर्शगुण गन्धगुण, रसेक्षणे रसगुण

ईक्षणवर्णगुणः, एते च त्वारः पुद्गलस्य विशेषगुणाः शुद्धद्रव्ये अविकृतरूपा एतेऽविशिष्टास्तिष्ठन्ति तत एते गुणाः कथिताः, विकृतस्वरूपास्तो पर्यायेषु मिलन्ति, इत्येवं विशेषोऽत्र ज्ञेयः । तथा पुनः गत्यादयो गुणा हेतुतापरा एतावता गतिहेतुता, स्थितिहेतुता, अवगाहहेतुता वर्त्तनाहेतुता, एते चत्वारो गुणाः प्रत्येकं धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायाकाशास्तिकायकालद्रव्याणां क्रमेण सन्ति विशेषगुणाश्चत्वारः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—ज्ञानगुण १ दर्शनगुण २ सुखगुण ३ तथा वीर्यगुण ४ ये चारों आत्माके विशेष गुण हैं । और स्पर्शगुण १ गन्धगुण २ रसगुण ३ तथा वर्णगुण ४ ये चारों पुद्गलके विशेष गुण हैं । ये गुण शुद्ध द्रव्यमें अविकृतरूपसे रहते हैं । और विकृत (विकारसहित) होनेसे वे पर्यायोंमें मिलते हैं; यह विशेषता जाननी चाहिये । और गति आदि गुण हेतुतापरक हैं; इससे यह सिद्ध हुआ कि—गतिहेतुता, स्थितिहेतुता, अवगाहहेतुता, तथा वर्त्तनाहेतुता ये चारों गुण एक एक धर्मास्तिकाय आदिके हैं, अर्थात् गतिहेतुता धर्मास्तिकायका, स्थितिहेतुता अधर्मास्तिकायका, अवगाहनहेतुता आकाशास्तिकायका, तथा वर्त्तनाहेतुता कालद्रव्यका, विशेषगुण है । इस प्रकार ये गतिहेतुताआदि चारों धर्मास्तिकायआदि चारों द्रव्योंके क्रमसे विशेष गुण हैं ॥ ७ ॥

सूत्रम् । चैतन्यादिचतुर्भिस्तु युक्ताः षोडशसंख्यया ।

विशेषेण गुणास्तत्राप्यात्मनः पुद्गलस्य षट् ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—चैतन्यआदि चारों गुणोंके साथ पूर्वोक्त द्वादश गुण मिलके सोलह गुण होते हैं, उनमेंसे आत्मा तथा पुद्गलके छः छः गुण होते हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या । अथैतेषां द्वादशगुणानां चैतन्यादिचतुर्भिर्युक्ताश्चेतनत्वाच्चेतनत्वमूर्तत्वादिभिश्चतुर्भिः सहिताः सन्तः षोडश गुणा भवन्ति । तेषु गुणेषु पुद्गलद्रव्यस्य वर्णगन्धरसस्पर्शमूर्तत्वाच्चेतनत्वानि षट् सन्ति । आत्मद्रव्यस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्यामूर्तत्वचेतनत्वानीति षट् गुणा भवन्ति । अथान्येषां द्रव्याणां समुदायेन त्रय एव गुणा भवन्ति, एको निजगुणः, अचेतनत्वम्, अमूर्तत्वम्, इति विमृश्य धार्यम् ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—अब इन द्वादश गुणोंके जब चेतनत्वआदि चारों गुणोंका योग होता है; अर्थात् ये पूर्वोक्त द्वादश गुण जब चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, और अमूर्तत्व इन चारों गुणोंसहित होजाते हैं; तब सोलह विशेष गुण होजाते हैं । उन सोलह गुणोंमेंसे पुद्गलद्रव्यके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मूर्तत्व और अचेतनत्व ये छः विशेषगुण होते हैं । और आत्म(जीव)द्रव्यके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अमूर्तत्व तथा चेतनत्व ये षट् विशेष गुण हैं । और अन्य द्रव्यके समुदायसे तीन ही गुण होते हैं । उनमेंसे एक निजगुण तथा अचेतनत्व और अमूर्तत्व ऐसे दो ये, इस प्रकार विचारके निश्चय करना चाहिये ॥ ८ ॥

सूत्रम् । अन्येषा चैव द्रव्याणा त्रीणि त्रीणि पृथक् पृथक् ।

स्वजात्या चेतनत्वाद्याश्चत्वारोऽनुगता गुणाः ॥ ९ ॥

सूत्रभाचार्यः—अयं द्रव्योक्ते पृथक् पृथक् तीन तीन गुण होते हैं । और निज जातिकी अपेक्षासे चेतनत्वआदि चार गुण अनुगत हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या । अन्येषा द्रव्याणा पृथक् पृथक् त्रय २ गुणा । यथा धर्मास्तिकायस्य गतिहेतु-
तागुण , अचेतनत्वगुण , अमूर्त्तत्वगुण । एव त्रयोऽधर्मास्तिकायस्य स्थितिहेतुत्वाचेतनत्वा
मूर्त्तत्वादय । आकाशास्तिकायस्यावगाहहेतुताचेतनत्वामूर्त्तत्वादय । कालस्य वर्त्तनाहेतुत्वा
चेतनत्वामूर्त्तत्वादय । इत्यादि ज्ञेयम् । अथ चेतनाद्याश्चत्वार सामान्यगुणा । चेतनत्वाचे
तनत्वमूर्त्तत्वामूर्त्तत्वानि सामान्यगुणेष्वपि सन्ति विशेषगुणेषु च सन्ति । तत्र किं कारण
चेतनत्वाद्याश्चत्वार सामान्यगुणा स्वजात्यपेक्षया अनुगतव्यवहारकर्त्तार सन्ति तस्मात्सा
मान्यगुणा कथ्यन्ते ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—अन्य अर्थात् पुद्गल तथा जीवसे भिन्न द्रव्योंके पृथक् २ तीन २ विशेष
गुण हैं । जैसे धर्मास्तिकायके गतिहेतुता, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं,
ऐसे ही अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, अचेतनत्व तथा अमूर्त्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं ।
आकाशास्तिकायके अवगाहनत्व, अचेतनत्व, और अमूर्त्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं ।
कालके वर्त्तनाहेतुत्व, अचेतनत्व तथा अमूर्त्तत्व ये तीन विशेषगुण हैं । इत्यादि जानना
चाहिये । और चेतनत्वआदि अर्थात् चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्त्तत्व, और अमूर्त्तत्व ये चार
सामान्यगुण हैं । चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्त्तत्व तथा अमूर्त्तत्व ये चार सामान्यगुणोंमें भी
हैं, और विशेषगुणोंमें भी हैं, इसमें क्या कारण है ? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है, कि—चेत-
नत्वआदि चार सामान्यगुण निज आश्रयीभूत जातिकी अपेक्षासे अनुगत व्यवहारके
करनेवाले हैं, इसलिये ये सामान्यगुण कहे जाते हैं ॥ ९ ॥

सूत्रम् । एत एव विशेषेण गुणा अपि जिनेश्वरैः ।

परजातेरपेक्षया ग्रहणेन परस्परम् ॥ १० ॥

सूत्रभाचार्यः—और परजातिकी अपेक्षासे परस्पर ग्रहण करनेसे इन्हीं चारों गुणोंको
श्रीजिनेश्वरोंने विशेषगुण भी कहा है ॥ १० ॥

व्याख्या । परजात्यपेक्षया चेतनत्वादयोऽचेतनत्वादिवेभ्य स्वाश्रयव्यावृत्तिकरा सन्ति
एते विशेषगुणा परापरमामान्यवत्सामान्यविशेषगुणत्वमेवामिति भावः । एत एव विशेषे
णेति स्पष्टम् ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—चेतनकी अपेक्षा अचेतन पर है, इस परजातिरी अपेक्षामें चेतनत्वआदि
अचेतनत्वशाक्तिके निज आश्रयमें व्यावृत्तिकर हैं, इसलिये विशेषगुण हैं ।

भावार्थ—जैसे द्रव्यत्व सामान्य पृथिवीत्वआदिकी अपेक्षासे पर है; और द्रव्य, गुण, तथा कर्मके ऊपर रहनेवाली सत्ता जातिकी अपेक्षासे अपर भी है; ऐसे परापर सामान्यकी भांति चेतनत्वआदि गुणोंके सामान्यगुणता तथा विशेषगुणता ये दोनों हैं। 'एत एव विशेषेण' इत्यादि पूर्वाद्धका अर्थ तो स्पष्ट ही है, इसलिये व्याख्या नहीं की ॥ १० ॥

सूत्रम् । विशेषेण गुणाः सन्ति बहुस्वभावकाश्रयाः ।

अर्थेन ते कथं गुण्याः स्थूलव्यवहृतिस्तिव्यम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—अनेक स्वभावयुक्त पदार्थोंमें रहनेवाले विशेषगुण अनन्त हैं। उन सबकी पदार्थके साथ कैसे गुणना हो सकती है; इसलिये पुद्गलके विशेषगुण हैं; इत्यादि जो पूर्व कथन किया है; सो स्थूल व्यवहारसे जानना चाहिये ॥ ११ ॥

व्याख्या । ज्ञानदर्शनसुखवीर्या एत आत्मनो विशेषगुणाः, स्पर्शरसगन्धवर्णा एते पुद्गलस्य विशेषगुणाः, इत्येतद्यत्कथितं तदिदं स्थूलव्यवहृतिः स्थूलव्यवहारः । यतश्चाष्टौ सिद्धगुणाः, एकत्रिंशत्सिद्धगुणाः, एकगुणकालकादयः, पुद्गला अनन्ता, इत्यादिविचारणया विशेषगुणानामानन्त्योत्पत्तिः । सा च छद्मस्थज्ञानगोचरा नास्ति । अतोऽर्थेन ते कथं गुण्यास्तस्माद्धर्मास्तिकायादीनां गतिस्थित्यवगाहनावर्तनाहेतुत्वोपयोगग्रहणाख्याः पडेवास्तित्वादयः । सामान्यगुणास्तु विवक्षया अपरिमिता इत्येवं न्याय्यम् । पण्णां लक्षणवतां लक्षणानि पडेवेति हि को न श्रद्धान्ति । गाथा 'नाणं च दंसणं चैव चरित्तं च तवो तहा । वीरियं उव ओगोय एवं जीवस्स लक्खणं । १। सद्धंधकारउज्जोया प्रभायावातहेव य । वण्णरसगंधफासा पुग्गलाणं तु लक्खणं । २।' इत्यादि तु स्वभावविभावलक्षणयोरन्योन्येनान्तरीयकत्वप्रतिपादनायेत्यादि पण्डितैर्विचारणीयम् ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—ज्ञान, दर्शन, सुख तथा वीर्य ये आत्माके विशेषगुण हैं; तथा स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये पुद्गलके विशेषगुण हैं; इस प्रकार जो कथन किया गया है; सो स्थूल व्यवहारसे है; ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि—सिद्धोंके आठ गुण हैं, पुनः प्रकारान्तरसे सिद्धोंके इकतीस ३१ गुण हैं, कालआदि एक गुणके धारक हैं, पुद्गल अनन्त हैं; इसलिये उनके गुण भी अनन्त हैं; इत्यादि विचारके करनेसे विशेषगुणोंके अनन्तताकी उत्पत्ति होती है; और वह छद्मस्थ ज्ञानके गोचर नहीं है। इस कारणसे पदार्थके साथ उन सब विशेषगुणोंकी गणना कैसे हो सकती है; अर्थात् अल्पज्ञानावस्थामें उन सब विशेषगुणोंका जानना तथा उनकी गणना करना दोनों ही असंभव है इस कारणसे धर्मास्तिकायाआदिके गति, स्थिति, अवगाहन, वर्तनाहेतुता, उपयोग तथा ग्रहणरूप षट् प्रकारके ही गुण समझने चाहिये। और अस्तित्वआदि सामान्यगुण तो विवक्षासे अपरिमित (अपरिमाण) हैं; यही न्याय है; क्योंकि—षट् लक्षणवालोंके अर्थात् द्रव्योंके लक्षण भी ६ ही हैं; इस विषयमें कौन नहीं श्रद्धान करेगा और "ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य,

तप, वीर्य तथा उपयोग ये षट् जीवके लक्षण है ॥ १ ॥ शब्द, अधिकार, उद्योत, प्रभा, वर्ण, रस, गन्ध, तथा स्पर्श ये पुद्गलके लक्षण है ॥ २ ॥' इत्यादि जो कथन है, सो तो स्वभाव तथा विभाव लक्षणोंसे परस्परके भेदको प्रतिपादन करनेके लिये है, ऐसा पडि तोंको विचार लेना चाहिये ॥ ११ ॥

सूत्रम् । स्वभावगुणतो भिन्ना धर्ममात्रविवक्षया ।

स्वस्वरूपस्य मुख्यत्व गृहीत्वा समुदाहृताः ॥ १२ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—स्वभावगुणसे तथा धर्ममात्र विवक्षासे ये भिन्न हैं, परन्तु निज निज स्वरूपकी मुख्यताका ग्रहण करके ये गुण कहे गये हैं ॥ १२ ॥

व्याख्या । स्वभावगुणतो निजत्वव्यवहारेण धर्ममात्रविवक्षया अनुवृत्तिसन्न्धेन चैते भिन्ना पृथक् २ सन्ति न कोऽपि कश्चिन्मित्रीभवति । परन्तु स्वरूपस्य निजनिजरूपस्य मुख्यत्व प्राधान्य गृहीत्वा अनुवृत्तिसन्न्धमात्रमनुसृत्य समुदाहृता यत्स्वभावा सन्ति त एव गुणी कृत्य दर्शिता । तत् इदमत्र बोध्यम्—धर्मोपेक्षया अत्रेते गुणात्मका पदार्था पृथक्स्वभावगुणतो भिन्ना उक्तास्तत्तु निजकीयनिजकीयरूपमुख्यता गृहीत्वैव स्वभावगुणीकृत्योपदिष्टा इत्यर्थः । तस्मादत्र गुणविभाग वक्ष्यित्वा अब्धे प्रतिपाद्यमानपक्षे स्वभावविभावयो कथनमुदाहरिष्य सीति ध्येयम् ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—स्वभावगुणसे अर्थात् निजत्व वा आत्मीयत्व व्यवहारसे ओर धर्ममात्रकी विवक्षासे अर्थात् अनुवृत्तिसन्न्धसे ये सत्र गुण पृथक् २ हैं, कोई किसीसे नहीं मिलता । परन्तु अपने अपने स्वरूपकी मुख्यता(प्राधानता)को ग्रहण करके अर्थात् अनुवृत्ति सन्न्धमात्रका अनुसरण करके जो स्वभाव हैं, वे ही भिन्न करके दर्शाये हैं, इसलिये यहापर ऐसा जानना चाहिये कि—धर्मकी अपेक्षासे जो ये गुणरूप पदार्थ पृथक् पृथक् स्वभावनाले गुणसे भिन्न भिन्न कहे गये हैं, वे निज निज रूपकी मुख्यताको ग्रहण करके ही उस प्रकारके स्वभावके गुण करके उपदेश किये गये हैं, यह तात्पर्य है । इसलिये यहापर प्रथम गुणका विभाग कहकर, आगे कहे जानेवाले श्लोकमे स्वभाव तथा विभावके कथनका उदाहरण दिया जायगा ऐसा समझना चाहिये ॥ १२ ॥

सूत्रम् । अस्तिस्वभाव एषोऽत्र स्वरूपेणार्थरूपता ।

स्वभावपरभावाभ्यामस्तिनास्तित्वकीर्त्तिनात् ॥ १३ ॥

सूत्रभाष्यार्थः—यहापर पदार्थके निजस्वरूपसे जो अर्थरूपता है, यह अस्तिस्वभाव है । क्योंकि—स्व(अपने)भावमे अस्तित्व और परभावेसे नास्तित्वका कथन होता है ॥ १३ ॥

व्याख्या । अत्रेति गुणप्रस्तावनाया प्रथममस्मिन्स्वभावस्तु एष स्वरूपेण निजकीयरूपेणा र्थरूपता द्रव्ययाथात्म्य स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वफालस्वभावैश्च भावरूपतैव क्षेया । कस्मात्स्वभावापरभावाभ्यामस्तिनास्तित्वकीर्त्तिना । यथा स्वभावेनास्तित्व म्भावोऽस्ति तथैव परभावेन नास्तित्व स्वभावोऽप्यस्ति । ततोऽनास्तिस्वभाव कारणीवर्त्तते कथं तन्नास्तिपरभावा हि तत्र

निजरूपेण भावरूपतास्ति । यथा परस्वभावेन नास्तिस्वभावानुभवनं तथा निजभावेन स्वभावानुभवनमपि जायते । अत उभयत्र कार्यरूपोऽस्तिस्वभाव इति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—यहां अर्थात् गुणके प्रस्ताव(प्रसंग)में प्रथम अस्तिस्वभाव यह है; कि—वस्तुमें स्वरूपसे अर्थात् अपने रूपसे जो अर्थरूपता अर्थात् द्रव्यकी यथार्थता है; वही स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, और स्वभावसे भावरूपता है; ऐसा जानना चाहिये । क्योंकि—स्वभावसे अस्तित्व तथा परभावसे नास्तित्वका कथन है । भावार्थ—जैसे अपने भावसे अस्तित्व स्वभाव है; ऐसे ही परके भावसे नास्तित्वस्वभाव भी वस्तुमें है । इसलिये यहां अस्तिस्वभाव कारणीभूत है । वह किस प्रकारसे है; कि—स्वभाव ही वहां निजरूपसे भावरूपता है । जैसे परके भावसे नास्तिस्वभावका अनुभव होता है; वैसे ही निजभावसे स्वभावका भी अनुभव होता है; इस हेतुसे अस्तित्व तथा नास्तित्व इन दोनोंमें कार्यरूप अस्ति स्वभाव है ॥ १३ ॥

सूत्रम् । न चेदित्थं तदा शून्यं सर्वमेव भवेदिदम् ।

परभावेन सत्त्वे तु सर्वमेकमयं भवेत् ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि ऐसा न हो अर्थात् अपने भावसे अस्तित्व न माना जावे तो यह संपूर्ण जगत् शून्य होजाय, और परभावसे यदि सत्त्व अङ्गीकार करें तो सब एकमय अर्थात् एकरूप ही होजाय ॥ १४ ॥

व्याख्या । चेद्यदि अस्तिस्वभावो नाङ्गीक्रियते परभावापेक्षया यथा नास्तित्वं तथा स्वभावापेक्षयापि नास्तित्वावलम्बने सति सर्वं जगदिदं प्रपञ्च्यमानव्यतिकरमपि शून्यं भवेत् । तस्मात्स्वद्रव्यापेक्षया अस्तिस्वभावः सर्वथैवाङ्गीकरणीयः । परभावेन परद्रव्याद्यपेक्षयापि नास्तित्वस्वभावोऽप्यवश्यमङ्गीकर्तव्य इत्यर्थः । तथा च परभावेनापि सत्तामस्तिस्वभावमङ्गीकुर्वतां सर्वस्वरूपेणास्तित्वे जायमाने च जगदेकरूपं भवेत् । तत्तु सकलशास्त्रव्यवहारविरुद्धमस्ति । तस्मात्परापेक्षया नास्तिस्वभाव एव समस्ति । अथ सत्ता तु स्वभावेन वस्तुविषयं ज्ञापयति, अतः सत्तेति सत्यमस्ति । असत्ता तु स्वज्ञानेन परमुखनिरीक्षणं कुरुते ततः कल्पनया ज्ञानविषयत्वेन च असत्तेत्यसत्यमस्ति । इत्थं बौद्धानां मतं वर्त्तते ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—यदि अस्तिस्वभावको नहीं करते हो तो जैसे परभावकी अपेक्षासे नास्तित्व है; वैसे ही स्वभावकी अपेक्षासे नास्तित्वका ग्रहण होजानेसे यह सब जगत् अर्थात् प्रपञ्च्यमान व्यतिकर भी शून्य होजायगा । इस कारणसे स्वकीय द्रव्य, क्षेत्रआदिकी अपेक्षासे अस्तिस्वभावको अवश्यमेव मानना चाहिये, और इसी प्रकार परभावसे अर्थात् परद्रव्यआदिकी अपेक्षासे नास्तिस्वभाव भी अवश्य स्वीकृत करना चाहिये यह तात्पर्य है । और परभावसे अर्थात् अन्यके द्रव्य क्षेत्रआदिकी अपेक्षासे अस्तिस्वभावको स्वीकार करनेवालोके मतसे सर्व स्वभावसे अस्तित्व सिद्ध होजानेपर संपूर्ण जगत् एकरूप ही होजायगा, और सर्वथा समस्त जगत्का एकरूप हो जाना सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है, इसलिये परकी अपेक्षासे

नास्तिस्वभाव ही समीचीन है । “अब सत्ता तो अपने अस्तित्वभावसे वस्तुविषयताको ज्ञापित करती है, अर्थात् वस्तुको जताती है, इसलिये सत्ता यह सत्य है, और असत्ता अपने असत्विषयक ज्ञानसे केवल परके मुखकी ओर ताकती है, इसलिये केवल कल्पनासे ज्ञानका विषय होनेसे अर्थात् कल्पनामात्रसे ज्ञानमें भासनेसे अमत्ता असत्य (मिथ्या) है” ऐसा बौद्धोंका मत है ॥ १४ ॥

तत्रेव स्पष्टयन्नाह ।

अत्र इसी असत्ताको मिथ्या कहनेवाले बौद्धोंके मतका खडन करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । यत्सत्तावदसत्ता तु न स्फुरेद् व्यञ्जकं विना ।

तत्सन् शरावगन्धोऽपि विना नीर न स भवेत् ॥ १५ ॥

सूत्रभाषार्थः—जैसे सत्ता तत्क्षण स्फुरायमान होती है, वैसे जो असत्ता नहीं स्फुरायमान होती है, तो इसमें व्यञ्जकता नहीं मिलना कारण है क्योंकि—शरावमें विद्यमान शरावका गंध भी जलके विना नहीं जाना जाता है ॥ १५ ॥

व्याख्या । यत्सत्तावत् तत्क्षणमेवासत्ता तु न स्फुरेत्, तत्तु व्यञ्जकं विना व्यञ्जकस्यामि लनवशत । परन्तु शून्यत्वेन, अथ च तुच्छत्वेन नद्यस्ति । तत्र दृष्टान्तमाह । तदिति उदाहरण सन् विद्यमान शरावे वर्तमान शरावगन्धोऽपि नीर विना नीरस्पर्शनमन्तरेण न स भवेत् न ज्ञायते । एतावता गन्धापेक्षा असत्या नास्ति किन्तु केपाचिद्वस्तूना गुणा स्वभावेनानुभूयन्ते, केपाचिच्च प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्या एव सन्तीत्येतद्वस्तुवैचित्र्यमस्ति । परन्त्वेकस्यैव कस्यचिद्धर्मस्य न्यूनत्वकथने बहुव्यवहारविलुप्तिर्जायते । उक्तं च श्रीमद्यशोविजययोपाध्यायैर्भाषारहस्यप्रकरणे “ते ह्युति परावेक्षता वजयमुद्दसिणोऽपि णयतुच्छा । दिदृमिण वैचित्तं सरावकप्पूरगघाण” ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—जो सत्ताकी भाँति असत्ता उसी क्षण स्फुरित (प्रकट) नहीं होती है सो व्यञ्जकके विना अर्थात् व्यञ्जकके न मिलनेसे तत्काल स्फुरित नहीं होती । परन्तु असत्ता शून्य है, अथवा तुच्छ है, इसवास्ते स्फुरित नहीं होती यह बात नहीं है । इस नियममें दृष्टांत कहते हैं । सूत्रमें तत् शब्द जो है सो उदाहरणका प्रदर्शन करता है इसलिये उदाहरण यह है कि शराव अर्थात् सरवा (मृत्तिकाका बना हुआ कोरा पात्र) जो है उसमें विद्यमान जो उस शरावका गंध है वह भी जलके स्पर्शविना नहीं जाना जाता । इससे तात्पर्य यह है कि शरावमें विद्यमान गंध असत्य नहीं है किन्तु सत्य ही है । परन्तु वह जो जलस्पर्शके विना नहीं जाना जाता है इसमें वस्तुकी विचित्रताही कारण है । कितनेही पदार्थोंके गुण स्वभावसेही अनुभूत होते हैं और कितनेही पदार्थोंके गुण प्रतिनियत जो व्यञ्जक है उनसेही जाने जाते हैं यह वस्तुस्वभावकी विचित्रता है । परन्तु वस्तुमें तत्क्षण वह धर्म स्फुरित न हो तो उसकी न्यूनता (कमी) कह देनेसे बहुतसे व्यवहारोंका लोप हो जाता है । और इस विषयमें श्रीयशोविजयजी उपाध्यायने “भाषा-

रहस्यप्रकरण”में कहा भी है कि “नास्तिस्वभाव परकी अपेक्षा रखते हैं और तुच्छ-नयके विषय हैं और व्यञ्जकका मुख देखा करते हैं । यह वस्तुका वैचित्र्य शराव तथा कपूरके गंधमें देखा हुआ है अर्थात् जैसे शराव तथा कपूरका गंध व्यञ्जक विना प्रकट नहीं होता वैसे नास्तिस्वभाव भी व्यञ्जककी अपेक्षा रखता है ॥ १५ ॥

सूत्रम् । यत्स्वस्वानेकपर्यायैर्भिन्नं द्रव्यं तदेव हि ।

नित्यानित्यस्वभावेन पर्यायपरिणामता ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—जो निज निज अनेक पर्यायोंसे भिन्न अर्थात् भेदक द्रव्य है वही नित्य तथा अनित्य स्वभावसे पर्यायकी परिणामता है ॥ १६ ॥

व्याख्या । यत्स्वस्वानेकपर्यायैर्निजनिजक्रमभाविभिः श्यामत्वरक्तत्वादिभिर्भिन्नं भेदकं द्रव्यं वर्तते परन्तु तदेव हि निश्चितं द्रव्यं तदेव यत्पूर्वमनुभूतमभविष्यदित्येतत्तत्त्वज्ञानं यस्माज्जायते तन्नित्यस्वभावत्वं कथ्यते “तद्भावाव्ययं नित्यमिति” सूत्रम् । प्रध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वमित्यस्याप्यत्रैव पर्यवसानं केनचिद्रूपेणैव तद्व्यवस्थितेः । अनित्यस्वभावपर्यायपरिणित्येन प्राप्यते, येन च रूपेणोत्पादव्ययौ स्तः, तेन रूपेणानित्यस्वभावोऽस्ति । ततो नित्यानित्यस्वभावेन पर्यायपरिणामता ज्ञेया ॥ १६ ॥

व्याख्याः—जो अपने अपने क्रमभावी श्यामत्व तथा रक्तत्व आदि पर्यायोंसे भिन्न अर्थात् भेदक द्रव्य है परन्तु निश्चय करके वही द्रव्य है जो पहले अनुभवमें आया हुआ है और आगे अनुभवमें आवेगा, ऐसा तत्त्वज्ञान जिसके द्वारा होता है उसको नित्यस्वभाव कहते हैं । क्योंकि “तद्भावाव्ययं नित्यम्” “जिसके स्वभावका नाश न हो वही नित्य है” ऐसा सूत्र है । और ‘जो ध्वंसाभावका अप्रतियोगी है वह नित्य है’ इस लक्षणका भी यहां ही समावेश है; क्योंकि चाहे जैसा लक्षण करो अविनाशीस्वरूपकी स्थितिमें तात्पर्य है । और अनित्य स्वभावरूप पर्यायोंका परिणाम जिसके द्वारा प्राप्त होता है तथा जिस रूपसे उत्पत्ति और नाश होता है उस रूपसे अनित्यस्वभाव है । इस कारणसे नित्य और अनित्य स्वभावसे पर्यायोंका परिणाम जानना चाहिये ॥ १६ ॥

सूत्रम् । सद्रस्तु नाशयन् रूपान्तरेणाभाति यद्विधा ।

सत्सामान्यविशेषाभ्यां स्थूलार्थान्तरनाशता ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—विद्यमान वस्तुको रूपान्तरसे नष्ट करता हुआ जो द्रव्य दो प्रकारका भासता है सो सत् सामान्य और विशेषसे स्थूल अर्थान्तरकी नाशता होती है ॥ १७ ॥

व्याख्या । सद्रस्तु विद्यमानं वस्तु रूपान्तरेण पर्यायविशेषेण नाशयन्नवस्थान्तरमापादयन् यद्द्रव्यं द्विधा द्विभेदमेतद्रूपेण नित्यमेतद्रूपेणानित्यं चेति वैचित्र्यमाभाति । यथा च सत्सामान्यविशेषाभ्यां स्थूलार्थान्तरनाशतेति विशेषस्य सामान्यरूपत्वादनित्यत्वं, यथा घटनाशोऽपि

मृद्रव्यानुरोक्ते । तथा पुन सामान्यस्यापि स्थूलार्थान्तरघटादिनाशेऽनित्यत्व, घटनाशे मृत्तघट इति प्रतीति ॥ १७ ॥

व्याख्यानार्थः—विद्यमानवस्तुको रूपान्तरसे अर्थात् पर्यायविशेषसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें प्राप्त करते हुए जो द्रव्य दो भेदयुक्त अर्थात् इस रूपसे नित्य है और इस रूपसे अनित्य है इस प्रकार विचित्रतासे भासता है, वहां सत्सामान्य तथा विशेषसे स्थूल अर्थान्तरकी नाशता है जैसे—विशेषके सामान्यरूपसे अनित्यता है । दृष्टान्त—जैसे घटके नाश होनेपर भी मृत्तिकारूपकी अनुवृत्ति अन्य पर्यायोंमें होती है । और सामान्यके भी स्थूल पदार्थांतर घट आदिका नाश होनेपर अनित्यता है । क्योंकि घटरूपसे जो मृत्तिका है वह घट नहीं है ऐसी प्रतीति होती है ॥ १७ ॥

सूत्रम् । नित्यत्व नास्ति चेत्तत्र कार्यं नैवान्वय विना ।

कार्यकालेऽप्यसन् हेतुः परिणति विगोपयेत् ॥ १८ ॥

सूत्रभावाार्थ—यदि पदार्थकी नित्यता नहीं मानोगे तो अन्वयके विना कार्यकी उत्पत्तिही न होगी । और कार्यकालमें भी अनिद्यमान हेतु परिणामको नहीं होने देगा ॥ १८ ॥

व्याख्या । चेद्यदि नित्यत्व नास्त्यथ चैकान्तक्षणिकमेव स्वलक्षणमस्ति । तत्र त्वन्वय विना कार्यं नो निष्पद्यते । यत् कारणक्षण कार्यक्षणोत्पत्तिकाले च निर्हेतुकनाशमनुभवन्नसत्त्वेनास्ति । तच्च कार्यक्षणपरिणतिं कथं कुर्यात्, असत्कारणक्षण कार्यक्षण करोति तदा विनष्टकारणादनुत्पन्नकारणात्कार्यं निष्पन्नं युज्यते, तदा तु कार्यकारणभावस्य विडम्बना जायते । अवहित एव य कारणक्षण कार्यक्षण च कुरुत एव यदोच्यते तदापि रूपालोकमनस्कारादि क्षणरूपादीना विषय उपादानालोकादिकविषये च निश्चितमिति व्यवस्था कथं घटते । यतोऽन्वय विना शक्तिमात्रविषय उपादाननिमित्तविषयेऽपि कथयितुर्व्यवहारो न स्यात्, तस्मादुपादानमित्यन्वयित्वेन मन्तव्यम् । अथान्वयित्वं च तदेव नित्यस्वभावत्वं मन्तव्यमित्यर्थ ॥ १८ ॥

व्याख्यानार्थः—यदि पदार्थकी नित्यता नहीं है किन्तु सर्वथा क्षणिक रूपही पदार्थका लक्षण है ऐसा मानते हो तो इस माननेमें कारणके अन्वय अर्थात् किसी स्वभावकी अनुवृत्ति विना कार्य नहीं सिद्ध हो सकता । क्योंकि कारणका क्षण कार्यक्षणके उत्पत्ति कालमें भी हेतुरहित होकर नाशका अनुभूति करता हुआ असत् रूप ही है और वह असत् कारणक्षण कार्यक्षणका परिणाम कैसे करेगा ? क्योंकि जब असत् कारणक्षण ही कार्य क्षणकी उत्पत्तिको करेगा तब विनष्ट कारणसे कार्य उत्पन्न होता है अथवा अनुत्पन्न (नहीं पैदा हुए) कारणसे कार्य उत्पन्न होता है ऐसा कथन करना ठीक होता है । और नष्ट हुए तथा अनुत्पन्न कारणसे कार्य सिद्ध होता है ऐसा कथन करोगे तो कार्यकारणभावका मानना यह विडम्बनाही है । **भावार्थ**—नष्ट तथा अनुत्पन्न कारण कार्यको कैसे कर

सकता है? अपि तु नहीं कर सकता। अब यदि यह कहो कि अवहित जो कारणक्षण है वही कार्यक्षणको भी करता है तब भी रूपका देखना तथा मनका व्यापार करना इत्यादिके क्षणसहित रूपादिके विषयमें तथा उपादानकारण जो आलोकादि हैं उनके विषयमें कारणक्षण निश्चित है यह व्यवस्था कैसे घटित हो सकती है? क्योंकि, अन्वयके बिना शक्तिमात्रके विषयमें और उपादान निमित्तके विषयमें भी कथन करनेवालेका व्यवहार नहीं हो सकता। क्योंकि, वह उपादानता तो क्षणिक होनेसे उसी क्षणमें नष्ट होगयी फिर कार्यदशामें (घटरूप अवस्थामें) उपादान कारण (मृत्तिका) है यह व्यवहार कैसे हो सकता है?। इस लिये उपादान कारणकी कार्यदशामें अनुवृत्ति रहती है यह वार्त्ता अवश्य मन्तव्य है। जो अन्वयपना है वही नित्य स्वभावत्व है ऐसा मानना चाहिये यह अर्थ है ॥ १८ ॥

सूत्रम् । सर्वथा नित्यता नास्ति न स्यादर्थक्रिया तदा ।

दलस्य कार्यरूपत्वानुत्पन्नत्वं विषीदति ॥ १९ ॥

सूत्रभावार्थः—और सर्वथा कारणरूपकी नित्यता भी नहीं है क्योंकि सर्वथा नित्यता माननेमें अर्थक्रिया न होगी; क्योंकि कारणके सर्वथा नित्यपनेमें कार्यरूपसे उत्पत्ति नहीं घटित होती है ॥ १९ ॥

व्याख्या । यदि सर्वथा नित्यस्वभावो मन्तव्यः अथाप्यनित्यता अनित्यतास्वभावः सर्वथा नास्त्येवमङ्गीकारेऽर्थक्रिया न स्यादर्थक्रिया न घटते । यतो दलस्य कारणस्य कार्यरूपत्वानुत्पन्नत्वं विषीदति, कारणस्य कार्यरूपता परिणतिः कथंचिदुत्पन्नत्वमेवागतम्, सर्वथा अनुत्पन्नत्वं तु विषीदति विघटितं भवतीति । अपरं च यद्येवं कथ्यते कारणं तु नित्यमेव तद्वृत्ति कार्यं त्वनित्यमेव । तदा कार्यकारणयोरभेदसंबन्धः कया युक्त्या घटते । भेदसंबन्धाङ्गीकारे तत्संबन्धान्तरादिगवेषणया अनवस्था भवेत् । ततः कथंचिदनित्यस्वभावोऽपि माननीयः । इति भावार्थः ॥ १९ ॥

व्याख्यार्थः—यदि सर्वथा (एकान्तरूपसे) नित्य स्वभावही माना जाय और अनित्य स्वभाव सर्वथा नहीं है ऐसा माना जाय तो अर्थक्रिया नहीं हो सकती। कारण कि कारणके कार्यरूप अनुत्पन्नता विघटती है अर्थात् कारणकी जो कार्यरूपसे परिणति है उससे कथंचित् उत्पन्नता ही आई और अनुत्पन्नता तो सर्वथा संगत नहीं होती है। और यदि ऐसा कहते हो कि कारण तो नित्यही है और उसमें रहनेवाला कार्य अनित्य ही है तब कार्य और कारणका जो अभेदसंबन्ध माना गया है वह किस युक्तिसे सिद्ध होगा? क्योंकि नित्यता तथा अनित्यताका अभेदसंबन्ध नहीं हो सकता। तथा यदि कार्य और कारणका भेदसंबन्ध मानो तो वह संबन्ध किस संबन्धसे रहता है? जो संबन्ध उसमें रहता है वह किस संबन्धसे है?

इत्यादि सन्ध्योंके खोज करनेसे अनवस्था दोष हो जायगा । इस लिये कथंचित् अनित्य स्वभाव भी अवश्य माननेके योग्य है । इस प्रकार श्लोकका तात्पर्य हे ॥ १९ ॥

सूत्रम् । स्वभावैकाश्रयत्वे त्वेकस्वभावविलासता ।

अनेकार्थप्रवाहेणानेकस्वभावसंभवः ॥ २० ॥

सूत्रभावार्थः—स्वभावोंका एकाश्रय स्वीकार करनेपर एक स्वभावकी विलासता है तथा अनेक स्वभावयुक्त पदार्थके प्रवाहसे अनेक स्वभावका भी संभव है ॥ २० ॥

व्याख्या । स्वभावैकाश्रये स्वभावो हि सहभावी धर्मस्तस्याधारत्वे स्वभावैकाश्रयत्वे त्वेक स्वभावो यथा रूपरसगन्धस्पर्शानामाधारो घटादिवरेक कथ्यते । नानाधर्माधारत्व एकस्वभावता नानाक्षणानुगमनत्वे नित्यस्वभावता इत्ययं विशेषो ज्ञेयः । मृदादिद्रव्यस्य स्थासक्रोशकुसूलादिका अनेके द्रव्यप्रवाहा सन्ति तेनानेकस्वभावप्रकाशे पर्यायत्वेनादिष्ट द्रव्य क्रियते, तथा आकाशादिद्रव्येष्वपि घटाकाशादिभेदेनैतत्स्वभावदुर्लभता नास्ति । एवमनेकार्थप्रवाहेणानेक स्वभावसंभव इति ॥ २० ॥

व्याख्यार्थः—स्वभावका अर्थ है द्रव्यके साथ होनेवाला धर्म, उसके आधारको एक माननेसे एक स्वभाव होगा । जैसे—रूप, रस, गंध तथा स्पर्शका आधार (आश्रय) घट आदि पदार्थ एक कहा जाता है । और नानाप्रकारके धर्मोंका आधार होनेपर एकस्वभावता अर्थात् नानाक्षणमें वही मृत्तिकारूप द्रव्यका जो अनुगमन (अनुवृत्ति) है वह नित्यस्वभावता है, यह विशेष जानना चाहिये । और मृत्तिका आदि द्रव्यके पिंड, कोश, कुसूल आदि अनेक द्रव्यप्रवाह होते रहते हैं इससे अनेकस्वभावयुक्त भी पर्याय रूपसे द्रव्य होता है । और जब ऐसा हुआ तब आकाश आदि द्रव्योंमें भी घट आकाश, मठ आकाश, आदि भेदोंसे नानास्वभावता (अनेक स्वभावपना) दुर्लभ नहीं है । इस प्रकारसे नानाप्रकारके स्वभावयुक्त द्रव्यका प्रवाह होनेसे द्रव्य नानास्वभावका धारक है, यह भी पक्ष संभव है ॥ २० ॥

सूत्रम् । विनैकत्व विशेषो न सामान्याभावतो लभेत् ।

अनेकत्व विना सत्ता विशेषाभावतो नहि ॥ २१ ॥

सूत्रभावार्थः—एक स्वभावके अभावमें सामान्यके विना विशेषकी प्राप्ति नहीं होती और अनेक स्वभावके विना विशेषका अभाव होनेसे सत्ता (सामान्य) की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २१ ॥

व्याख्या । एकत्व विना एकस्वभाव विना सामान्याभावेन विशेषो न प्राप्यते । तथा अनेकत्व विना अनेकस्वभावमन्तरेण सत्ता अपि न घटते । तत एकानेकेति स्वभावद्वयमङ्गीकर्तुं योग्यम् । तथैव विशेषाभावतो नहीति, विशेषमन्तरा सामान्यं न, सामान्यमन्तरा विशेषो नेति । एष विना अनेकता न, अनेक विना नैकत्वमिति ॥ २१ ॥

व्याख्यार्थः—एकस्वभावके विना सामान्यका अभाव हो जावेगा और सामान्यके अभावसे विशेषकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसेही अनेक स्वभावके विना सर्ववर्तिनी सत्ता भी नहीं घटित होती । इस लिये एक तथा अनेक ये दोनों स्वभाव वस्तुके अंगीकार करने चाहिये । ऐसेही विशेषके विना सामान्यस्वरूप नहीं । अर्थात् विशेषके विना सामान्य और सामान्यके विना विशेष नहीं है । एकके विना अनेकता नहीं है और अनेकके विना एकत्व नहीं है ॥ २१ ॥

सूत्रम् । संज्ञासंख्यादिभेदेन भेदस्वभावता द्वयोः ।

अभेदवृत्तिलक्षणं यत्तदेवाभेदभावनम् ॥ २२ ॥

सूत्रभावार्थः—संज्ञा तथा संख्या आदिके भेदसे गुण गुणी आदिके भेद स्वभाव है । और अभेदवृत्ति जो लक्षण है वही अभेद-भावन है ॥ २२ ॥

व्याख्या । द्वयोरिति गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः कारककारकिनोः संज्ञासंख्यादिभेदेन कृत्वा भेदस्वभावता ज्ञातव्या । यदभेदवृत्तिलक्षणं भेदरहितवृत्तेर्लक्षणवत्त्वं तदेवाभेदस्वभावोऽभेदभावनं ज्ञेयम् ॥ २२ ॥

व्याख्यार्थः—सूत्रमें “द्वयोः” यह जो पद है इससे गुण गुणी, पर्याय पर्यायी, तथा कारक और कारकी (जिसमें कारकका व्यवहार होता है उसे कारकी कहते हैं) इन दो दोके संज्ञा, संख्या आदिके द्वारा भेद स्वभावपना जानना चाहिये । और भेदवृत्तिसे रहित जो लक्षण है उस लक्षणसहितको ही अभेदस्वभाव जानना चाहिये ॥ २२ ॥

सूत्रम् । भेदं विनैकतामीषां ततो व्यवहृतिक्षयः ।

अनभेदात्कथं बोधो ह्यनाधारवतोर्द्वयोः ॥ २३ ॥

सूत्रभावार्थः—भेदस्वभावके विना इन सब द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकता हो जायगी, और सबकी एकता होनेसे व्यवहारका अभाव होगा तथा अभेदके विना आधार-शून्य दोनों गुणपर्यायोंका बोध भी कैसे होगा ॥ २३ ॥

व्याख्या । भेदं विना भेदस्वभावं विना अमीषां सर्वद्रव्यगुणपर्यायाणामेकता ऐक्यं स्यात् । तेन कृत्वा इदं द्रव्यम्, अयं गुणः, अयं पर्यायः, इति व्यवहारस्य विरोधो जायते । अन्यच्चाभेदस्वभावो यदि न कथ्यते तदा अनाधारवतोर्निराधारयोर्द्वयोर्बोधः कथं भवेत् । आधाराधेययोरभेदं विना द्वितीयः संबन्धो न घटते । अत्र प्रवचनसारगाथा “पविभक्तपदे-सत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स । अणत्तमत्तभावो ण तद्भवं भवदि कधमेगं । ११” ॥ २३ ॥

व्याख्यार्थः—भेद स्वभावके विना इन सब द्रव्य, गुण तथा पर्यायोंकी एकता हो जायगी और सबकी एकता होनेसे यह द्रव्य है, यह गुण है, तथा यह पर्याय है इत्यादि व्यवहारका विरोध होता है और यदि अभेद स्वभाव नहीं कहते हैं तो आधाररहित दोनोंका बोध भी कैसे होवे क्योंकि आधार तथा आधेयके अभेद विना दूसरा संबन्ध

घटित नहीं होता है । इस विषयमें प्रवचनसारकी गाथा भी है । उसका भाव यह है कि प्रविभक्तप्रदेशता है वही पृथक्त्व है ऐसा श्रीवीरभगवान्का उपदेश है और जो अन्यत्व है वह अतद्भाज है अर्थात् उसका स्वभाव नहीं है । क्योंकि वह उसमें नहीं होता इसलिये दोनों एक नहीं है अर्थात् गुण गुणी रूपतासे एकता नहीं है ॥ २३ ॥

सूत्रम् । अवस्थितात्मरूपस्याविर्भावाद्भव्यमिष्यते ।

सदाश्रयन्पर भावमभवजितरः स्वतः ॥ २४ ॥

सूत्रभावार्थः—अवस्थित द्रव्यभावके आविर्भावसे भव्यस्वभाव है तथा सदा परभावका आश्रय करता है वह स्वभावसे इतर (भिन्न) अर्थात् अभव्य स्वभाव है ॥ २४ ॥

व्याख्या । अवस्थितात्मभावस्यानेककार्यकारणशक्तिक यदवस्थितद्रव्य तस्यावस्थित-द्रव्याविर्भावात्क्रमिक विशेषान्ताविर्भावादभिव्यङ्ग्य भव्य भव्यस्वभावमिष्यते । अथ सदा त्रिकाल पर भाव परद्रव्यानुगतित्व श्रयन्परस्वभावेन परिणमन्त्य स्यात्तत्स्वत स्वभावत इतरोऽभव्यस्वभाव इति कथ्यते । १०। 'अण्णोण पविसत्ता जिता ओगासअण्णमण्णस्स । मेल-ताविय णिच्च सगसगभाव ण विजहति । १।' इति भावस्वभावार्थो ज्ञेय ॥ २४ ॥

व्याख्यानार्थः—अनेक कार्यकारणकी शक्तियुक्त जो अवस्थित द्रव्य है उस अवस्थित (विद्यमान) द्रव्यके क्रमसे जो आविर्भाव उससे जानने योग्य भव्यस्वभाव माना गया है । ९। और सदा (त्रिकालमे) जो परस्वभावसे परिणमन करता है वह स्व (अपने) भावसे भिन्न अर्थात् अभव्य स्वभाव कहा जाता है । १०। और परस्पर एक दूसरेके प्रदेशमें प्रवेश करते हुए तथा परस्पर अवकाशको देते हुए एव नित्य मिलते हुए भी द्रव्य अपने अपने भावको नहीं छोड़ते हैं । यह भावस्वभावका अर्थ जानना चाहिये ॥ २४ ॥

सूत्रम् । शून्यत्व कृतकार्येण भव्यभावं विना भवेत् ।

अभव्यत्व विना द्रव्यान्तरता द्रव्ययोगतः ॥ २५ ॥

सूत्रभावार्थः—भव्यस्वभावके विना असत्यकार्यके साथ योग होनेसे शून्यता होती है । और अभव्य स्वभावके विना द्रव्यके सयोगसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति होती है ॥ २५ ॥

व्याख्या । भव्यभाव विना भव्यस्वभावमन्तरेण कृतकार्येणासत्यकार्येण योगे शून्यत्व शून्यवत्त्व भवेत् । किन्तु परभावे भवेत्तहि स्वभावे च भवेत्तदा भव्यत्व स्यादिति । अथ पुन रभव्यत्व विना अभव्यस्वभावानङ्गीकारे द्रव्ययोगत द्रव्यस्य सयोगाद्द्रव्यान्तरता द्रव्यान्यत्व जायते । यस्माद्धर्माधर्मादीना जीवपुद्गलयोरेकावगाहनावगाढकारणेन कार्यसकरोऽभव्यस्व भावेनैव न भवेदिति । तत्तद्द्रव्याणा तत्तत्कार्यहेतुताकल्पनमप्यभव्यत्वस्वभाववर्धितमेवास्ते । आत्मादे स्ववृत्त्यनन्तकार्यजननशक्त्या भव्य , तत्तत्सहकारिसमवधानेन तत्तत्कार्योपधायक ताशक्तिश्च तथा भव्यतेति । तथा भव्यतयैवानतिप्रसङ्ग इति तु हरिभद्राचार्य ॥ २५ ॥

व्याख्यानार्थः—भव्यस्वभावके विना असत्यकार्यका योग होनेसे शून्यता नूतना होवे । तात्पर्य यह कि परभावमें नहीं होवे और स्वभावमें हो तब भव्य भाव होता है । और अभव्य

स्वभावके न अंगीकार करनेपर द्रव्यके संयोगसे अन्यद्रव्यता होती है । इससे धर्म अधर्म आदि द्रव्योंके तथा जीव और पुद्गलके एक प्रदेशमें अवगाहना रूप अवगाढ कारणसे जो कार्यसंकरता नहीं होती है सो अभव्यस्वभावसेही नहीं होती है । और उन उन द्रव्योंके उन उन द्रव्योंके कार्योंका हेतुरूपसे जो कल्पन है वह भी इस अभव्यस्वभावमें ही गर्भित है । तात्पर्य यह कि आत्मा आदि द्रव्योंके अपनेमें रहनेवाले अनन्त कार्योंको उत्पन्न करनेकी जो शक्ति है उस शक्तिसे तो भव्यभाव है और उन उन सहकारी कारणोंके सन्निधानसे उन उन कार्योंकी उत्पादक जो शक्ति है वह अभव्य भाव है । और ऐसा माननेसे भव्यभावके साथ अतिव्याप्ति नहीं होती है । यह हरिभद्राचार्यजी कहते हैं ॥ २५ ॥

सूत्रम् । पारिणामिकस्वभावः परमभाव आहितः ।

विनैनं मुख्यता द्रव्ये प्रसिद्ध्या दीयते कथम् ॥ २६ ॥

सूत्रभावार्थः—पारिणामिकस्वभाव जो है उसको परमभाव कहते हैं । इस परमभावके बिना द्रव्यमे प्रधानता प्रसिद्धरूपसे कैसे दी जावे ? ॥ २६ ॥

व्याख्या । स्वलक्षणीभूतपारिणामिकभावप्रधानतया परमभाव आहितः । यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा । परिणामे भवः पारिणामिकः स चासौ स्वभावश्च पारिणामिकस्वभावः । परं प्रकृष्टं ज्ञानादि परम तच्च भावः परमभाव इत्यनेनात्मा ध्वन्यते । यदि हि परमभावः स्वभावो न कथ्यते तदा द्रव्यविषये प्रसिद्धतया प्रसिद्धरूपं कथं दीयते । अनन्त-धर्मात्मकवस्तुन एकधर्मपुरस्कारेणालाप्यते यत्तदेव परमताया लक्षणं ज्ञेयमिति । एते एकादश स्वभावा सर्वेषां द्रव्याणां धारणीयाः । एनं परमभावं विना द्रव्ये द्रव्यविषये मुख्यता प्राधान्यं प्रसिद्ध्या प्रसिद्धरूपेण कथं दीयत इत्येवमिति ॥ २६ ॥

व्याख्यार्थः—अपने निजलक्षणभूत पारिणामिक भावकी प्रधानतासे परम भाव कहा गया है । जैसे—आत्मा ज्ञानस्वरूप है । परिणाममे जो हो उसे पारिणामिक कहते हैं । पारिणामिक ऐसा जो स्वभाव वह पारिणामिक स्वभाव है । उत्कृष्ट जो ज्ञान आदि सो परम है । परम जो भाव वह परम भाव है और इससे आत्मा ध्वनित होता है । ११। यदि परम भावको स्वभाव नहीं कहै तो द्रव्यमे प्रसिद्धरूप कैसे दिया जावे ? क्योंकि, अनन्तधर्मवाले द्रव्यको जो एक धर्मको मुख्य करके उससे कहा जावे वही परम भावका लक्षण है, ऐसा जानना चाहिये । ये पूर्वोक्त एकादश (ग्यारह) स्वभाव छहों द्रव्योंके विषयमें ही धारण करने चाहिये । इस अंतिम परमभावके बिना द्रव्यके विषयमें प्रधानता प्रसिद्ध रूपसे कैसे योजित कर सकते हो ? । इस रीतिसे अस्तित्व आदि सब भावोंकी आवश्यकता दर्शायी गई है ॥ २७ ॥

सूत्रम् । इत्थं च सामान्यतया स्वभावा

एकादशमी कथिताः श्रुतोक्ताः ।

आप्तोक्तिमभ्यस्य निरस्य जाड्य-

मर्तृक्रमाम्भोजरता भवन्तु ॥ २७ ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकार ये शास्त्रोक्त सामान्यरूपसे द्रव्योंके एकादश स्वभाव कहे गये हैं । अभ्यजीवोंको उचित है कि वे इनका पूर्णरूपसे अभ्यास करके और अपनी अज्ञानताको दूर करके श्रीजिनदेवोंके चरणकमलोंकी सेवामें तत्पर हों ॥ २७ ॥

यात्या । इत्थं च पूर्वोक्तप्रकारेण सामान्यतया सामान्यस्वभावसर्वद्रव्याधारतया स्वभावाद्वा द्रव्याणां प्रकृतयः अमी प्रत्यक्षप्रमाणविषयीकृता कथिता कण्ठतोऽर्थतश्चोक्ता श्रुतोक्ता श्रुते शास्त्र उक्ता प्रतिपादितास्तान्स्वभावान्सम्यक् स्वरुद्ध्या अभ्यस्य अभ्यासीकृत्य जाड्यमोर्त्य निरस्य दूरीकृत्याहृत्कामाम्भोजरता अर्हता तीर्थकृता नृमा पादास्त एवाम्भोजानि कमलानि तत्र रक्ता आसक्ता सादरा भवन्तु । श्रुतरोधस्यैतन्माहात्म्यं श्रीजिनभजनसादरत्वं मेवेति ध्येयम् । अत्र श्लेषेण भोजेति सन्दर्भकर्तुर्नामसङ्केतश्चेति । अथान्यग्रन्थाधिकारः । अस्तित्वम् १ वस्तुत्वम् २ द्रव्यत्वम् ३ प्रमेयत्वम् ४ अगुरुलघुत्वम् ५ प्रदेशत्वम् ६ चेतनत्वम् ७ अचेतनत्वम् ८ मूर्तत्वम् ९ अमूर्तत्वम् १० द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः । प्रत्येकमष्टावष्टौ । सर्वेषां दशसामान्यगुणानां मध्ये षट् सामान्यगुणाः, चत्वारः सामान्यविशेषगुणाः, ज्ञानदर्शनसुरसवीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवर्णाः, गतिहेतुत्वम्, स्थितिहेतुत्वम्, अवगाहनाहेतुत्वम्, वर्तनाहेतुत्वम्, चेतनत्वम्, अचेतनत्वम्, मूर्तत्वम्, अमूर्तत्वम्, द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः, प्रत्येकजीवपुद्गलयोः, इतरेषां प्रत्येक त्रयो गुणाः, अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणाः, निजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः । इति गुणाधिकारः ॥ २७ ॥

इति द्रव्यानुर्योगतर्कणाया कृतिभोजसागरप्रतिनिर्मितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—अभ्यजीव इस पूर्वोक्त प्रकारसे सामान्य स्वभाव संपूर्ण द्रव्योंके आधारसे प्रत्यक्ष प्रमाणके विषयमें लाये हुए शास्त्रमें कहे हुए द्रव्योंके एकादश ११ भेद जो कठसे तथा अर्थसे कहे हैं, उन स्वभावोंको पूर्ण रीतिसे अभ्यासगोचर करके तथा उनके अभ्यासद्वारा मूर्तताको दूर करके श्रीतीर्थंकरोंके चरणरूपी कमलोंमें विनयसहित आसक्त (तत्पर) हों । क्योंकि शास्त्रज्ञानका यही माहात्म्य है कि श्रीजिनेन्द्रकी सेवामें आठर करे, यह समझना चाहिये । यहां श्लेषसे भोज यह अर्थकारके नामका संकेत है । अत्र अन्य ग्रन्थका अधिकार करते हैं । अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ अगुरुलघुत्व ५ प्रदेशत्व ६ चेतनत्व ७ अचेतनत्व ८ मूर्तत्व ९ तथा अमूर्तत्व १० ये दश द्रव्योंके सामान्य गुण हैं । सामान्य गुण प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ रहते हैं । इन सत्र सामान्य गुणोंमें छ तो सामान्य गुण हैं और अन्तके चार सामान्य गुण भी हैं और विशेष गुण भी हैं । ज्ञान १ दर्शन २ सुर ३ वीर्य ४ स्पर्श ५ रस ६ गंध ७ वर्ण ८ गतिहेतुता ९ स्थितिहेतुता १० अवगाहनाहेतुता ११ वर्तनाहेतुता १२ चेतनत्व १३ अचेतनत्व १४ मूर्तत्व १५ अमूर्तत्व १६ ये द्रव्योंके सोलह विशेष

गुण हैं । इन सोलह विशेष गुणोंमें जीवके छः छः गुण है, पुद्गलके भी छः छः गुण है, और अन्य धर्मादि चारों द्रव्योंमें प्रत्येकके तीन तीन गुण है । अतः के चेतनत्व आदि चार गुण अपनी जातिकी अपेक्षासे सामान्य गुण है और परजातिकी अपेक्षासे विशेष गुण है । इस प्रकार गुणोंका अधिकार है ॥ २७ ॥

इति श्रीआचार्योपाधिधारक-पं० ठाकुरप्रसादप्रणीत-भाषाटीकासमलंकृतायां
द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ स्वभावाध्यायं व्याचिख्यासुराह ।

अब इस द्वादश (बारहवें) अध्यायमें स्वभावोंका निरूपण करनेकी इच्छासे यह श्लोक कहते हैं ।

सूत्रम् । चैतन्यं चेतना ख्याता त्वचैतन्यमचेतना ।

चेतनत्वं विना जन्तोः कर्माभावो भवेद्भुवम् ॥ १ ॥

सूत्रभावार्थः—चैतन्य चेतनाका नाम है और अचैतन्य अचेतनाका नाम है । इस चैतन्य नामक गुणके विना जीवके निश्चय करके कर्मोंका अभाव हो जावे ॥ १ ॥

व्याख्या । चित्ती संज्ञाने चेतति चेतयते वा चेतनस्तस्य भावश्चैतन्यं चेतनाव्यवहारश्चेतनस्वभावः १ तद्विपरीतमचैतन्यमचेतनस्वभावः २ चेतनत्वं विना जन्तोर्जीवस्य कर्माभावो भवेदिति रागद्वेपरूपं कारणं चेतना ज्ञानावरणादिकर्मणोऽभावः । यतः “स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुनाश्लिष्यते यथा गात्रम् । रागद्वेषक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम् । १ ।” एवं यदि जीवस्य सर्वथा अचेतनस्वभावः कर्माभाव एवेति ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—‘चित्ती’ धातुका संज्ञान अर्थात् जानना अर्थ है । जो स्वयं चेतै वा दूसरोंको चितावै उसको चेतन कहते हैं । उस चेतनका जो भाव (धर्म) है उसको चैतन्य कहते हैं । और चेतनाका जो व्यवहार है सोही चेतनस्वभाव है । १ । तथा चेतनस्वभावसे जो विपरीत है वह अचैतन्य वा अचेतन स्वभाव है । २ । इनमें चेतन स्वभावके विना अर्थात् चेतनस्वभाव न माननेपर जीवके कर्मोंका अभाव होगा, क्योंकि कर्मबन्धमें जो राग तथा द्वेषरूप कारण है वह चेतना अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका अभाव है अर्थात् चेतनासे ही कर्मोंका बन्ध होता है । क्योंकि जैसे तैल आदिसे लिप्त शरीरवाले जीवका शरीर धूलसे लिप्त हो जाता है, ऐसेही राग तथा द्वेषसे आर्द्राभूत (गीले हुए) जीवके ही कर्मोंका बन्धन होता है । इस कथनके अनुसार यदि जीवके चेतन स्वभाव न मानकर, सर्वथा अचेतन स्वभावही मानें तो कर्मोंका अभावही होगा ॥ १ ॥

सूत्रम् । अचेतन्यं विना जीवे चैतन्य केवल यदि ।

ध्यानध्येयेष्टशिष्याणां का गतिर्जायते तदा ॥ २ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि अचेतन स्वभावे रहित केवल चेतन स्वभावही जीवमे मानो तो ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाता है उसे ध्येय कहते हैं), गुरु और शिष्य इनकी क्या गति होगी? ॥ २ ॥

व्याख्या । अचेतन्य वर्जयित्वा केवल चैतन्य जीवे कथ्यते तदा अचेतनकर्मद्रव्योपश्लेषजनितचेतनाविकारादृते शुद्धसिद्धसादृश्य भवेदिति निश्चय । तदा ध्यानध्येयगुरुशिष्याणां का गतिर्न कापि गति । ध्यान कि ध्यायते, ध्येयश्च को भवति, को गुरु, शिष्योऽपि क इति व्यवस्थाभङ्ग स्यात्, सर्वशास्त्रव्यवहारश्चान्यथा स्यात् । शुद्धस्याविद्याया वृत्त्यापि क उपकारो भवति । तस्मादलवणा यवागूरितिवदचेतन आत्मा इदमपि कथंचित्कथन धर्मो जायते ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—यदि अचेतन स्वभावको छोड़कर, केवल चेतन स्वभावही जीवम कहा जावे तो अचेतन जो कर्मद्रव्य है उसके सन्धसे उत्पन्न जो चेतनामे विकार ह उसका अभाव हो जानेसे सन जीवोंमे शुद्ध जो सिद्ध जीन है उनकी समानता हो जाय अर्थात् अचेतन कर्मोंके अभावसे सब जीव सिद्धममान हो जावें ऐसा निश्चय है । ओर सन जीवोंके सिद्धता होनेपर ध्यान, ध्येय, गुरु और शिष्य इनकी क्या गति (व्यवस्था) हो? अपि तु कुछ भी गति नहीं अर्थात् ध्यान किसको ध्यावे? ध्यान करने योग्य कौन हो, गुरु कौन रहे और शिष्य भी कौन रहे? अर्थात् कोई न रहे । क्योंकि, सन जीन समान हो गये इसलिये ध्यान, ध्येय, गुरु और शिष्यका व्यवस्थाका नाश हो जाय ओर समस्त शास्त्रोंमे जो ध्यान आदिका व्यवहार होता है वह शास्त्रीय व्यवहार भी मिथ्या हो जाय । शुद्ध द्रव्यके अविद्याकी वृत्ति माननेसे भी क्या उपकार होता है? इसलिये लवणरहित यवागू (लपसी) के सदृश अचेतन आत्मा है यह भी बर्मे कथंचित् कसे नहीं होता है? अर्थात् होता ही है ॥ २ ॥

सूत्रम् । मूर्ति दधाति मूर्त्तत्वममूर्त्तत्वं विपर्ययात् ।

जीवस्य यदि मूर्त्तत्वं न तदा संसृतिक्षय ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—मूर्तिको धारण करता है इसलिये मूर्त्तत्व गुण है ओर जो मूर्तिको नहा धारण करे वह अमूर्त्तत्व गुण है । यदि जीवके मूर्त्तत्व गुण न मानो तो ससारका क्षय (नाश) हो जावे ॥ ३ ॥

व्याख्या । मूर्ति रूपरसगन्धस्पर्शादिमन्त्रिवेशता तस्या धरणस्वभावो मूर्त्तत्व मूर्त्तत्वभाव । तस्माद्विपरीत तदमूर्त्तत्वममूर्त्तत्वभाव । यदि जीवस्य कथंचिनमूर्त्ततास्वभावो न भवेत्तदा शरीरादिसन्ध विना गत्यन्तरसम्भो न भवति, गत्यन्तरसम्भ विना ससा रस्याभावो भवेदिति भाव ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिका जो एक स्थानमें सन्निवेश (स्थिति वा रचना) है वह मूर्ति है, उस मूर्तिको धारण करनेका जो स्वभाव है वह मूर्त्त स्वभाव है। और मूर्त्तसे जो विपरीत (विरुद्ध) अर्थात् मूर्त्तिको न धारण करनेका जो स्वभाव है वह अमूर्त्त स्वभाव है। यदि जीवके कथंचित् मूर्त्त स्वभाव न हो तो संसारका अभाव हो जायगा। क्योंकि जीवके शरीर आदिके संबन्ध विना एक गतिसे दूसरी गतिमें गमन नहीं होता। और शरीर आदि मूर्त्त है। मूर्त्तका अभाव जीवमें माननेसे शरीर आदिके संबन्धका अभाव माना गया और शरीरादि संबन्धके अभावमें अन्य गतिमें गमनका अभाव हुआ और जब अन्य गतिमें गमनका अभाव हुआ तो संसारका अभाव हुआ। अर्थात् जीवके एक गतिसे दूसरी गतिमें जो जाना है वही संसार है, अतः गत्यन्तरका अभाव हुआ तो संसारका नाश हुआ ही ॥ ३ ॥

सूत्रम् । अमूर्त्तत्वं विना मोक्षः सर्वथा घटते न हि ।

एकप्रदेशता चेहाखण्डबन्धनिवासता ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—यदि आत्माके सर्वथा मूर्त्त स्वभावही माना जावे तो आत्माको मोक्ष कदापि नहीं हो सकता। और अखण्डबन्धनिवासताको एकप्रदेशस्वभाव कहते हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या। अथ यदि लोकदृष्टव्यवहारेण मूर्त्तस्वभाव एव आत्मा अङ्गीक्रियते तदा मूर्त्तत्वं हेतुसहस्रैरप्यमूर्त्तत्वं न भवेत् । एवं सति मोक्षो न घटामाटीकते । तस्मान्मूर्त्तत्व-संबलितस्य जीवस्याप्यन्तरङ्गतया अमूर्त्तस्वभाव एव मन्तव्य इति । अथैकप्रदेशस्वभाव एकप्रदेशता सा चेहैकत्वपरिणतिरखण्डाकारबन्धस्य सन्निवेशस्तस्य निवासता भाजनत्वं ज्ञातव्यम् । निष्कर्षस्त्वयम्—अखण्डतया आकृतीनां सन्निवेशः परिणमनव्यवहारस्तस्य भाजनमाधाराधेयत्वमेकप्रदेशतोच्यत इति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—अब लोकके दृष्ट (देखे हुए) व्यवहारसे यदि आत्मा सर्वथा मूर्त्त स्वभावही है ऐसा मानते हो तब तो मूर्त्त स्वभावके हजारों हेतुओं (युक्तियों)से भी अमूर्त्तता नहीं होगी और जब आत्मा कभी अमूर्त्त न होगा तो मूर्त्त स्वभावके अभावके विना जीवके मोक्ष कदापि घटित नहीं हो सकता क्योंकि मूर्त्त शरीर आदिका संबन्ध जब नित्य बना हुआ है तब मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसलिये मूर्त्त स्वभावसे मिले हुए जीवके अंतरंगपनेसे अमूर्त्त स्वभाव भी मानना चाहिये। और एक प्रदेश स्वभाव जो है वही एक प्रदेशता है। उस एकत्व परिणतिको यहां अखंडाकार बन्धके सन्निवेशका भाजन जानना चाहिये। तात्पर्य यह कि अखंड रूपसे जो आकारोंका सन्निवेश अर्थात् परिणमन व्यवहार है उसका जो भाजन अर्थात् आधाराधेयपना है उसको एकप्रदेशता कहते हैं ॥ ४ ॥

सूत्रम् । भिन्नप्रदेशता सैवानेकप्रदेशता हि या ।

न चेदेकप्रदेशत्वं भेदोऽपि बहुधा भवेत् ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—और जो अनेकप्रदेशता है उसीका नाम भिन्नप्रदेशता है । अत्र यदि एकप्रदेशता न मानो तो भेद भी अनेक प्रकारका हो जायगा ॥ ५ ॥

व्याख्या । भिन्नप्रदेशता सैवानेकप्रदेशस्वभावता । भिन्नप्रदेशयोगेन तथा भिन्नप्रदेशकल्पनया अनेकप्रदेशव्यवहारकारणयोग्यत्वमुच्यते । अनेकप्रदेशस्वभावो न स्यात्तदा असख्यातप्रदेशादियोगेन बहुवचनवृत्त्यैकस्य धर्मास्तिकायस्यैक इति व्यवहारासम्भव स्यात्, बहुधा गृह्यो धर्मास्तिकाया इत्यादिव्यवहारापत्तिः स्यादिति ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—जो भिन्न प्रदेशता है वही अनेकप्रदेशस्वभावता है । तात्पर्य यह कि भिन्न प्रदेशके योगसे तथा भिन्न प्रदेशकी कल्पनासे अनेक प्रदेशके व्यवहारकारण-योग्यता कही जाती है । अत्र यदि एक प्रदेश स्वभाव न हो तो असख्यात प्रदेश आदिके योगसे बहुवचनकी प्रवृत्ति होनेसे एक जो धर्मास्तिकाय द्रव्य माना गया है उसके एक इस व्यवहारकी असम्भवा हो जायगी और धर्मास्तिकाय वस्तु है इत्यादि व्यवहारकी आपत्ति होगी **भावार्थ**—असख्यात प्रदेशोंके धारक धर्मास्तिकायको जो एक द्रव्य माना है वह एकप्रदेशत्वके न माननेसे एक न रहेगा ॥ ५ ॥

सूत्रम् । निष्कम्पत्वं सकम्पत्वं चिन्तानेकप्रदेशताम् ।

कथं च घटतेऽणूना सङ्गतिः सर्वदेशजा ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—तथा अनेक प्रदेश स्वभावके बिना निष्कम्प और सकम्प व्यवहार नहीं हो सकता और आकाशादि द्रव्यके अणुओंका सर्वत्र तथा देशज संयोग भी किस प्रकार घट सकता है ॥ ६ ॥

व्याख्या । अनेकप्रदेशस्वभावो द्रव्यस्य यत्ति न कथ्यते तदा घटाण्यवयविनो देशतः सकम्पा देशतो निष्कम्पा दृश्यन्ते ते च कथं सम्भवन्ति । अथावयवकम्पेऽप्यवयवी निष्कम्प इति कथ्यते तदा चलतीति प्रयोगासम्भवं भवेत् । देशवृत्तिरूपस्य यथा परम्परामयन्धोऽस्ति तद्वद्देशवृत्तिकम्पाभावस्यापि परम्परामयन्धोऽस्ति । तस्माद्देशतश्चलता देशतोऽचलता चेत्यस्यलित्व्यवहारेणात्रैकप्रदेशस्वभावो मन्तव्यः । तथा चानेकप्रदेशस्वभावो नाङ्गीक्रियते तदा आकाशादिद्रव्यस्याणुसङ्गतिः परमाणुसंयोगः कथं घटते । सर्वत्रो देशज इति ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—अत्र यदि द्रव्यका अनेक प्रदेश स्वभाव नहीं कहते हो तो घट आदि अवयवी किसी देशमें कम्पन (संचलन) सहित है और किसी देशमें रूपनरहित है ऐसे देख पड़ते हैं सो ये कम्पमें सहित तथा रहित क्रमे हो सकते हैं । क्योंकि यदि एकही प्रदेश है तो वह या तो सकम्प ही होगा या निष्कम्प ही होगा । अत्र कदाचित् यह कहो कि एक प्रदेशस्वभाव अवयवके रूपसहित होनेपर भी अवयवी निष्कम्प है इसलिये सकम्प तथा निष्कम्प दोनों व्यवहार हो सकते हैं तो अवयवी (घट आदि) चलता है यह जो प्रयोग है सो होरी नहीं सँकगा । क्योंकि, जैसे एकप्रदेश अवयववृत्ति

कंपनका तुम परम्परासंबन्ध मानकर, उससे अवयवीको सकंप कहते हो उसी प्रकार एकदेशवृत्ति जो निष्कंप है उसके परंपरासंबंधसे अवयवीमें निष्कंप भी कहोगे । इसलिये एकदेशसे अवयवी चलता है और एक प्रदेशसे अवयवी नहीं चलता यह जो अखंडित व्यवहार है इससे द्रव्यका अनेक प्रदेश स्वभाव है ऐसा मानना योग्य है । और यदि द्रव्यका इसी प्रकार अनेक प्रदेश स्वभाव अंगीकार नहीं करते हो तो आकाश आदि द्रव्यका सर्वज तथा देशज परमाणु संयोग कैसे बन सकता है? । अब देशज तथा सर्वज संयोग क्या है? इसको अग्रिम श्लोकसे स्पष्ट करते हैं ॥ ६ ॥

सूत्रम् । देशसकलभेदाभ्यां द्विधा दृष्टा जगत्स्थितिः ।

प्रत्येकं दूषणं तत्र ब्रूते वृत्तिश्च संमतेः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—देश तथा सर्वके भेदसे जगतकी स्थिति दो प्रकारकी देखी गई है । इनमेसे एक किसी पक्षके माननेसे संमति ग्रंथकी वृत्ति दूषण देती है ॥ ७ ॥

व्याख्या । एका वृत्तिर्देशतोऽस्ति यथा कुण्डलेनेन्द्रस्य, द्वितीया सर्वतोऽस्ति यथा समानवस्त्रद्वयस्य, तत्र प्रत्येकं दूषणं संमतिवृत्तौ कथितम् । यतः परमाणोराकाशादेश्व देशवृत्तिमङ्गीकुर्वतामाकाशादिकानां प्रदेशानङ्गीकारेऽप्यागच्छति । अथ च सर्वतोवृत्तिमङ्गीकुर्वतां परमाणुराकाशादिप्रमाणत्वं लभते । उभयाभावे तु परमाणोरवृत्तित्वं भवेत् । यावद्विशेषाभावस्य सामान्याभावनियतत्वादित्यादि ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—एक वृत्ति तो देशसे (एक देशसे संबंध रखनेवाली) है जैसे कुण्डलके साथ इन्द्रकी और दूसरी सर्व देशसे है जैसे समान आकारवाले दो वस्त्रोंके । उनमे प्रत्येक पक्षमे संमति ग्रंथकी वृत्तिमे दूषण कहा गया है । क्योंकि परमाणु और आकाश आदिके एकदेशवृत्ति स्वीकार करनेवालोंके जो संयोग है वह यदि आकाश आदिके प्रदेश न माने जावें तो भी हो सकता है । और सर्व देशसे वृत्ति स्वीकार करनेवालोंके मतसे परमाणु आकाश आदिकी प्रमाणताको प्राप्त होता है अर्थात् जितना बड़ा आकाश है उतनाही बड़ा परमाणु भी होगा । और एकदेश तथा सर्वदेश दोनोंही वृत्तियोंको न मानें तो परमाणुकी अवृत्ति ही होगी । एकदेश व सर्वदेश कोई वृत्ति न रहनेसे सामान्यसे वृत्तिका अभाव हो जायगा । क्योंकि समस्त विशेषाभाव सामान्यके अभावके समनियत है इत्यादि ॥ ७ ॥

सूत्रम् । स्वभावादन्यथाभावो विभावोऽपि महद्व्यथा ।

नानादेशादिकर्मोपाधिर्यतो घटते कथम् ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—स्वभावसे अन्यथा भावरूप विभाव भी महाव्यथारूप है । क्योंकि इस विभाव स्वभावके विना जीवके नाना देशकाल आदिसे उत्पन्न कर्मोपाधि कैसे घटित हो सकती है? अर्थात् नहीं घटित हो सकती ॥ ८ ॥

व्याख्या । स्वभावाद् योऽन्यथाभाव स विभावस्वभाव कथ्यते । इति तु महद्ब्रह्मथारूप
लगति । एतच्च विभावस्वभावस्याङ्गीकरण विना जीवस्य नानादेशादिकर्मोपाधि कथं घटते ।
नानादेशाद्यनियतदेशकालादिविपाकिकर्मोपाधिर्जीवस्थालम्ना युज्यते । तत उपाधिसवन्धयो-
ग्यानादिविभावस्वभाव इति ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—निजस्वभावसे जो द्रव्यका अन्यथाभाव है उसको विभावस्वभाव
कहते हैं । सो यह तो महाव्याधिरूप लगता है । और इस विभावस्वभावके अंगीकार
न करनेसे जीवके नानादेशादि कर्मोपाधि कैसे बन सकती है ? तात्पर्य यह कि विभा-
वस्वभावके स्वीकार विना अनियत देश और काल आदिके सन्धसे विपाकीभूत (फल
देनेमें अभिमुख) जो कर्म है उन कर्मोंरूप जो उपाधि है वह जीवके साथ नहीं लग
सकती । इस कारणसे उपाधिसंयोगके योग्य अनादि विभाव—स्वभाव भी मानना
योग्य है ॥ ८ ॥

सूत्रम् । शुद्धो भावः केवलमन्यश्चोपाधिकः स्मृतः ।

शुद्ध विना न मुक्तिश्च विनाऽशुद्ध न लेपता ॥ ९ ॥

सूत्रभावाधः—केवल निजस्वरूप मात्रसे जो स्थिति है वह शुद्धभाव है और
उपाधिसे उत्पन्न हुआ अशुद्ध भाव है । शुद्ध भावके विना मुक्ति नहीं होती और
अशुद्ध भावके विना जीवके कर्मोंका बन्धन नहीं होता है ॥ ९ ॥

व्याख्या । केवलत्व शुद्धो भाव , उपाधिभावरहितान्तर्भावपरिणतत्व शुद्धस्वभावत्वम् ।
अन्योऽशुद्धभाव औपाधिक , उपाधिजनितवहिर्भावपरिणमनयोग्यता ह्यशुद्धस्वभावता ।
यदि शुद्धभावाङ्गीकारत्व न क्रियते तदा मुक्तिर्न घटते, पुनश्चाशुद्धभावाङ्गीकारत्व न
क्रियते तदा कर्मलेपो न घटते । अतएव शुद्धस्वभावस्य कदाप्यशुद्धता न स्यादशुद्धस्वभा-
वस्यापि पश्चाच्छुद्धता न स्यात् । एवमेकान्तादिमत निरस्योभयस्वभावाङ्गीकरणे न किमपि
दूषण भवेत् ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—केवलपना जो है वह शुद्धभाव है अर्थात् उपाधिभावसे रहित
केवल द्रव्यके अन्तर्गत भावका जो परिणाम है वह शुद्ध स्वभाव है । और इससे अन्य
अशुद्ध भाव है । वह उपाधिसे उत्पन्न होता है । अर्थात् उपाधिसे उत्पन्न जो वाह्यभाव है
उस वाह्य भावके परिणमनरूप जो योग्यता है वही अशुद्ध स्वभाव है । अब यदि शुद्ध
भावका स्वीकार न करें तो मुक्ति नहीं हो सकती है और यदि अशुद्ध स्वभावको नहीं
मानें तो जीवके कर्मोंका सन्ध नहीं बनता है । इसी कारणसे शुद्ध स्वभावके तो कभी
अशुद्धता नहीं होती है और अशुद्ध स्वभावके कभी शुद्धता नहीं होती । इस
प्रकार एकान्तवाद आदिका खडन करके शुद्ध और अशुद्ध इन दोनों स्वभावोंके माननेमें
कोई दूषण नहीं है ॥ ९ ॥

सूत्रम् । एकत्र निश्चितो भावः परत्र चोपचर्यते ।

उपचरितभावः स विनैनं नो परज्ञता ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—एक स्थानमें निश्चित जो भाव है वह दूसरे स्थानमें उपचारमें लाया जाता है । इसीको उपचरित भाव कहते हैं । इसके बिना परका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ १० ॥

व्याख्या । एकत्र निश्चितो भावः नियमितैकस्थानस्य भावस्य परस्थानोपचरणेनोपचरित-स्वभावता जायते । स उपचरितस्वभावो यदा नाङ्गीक्रियते तदा स्वपरव्यवसायिज्ञानवानात्मा किमु कथ्यते । ततो ज्ञानस्य स्वविषयत्वं त्वनुपचरितमेवास्ते । अथ परविषयत्वं तु परापेक्षया प्रतीयमानत्वं, तथा परनिरूपितसंबन्धत्वेनोपचरितमस्ति । इत्थमुपचरितस्वभावता द्विप्रकारास्ति ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जो भाव एक स्थानमें निश्चित है अर्थात् जिस स्वभावकी सत्ता एक पदार्थमें नियमसे है उस स्वभावका जब अन्य स्थानमें उपचार (आरोप) करते हैं तब उसको उपचरित-स्वभावता हो जाती है । उस उपचरित स्वभावको यदि नहीं स्वीकार करें तो आत्मा अपने और परके (दोनोंके) विषयमे व्यवसायात्मक ज्ञानका धारक है यह कैसे कहा जावे ? । इस कारणसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानके स्वविषयत्व अर्थात् अपना जो ज्ञान है वह तो अनुपचरित (उपचाररहित) ही है और परकी अपेक्षासे जो जानता है वह परनिरूपित संबन्धसे उपचरित है । और इस प्रकार जो उपचरित स्वभाव है वह दो प्रकारका है । यही आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥ १० ॥

सूत्रम् । कर्मजः सहजश्चैतौ मूर्त्ताचेतनभावयोः ।

जन्तोराद्यो द्वितीयोऽपि सिद्धस्य विमलात्मनः ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—एक कर्मजनित उपचरितभाव है और दूसरा सहज उपचरित-भाव है । ये दोनों मूर्त्त तथा अचेतन भावमें होते हैं । और प्रथम भेद तो संसारी जीवके होता है और दूसरा निर्मल आत्माके धारक सिद्ध जीवोंके होता है ॥ ११ ॥

व्याख्या । कर्मज एकः सहजो द्वितीय एतौ द्वौ भेदौ मूर्त्ताचेतनभावयोः स्तः । तत्र पुद्गलसंबद्धस्य प्राणिनो मूर्त्तत्वमस्ति । अथ चाचेतनत्वमप्यस्ति तत्तु यज्जीवस्य कथ्यते प्रथमं तत्र तु गौर्वाहीक इति न्यायानुसरणेनोपचरितोऽस्ति कर्मजनितत्वात् । तस्मादत्र यत्कर्मजनितोपचरितस्वभावत्वं तज्जन्तोर्द्वितीयोऽपि सहजोपचरितस्वभावोऽपि सिद्धस्य निर्मलस्य । परज्ञत्वं तु तत्र किमपि कर्मोपाधिजमस्ति तन्न स्यात् । तदुक्तमाचारसूत्रे “अकम्मस्स ववहारो ण विज्झइ कम्मणा उवाहि जायत्तिति” एवमेते दश स्वभावा नियतद्रव्यवृत्तयः सन्तीति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—प्रथम उपचरित स्वभाव कर्मसे उत्पन्न होता है और द्वितीय उपचरितभाव सहज (स्वाभाविक) है । ये दोनों उपचरित भावके भेद मूर्त्त और अचेतनके

विषयमे होते है । उनमे पुद्गलसे सप्रद प्राणीके मूर्तत्व हे और अचेतनत्व भी हे ओर इसीलिये प्रथम उपचरित भाव जीवके हे । और यह कर्मजनित होनेसे “गौर्वाहीक ” ‘यह बोझा डोनेवाला गो (पशु) है” इस न्यायके अनुसार उपचरित हे । इसलिये यहा, जो कर्मजनित उपचरित स्वभावता हे सो जीवके कही गई है । ओर दूसरा जो सह-जोपचरित स्वभाव है वह निर्मल (कर्मरहित) सिद्ध जीवके है । सिद्धोंमे परका जो जानना है वह किसी कर्मकी उपाधिसे है ऐसा जो कहो तो वह ठीक नहीं है । क्योंकि आचाराङ्ग सूत्रमे कहा है कि, “कर्मरहित जीवके व्यवहार नहीं रहता है, क्योंकि उपाधि जो है सो कर्मसे होती है” । इस प्रकार ये दश १० स्वभाव पूर्वोक्त चेतनत्व आदि नियत द्रव्यवृत्ति हैं ॥ ११ ॥

सूत्रम् । अमी दश विशेषेण स्वभावाश्चैकविंशतिः ।

सर्वे पुद्गलजीवाना पञ्चदशाप्यनेहस ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—ये दश स्वभाव और पूर्वकथित सत्तादि एकादश ये सत्र मिलके २१ भाव पुद्गल और जीवके हैं ओर कालके पन्दरह १५ स्वभाव है ॥ १२ ॥

व्याख्या । अमी दश स्वभावा पूर्वाक्ता एकादश स्वभावा उभये मिलिता एकविंशति सत्या जायन्ते । तत्र पुद्गलाना जीवाना च प्रत्येकमेकविंशति स्वभावा भवन्ति । तथा अनेहस कालद्रव्यस्य पञ्चदश भावा भवन्ति । मूलत एकविंशतिभावा सन्ति । तेभ्य पद् निष्कास्यन्ते तदा पञ्चदश अवशिष्यन्ते । तानेवाप्रेतनपद्येन व्याकरोति ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—चेतनत्व आदि ये दश स्वभाव तथा सत्ता आदि पूर्वकथित एकादश स्वभाव, दोनों मिलके इक्कीस २१ होते है । इनमे पुद्गलके इक्कीस भाव है ओर जीवके भी एकविंशति २१ भाव ही हे । ओर कालके पन्दरह स्वभाव हे । आरम्भसे जो इक्कीस भाव है उनमेसे छ भाव जन निकाले जाते है तो पन्दरह बाकी बचते है । जन आगेके श्लोकमे उन्हीका निरूपण करते है ॥ १२ ॥

सूत्रम् । प्रदेशानेकता चित्ता मूर्त्तता च विभावता ।

शुद्धताऽशुद्धता चेति पद्द हीनाः कालगोचराः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—बहुप्रदेशत्व, चेतनत्व, मूर्त्तत्व, विभावत्व, शुद्धत्व और अशुद्धत्व इन छे स्वभावोंसे रहित शेष पन्दरह स्वभाव कालके हे ॥ १३ ॥

व्याख्या । बहुप्रदेशस्वभाव १ चित्तेति चेतनस्वभाव २ मूर्त्तेति मूर्त्तस्वभाव ३ विभावता विभावस्वभाव ४ शुद्धता शुद्धस्वभाव ५ अशुद्धता अशुद्धस्वभाव ६ एते पदेकविंशतिभ्यो निष्कास्यन्ते तदा पञ्चदश सर्वे कालस्वभावा ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—बहुप्रदेशस्वभाव, चेतनस्वभाव, मूर्त्तस्वभाव, विभावस्वभाव, शुद्ध-स्वभाव ओर अशुद्ध स्वभाव ये छे भाव जन इक्कीसमेंसे निकालते हैं तो पन्दरह रहते हैं ये सत्र पन्दरह स्वभाव कालके हैं ॥ १३ ॥

सूत्रम् । आदिमेन समायुक्ता धर्मादीनां तु षोडश ।

स्वभावाः संभवन्त्येव पूर्वोक्तानां प्रसंगतः ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—निकाले हुए छे स्वभावोंमेसे प्रथम जो बहुप्रदेशस्वभाव है उस सहित धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यके सोलह २ स्वभाव होते हैं; क्योंकि, ऐसा पहले कह आये हैं ॥ १४ ॥

व्याख्या । आदिमेन बहुप्रदेशस्वभावेन समायुक्ता अन्यपञ्चवर्जितास्तदा षोडश स्वभावाः धर्माधर्माकाशास्तिकायानां भवन्ति । यत् “एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः” इत्यादि ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—जब भाव निकाले हुए छे भावोंमेसे प्रथम बहुप्रदेशस्वभावसे सहित और शेष पांच भावोंसे रहित हुए तो सब सोलह स्वभाव हुए । ये सोलह २ स्वभाव धर्मास्तिकायके, अधर्मास्तिकायके और आकाशास्तिकायके होते हैं । क्योंकि “जीव और पुद्गलके २१ भाव हैं; धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्यके सोलह २ भाव हैं; कालमे पन्द्रह भाव माने गये हैं । ऐसा पूर्वपाठ है ॥ १४ ॥

सूत्रम् । एवं प्रमाणस्य नयस्य बोधादिमान्स्वभावान्परिभाव्य चित्ते ।

आप्तक्रमाम्भोजप्रसत्तिलब्धमानन्दरूपं परमं श्रयन्ताम् ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—हे भव्यजीवो ! इस प्रकार प्रमाण तथा नयके ज्ञानसे इन स्वभावोंको चित्तमे विचारके, श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंके प्रसादसे प्राप्त जो आनन्दरूप ज्ञान है उसका आश्रय करो ॥ १५ ॥

व्याख्या । अनया दिशा प्रमाणस्य स्वपरव्यवसायिज्ञानस्य, नयस्य प्रमाणेन निर्णीतार्थस्यैकांशप्रतिपादकवचनं नयस्तस्य, बोधादनुभवादिमान् स्वभावान् चित्ते मनसि परिभाव्य पर्यालोच्याप्तस्य श्रीजिनस्य क्रमौ पादौ तावेवाम्भोजं कमलं तस्य प्रसक्त्या प्रसादेन लब्धं प्राप्तमानन्दरूपं स्वानुभवरूपं परमं ज्ञानं श्रयन्तां सेवन्तामिति । भोजेति सन्दर्भकर्तुर्नामापि ॥ १५ ॥

इति द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां कृतिश्रीभोजसागरनिर्मितायां

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—भो भव्यजनो ! इस प्रकार अपने तथा परके व्यवसायात्मक ज्ञानरूप प्रमाणके और प्रमाणसे निश्चित अर्थके एक अंशके प्रतिपादक वचनरूप नयके अनुभवसे इन स्वभावोंको मनमे विचार कर, श्रीजिनेन्द्रके चरणरूप कमलके प्रसादसे प्राप्त जो अपने अनुभवरूप ज्ञान है उसका सेवन करो । यहां “भोज” यह श्लेषसे ग्रंथकारका नाम भी है ॥ १५ ॥

इति श्रीठाकुरप्रसादशास्त्रिविरचितभाषानुवादसमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोग-

तर्कणायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथात्र स्वभावाना निदर्शनमाह ।

अत्र इस त्रयोदश अध्यायमे स्वभावोका दृष्टान्त कहते है—

सूत्रम् । अस्तिस्वभाव आम्नात स्वद्रव्यादिग्रहे नये ।

ग्राहकत्वेऽन्यद्रव्याणा नास्तिस्वभाव ईरितः ॥ १ ॥

सूत्रभाषार्थः—स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नयसे अस्तिस्वभाव कहा गया है और परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नयसे नास्तिस्वभाव कहा है ॥ १ ॥

व्याख्या । स्वद्रव्यादिग्रहे नये द्रव्यार्थिकनयमते द्रव्याणामस्तिस्वभाव आम्नात कथित । १ । तथा द्वितीयो नास्तिस्वभावोऽस्ति, अन्यद्रव्याणा ग्राहकत्वे परद्रव्यादि ग्राहकद्रव्यार्थिकनये ईरित कथित । २ । उक्त च 'सर्वमस्तिस्वरूपेण परद्रव्येण नास्ति च' इति वचनात् ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—अपने द्रव्य क्षेत्र आदिको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिक नयके मतमे द्रव्योका अस्तिस्वभाव कहा गया है १ तथा अन्य द्रव्योंको ग्रहण करनेवाले परद्रव्यादि-ग्राहक द्रव्यार्थिकनयके मतसे द्रव्योंके दूसरा नास्तिस्वभाव कहा गया है २। ऐसा अन्यत्र वचन भी कहा हुआ है कि "अपने रूपसे सब है और परद्रव्यसे सत्र नास्ति (नहीं) है" ॥ १ ॥

सूत्रम् । उत्पादव्ययगौणत्वे नित्यः सत्तासमाश्रित ।

पर्यायार्थिके कोऽपि ज्ञेयोऽनित्यस्वभावकः ॥ २ ॥

सूत्रभाषार्थः—उत्पाद और व्ययकी गौणताम सत्ता ग्राहक द्रव्यार्थिकनयसहित नित्यस्वभाव है और उत्पाद तथा व्ययके ग्राहकपर्यायार्थिक नयमे अनित्य स्वभाव है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

व्याख्या । तथा सत्तासमाश्रित सत्ताग्राहकद्रव्यार्थिकनययुक्तो नित्यो नित्यस्वभाव कथित । कस्मिन्सत्युत्पादव्ययगौणत्वे अत्रितृतीय । पर्यायार्थिकनय उत्पादव्ययग्राहको भवति तन्मतेऽनित्यस्वभाव, कश्चित्पर्यायार्थिकनय उत्पादव्ययग्राहको भवतनित्यस्वभाव स्थान्ति ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—अत्र उत्पाद तथा व्ययकी गौणता होनेपर सत्ताग्राहक जो द्रव्यार्थिक नय है उसमे युक्त नित्यस्वभाव तीमरा कहा गया है । ३ । तथा पर्यायार्थिक नय उत्पाद और व्ययका ग्राहक होता है इसलिए उसके मतमें अनित्य स्वभाव है । तात्पर्य यह कि उत्पाद तथा व्ययकी अप्रधानता होनेपर सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नयके मतमें नित्य स्वभाव है और सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नयकी अप्रधानताम उत्पत्ति तथा नाशका ग्राहक जो पर्यायार्थिक नय है इसमें मतसे चौथा अनित्य-स्वभाव होता है ॥ २ ॥

सूत्रम् । भेदसंकल्पनामुक्त एकस्वभाव आहितः ।

अन्वयद्रव्यार्थिके चानेकद्रव्यस्वभावकः ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—भेदकी कल्पनासे रहित द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्यका एक-स्वभाव कहा गया है और अन्वय द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अनेक स्वभाव माने गये हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या । भेदकल्पनारहितशुद्धद्रव्यार्थिकनये भेदकल्पनामुक्त एकस्वभावः कथितः ५ अन्वयद्रव्यार्थिकनयेऽनेकद्रव्यस्वभावोऽनेकस्वभावः ६ इत्यर्थः । कालान्वये सत्ताग्राहको देशान्वये चान्वयग्राहको नयः प्रवर्तत इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—भेदकी कल्पनासे रहित शुद्ध (सत्तामात्रके ग्राहक) द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे द्रव्यका एक स्वभाव (५) कहा गया है तथा भेदकल्पनासहित अन्वय द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षामे द्रव्यका अनेक स्वभाव (६) भी कहा गया है । तात्पर्य यह कि जहां पदार्थमें कालका अन्वय होता है वहां तो सत्ताका ग्राहक द्रव्यार्थिक नय प्रवृत्त होता है और देशके अन्वयमे अन्वयग्राहक द्रव्यार्थिक नय प्रवृत्त होता है ॥ ३ ॥

सूत्रम् । सद्भूतव्यवहाराच्च गुणगुण्यादिभेदता ।

भेदकल्पनराहित्ये तस्याभेदः प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—सद्भूत व्यवहार नयसे गुण गुणी आदिके भेदस्वभावता होती है और भेदकल्पनाकी शून्यतादशामे गुणादिका अभेद कहा गया है ॥ ४ ॥

व्याख्या । सद्भूतव्यवहाराच्च सद्भूतव्यवहारनयाद् गुणगुण्यादिभेदता । गुणगुणिनोः, पर्यायपर्यायिनोः, कारककारकिनोर्भेदस्वभावः सप्तमः । भेदकल्पनराहित्ये भेदकल्पनारहित-शुद्धद्रव्यार्थिकनयमतेऽभेदः स्वभावः प्रकीर्तितः । ८ । यत्र कल्प्यमानस्यान्तर्निगीर्णत्वेन ग्रहस्तत्रैकस्वभावो यथा घटोऽयमिति, यत्र विषयविषयिणोर्वैवर्त्तयेन ग्रहस्तत्राभेदस्वभावो यथा नीलो घट इति । सारोपाध्यवसानयोर्निरुद्धत्वार्थमयं प्रकारभेदः । प्रयोजनवत्यौ तु ते यदृच्छानिमित्तकत्वे स्वभावभेदसाधके । इति परमार्थः ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—सद्भूतव्यवहार नयसे गुण गुणी, पर्याय पर्यायी और कारक कार-कवान्का भेद स्वभाव है और यह भेद स्वभाव सप्तम है । ७ । और भेदकल्पनारहित शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतमे तो अभेद स्वभाव कहा गया है । ८ । जहांपर कल्पनीय पदार्थ निगीर्णस्वभाव है अर्थात् जहां कल्प्यमान वस्तु नहीं भासता है, वहांपर एक स्वभाव अर्थात् अभेद स्वभाव है । जैसे “अयं घटः” “यह घड़ा है。” यहां यह नहीं जनाया गया कि यह घट नील है वा पीत है; इसलिये घटपदसेही उसका रूप विषय निगल लिया गया है । और जहांपर विषय और विषयीका पृथक् २ भान (ग्रहण) होता है, वहांपर अभेद स्वभाव है । जैसे—“नीलः घटः” “नीला घटः” यहांपर सारोपा तथा साध्य-

वसाना निरुद्धा लक्षणासे यह प्रकार भेद है। और प्रयोजनयुगी सारोपा तथा साध्यमाना लक्षणा तो यदृच्छानिमित्तसे स्वभावभेदसाधक है। यह यद्वापर भावार्थ है ॥ ४ ॥

सूत्रम् । परमभावग्राहके तु भव्याभव्यौ च पर्ययौ ।

शुद्धाशुद्धौ ततश्चोक्तौ चैतन्यमात्मनः स्मृतम् ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—परमभावग्राहक नयके मतमें भव्य तथा अभव्य स्वभाव है और शुद्ध स्वभाव तथा अशुद्ध स्वभाव भी परमभाव ग्राहक नयके मतमें ही है तथा चेतन स्वभाव आत्माके माना गया है ॥ ५ ॥

व्याख्या । भव्याभव्यौ च स्वभावौ परमभावग्राहके नये मन्तव्यौ । भव्यतास्वभावो निरूपितोऽस्मि, अभव्यतास्वभाव उत्पन्नस्वभावस्य तथा परमभावस्य साधारण्यमस्मि । ततोऽनास्तित्वास्तिस्वभावायिव स्वपरद्रव्यादिग्राहकनययो प्रवृत्तिर्न भवेत् । तथा शुद्धाशुद्धस्वभावौ तूक्तौ ज्ञेयौ । यथा पूर्वत्र परमभावग्राहकनये तद्वद् ज्ञेयान्विति । तथा चैतन्य चेतनस्वभाव आत्मन आत्मारामस्य स्मृतं नान्येषाम्, आत्मा सत्सारस्य चेतन इति । ५ । १० । ११ । १२ । १३ ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—परमभाव ग्राहक नयकी अपेक्षा भव्य स्वभाव तथा अभव्य स्वभाव मानने योग्य है । भव्यता स्वभाव पूर्व प्रकरणमें कह आये है और अभव्यता स्वभाव उत्पन्न स्वभाव तथा परम भावकी साधारणतामें है । इसलिये यद्वापर अस्ति नान्नि स्वभावोंके समान स्वकीय तथा परकीय द्रव्यादि ग्राहक नयोंकी प्रवृत्ति नहीं होती है अर्थात् जैसे अस्ति स्वभाव स्वद्रव्यादिग्राहक नयसे और नास्तिस्वभाव परद्रव्यादिग्राहक नयकी अपेक्षासे माना गया है, यह बात यद्वा नहीं है । और शुद्ध तथा अशुद्ध स्वभाव जैसे पूर्व प्रकरणों कह आये हैं वैसे यद्वा भी समझने चाहिये । और चेतन स्वभाव केवल जीवने ही है, अन्य द्रव्योंके नहीं । क्योंकि जो सत्सारी जीव है वह चेतन है ॥ इस प्रकार इस श्लोकमें मय ९ अभव्य १० शुद्ध ११ अशुद्ध १२ और चेतन १३ इन ५ भावोंका वर्णन किया गया है ॥ ५ ॥

अथ चैतन्यान्विरूप कथयन्नाह ।

अथ चेतता आदिका स्वरूप कहते हुए श्लोक पड़ो ।

सूत्रम् । अमद्भूत पक्षकारात्कर्मनोफर्मचेतना ।

परमभावग्राहके तस्याचेतनधर्मना ॥ ६ ॥

सूत्रभावार्थः—अमद्भूतपक्षकार तत्वे कर्म तथा मोक्षोंकी चेतताका धर्म हार होता है और परमभावग्राहक नयों उस कर्म मोक्षोंके चेतता स्वभावसे अपेक्षित धर्मना है ॥ ६ ॥

व्याख्या । अमद्भूतपक्षकारादमद्भूतपक्षकारनशास्त्रनोफर्मने कर्माणि ज्ञानापरणादीनि मोक्षमाणि मोक्षपक्षकारावतमर्माणि ततो द्रव्यमपेक्षेय विद्येतान्यभावात् स्यात्, यत्

नसंयोगकृत्पर्यायस्तत्रास्ति । तत इदं शरीरमावश्यकं जानामीत्यादिव्यवहारोऽत एव भवति मृतं दहतीतिवत् । पुनः परमभावग्राहकनये तस्य कर्मनोकर्मजनितचेतनस्वभावस्याचेतनधर्मता अचेतनस्वभावत्वं, यथा घृतमनुष्णमित्यादिवत् ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—असद्भूतव्यवहार नयसे ज्ञानावरण आदि कर्म और मन, वचन, कायरूप नोकर्म इन दोनोंमें चेतन स्वभाव है; क्योंकि कर्म और नोकर्म इन दोनोंमें चेतनके संयोगसे किया हुआ पर्याय है । इसी कारण उस चेतनसंयोगकृत्पर्यायसे 'मृतकको भस्म करता है' इस व्यवहारकी भांति 'इस शरीरको मैं आवश्यक (जरूरी) जानता हूं,' इत्यादि व्यवहार होता है । और परमभावग्राहक नयके मतमें तो उस कर्म तथा नोकर्मसे उत्पन्न चेतन भावके अचेतन स्वभावपना है, जैसे 'अनुष्ण (ठंडा) घृत इत्यादिकी भांति ॥ ६ ॥

सूत्रम् । असद्भूतव्यवहारे जीवाचेतनधर्मता ।

परमभावग्राहके मूर्त्तनोकर्मकर्मता ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—असद्भूतव्यवहार नयसे जीवमें अचेतनस्वभावता है और परमभावग्राहक नयमें नोकर्म तथा कर्म मूर्त्त हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या । असद्भूतव्यवहारनये जीवतीति जीवस्तस्याचेतनधर्मस्तस्य भावो जीवाचेतनधर्मतास्ति । अतएव जडोऽयमचेतनोऽयमित्यादिव्यवहारोऽस्ति । एतेनानुमिनोमि जानामीति प्रतीत्या विलक्षणाज्ञानसिद्धिर्वेदान्तिनामपास्ता, सद्भूतव्यवहारनयग्राह्येणाचेतनस्वभावेनैव तदुपपत्तेः । अथ परमभावग्राहकनये मूर्त्ता नोकर्मकर्मता मूर्त्तनोकर्मकर्मता वर्त्तते । कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभावोऽस्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—असद्भूतव्यवहार नयके मतसे जो प्राण धारण करता है वह जीव है । उसके अचेतनधर्मपना जो जीवाचेतनधर्मता वह है अर्थात् जीव अचेतन स्वभावका धारक है । इस अचेतन स्वभावके माननेसे ही यह जीव अचेतन है, जड है इत्यादि व्यवहार होता है । इससे "मैं अनुमान करता हूं, जानता हूं, इत्यादि प्रतीति (अनुभव)से विलक्षण (अनिर्वचनीय) अज्ञानकी सिद्धि होती है" इस वेदान्तियोंके कथनका खंडन हुआ, क्योंकि असद्भूतव्यवहार नयसे ग्रहण करनेयोग्य जो अचेतन स्वभाव है इस अचेतन स्वभावसे ही उस अज्ञानकी सिद्धि हो जाती है । और परमभावग्राहक नयसे मूर्त्त ऐसी नोकर्मकर्मता वर्त्तती है अर्थात् कर्म तथा नोकर्मके मूर्त्त स्वभाव है ॥ ७ ॥

सूत्रम् । असद्भूतव्यवहारे जीवमूर्त्तत्वमिष्यते ।

परमै पुद्गलं हित्वा द्रव्यामूर्त्तत्वमाहितम् ॥ ८ ॥

सूत्रभावार्थः—असद्भूतव्यवहारनयके मतमें जीव मूर्त्त स्वभावका भी धारक है और परमभावग्राहक नयमें पुद्गलको छोड़कर सब द्रव्योंमें अमूर्त्तस्वभावता स्थापित की गई है ॥ ८ ॥

द्याव्या । असद्भूतव्यवहारे जीवमूर्त्तत्वमपि जीवस्य मूर्त्तत्व जीवमूर्त्तस्वभाव इष्यत । अतएव अयमात्मा दृश्यते, अमुमात्मान पश्यामीति व्यवहारोऽस्ति । तद्वानेन स्वभावेन “रक्तौ च पद्मप्रभवासुपूज्यौ” इत्यादि वचनानि सन्ति । अथ च परमभावग्राहकनये पुद्गल-द्रव्य विना द्रव्याणाममूर्त्तत्व द्रव्यामूर्त्तत्वमाहित स्थापितम् । अन्यानि सर्वाण्यपि द्रव्याण्य-मूर्त्तस्वभाववन्तीत्यर्थ ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—असद्भूतव्यवहार नयके मतमे जीवका भी मूर्त्त स्वभाव माना गया है । इसीसे ‘यह आत्मा देख पड़ता है, इस आत्माको मैं देखता हूँ’ इत्यादि व्यवहार होता है, और “श्रीपद्मप्रभ तथा श्रीवासुपूज्य ये दोनों तीर्थंकर रक्त (लाल) वर्णके धारक हैं” इत्यादि वचन है । तथा परमभावग्राहक नयकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्यके विना द्रव्योंके अमूर्त्तस्वभाव रक्ता गया है अर्थात् पुद्गलद्रव्यके सिनाय अन्य सत्र द्रव्य अमूर्त्त स्वभावके धारक हैं । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

सूत्रम् । उपचारात्पुद्गलेऽपि नास्त्यमूर्त्तस्वभावता ।

व्यवहियतेऽनुगमात्तदेव चोपचर्यते ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—पुद्गलमे उपचारसे भी अमूर्त्तस्वभावता नहीं है, क्योंकि अनुगमसे जिसका व्यवहार होता है उसी भावका उपचार भी होता है ॥ ९ ॥

व्याख्या । उपचारात्पुद्गलद्रव्येऽमूर्त्तस्वभावता नास्ति । यत्तश्चेतनसयोगेन देहादौ यथा चेतनत्वमुपचर्यते तथैवामूर्त्तत्व नोपचर्यते । तस्मादसद्भूतव्यवहारादपि पुद्गलस्यामूर्त्त-स्वभावो न कथनीय । प्रत्यासत्तिदोषेणामूर्त्तत्व तत्र कथं नोपचरितव्यमिति तदेवोपपादयन्नाह । व्यवहियतेऽनुगमाद्यदेवानुगमादेकसमन्वदोपाद्भावत्व व्यवहियते तदेवोपचर्यते परन्तु सर्वधर्मस्योपचारो न स्यात्तथाचारोपे सति निमित्तानुसरणमनु निमित्तमनुसृत्यारोप इति न्यायो नाश्रयणीय इति भाव ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—उपचारद्वारा भी पुद्गल द्रव्यमे अमूर्त्तस्वभावता नहीं है । इसीसे चेतनके सयोगसे जैसे देह आदिमे चेतनताका उपचार किया जाता है उसी प्रकार अमूर्त्तके सयोगसे देहमे अमूर्त्तका उपचार नहीं होता है । इस कारणसे असद्भूतव्यवहार-नयसे भी पुद्गल द्रव्यका अमूर्त्त स्वभाव है ऐसा कथन नहीं करना चाहिये । अब प्रत्या-सत्ति दोषसे वहापर अमूर्त्तताका उपचार क्यों नहीं करना चाहिये इसीका उपपादन करते हुए “व्यवहियतेऽनुगमात्” इत्यादि उत्तरार्द्धसे कहते हैं कि अनुगम अर्थात् एकसमन्वदोपसे जिस भावका व्यवहार होता है उसी भावका उपचार भी होता है परन्तु सर्वथा सर्व धर्मके अभावमे सत्र धर्मका उपचार नहीं होता । और इससे यह सिद्ध हुआ कि जहा आरोप करना हो वहा आरोपके निमित्तका अनुसरण करना चाहिये । और आरोप करके पश्चात् निमित्तका अनुसरण करना इस न्यायको नहीं धारण करना चाहिये । यह भाव है ॥ ९ ॥

सूत्रम् । अशेषोऽनुगतश्चार्थः संमतौ हि प्रकाशितः ।

यथाम्बुपयसोर्भेदो न यावदन्यवैशिष्ट्यम् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—यह संपूर्ण जीव पुद्गलका अनुगत संबन्ध संमतिमे प्रकाशित है। क्योंकि जैसे दुग्ध और जलका अन्त्य विशेष विना भेद नहीं हो सकता, वैसेही इनका भी भेद नहीं हो सकता ॥ १० ॥

व्याख्या । हीति निश्चितम् । अयमभिप्रायः अनुगतात्यन्तसंबन्धः सर्वोऽप्यर्थः संमतौ प्रकाशितः । यथा स्वनुगतत्वे दृष्टान्तमाह । अम्बुपयसोः क्षीरनीरयोर्भेदो विभजना पृथक्त्वमिति तावन्नास्ति यावदन्यवैशिष्ट्यमन्यविशेषपर्यन्तं यावन् । अन्यविशेषे शुद्धपुद्गला जीवलक्षणेन पृथक् क्रियन्ते । यथा औदारिकादिवर्गणानिष्पन्नान्छरीरादेर्ज्ञानवनासंख्येयप्रदेश आत्मा भिन्न इति । अत्र गाथा “अणुण्णाणुगयाणं इमवतं वन्निविभयणमजुत्तं । जह दुद्धपाणियाणं जावतं विसेस पज्जाया । १ ।” इत्थं कथयतां यदि मूर्त्तता पुद्गलद्रव्यविभाजकान्यविशेषोऽस्ति तदा तस्या उपचार आत्मद्रव्येण कथं भवेत् । अथ च यद्यत्र विशेषोनास्ति तदान्योन्यानुगमनेनामूर्त्तताया उपचारः पुद्गलद्रव्येण कथं न भवेदित्याशङ्का केषांचिद्भवति । तां शङ्कां निराचिकीर्षुः प्रतिपादयन्नाह ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—अभिप्राय यह है कि निश्चयरूपसे अनुगत अर्थात् अत्यन्त संबन्धरूप सब अर्थ संमतिमें प्रकाशित किया गया है । अब यथा इत्यादि उत्तरार्द्धसे अनुगततामे दृष्टान्त कहते हैं । जैसे मिले हुए जल और दूधका विभाग (भेद) जबतक अंतिम विशेष नहीं होता तबतक नहीं होता है, इसी प्रकार अन्तके विशेषमें ही शुद्ध पुद्गल जीवलक्षणसे पृथक् किये जाते हैं । भाव यह है कि जैसे जलका तथा दूधका विभाग अंतिम दाह किर्यारूप विशेष अथवा पदार्थविज्ञान विशेषसे होता है, ऐसेही जीवकी मुक्तिदशारूप विशेषमे पुद्गलका जीवसे विभाग होता है । जैसे कि औदारिक आदि वर्गणाओंसे सिद्ध शरीर आदिसे ज्ञानघन असंख्यात प्रदेशोंका धारक आत्मा भिन्न है । इस विषयमें अन्यत्र गाथा कही है कि “जैसे दूध और पानीका अन्त्यविशेष पर्याय तक भेद नहीं होता उसी प्रकार परस्पर अनुगत पदार्थोंका भेद नहीं होता है, यह कहना अयुक्त है ।” इस प्रकार कहनेवालोंके यदि मूर्त्तपना पुद्गल द्रव्यको जुदा करनेवाला अन्तका विशेष है तो उसका उपचार आत्मद्रव्यके साथ कैसे होवे । और यदि अन्त्य विशेष नहीं है तो जीव पुद्गलका परस्पर अनुगम होनेसे जैसे मूर्त्तताका उपचार आत्मद्रव्यके साथ होता है ऐसे ही अमूर्त्तताका उपचार पुद्गल द्रव्यके साथ क्यों न होगा ? ऐसी आशंका किन्हींकी होती है, इस लिये उस शंकाको दूर करनेके लिये कहते हैं ॥ १० ॥

सूत्रम् । मूर्तिर्यत्रानभिभूता नास्ति तत्राप्यमूर्त्तता ।

यत्राभिभूतामूर्त्तित्वं मूर्त्यनन्त्यं हि तेषु च ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—जहापर मूर्त्त स्वभाव तिरोहित नहीं है, वहापर अमूर्त्त स्वभाव हैं ही नहीं, और जहा आत्मद्रव्यमे कर्म है, वहा अमूर्त्तता तिरोहित नहीं है, किन्तु, वहापर मूर्त्तता अन्तरहित अनुगमसे है ॥ ११ ॥

व्याख्या । यत्र पुद्गलद्रव्यस्य मूर्तिमूर्त्तता अभिभूता नास्ति किन्तुद्भूताऽस्ति तत्रामूर्त्ततास्य भावो न भवति । अमूर्त्तता ह्यपुद्गलद्रव्यस्यान्यविशेष । अथ च यत्रात्मद्रव्ये कर्म भवति न तत्रामूर्त्तताभिभूतास्ति । तत्र चामूर्त्तता अनन्यानुगमजनितसाधारणधर्मरूपा भवति । तथा चान्योन्यानुगमाविशेषेऽपि कचिदेव किञ्चित्केनचित्कथंचिदभिभूयत इति यथागमव्यवहारमाश्रयणीयम् ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—जहा पुद्गलद्रव्यका मूर्त्त स्वभाव अभिभूत (छिपा हुआ) नहीं है किन्तु उद्भूत (प्रकट) है वहा अमूर्त्तता स्वभाव नहीं होता है । क्योंकि अमूर्त्तता पुद्गलसे भिन्न द्रव्यका अन्त्य विशेष है । और जहा आत्मद्रव्यमे कर्म होता है वहा भी अमूर्त्तता अभिभूत नहीं है । क्योंकि वहापर अमूर्त्तता अन्त्यसे भिन्न अनुगमसे उत्पन्न साधारण धर्मरूप है । इस प्रकार पुद्गल तथा जीवद्रव्यके अनुगममे विशेषता न होनेपर भी कहीं कोई भाव किसीसे किसी प्रकारसे अभिभूत होता है इस प्रकार शास्त्रके व्यवहारके अनुसार अंगीकार करना चाहिये ॥ ११ ॥

सूत्रम् । अन्त्यो भावः पुद्गलस्यापीत्यमत्र विलुप्यते ।

असद्भूतनये तेन परोक्षोऽणुरमूर्त्तकः ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—पुद्गलका अन्त्य भाव भी इसी, प्रकार यहा लुप्त हो जाता है, इसीसे अमद्भूतनयके मतमें परोक्ष परमाणु अमूर्त्त माना गया है ॥ १२ ॥

व्याख्या । उपचारेणाप्यमूर्त्तस्वभावः पुद्गलस्य न स्यादिति कथयता मतेऽन्त्यो भाव एक विंशतितम स्वभावः पुद्गलस्य विलुप्तो भवति तथा पुन "एकविंशतिभावाः स्युर्जीनपुद्गल्यो मेता " इत्येतद्वचनन्याधातादपसिद्धान्तोऽपि जायते । अथ तच्छब्दापनोदायाह अमद्भूतव्यवहारनये तेन कारणेन यः परोक्षः पुद्गलपरमाणुरस्ति तस्यामूर्त्तता कथिता । व्यावहारिकप्रत्यक्षागोचरत्वममूर्त्तत्वप्रमाणोपचरितमत्र स्वीक्रियत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—उपचारमे भी पुद्गलके अमूर्त्तस्वभाव नहीं होता ऐसा कहनेवाला तर्क मता पुद्गलका अतर्का भाव अर्थात् इक्षीमया स्वभाव नष्ट हो जायगा और पुद्गलका जब अमूर्त्तस्वभाव नहीं रहेगा तब पूर्व प्रसंगमे जो ऐसा कहा है कि "पुद्गल तथा जीव इन दोनोंमें प्रत्येकके एकविंशति २१ भाव हैं" इस वचनका व्यापार होनेने मिद्धान्तर्ही भी हानि होती है । क्योंकि जब इक्षीमयमे एव अमूर्त्त स्वभाव निरुद्ध जायगा तब तो पुद्गलके भीम स्वभाव ही रहेगा । इस प्रकारही शकाको दूर करनेके लिय कहते हैं कि इसी कारणसे असद्भूत व्यवहार नयमे जो परोक्ष पुद्गल परमाणु है उसमे अमूर्त्तता नहीं

गई है । तात्पर्य यह कि व्यवहारिक प्रत्यक्षके अगोचर रूप अमूर्तस्वभाव प्रमाणसिद्ध उपचरित भक्त (कथंचित्) स्वीकार किया जाता है ॥ १२ ॥

सूत्रम् । पुद्गलाणोश्च कालाणोरेकदेशस्वभावता ।

परमे परद्रव्यस्य भेदकल्पनवर्जितः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—परम भाव ग्राहक नयके मतसे कालाणु तथा पुद्गल परमाणुकी एक-प्रदेश-स्वभावता है । और अन्य द्रव्यका भी भेदकल्पनावर्जित शुद्धद्रव्यार्थिक एक स्वभाव कहलाता है ॥ १३ ॥

व्याख्या । पुद्गलपरमाणुस्तथा कालाणोः परमे परमभावग्राहकनय एकप्रदेशस्वभावता कथ्यते । तथा परद्रव्यस्य कालपुद्गलवर्जितान्यद्रव्यस्य भेदकल्पनवर्जितः शुद्धद्रव्यार्थिक एकप्रदेशस्वभावः कथ्यते ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—परम भाव ग्राहक नयमें पुद्गल परमाणु तथा कालके अणुकी एकप्रदेशस्वभावता कही गई है । तथा भेदकी कल्पनासे वर्जित शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे काल और पुद्गलसे रहित अन्यद्रव्यके भी एकप्रदेशस्वभाव कहा गया है ॥ १३ ॥

सूत्रम् । शुद्धद्रव्यार्थिकेऽनेकप्रदेशत्वं विनाणुकम् ।

पुद्गलाणोः स्वभावत्वमुपचारेण तत्पुनः ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे परमाणुको छोड़कर, संपूर्ण द्रव्योंका अनेक-प्रदेशस्वभाव है । और पुद्गलके अणुके तो अनेकप्रदेशस्वभावता उपचारसे है ॥ १४ ॥

व्याख्या । शुद्धद्रव्यार्थिके भेदकल्पनासापेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयेऽणुकं परमाणुं विना सर्वेषां द्रव्याणामनेकप्रदेशत्वमनेकप्रदेशस्वभावः कथ्यते । अन्यच्च पुद्गलाणोः पुद्गलपरमाणोस्तदनेकप्रदेशस्वभावत्वं भवितुं योग्यतास्ति । ततः उपचारेणानेकस्वभावत्वं कथ्यते । कालाणोश्चोपचारकारणता नास्ति ततस्तस्य सर्वथापि स्वभावो नास्ति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—भेदकल्पनासापेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे परमाणुके सिवाय अन्य सब द्रव्योंका अनेकप्रदेशस्वभाव कहा गया है । और पुद्गलके परमाणुके उस अनेकप्रदेशस्वभाव होनेकी योग्यता है अर्थात् वह पुद्गलपरमाणु अनेकप्रदेशस्वभाव हो सकता है इस कारण उपचारसे उसके अनेकप्रदेशस्वभावताका कथन किया गया है । और कालके अणुमें कोई उपचारकारणता नहीं है इस हेतुसे उसके यह अनेकप्रदेशस्वभाव सर्वथा नहीं है ॥ १४ ॥

सूत्रम् । शुद्धाशुद्धार्थिके विद्धि विभावाख्यस्वभावकान् ।

शुद्धे शुद्धस्वभावाः स्युरशुद्धे शुद्धवर्जिताः ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—हे शिष्य, शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिकनयमें विभाव नामक स्वभावोंका बोध करो । शुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें शुद्ध स्वभावोंकी और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें अशुद्ध स्वभावोंकी स्थिति है ॥ १५ ॥

व्याख्या । शुद्धाशुद्धार्थिके नाम्नि द्रव्यार्थिकनये समुच्चयेन विभागादिस्वभावान् विद्धि जानीहि । शुद्धे शुद्धद्रव्यार्थिकनये शुद्धस्वभावान् जानीहि । अशुद्धेऽशुद्धस्वभावान् जानीहि । शुद्धे शुद्धस्वभावा स्युरशुद्धेऽशुद्धस्वभावा इति ज्ञेयम् ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—शुद्धाशुद्धार्थिक नामक द्रव्यार्थिक नयमें समस्त विभाज्य स्वभावोंको जानो और शुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें शुद्ध स्वभावोंको जानो तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयमें अशुद्ध स्वभावोंको जानो । भावार्थ यह है कि शुद्ध द्रव्यार्थिकमें शुद्ध भाव तथा अशुद्ध द्रव्यार्थिकमें अशुद्ध भाव होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १५ ॥

सूत्रम् । असद्रूपव्यवहारादुपचारस्वभावकाः ।

इति स्वभावविज्ञान कर्त्तव्य शुभमिच्छता ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—असद्रूप व्यवहार नयसे उपचरित स्वभाव रहते हैं । इस प्रकार कल्याणके अभिलाषी जीवको स्वभावोंका विज्ञान करना चाहिये ॥ १६ ॥

व्याख्या । असद्रूपव्यवहारनयादुपचारस्वभावका उपचरितस्वभावा ज्ञातव्या । इतीति समाप्ता । स्वभावविज्ञान स्वभावनययोजना शुभ कल्याण हित आयुष्य ज्ञान चेच्छता अभिलपता कर्त्तव्यमिति ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—असद्रूपव्यवहार नयकी अपेक्षासे सब उपचरित स्वभावोंको जानना चाहिये । सूत्रमें इति शब्द अध्यायकी समाप्तिका बोधक हैं । और यह स्वभावोंमें नयोंकी योजना जिस पुरुषको कल्याण, हित, आयुष्य तथा ज्ञानकी अभिलाषा है उसको करनी चाहिये ॥ १६ ॥

सूत्रम् । अनुपचरिताः स्वीयभावास्ते तु गुणा रल्ल ।

एकद्रव्याश्रिता गुणाः पर्याया उभयाश्रिताः ॥ १७ ॥

सूत्रभावार्थः—जो अनुपचरित अपने भाव हैं वे गुण हैं । और वे गुण एक द्रव्यके आधार रहते हैं, और पर्याय उभयके आश्रित रहते हैं ॥ १७ ॥

व्याख्या । अत्र दिग्गन्धरसस्वादना वर्त्तते । कुत्रापि स्वसमयेऽप्युपस्कृता वर्त्तते पगन्धत्र किमपि चिन्त्य वर्त्तते तेन तद्गुण निराचिकीर्षुराह । अनुपचरिता उपचारवर्जिता ये निज स्वीयस्वभावासे गुणा , गुणाना हि सहभावितादुपचारो न विद्यते । निष्कर्षस्त्वयम् स्वभावो हि गुणपर्यायाभ्या मित्रो न स्वात्तस्मान्गोऽनुपचरितो भाव स एव गुण इति, अथ यथा-पचरित स पर्याय कथ्यते । अतएव द्रव्याश्रिता गुणा , उभयाश्रिता पर्याया । तथोक्त गुचराध्ययने गाथाद्वारा—“गुणाणमासवो दृक् ण दृक्सिया गुणा । रस्त्वण पजयाण तु उभयो अस्सिआ भवेत्ति । १ ।” ॥ १७ ॥

व्याख्यार्थः—यहापर दिग्गन्धरसतका प्रस्ताव (प्रसंग) है । और यह प्रसंग कहीं श्वेताम्बरसिद्धान्तमें भी है, परन्तु इस विषयमें कुछ निवारणीय है, इस लिये उमर दूषणकी दूर करनेकी इच्छासे कहते हैं । उपचारसे रहित जो अपने स्वभाव हैं वे गुण हैं

क्योंकि गुण सहभावी है, इस लिये उनमें उपचार नहीं होता है। तात्पर्य यह कि कोई स्वभाव गुण पर्यायोंसे भिन्न नहीं है इस लिये जो अनुपचरित भाव है वही गुण और जो उपचरित भाव है वही पर्याय कहा जाता है। और इसी कारणसे केवल द्रव्यके आश्रय जो रहै वे गुण हैं; और द्रव्य, गुण दोनोंके आश्रय जो रहै वे पर्याय हैं। इस विषयमें उत्तराध्ययनसूत्रमें गाथाद्वारा कहा है कि “गुणोंका आश्रय द्रव्य है अतएव द्रव्याश्रितत्व गुणोंका लक्षण है; और दोनोंके आश्रय रहना, यह पर्यायोंका लक्षण है。” ॥ १७ ॥

सूत्रम् । एवं स्वभावोपगता गुणास्तु भेदेन सम्यक्कथिताश्च योग्याः ।

अर्हत्कमाम्भोजसमाश्रितानां भव्यात्मनां ज्ञानगुणार्थमत्र ॥

सूत्रभावार्थः—इस प्रकार इस अध्यायमें श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंके आश्रित भव्य जीवोंको ज्ञानगुणकी प्राप्तिके लिये हमने शास्त्रोक्त योग्य स्वभावसे प्राप्त गुण अच्छी रीतिसे भेद करके कहे हैं ॥ १८ ॥

इति द्रव्यानुयोगतर्कणायां त्रयोदशोऽध्यायः ।

व्याख्या । यदि च स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः, परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः, इत्यादि स्वभावोपगता गुणाः स्वभावसहिता इत्युपगम्यते । तदोभयोरपि द्रव्यार्थिकविषयत्वात्सप्तभङ्ग्यामाद्यद्वितीययोर्भङ्गयोर्द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकाश्रयेण प्रक्रिया भज्येतेत्याद्यत्र बहु विचारणीयम् । एवमनया रीत्या स्वभावाः स्वभावयुक्ता गुणाश्च भेदेन प्रकारकथनेन सम्यक्शास्त्रोक्तरीत्या कथिताः प्रकाशिताः । श्रीमद्वाचकमुख्ययशोविजयपाठकमतल्लिकारचितप्राकृतपाठदृष्टा लिखिता इत्यर्थः । किमर्थमत्र कसै कार्याय कथिता इति प्रयोजनपदं ज्ञानगुणार्थं केषामर्हतां वीतरागाणां क्रमाश्ररणास्तएवाम्भोजानि कमलानितत्र समाश्रितानां शरणीभूतानां भव्यात्मनां भव्यलोकानां ज्ञानगुणार्थं मया कथिता इत्यर्थः ॥ १८ ॥

इति श्रीकृतिभोजसागरनिर्मितायां द्रव्यानुयोगतर्कणाव्याख्यायां

त्रयोदशोऽध्यायः ।

व्याख्यार्थः—यदि अपने द्रव्य क्षेत्र आदिका ग्राहक होनेसे अस्तिस्वभाव और परकीय द्रव्यक्षेत्रादिका ग्राहक होनेसे नास्तिस्वभाव है; इत्यादि स्वभावसे उपगत गुण है ऐसा स्वीकार करते हो तब तो दोनोंके द्रव्यार्थिक नयका ही विषयपना होनेसे सप्तभंगीमें प्रथमभंग ‘(स्यादस्त्येव) कथंचित् है ही और द्वितीयभंग (स्यान्नास्त्येव) कथंचित् है ही नहीं’ इन दोनों भंगोंमें द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकके आश्रय जो प्रक्रिया है उसका भंग होगा; इत्यादि बहुत कुछ यहांपर विचारणीय है । इस पूर्वोक्त रीतिसे स्वभाव तथा स्वभावसहित गुण प्रकारोंके कथनद्वारा शास्त्रोक्त रीतिसे प्रकाशित किये हैं अर्थात् श्रीमान् वाचक मुख्य यशोविजयजी उपाध्यायद्वारा विरचित प्राकृतपाठमें देखे हुए लिखे हैं । किस

प्रयोजनके लिये कहे हैं ? कि श्रीजिनेन्द्रके चरणरूपी कमलोंके शरणको प्राप्त जो भव्यजन हैं, उनको ज्ञानगुणकी प्राप्ति हो इस लिये मैंने कहे हैं । यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

इति श्रीपण्डितठाकुरप्रसादशर्मविरचितभाषाटीकासमलङ्कृताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

अथ पर्यायभेदानाह ।

अव पर्यायके भेदोंको कहते हैं ।

सूत्रम् । नत्वा जिन प्रवक्ष्यामि पर्यायोत्कीर्तनं मुदा ।

व्यञ्जनार्थविभेदेन तद्विभेद समासतः ॥ १ ॥

सूत्रभाषार्थः—श्रीजिनेन्द्रको नमस्कार कर, आनन्दपूर्वक इस अध्यायमें पर्यायोंका वर्णन करूंगा । वह पर्यायोंका वर्णन समास(संक्षेप)से व्यजन और अर्थके भेदसे दो प्रकारका है ॥ १ ॥

व्याख्या । जिन वीतराग नत्वा नमस्कृत्य पर्यायोत्कीर्तनं पर्यायाणामुत्कीर्तनं पर्यायोत्कीर्तनं मुदा ह्येव प्रवक्ष्यामि । यदित्युत्तरापेक्षाया तत्पर्यायोत्कीर्तनं समासत संक्षेपाद्व्यञ्जनार्थविभेदेन व्यञ्जन चार्थश्च तयोर्विभेद प्रत्येक योजना व्यञ्जनभेदेनार्थविभेदेन तत्कीर्तनं पर्यायस्य द्विभेद द्विप्रकारकमित्यर्थ ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—श्रीवीतरागको नमस्कार करके, हर्षसे पर्यायोंका उत्कीर्तन (निरूपण) इस चतुर्दश १४ अध्यायमें कहूंगा । 'यत्' यह आगेके कथनकी अपेक्षामें है जो पर्यायका निरूपण संक्षेपसे व्यजन और अर्थके भेदसे अर्थात् व्यजनके भेदसे तथा अर्थके भेदसे दो प्रकारका है ॥ १ ॥

सूत्रम् । तत्र व्यञ्जनपर्यायत्रिकालस्पर्शनो मतः ।

द्वितीयश्चार्थपर्यायो वर्तमानानुगोचरः ॥ २ ॥

सूत्रभाषार्थः—उन दोनों भेदोंमेंसे प्रथम व्यजन पर्याय त्रिकालस्पर्शी कहा गया है, और दूसरा अर्थ पर्याय वर्तमान सूक्ष्मकालवर्ती माना गया है ॥ २ ॥

व्याख्या । तत्र तयोर्द्वयोरुत्कीर्तनयोर्मध्य आद्यो व्यञ्जनपर्यायत्रिकालस्पर्शनो मतोऽनुगतकालकलित कथित । यस्य हि त्रिकालस्पर्शनं पर्यायं स च व्यञ्जनपर्यायः । यथाहि—घटा दीना मृदादिपर्यायो व्यञ्जनपर्यायो मृन्मय सुवर्णादिधातुमयो वा घट कालत्रयेऽपि मृदादि पर्यायत्व व्यञ्जयति, तथा द्वितीयोभेदोऽर्थपर्याय वर्तमानानुगोचर सूक्ष्मवर्तमानकालवर्ती अर्थपर्यायः यथाहि—घटादेस्तत्तत्क्षणवर्ती पर्यायः यस्मिन्काले वर्तमानतया स्थितस्तत्तत्कालापेक्षाकृतविद्यमानत्वेनार्थपर्याय उच्यते इत्यर्थः ॥ २ ॥

व्याख्यार्थः—उन दोनों उत्कीर्तनोंमें प्रथम जो व्यजन पर्याय है वह त्रिकालस्पर्शी है अर्थात् पूर्वापर अनुगत सत्र कालके साथ वह पर्याय स्पर्श करता है । तात्पर्य यह कि जिसका स्पर्श भूत, भविष्य तथा वर्तमान इन तीनों कालोंमें होता है वह व्यञ्जन पर्याय है ।

जैसे—घटादिका मृत्तिका आदि पर्याय व्यञ्जन पर्याय है अर्थात् नृन्मय अथवा सुवर्णादिमय घट तीनो कालोंमें पर्यायत्व अर्थात् मृत्तिका आदि पर्यायको प्रकाश करता है । और द्वितीय भेद अर्थपर्याय है । यह अर्थपर्याय वर्तमान अणुका विषय है अर्थात् सूक्ष्म वर्तमान कालवर्त्ती अर्थ पर्याय है । जैसे घट आदिका उस उंस क्षणमें रहनेवाला पर्याय जिस कालके क्षणमें वर्तमानतासे स्थित है उस उस कालकी अपेक्षासे उत्पत्तिद्वारा विद्यमान होनेसे वह अर्थपर्याय कहा जाता है । भाव यह है कि जिस क्षणमें घट विद्यमान है उसी क्षणकी विद्यमानतासे वह घट अर्थपर्याय है ॥ २ ॥

अथ तयोः प्रत्येकं द्वैविध्यं दर्शयन्नाह ।

अव उन दोनों पर्यायोंमें प्रत्येकके दो २ भेद दिखाते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । द्रव्यतो गुणतो द्वेधा शुद्धतोऽशुद्धतस्तथा ।

शुद्धद्रव्यव्यञ्जनारूप्यश्चेन्नो सिद्धता यथा ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—उन पर्यायोंके द्रव्यसे तथा गुणसे दो भेद हैं और शुद्ध तथा अशुद्धके द्वारा भी दो भेद हैं । शुद्ध द्रव्यव्यञ्जननामा शुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय जैसे चेतनमें सिद्धता पर्याय है ॥ ३ ॥

व्याख्या । द्रव्यतो द्रव्यपर्यायो भवति तथा गुणतो गुणपर्यायोऽपि भवति, एवं द्वेधा द्विप्रकारः स्यात् । तथाहि द्रव्यव्यञ्जनपर्यायो गुणव्यञ्जनपर्याय इति । तथा पुनस्तेनैव प्रकारेण शुद्धतः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः, अशुद्धतोऽशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायश्च द्विप्रकारः । तत्र तेषु भेदेषु शुद्धद्रव्यव्यञ्जनारूप्यः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः कस्मिन्भवति चेतने यथा सिद्धता चेतनद्रव्यस्य यथा सिद्धपर्यायः । अयं हि केवलभावान्ज्ञेयः ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—द्रव्यसे तो द्रव्यपर्याय होता है और गुणसे गुण पर्याय होता है, इस प्रकार दो भेद होते हैं । जैसे द्रव्यव्यञ्जन पर्याय तथा गुणव्यञ्जन पर्याय होता है । और उसी प्रकारसे शुद्धसे शुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय होता है तथा अशुद्धसे अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय होता है ऐसे दो भेद हैं । अब उन भेदोंमेंसे शुद्ध द्रव्यव्यञ्जन नामक शुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय किसमें होता है, जैसे चेतनमें सिद्धता अर्थात् चेतनद्रव्यका सिद्ध पर्याय है । यह शुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय केवल भावसे जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पुनर्भेदोपदेशमाह ।

फिर भेदका उपदेश करते हैं ।

सूत्रम् । अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनो नरादिर्वहुधामतः ।

गुणतोऽपीत्यमेवात्र कैवल्यमतिचिन्मुखः ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय मनुष्य देव आदि अनेक प्रकारका माना गया है और इसी प्रकार गुणसे भी जानने अर्थात् शुद्ध गुणव्यञ्जन पर्याय तथा अशुद्ध गुणव्यञ्जन पर्याय ये दो भेद गुणसे हैं । इनमें प्रथम भेदमें केवलज्ञान आदि और दूसरे भेदमें मतिज्ञानादि पर्याय हैं ॥ ४ ॥

ध्यात्वा । अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायोऽशुद्धद्रव्यव्यञ्जनो नरादिरादिशब्दादेवनारकतिर्यगा
दयो बहुधा मतास्तदपेक्षया नरादिर्बहुधा मतः । अत्र हि द्रव्यभेद पुद्गलसयोगजनितोऽस्ति ।
मनुष्यादिभेदेनैव भेदः । गुणतोऽपीत्यमेव । गुणव्यञ्जनपर्यायो द्विप्रकारः । तत्र प्रथम
शुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायः केवलस्य केवलज्ञानादिरूपः, द्वितीयोऽप्यशुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायो
मतिचिन्मुरः । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूप इति ॥ ४ ॥

व्याख्यार्थः—अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय मनुष्य, देव, नारक और तिर्यञ्च आदि रूपसे
अनेक प्रकारका माना गया है इसीकी अपेक्षासे “नरादिर्बहुधा मतः” यह सूत्रमे पाठ है ।
यहापर द्रव्यका भेद पुद्गल सयोगसे उत्पन्न है, अतः मनुष्य आदिके भेदमे यह भेद होता
है । गुणसे भी इसी प्रकार है अर्थात् गुणव्यञ्जन पर्याय भी दो प्रकारका है । उनमे प्रथम
शुद्ध गुणव्यञ्जन पर्याय जो है, वह तो केवलज्ञान आदि रूप पर्याय है । और दूसरा अशुद्ध
गुण व्यञ्जन पर्याय मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अग्रधिज्ञान तथा मन पर्यय ज्ञान आदि स्वरूप
है ॥ ४ ॥

पुन कथयति ।

फिर भी पर्यायका भेद कहते हैं ।

सूत्रम् । ऋजुसूत्रमतेनार्थपर्यायः क्षणवृत्तिमान् ।

आभ्यन्तर शुद्ध इति तदन्योऽशुद्ध ईरितः ॥ ५ ॥

सूत्रभाषार्थः—ऋजुसूत्र नयके मतसे अर्थपर्याय क्षणवृत्तिवाला है । आभ्य
न्तर तो शुद्ध अर्थपर्याय है और उससे अन्य अशुद्ध अर्थपर्याय कहा गया है ॥ ५ ॥

ध्यात्वा । ऋजुसूत्रमतेनार्थपर्यायः आभ्यन्तर शुद्धार्थपर्याय क्षणवृत्तिमान्
क्षणपरिणतः । तदन्यस्तदतिरिक्तोऽशुद्ध ईरितः । यो यस्मादल्पकालवर्त्ती पर्याय स च
तस्मादल्पत्वविवक्षया अशुद्धार्थपर्यायः कथ्यते ॥ ५ ॥

व्याख्यार्थः—ऋजुसूत्रनयके आदेशमे आभ्यन्तर (अन्तरंग)का जो है वह शुद्ध
अर्थपर्याय है और क्षणमात्रवृत्ति है अर्थात् शुद्धार्थपर्याय क्षणक्षणमें परिणामको प्राप्त
होता है । और उससे अन्य अशुद्ध अर्थपर्याय कहा गया है । तात्पर्य यह कि जो जिस
पर्यायसे अल्पकालवर्त्ती पर्याय है वह पर्याय उस अधिक कालवर्त्ती पर्यायसे अल्पत्वकी
अपेक्षासे अशुद्ध अर्थपर्याय कहा जाता है ॥ ५ ॥

अत्र वृद्धवचनमस्मिन् दर्शयति ।

इस निषयमें वृद्धोंके वचनरूप समिति दर्शाते हैं ।

सूत्रम् । नरो हि नरशब्दस्य यथा व्यञ्जनपर्ययः ।

बालादिकोऽर्थपर्यायः समतौ भणितस्त्वयम् ॥ ६ ॥

सूत्रभाषार्थः—जमे नर शब्दका नर पर्याय व्यञ्जनपर्याय कहा गया है, वेमेही
समतौ प्रथमें बाल आदि अर्थपर्याय कहा गया है ॥ ६ ॥

व्याख्या । नरो हि नरशब्दस्य यथा व्यञ्जनपर्याय इति । यथा पुरुषवाच्यजन्ममरणकालपर्यन्त एकोऽनुगतनरत्वपर्यायः स च पुरुषस्य व्यञ्जनपर्यायोऽस्ति, संमतिविषये बालादिकस्तु पुनरर्थपर्यायः कथितः । अयमिति इदमः प्रत्यक्षत्वे साक्षात्संमतिदृष्ट इति । अत्र गाथा “पुरिसंमि पुरिससद्दो जम्माइ मरणकालपज्जंतो । तस्सओ बालाईया पज्जवभेया बहु विगप्पा॥ ॥ १ ॥ ६ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे नरशब्दका नर व्यञ्जनपर्याय है, तात्पर्य यह कि पुरुष शब्दसे वाच्य पुरुषपर्याय जन्मसे आदि लेके मरणकालपर्यन्त एक अनुगत रूपसे नरत्व पर्याय है और वह पुरुषका व्यञ्जन पर्याय है और बाल आदिक अर्थपर्याय हैं ऐसा संमति ग्रंथमें कहा है, अर्थात् यह विषय साक्षात् संमतिमें देखा हुआ है । यहां संमतिकी गाथा है कि “जैसे पुरुषमें पुरुष यह शब्द जन्मसे मरणतक रहता है यह व्यञ्जन पर्याय है और उस पुरुषमें बाल, युवा, इत्यादि जो भेद हैं ये सब अर्थपर्याय हैं ॥ ६ ॥

अथ केवलज्ञानादिकः शुद्धगुणव्यञ्जनपर्याय एव भवति, तत्रार्थपर्यायो नास्तीत्येतादृशी कस्यचिद्विषयभासस्याशङ्कास्ति तां निराकरोति ।

अब “केवल ज्ञान आदि शुद्ध गुणव्यञ्जन पर्याय ही हैं, उनमें अर्थपर्याय नहीं है.” ऐसी किसी दिग्म्वराभासकी शंका है, उसको दूर करते हैं ।

सूत्रम् । षड्गुणहानिवृद्धिभ्यां यथाऽगुरुलघुस्तथा ।

पर्यायः क्षणभेदाच्च केवलाख्योऽपि संमतः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—जैसे षड्गुणी हानिवृद्धिसे अगुरुलघु पर्याय माना है, उसी प्रकार क्षणके भेदसे केवलाख्य गुण पर्यायके भी अर्थ पर्याय माना गया है ॥ ७ ॥

व्याख्या । षड्गुणहानिवृद्धिभ्यामगुरुलघुपर्याया यथा कथिताः षड्गुणहानिवृद्धिलक्षणा अगुरुलघुपर्यायाः सूक्ष्मार्थपर्याया इतिवत्पर्यायः क्षणभेदात्केवलाख्योऽपि संमतः क्षणभेदात्केवलज्ञानपर्यायोऽपि भिन्नो भिन्न एव दर्शितः । यतः “पढमसमये योगभवत्थकेवलनाणे” अपढमसमये सजोगिभवत्थकेवलनाणे” इत्यादिवचनात्तदुसूत्रादेशेन शुद्धगुणस्याप्यर्थपर्याया मन्तव्याः ॥ ७ ॥

व्याख्यार्थः—जैसे षड्गुणी हानि वृद्धिसे अगुरुलघु पर्याय कहे हैं अर्थात् जैसे षड्गुणी हानि वृद्धिलक्षण अगुरुलघु पर्याय अर्थात् सूक्ष्मार्थ पर्याय है ऐसेही क्षणके भेदसे केवल ज्ञान नामक पर्याय भी भिन्न २ ही देखा गया है. क्योंकि, प्रथम समयमें योग-भवस्थ केवलज्ञानमें, द्वितीयसमय सयोगी भवस्थ केवलज्ञानमें” इत्यादि वचन हैं. इस लिये ऋजुसूत्रनयके आदेशसे शुद्ध गुणके भी अर्थपर्याय मानने चाहिये ॥ ७ ॥

सूत्रम् । सद्रव्यव्यञ्जनोऽणुश्चाशुद्धपुद्गलपर्यवः ।

द्व्यणुकाद्या गुणाः स्वीयगुणपर्यायसंयुताः ॥ ८ ॥

सूत्रभाषार्थः—शुद्ध द्रव्यव्यजन परमाणु जो है वह शुद्ध पुद्गल पर्याय है और द्व्यणुकादि अशुद्ध द्रव्य व्यजन पर्याय है । ये अपने २ गुण पर्यायां सहित है ॥ ८ ॥

व्याख्या । सद्रव्यव्यञ्जनोऽणु शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपरमाणु शुद्धपुद्गलपर्यवन्मन्य नाशो नास्ति । तथा द्व्यणुकादिका अशुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्याया संयोगजनितत्वात् । कीदृशा स्वीयगुणपर्यायसंयुता पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धगुणव्यञ्जनपर्याया अशुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायास्तैः निज २ गुणाश्रिता मत्तव्या । यत् परमाणुगुणो य स च शुद्धगुणव्यञ्जनपर्यायस्तथा द्विप्रदेशादिगुणो य स चाशुद्धगुणव्यञ्जनपर्याय ॥ ८ ॥

व्याख्यार्थः—शुद्ध द्रव्यव्यजन परमाणु जो है वह शुद्ध पुद्गल पर्याय है । क्योंकि, उसका नाश नष्ट होता है । और द्व्यणुक आदि अशुद्ध द्रव्यव्यजन पर्याय है । क्योंकि, संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण नाशमान् है । ये कैसे है कि अपने गुण तथा पर्याय करके सहित है । अर्थात् पुद्गल द्रव्यके जो शुद्ध गुणव्यजन पर्याय और अशुद्ध गुणव्यजन पर्याय है, वे अपने २ गुणके आश्रित मानने चाहिये । क्योंकि, जो परमाणुका गुण है वह तो शुद्ध गुणव्यजन पर्याय है, और जो द्विप्रदेश आदिका गुण है वह अशुद्ध गुणव्यजन पर्याय है ॥ ८ ॥

सूत्रम् । सूक्ष्मार्थपर्ययाः सन्ति धर्मादीनामितीव ये ।

कथयन्ति न किं तेऽमुं जानन्त्यात्मपरार्थतः ॥ ९ ॥

सूत्रभाषार्थः—धर्मादि द्रव्यके सूक्ष्म अर्थपर्याय है ऐसा जो दिगम्बर कहते हैं तो क्या वे स्वपरमोधमे इस क्षणपरिणामरूप अर्थपर्यायको नहीं जानने ॥ ९ ॥

व्याख्या । धर्मादीनां धर्मास्तिकायादीनां सूक्ष्मार्थपर्यया शुद्धद्रव्यव्यजनपर्याया सन्ति, इतीव ये कथयन्त्येतादृशदृष्टं कुर्वन्ति ते जना दृष्टं त्यक्त्वा आत्मपरार्थतः त्रिनपरप्रत्ययादनुसूत्रादेनैव चासु क्षणपरिणतिरूप पूर्वोक्तमर्थपर्यायमपि केवलज्ञानादिवत् किं किमिति कथं जानन्ति दृष्टं त्यक्त्वा कथं नाङ्गीकुर्वन्ति । किं च तेषु धर्मास्त्रिकायादिष्वपेक्षया अशुद्धपर्यायोऽपि भवति च चेत्तदा परमाणुपर्यन्तविश्राम पुद्गलद्रव्येऽपि च भवति, इत्यभिप्रायेण कथं पत्राह ॥ ९ ॥

व्याख्यार्थः—धर्मास्तिकाय आदि द्रव्योंके सूक्ष्म अर्थ पर्याय अर्थात् शुद्ध द्रव्यव्यजन पर्याय है, ऐसा जो दृष्ट करते हैं, वे दृष्ट करनेवाले अनुप्य दृष्टको छोड़कर, अपने प्रत्ययमे अध्या परके प्रत्ययसे और ऋजुप्रायके आश्रितसे इस क्षणपरिणाम रूप पूर्वोक्त अर्थ पर्यायको भी केवल ज्ञान आदिकी भाति क्यों नहीं जानते । अर्थात् अपने दृष्टको छोड़कर, क्यों नहीं स्वीकार करते । यह आक्षेप है । और भी, उक्त धर्मास्त्रिकाय आश्रिते अपेक्षामे अशुद्ध पर्याय भी होता है, यदि ऐसा न हो तो पुद्गल द्रव्यमे भी परमाणु तब विश्राम नहीं होता है । इस अभिप्रायसे श्लोक कहते हैं ॥ ९ ॥

सूत्रम् । यथाऽऽकृतिश्च धर्मादेः शुद्धो व्यंजनपर्यवः ।

लोकस्य द्रव्यसंयोगादशुद्धोऽपि तथा भवेत् ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—जैसे धर्म आदि द्रव्यके लोकाकाश प्रमाणसे शुद्ध व्यंजन पर्याय है, ऐसेही लोकमें रहनेवाले द्रव्योंके संयोगसे अशुद्ध व्यंजन पर्याय क्यों न हो ? अर्थात् होनाही चाहिये ॥ १० ॥

व्याख्या । धर्मास्तिकायादेराकृतिर्लोकाकाशमानसंस्थानरूपा यथा वर्तते तथा शुद्धो व्यंजनपर्यवः शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायः कथ्यते परनिरपेक्षत्वेनेति । तथा लोकस्य द्रव्यसंयोगाल्लोकवर्त्ती द्रव्यसंयोगरूपोऽशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायोऽपि तस्य लोकस्य द्रव्यसंयोगान्निरपेक्षत्वं कथयन्विरोधं नोत्पादयति । विरोधः कोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

व्याख्यार्थः—जैसे धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यका आकार लोकाकाश प्रमाण स्थितिरूप है, इस लिये परद्रव्यकी निरपेक्षासे वह शुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय है ऐसा कथन होता है; ऐसेही लोकके द्रव्योंके संयोगसे अर्थात् लोकमें रहनेवाले जो द्रव्य हैं उन द्रव्योंका धर्मादि द्रव्यके साथ संयोगरूप अशुद्ध द्रव्यव्यंजन पर्याय भी है; और उस लोकके द्रव्य संयोगसे निरपेक्षक होनेसे किसी विरोधको भी नहीं उत्पन्न करता; अर्थात् कोई विरोध नहीं है ॥ १० ॥

अथाकृतिः पर्यायो भविष्यति, संयोगः पर्यायो न भविष्यतीत्याशङ्कं परिहरन्नाह ।

अब आकृति पर्याय हो सकती है और संयोग नहीं इस आशंकाको दूर करते हुए कहते हैं ।

सूत्रम् । आकृतेरिव संयोगः पर्यवः कथ्यते यतः ।

उत्तराध्ययनेऽप्युक्तं पर्यायस्य हि लक्षणम् ॥ ११ ॥

सूत्रभावार्थः—आकृतिके समान संयोग भी पर्याय कहलाता है । क्योंकि, उत्तराध्ययन सूत्रमें भी पर्यायका लक्षण कहा है ॥ ११ ॥

व्याख्या । संयोगोऽप्याकृतेरिवाकृतिवत्पर्यायः कथ्यते । यतो हेतोः पर्यायस्य लक्षणं हीति निश्चितमुत्तराध्ययनेऽप्युक्तं कथितम् । ततोऽस्य लक्षणं सभेदमपि श्रीउत्तराध्ययनादेवावसेयमिति ॥ ११ ॥

व्याख्यार्थः—संयोग भी आकृति (आकार) के समान पर्याय कहा जाता है । क्योंकि, निश्चय रूपसे पर्यायका लक्षण उत्तराध्ययन सूत्रमें भी कहा है । इसलिये भेदसहित पर्यायका लक्षण श्रीउत्तराध्ययन सूत्रसे ही जानना चाहिये ॥ ११ ॥

पुनस्तदेवाह ।

फिर पर्यायके विषयमें ही कहते हैं ।

सूत्रम् । एकत्वं च पृथक्त्व च सख्या सस्थानमेव च ।

सयोगश्च विभागश्चेतीत्य मनसि चिन्तय ॥ १२ ॥

सूत्रभावार्थः—एकत्व, पृथक्त्व, सरया, सस्थान, सयोग तथा विभाग इन सनको पर्याय रूपसे मनमे विचारो ॥ १२ ॥

न्याय्या । एकत्व १ पृथक्त्वम् २ एतद्वय तथा पुन सरया १ सस्थानम् २ एतद्वय च पुन सयोग १ विभाग २ एतद्वय चेत्यादि षट् द्वित्वपरिणत मनसि चिन्तय । स्वचेतोगोच रीकुरुष्वेत्यर्थ । तथा च तत्र गाथा—“एगत्त च पुहुत्त च सरया सठाणमेव च । सयोगो य विभागो य पज्जवाण तु लम्हरण । १” इत्येतद्गाथोक्तपर्यायभेदभावना भावयितव्या ॥ १२ ॥

व्याख्यार्थः—एकत्वं १ पृथक्त्वं २ ये दोनों, सरया १ सस्थान २ (आकृति वा अत्रयव-रचना) ये दोनों, पुन सयोग १ तथा विभाग २ ये दोनों, इन तीन द्वन्द्व अर्थात् छहको मनम पर्याय रूप विचारो । अर्थात् अपने चित्तमे इनको पर्यायके भेद समझो । ऐसी ही यहापर उत्तराध्ययनकी गाथा है—“एकत्व १ पृथक्त्व २ सख्या ३ सस्थान ४ सयोग ५ और विभाग ६ ये पर्यायके लक्षण है । इस गाथामे जो (एकत्व आदि) कहे हूँ, उनमे पर्यायके भेदकी भावना करनी चाहिये । भावार्थ—उत्तराध्ययनमे सयोगको भी पर्याय माना है ॥ १२ ॥

पुन प्रकृतमेवार्थमाह ।

फिर उसी पर्याय त्रिपयको कहते है ।

सूत्रम् । उपचारी न वाऽशुद्धो यद्यप्यन्याश्रितो भवेत् ।

असद्भूता मनुष्याद्यास्तदा नाशुद्धयोगकाः ॥ १३ ॥

सूत्रभावार्थः—जो उपचरित है वह यद्यपि परद्रव्याश्रित हो परन्तु अशुद्ध नहीं हो सकता । यदि ऐसा मानते हो, तब तो असद्भूत मनुष्य आदि भी अशुद्धपर्याययोगी नहीं होंगे ॥ १३ ॥

व्याख्या । उपचारी न भवत्यशुद्धो यद्यप्यन्याश्रितो भवेत्परद्रव्यसयोगी स्यात्तथाप्युप-चारी अशुद्धता नाप्नोति । अथ च यणेव यद्यप्यन्य यद्यपि च धर्मास्तिकायादीना परद्रव्यस योगोऽस्ति तदुपचरितपर्याय इति कथ्यते, परन्त्वशुद्धपर्याय इति न कथ्यते, द्रव्यातयात्वे तुष्वेवाशुद्धत्वव्यवहारोऽस्तीति, तत्तस्माद् मनुष्यादिपर्यायोऽप्यशुद्ध इति न कथयत, असद्भूत व्यवहारनयप्राप्तत्वेनासद्भूत इति कथयत । तद्धि तन्त्वादिपर्यायवदेकद्रव्यजननायवम घातसैवाशुद्धद्रव्यजनपर्यायत्वं च कथयता चतुरस्र लगेदिति । तस्मादपेक्षानपेक्षाभ्या शुद्धाशुद्धानेकान्तव्यापकत्वमेव त्रय इति । तदेवापेक्षने पने प्रतिपादयिष्यति । पुनरक्षगर्थ स्त्वेवम् । असद्भूता मनुष्याद्यास्तदा अशुद्धयोगका नेति ॥ १३ ॥

व्याख्यार्थः—उपचारवान् यद्यपि परद्रव्यका सयोगी होवै तथापि वह अशुद्धताको नहीं प्राप्त होता है । अब यदि ऐसा कहते हो नि, धर्मान्तिकाय आदि द्रव्योंका परद्रव्यके

साथ संयोग है; इसीसे उनको उपचरित पर्याय कहते हैं परन्तु अशुद्ध पर्याय नहीं कहते । क्योंकि द्रव्यके अतथाभावके (अन्यपनेके) हेतुओंमें ही अशुद्धताका व्यवहार है, इस कारण, मनुष्य आदि पर्याय भी अशुद्ध है; ऐसा न कहो । किन्तु असद्भूत व्यवहार नयसे ग्राह्य होनेसे असद्भूत है, ऐसा कहो । क्योंकि वह तन्तु आदि पर्यायकी तरह एकद्रव्यजनक जो अवयवसंघात (अवयवोंका समूह) उसीको अशुद्ध द्रव्यव्यंजनपर्यायता कहनेवालोंके चतुरस्त्र लगेगा । इसलिये अपेक्षासे शुद्ध और अपेक्षारहिततासे अशुद्ध इस प्रकार अनेकान्त व्यापकता ही श्रेष्ठ है । और इसीको आगेके श्लोकमें प्रतिपादित करेंगे । अक्षरोंका अर्थ तो यह है कि, यदि उपचारी अशुद्धताको नहीं प्राप्त होता; तो मनुष्य आदि भी अशुद्ध पर्यायके योगी नहीं है ॥ १३ ॥

पुनः कथयति ।

पुनः उसी विषयको कहते हैं ।

सूत्रम् । धर्मादेरन्यपर्यायेणात्मपर्यायतोऽन्यथा ।

अशुद्धताविशेषो न जीवपुद्गलयोर्यथा ॥ १४ ॥

सूत्रभावार्थः—धर्मास्तिकाय आदिके परपर्यायसे तथा अपने पर्यायसे विलक्षणता है; और जैसे जीव, पुद्गलमें अशुद्धताका विशेष नहीं है; वैसे इनमें भी नहीं है ॥ १४ ॥

व्याख्या । धर्मादेर्धर्मास्तिकायादेरन्यपर्यायेण परपर्यायेणात्मपर्यायेणात्मपर्यायतः स्वपर्यायादन्यथा विपमत्वं विलक्षणत्वं ज्ञातव्यम् । यतः कारणादशुद्धताया विशेषो नास्ति यथा जीवपुद्गलयोर्विषये अशुद्धताविशेषो नास्ति ॥ १४ ॥

व्याख्यार्थः—धर्मास्तिकाय आदिके परपर्याय तथा आत्मपर्यायसे विलक्षणता जाननी चाहिये । क्योंकि, जैसे जीव और पुद्गलके विषयमें अशुद्धता विशेष नहीं है; वैसे यहां भी अशुद्धताका विशेष नहीं है ॥ १४ ॥

अथ प्रकारान्तरेण चतुर्विधपर्याया नयचक्रे कथितास्तानेव दर्शयन्नाह ।

अब नयचक्रमे अन्य प्रकारसे पर्यायोंके जो चार भेद कहे हैं; उन्हीं भेदोंको दर्शाते हुए आगेका श्लोक कहते हैं ।

सूत्रम् । स्वजातेश्च विजातेश्च पर्याया इत्थमर्थके ।

स्वभावाच्च विभावाच्च गुणे चत्वार एव च ॥ १५ ॥

सूत्रभावार्थः—द्रव्यके विषयमें इसी प्रकार स्वजातीयसे तथा विजातीयसे पर्याय होते हैं । ऐसेही गुणके विषयमें भी स्वभाव गुणसे तथा विभाव गुणसे पर्याय होते हैं । इस प्रकार पर्यायके चार भेद हुए ॥ १५ ॥

व्याख्या । इत्थममुना प्रकारेण स्वजातेः पर्यायाः सजातीयद्रव्यपर्यायाः, विजातेः पर्याया विजातीयद्रव्यपर्यायाश्चार्थके द्रव्ये द्रव्यविषये भवन्ति । स्वभावाच्च पुनर्विभावादिति स्वभाव-

गुणपर्याया, विभावगुणपर्याया इत्थ चत्वारो भेदा द्रव्यगुणभेदात्पर्यायाणा कथनीया । स्वजातीयद्रव्यपर्याय, विजातीयद्रव्यपर्याय, स्वभावगुणपर्याय, विभावगुणपर्याय, इति चत्वारो द्रव्यगुणयोर्भेदा भावनीया इति ॥ १५ ॥

व्याख्यार्थः—इस प्रकारसे स्वकीय जातिसे जो पर्याय होते हैं वे सजातीय पर्याय कहलाते हैं, तथा परजातिसे जो पर्याय होते हैं वे विजातीय पर्याय कहलाते हैं । और स्वभावसे तथा विभावसे गुणमें पर्याय होते हैं । अर्थात् स्वभाव गुणपर्याय, और विभाव गुण-पर्याय दो भेद ये । ऐसे द्रव्य और गुणके भेदसे पर्यायोंके चार भेद कहने चाहिये । अर्थात् सजातीय द्रव्यपर्याय १ विजातीय द्रव्यपर्याय २ स्वभाव गुणपर्याय ३ तथा विभाव गुण-पर्याय ४ इस प्रकार दो भेद द्रव्यके तथा दो भेद गुणके इन दोनोंको मिलाके, चार भेद द्रव्य गुण दोनोंके निचारने चाहिये ॥ १५ ॥

अत्र पूर्वोक्ताना भेदानामुदाहरणमाह ।

अत्र पूर्वोक्त सजातीय द्रव्यपर्याय आदि भेदोंके उदाहरण कहते हैं ।

सूत्रम् । द्व्यणुक च मनुष्याश्च केवल मतिचिन्मुखाः ।

दृष्टान्ता प्रायिकास्तेषु नाणुरन्तर्भवेत्कचित् ॥ १६ ॥

सूत्रभावार्थः—द्व्यणुक सजातीय द्रव्यपर्याय है, मनुष्य आदि विजातीय द्रव्यपर्याय है तथा केवल ज्ञान स्वभावा गुणपर्याय है और मतिज्ञान आदि विभाव गुणपर्याय है । ये दृष्टांत प्रायिक हैं । क्योंकि, इनमें कहीं भी अणुका अन्तर्भाव नहीं होता है ॥ १६ ॥

व्याख्या । द्व्यणुक चेति द्विप्रदेशादिस्कन्ध स च सजातीयद्रव्यपर्याय, कथं तत् । द्वयो परमाण्वो सयोगे सति द्व्यणुकमेतावता द्रव्यद्वय सगलैरुद्रव्य भवतीति सजातीयद्रव्यपर्याय १ । मनुष्याश्च मनुजादिपर्याया विजातीयद्रव्यपर्याय इति, जीवपुद्गलयोर्योगे सति मनु-प्यत्वव्यवहारी जायते, एतावता विजातीयद्रव्यद्वय सगलैरुद्रव्य निष्पन्नमिति विजातीयद्रव्यपर्याय २ । अथ केवलमिति केवलज्ञान स्वभावगुणपर्याय कथ्यते, कथं तत्—कर्मणा सयोगरहितत्वात्स्वभावगुणपर्याय ३ । अथ मतिचिन्मुखा मतिज्ञानान्य पर्याया विभावगुणपर्याया कथ्यन्ते । कथं तत् कर्मणा परतन्त्रत्वाद्विभावगुणपर्याय ४ । इति । एते हि चत्वारो दृष्टान्ता प्रायिका स्मृतव्या । परमार्थतस्तु परमाणुरूपद्रव्यपर्याय एषु चतुर्षु नान्तर्भवितुमर्हति विभागजनितपर्यायत्वात् । तदुक्तं समेतो—“अणुरहिं द्रव्य आरद्धेति अणति वयसाण सात्ततो । अपुणविभक्तो अणुत्तिजाओ अणू होइ ।” इत्यादि सर्व विमृश्य विज्ञेयमिति । आरघद्रव्यपर्यायेऽणुद्वयसयोगे सति द्व्यणुक निष्पद्यते, त्रिभिर्द्रव्यैरुणुककृत्यणुक जायते, त्रिभि र्यणुर्ध्वश्चतुरणुकमुत्पद्यते । एव महती पृथ्वी, महत्यआपो, महान्तो वायव इत्यादि नैयायिकं प्रणीतत्वात् ॥ १६ ॥

व्याख्यार्थः—जो द्विप्रदेश आदि स्कन्ध हैं वे सजातीय द्रव्यपर्याय हैं । तो कैसे कि, दो परमाणुओंका सयोग होनेपर द्व्यणुक होता है । इसमें यह सिद्ध हुआ कि एक जातिके

दो द्रव्य परस्पर मिलके जो एक द्रव्य होता है वह सजातीय द्रव्यपर्याय है १ । और मनुष्य आदि जो पर्याय है वे विजातीय द्रव्यपर्याय हैं । क्योंकि, जीव और पुद्गलका परस्पर संयोग होनेपर मनुष्य यह व्यवहार होता है । इससे यह सिद्धान्त हुआ कि भिन्न २ जातिके दो द्रव्य मिलकर, जो एक द्रव्य होता है; वह विजातीय द्रव्य पर्याय कहलाता है २। केवल ज्ञान जो है वह स्वभाव गुणपर्याय कहा जाता है । सो कैसे कि—वह कर्मोंके संयोगसे रहित है इसलिये स्वभाव गुणपर्याय है ३। तथा मतिज्ञान आदि पर्याय विभाव गुणपर्याय कहलाते हैं । सो कैसे कि, ये कर्मोंके सम्बन्धसे होते हैं; इसलिये विभाव गुणपर्याय हैं ४। इन चारों दृष्टान्तोंको प्रायिक समझना चाहिये, अर्थात् ये सर्वत्र रहनेवाले नहीं हैं । परमार्थसे तो परमाणु रूप द्रव्यपर्याय इन चारोंमें अन्तर्गत होने योग्य नहीं है । क्योंकि, वह परमाणु द्रव्यविभागसे उत्पन्न पर्याय है न कि संयोगसे उत्पन्न । सोही संमतिमें कहा है कि—“दो तीन आदि अणुओंसे अनन्त द्रव्योंका आरंभ निरन्तर होता है । और जिनका फिर विभाग न हो वह अणु है । यह द्व्यणुकसे विभाग करके होता है । १।” इत्यादि सब विचारके जानना चाहिये । और “आरंभ किये हुए द्रव्यके पर्यायमें दो अणुओंके संयोगसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है, ऐसेही तीन द्व्यणुओंसे त्र्यणुक और चार त्र्यणुओंसे चतुरणुक उत्पन्न होता है और इसी प्रकार महापृथिवी, महाजल तथा महावायु आदि होते हैं” इत्यादि रूपसे नैयायिकोंने भी कहा है ॥ १६ ॥

पुनः प्रतिपिपादयिपुराह ।

उन्मी कथनकी इच्छासे पुनः इस श्लोकको कहते हैं ।

मृत्रम् । गुणानां हि विकाराः स्युः पर्याया द्रव्यपर्यायाः ।

इत्यादि कथयन्देवसेनो जानाति किं हृदि ॥ १७ ॥

मृत्रभाचार्यः—गुणोंके विकारही पर्याय हैं यह, पहिले कहके फिर द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय कहने हुए देवसेनजी अपने मनमें क्या जानते हैं ? ॥ १७ ॥

व्याख्या । गुणविकाराः पर्याया एवं कथयित्वा तेषां भेदाधिकारे पर्याया द्विविधा द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्चेति कथयन्त्र देवसेनो दिग्मन्त्रगचार्यो नयचक्रग्रन्थकर्त्ता हृदि चित्ते किं जानाति अपि तु सम्भावितार्थं न किमपि जानातीत्यर्थः । पूर्वापरविरुद्धभाषणादसत्प्राय एवे-
कमिन्वाभिप्रायः । किं द्रव्यपर्याया एव कथनीयाः परन्तु गुणपर्याया इति पृथग्भेदोत्कीर्त्तनं न कर्त्तव्यं द्रव्ये गुणत्वाधिरोपादृणे च गुणत्वाभावादिति निष्कर्षः ॥ १७ ॥

व्याख्यानार्थः—गुणोंके विकार पर्याय हैं ऐसा कहके पुनः पर्यायोंके भेदके अधिकारमें पर्याय दो प्रकारके हैं—द्रव्यपर्याय तथा गुणपर्याय इस प्रकार नयचक्र ग्रन्थके कर्त्ता दिग्मन्त्रगचार्य देवसेनजी अपने चित्तमें क्या जानते हैं ? अर्थात् कुछ नहीं जानते हैं । अर्थात् पर्याय भिन्न भाषण करनेमें यह झूठा है यह अभिप्राय है । और द्रव्यपर्याय ही कहने

चाहिये और गुणपर्याय ऐसा दूसरा भेद न करना चाहिये । क्योंकि, द्रव्यमें गुणत्वका अध्यारोप है और गुणमें गुणताका अभान है । यही तात्पर्य है ॥ १७ ॥

पुनस्तदेवाह ।

फिर उसीको कहते हैं ।

सूत्रम् । इत्थ पदार्थाः प्रणिधाय मूर्ध्नि परीक्षिता ज्ञानगुरोः सदाज्ञाम् ।
तुच्छोक्तिमुत्सृज्य विमोहमूलामर्हत्क्रमाभोजरतेन सर्वे ॥ १८ ॥

सूत्रभावार्थः—ज्ञानके दाता श्रीगुरुकी उत्तम आज्ञाको मस्तकपर धारण करके, जिनेन्द्रके चरणकमलमे तत्पर मैने विमोहके मूलभूत अज्ञप्रणीत वचनको त्यागकर, इस प्रकार सन पदार्थोंकी परीक्षा की ॥ १८ ॥

इति श्रीयशोविजयोपाध्यायप्रणीतद्रव्यगुणपर्यायभाषाविवरणोक्तार्थसद्वर्धितश्लोके
रूप द्रव्यानुयोगतर्कणाया चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

व्याख्या । इत्थमनया रीत्या पदार्था द्रव्यगुणपर्याया परीक्षिता स्वरूपलक्षणभेदाविकथनेन विनदीकृता । किं कृत्वा ज्ञानगुरो परम्परागतश्रुताचार्यस्य सदाज्ञा सत्यनिर्देश मूर्ध्नि मस्तके निधाय सस्थाप्य । पुन किं कृत्वा विमोहमूला भ्रमनिबन्धना तुच्छोक्तिं तुच्छबुद्धिप्रणीत वचनमुत्सृज्यापाकृत्य । कीदृशेन मया अर्हत्क्रमाभोजरतेन वीतरागचरणकमलसेवनरसिकेन । सर्वे पदार्था मया परीक्षिता इत्यर्थ । भोजेति नामनिरूपण चेति ॥ १८ ॥

इति श्रीवाचकमुख्य—श्रीयशोविजयनिर्दिष्टद्रव्यगुणपर्यायभाषाविवरणतदुक्तिसङ्कलिताया कृतिभोजसागरविर्णिमिताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया चतुर्दशोऽध्याय ॥

व्याख्यार्थः—परंपरागत श्रुताचार्यकी समीचीन आज्ञाको मस्तकपर धर करके और भ्रमसे उत्पन्न हुए ऐसे मन्दबुद्धियोंके रचे हुए वचनको दूर करके श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोंकी सेवा करनेमें रसिक ऐसे मैने इस प्रकार सन द्रव्य, गुण, पर्यायोंकी परीक्षा की, अर्थात् स्वरूप, लक्षण तथा भेद आदिका कथन करके स्पष्ट रीतिसे पदार्थोंका निरूपण किया । श्लेषसे “क्रमाभोज” इस पदमे “भोज” यह अपने नामका निरूपण भी आचार्यने किया है ॥ १८ ॥

इति श्रीआचार्योपाधिवारिपण्डितठाकुरप्रसादशमद्विनेदिप्रणीतभाषानुवादसमलङ्कृताया द्रव्यानुयोगतर्कणाया चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

सूत्रम् । द्रव्यादिकाना तु विचारमेव विभावयिष्यन्ति सुमेधसो ये ।
प्राप्स्यन्ति ते सन्ति यज्ञासि लक्ष्म्यः सौख्यानि सर्वाणि च चाञ्छितानि १

सूत्रभावार्थः—जो बुद्धिमान् इस प्रकार द्रव्य आदिका विचार करेंगे, वे उत्तम यश, लक्ष्मी तथा सपूर्ण अभिलषित सुखोंको प्राप्त होंगे ॥ १ ॥

व्याख्या । एवमनया रीत्या द्रव्यादिकानां विचारं ये सुबुद्धयो विभावयिष्यन्ति ते सुमेधस इह सन्ति शोभनानि यशांसि । पुनः लक्ष्म्यः परत्र सर्वाणि वाञ्छितानि सुखानि प्राप्स्यन्तीति भावः ॥ १ ॥

व्याख्यार्थः—इस पूर्वोक्त प्रकारसे जो उत्तम बुद्धिके धारक भव्य जीव द्रव्यादि पदार्थोंके विचारकी विभावना करेंगे वे सम्यक् ज्ञानधारी जीव अच्छे यश, और लक्ष्मियोंको प्राप्त करेंगे तथा परलोकमें सब वाञ्छित सुखोंको प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥

सूत्रम् । गुरोः श्रुतेश्चानुभवात्प्रकाशितः परो हि द्रव्याद्यनुयोग आन्तरः ।
जिनेशवाणीजलधौ सुधाकरः सदा शिवश्रीपरिभोगनागरः ॥२॥

सूत्रभावार्थः—सर्वोत्तम, आन्तरिक ज्ञानस्वरूप, श्रीजिनेन्द्रके वचनरूपी समुद्रमें चन्द्रमाके समान तथा निरन्तर मुक्तिलक्ष्मीके सेवनमें नागर ऐसा यह द्रव्यानुयोग मैंने गुरुके सिद्धान्तसे तथा अपने अनुभवसे प्रकाशित किया ॥ २ ॥

व्याख्या । गुरोर्ज्ञानगुरोः श्रुतेः सिद्धान्तादनुभवात्स्वानुभूतेरान्तरोऽन्तर्ज्ञानमयः परः प्रकृष्टो द्रव्यानुयोगः प्रकाशितः । कीदृशो वीतरागवचनसमुद्रे चन्द्र इव चन्द्रः, निरन्तरं शिव-लक्ष्मीविलासे नायक इव नागर इति ॥ २ ॥

सूत्रम् । ये बालकास्ते किल लिङ्गदर्शिनो ये मध्यमास्ते तु बहिष्क्रियारताः ।
द्रव्यानुयोगाभ्यसने य उत्तमाः कृतादराः सत्पथसङ्गिनस्ते ॥ ३ ॥

सूत्रभावार्थः—जो बालक (मूर्ख) हैं वे केवल लिङ्गके दर्शक हैं, जो मध्यम (कुछ ज्ञानके धारक) हैं वे बाह्यक्रियामें तत्पर हैं; इसलिये जो द्रव्यानुयोगके अभ्यासमें आदर करनेवाले हैं वेही उत्तम (विशेष ज्ञानके धारक) हैं और सन्मार्गके सङ्गी हैं ॥ ३ ॥

व्याख्या । ये बालका इति सुगमम् । षोडशकवचनं—“बालः पश्यति लिङ्गं मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तिम् । आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन । ११” इति ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थः—‘ये बालकाः’ इत्यादि श्लोकका अर्थ सुगम है । इस श्लोकार्थके विषयमें षोडशकका भी वचन है—“बालक (मन्दबुद्धिजन) लिङ्गको देखता है, मध्यम बुद्धिके धारक वृत्तिका विचार करते हैं और जो ज्ञानी (उत्तम) हैं वे सर्व प्रकारसे शास्त्रोक्त तत्त्वकी परीक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

सूत्रम् । क्रिया प्रिया नैव विमुच्य संविदं न ज्ञानमानन्दकरं विना क्रियाम् ।
समुच्चये योगदृशां निरूपितं यदर्कखद्योतवदन्तरं महत् ॥ ४ ॥

सूत्रभावार्थः—ज्ञानके विना क्रिया प्यारी नहीं होती है और क्रियाके विना ज्ञान भी आनन्दका कर्त्ता नहीं होता है । और योगदृष्टिसमुच्चय नामक ग्रंथमें तो सूर्यमें और खद्योत (जुगुनू) में जितना अन्तर (फरक) है उतना बड़ा भेद ही ज्ञान और क्रियामें निरूपण किया है । अर्थात् ज्ञान तो सूर्यके समान है और क्रिया खद्योतके तुल्य है ॥ ४ ॥

सूत्रम् । खद्योतप्रतिमा क्रिया तु कथिता ज्ञानं तु भानूपम
मित्येतन्महदन्तर कलियुगे कश्चिद्बुधो विन्दति ।
बाह्याभ्यासविनिर्मितो हि दुरितक्षेपो भवेद्दुर्-
क्षुण्णक्षोदकणोपमः किमपर वाक्य बुधा ब्रूमहे ॥ ५ ॥

सूत्रभावार्थः—क्रिया तो खद्योतके तुल्य कही गई है और ज्ञान सूर्यके समान है,
इस प्रकार ज्ञान और क्रियामे बड़ा भेद है । इस भेदको कलियुग (पंचमकाल)में कोईही
विद्वान् जानता है । और बाह्यके अभ्याससे उत्पन्न हुआ जो पापका नाश है, वह दुर्दुर
(मेडक) के द्वारा खोदे हुए मिट्टीके कणके बराबर है । बुधजनों ! इससे अधिक क्रिया
तथा ज्ञानके भेदके विषयमें आपसे और क्या कहूँ ? ॥ ५ ॥

व्याख्या । क्रियेति स्पष्टम् । यदुक्त योगदृष्टिसमुच्चये “तत्कालिक पक्षपातो भावशून्या
च या न्रिया । अनयोरन्तर द्वेय भानुरद्योतयोरिव ।१।” “मझ्जकचुन्नकप्पो क्रियाइ जाणिओ
कओ किलेसाण । तद्दुर्दुरचुन्नकप्पो नाणकओ त च आणाए ॥ १ ॥ ५ ॥”

व्याख्यानार्थः—“क्रिया प्रिया” इत्यादि चतुर्थ तथा पंचम श्लोकका अर्थ स्पष्टही है
इसलिये व्याख्या नहीं की । यही नियम योगदृष्टिसमुच्चयमें कहा है कि तत्काल अर्थात्
उसी क्षणमें होनेवाले अपने पक्षपातको प्रकटकर्त्ता ज्ञानम और भावशून्य जो क्रिया है
उसमें सूर्य और खद्योतके बराबर भेद जानो ।१।” इस विषयमें यह गाथा भी है “क्रिया
आदिसे मेडकके खोदे हुए मिट्टीके कणके बराबर पापोंका नाश होता है और ज्ञानसे
मेडकके समान पापका नाश होता है, यह सर्वज्ञकी आनासे सिद्ध है ।१॥४॥५॥

सूत्रम् । मिथ्यात्वमूलाष्टकर्मसंस्था न कोटिकोटेरधिकोपदिष्टा ।

समागते ज्ञानगुणेऽत्र पुंसो महानिशीथोक्तमिति प्रमाणम् ६

सूत्रभावार्थः—मनुष्यको ज्ञान गुण प्राप्त होनेपर मिथ्यात्व है मूल जिनका ऐसे
आठों कर्मोंकी स्थिति कोटिकोटि सागरसे अधिक नहा है यह प्रमाण महानिशीथ ग्रथम
कहा हुआ है ॥ ६ ॥

सूत्रम् । जानाति तत्त्वानि यथार्थमर्थं व्रुते परान्यो दुरित निहन्ति ।

अनन्तकायस्थमपाकरोति यो भाष्य उक्तः स तु केवली जः ॥ ७ ॥

सूत्रभावार्थः—जो संपूर्ण तत्त्वोंको जानते हैं, जो भव्यजीवोंको यथार्थ पदार्थका
कथन करते हैं, जो अनन्तकायस्थको दूर वे हैं वे भाष्यमें केवली कहे गये हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या । अथ मिथ्यात्वेति । ज्ञान हि सम्यग्दर्शनसहितमेवायाति तत्प्राप्ती च यदाचिदपि
मिथ्यात्वमध्यगतो भवेत्तथापि जीव कोटाकोटिसागरप्रमितिकालाधिक कर्मबन्ध न करोति
“यधेण न धोल्ह कयावीति”वचनात् । एतदभिप्रायेण नन्दिपेणाधिकार महानिशीथसूत्रे ज्ञानगु
णोऽप्रतिपाती कथित । उत्तराध्ययनेऽपि यथोक्त “मूर्धं जहा समुत्ता ण णस्मई कयवरम्मि

पडियाई । इय जीवोवि ससुत्तो ण णस्सइ गओवि संसारो।१।” अत्र बृहत्कल्पगाथा चैयम्
 “गीयत्थे केवली चतुच्चिहे पन्नत्ते तं जहा जाणणेय १ कहणेय २ उद्धरागद्दोसे ३ अणंतका-
 यस्स वज्जणेण य ४।।” गाथा—“गीयत्थस्स वयणेणं विसं हालाहलं पिवे । अगीयत्थस्स वयणेणं
 अमयंपि न घुट्टए।१। अगीयत्थ कुसीलेहि संगं तिविहेण वोसिरे । मुक्खमग्गस्स ते विग्घं
 पहंमि तेणगे जह ।२।” “कर्तुमिच्छोः श्रुतार्थस्य ज्ञानिनोऽपि प्रमादिनः । कलादिविकलो
 योग इतीच्छायोगलक्षणम् ।१।” इति वचनं ललितविस्तरादौ ग्रन्थे । दृढकरणवाक्यमाले-
 यम् । अत्रावश्यकगाथा—“दंसणपक्खो सावय चरित्तनट्ठेय संदधम्मे य । दंसणचरित्तपक्खो
 समणे परलोककं खंमि ।१।” “मणेरिवाभिजातस्य क्षीणवृत्तेरसंशयम् । तात्स्थ्यात्तदञ्जनत्वाच्च
 समापत्तिः प्रकीर्त्तिता ॥ १ ॥ ६ ॥ ७ ॥”

व्याख्यार्थः—“मिथ्यात्वमूलाष्टक” इस छठे तथा “जानाति तत्त्वानि” इस
 सातवें इन दोनों श्लोकोंको मिलाके व्याख्या करते हैं । ज्ञान गुण जब आता है तब
 सम्यग्दर्शन सहित ही आता है और उस ज्ञानके प्राप्त होनेपर जीव कदाचित् मिथ्यात्वके
 बीचमें आजाय तो भी कोटाकोटि सागर प्रमाण कालसे अधिक कर्मबन्धन वह जीव
 नहीं करता है, क्योंकि—“जो ज्ञानी है वह कर्मबन्धसे संसारमे कभी नहीं डूबता” ऐसा
 वचन है । इसी अभिप्रायसे महानिशीथ सूत्रमे नन्दिपेण अधिकारमे ज्ञान गुण अप्रति-
 पाती कहा है अर्थात् ज्ञान गुण हुए पीछे पुनः उसका प्रतिपात (अधःपतन) नहीं होता
 है । और उत्तराध्ययनमे ऐसा कहा है कि “जैसे सूत्र (तागे) सहित सुई नष्ट
 नहीं होती किन्तु वस्त्र आदिमे प्रवेश करके पुनः निकल आती है, इसी प्रकार
 सूत्र (ज्ञान) सहित जीव भी संसारमे गया हुआ नष्ट नहीं होता है । १ ।” यहां
 यह बृहत्कल्पकी गाथा भी है—“गीतार्थ केवली जाननेवाले, कहनेवाले, रागद्वेषरहित,
 और अनन्तकायवर्जक इन भेदोंसे चार प्रकारके कहे गये हैं ।” “गीतार्थके वचनोंसे हाला-
 हल विषको पीना चाहिये और अगीतार्थके वचनोंसे अमृत भी नहीं पीना चाहिये ।१।”
 “अगीतार्थकुशीलोंका संसर्ग मन, वचन, कायसे छोड़ना चाहिये । क्योंकि, जैसे रास्तेमे
 चोर विघ्नकर्त्ता होते हैं वैसे वे भी मोक्षमार्गमें विघ्नके कर्त्ता हैं ॥ १ ॥” “शास्त्रके अर्थको
 करनेकी इच्छावाले प्रमादी ज्ञानीके जो कला आदिसे रहित योग है वही इच्छायोग
 कहलाता है, यह इच्छायोगका लक्षण है । १ ।” ऐसा वचन ललितविस्तर आदि ग्रंथोमे
 है । यह पूर्वोक्त जो वाक्यसमूह यहां दिया गया है सो इस विषयको पुष्ट करनेके लिये
 है । यहां आवश्यक गाथा भी है कि—“दर्शनपक्षको धारण करनेवाला श्रावक है । यह
 चारित्रसे नष्ट है, परन्तु धर्मसे आर्द्र है । और मुनि दर्शन तथा चारित्र दोनोंके पक्षको
 धारण करते हैं और परलोक अर्थात् अग्रिम भवोंका नाश करते हैं अर्थात् उसी भवसे
 मोक्ष जाते हैं । १ ।” “शुद्धरत्नकी तरह क्षीणवृत्ति जीवके उसमे रहनेपनेसे तथा उसके
 अंजनपनेसे समापत्ति कही गई है, यह कथन निस्सन्देह है ॥ १।६॥७॥”

सूत्रम् । ज्ञान हि जीवस्य गुणो विशेषो ज्ञान भवाब्धेस्तरणे सुपोत ।

ज्ञान हि मिथ्यात्वतमोविनाशो भानुः कृशानुः पृथुर्मर्मकक्षे ८

सूत्रभावार्थः—ज्ञान जो है वह जीवका विशेष गुण है, ज्ञान ससाररूपी समुद्रके तिरनेमें उत्तम नौका (अच्छा जहाज) है । ज्ञान मिथ्यात्वरूपी अधकारको नष्ट करनेमें सूर्यके समान है । ज्ञान विशाल कर्मरूपी काष्ठके भस्म करनेमें अग्निके समान है ॥ ८ ॥

सूत्रम् । ज्ञान निधान परम प्रधान ज्ञानं समान न बहुक्रियाभिः ।

ज्ञान महानन्दरस रहस्य ज्ञान पर ब्रह्म जयत्यनन्तम् ॥ ९ ॥

सूत्रभावार्थः—ज्ञान सर्वोत्तम खजाना है, ज्ञानही सत्रमें प्रधान है, ज्ञान अनेक क्रियाओंके समान नहीं है अर्थात् अनेक प्रकारके आचरणोंसे भी विशिष्ट ज्ञानही है, ज्ञानही महा आनन्दरूप सुखका देनेवाला रस है, ज्ञानही परमात्माका रहस्य है और अन्तरहित है, ऐसा ज्ञान सर्वोत्कर्षता करके वर्त्तता है ॥ ९ ॥

सूत्रम् । बाह्याचारपराश्च बोधरहिता इच्छाख्ययोगोद्धताः

ये केऽपि प्रतिसेवनाविधुरितास्ते निन्दिताः शासने ।

ये तु स्वच्छमनुच्छ्वास्मयकलाकौशल्यमाविभ्रति

सार्धोक्तामृतपानसादरधियस्तेभ्यो मुनिभ्यो नमः ॥ १० ॥

सूत्रभावार्थः—जो बाह्यरी क्रियाओंमें तत्पर हैं, ज्ञानकरके रहित हैं, इच्छायोगसे उद्धत हैं और ज्ञानादिकी सेवनासे रहित हैं, वे जीव जिनमतमें निन्दित समझे जाते हैं और जो अतिनिमल तथा विशाल ज्ञानकलाके कौशल्यको धारण करते हैं और सर्वज्ञके वचनरूपी अमृतके पीनेमें आदरपूर्ण बुद्धिकी धारण करनेवाले हैं, उन मुनियोंको मेरा नमस्कार है ॥ १० ॥

अथ प्रशस्ति ।

श्लोकः । श्रीवीरपद्माधिपतिर्बभूव सूरिः सुरवादिजयो यशस्वी ।

यस्मिन्समुद्रे विविशुः समग्रा विद्यासुनयश्च चतुर्दशापि ११

अथ ग्रन्थकार प्रशस्ति लिखते हैं ।

श्लोकार्थः—श्रीवीरके षट्ठके स्वामी, तथा यशके धारक श्रीरत्नविजयजी सूरि हुए, जिन रत्नविजयजी सूरिरूप समुद्रमें समस्त चौदह विद्यारूप उद्यम २ नदिये प्रविष्ट थीं अर्थात् सब विद्याओंके धारक रत्नविजयजी सूरि हुए ॥ ११ ॥

श्लोक । तत्पद्मोदयशैलमद्गततरविर्मिथ्यातमग्रासने

भक्ष्यान्मोक्षमासने सुविपुल ज्ञानाऽम्भार यत्न ।

कुम्भान्महातारतारकमिलदोषाविल पुष्कर

शोभायद्बिदधन्मभुव विजयाद्द्रीमत्क्षमाभीश्वर ॥ १२ ॥

श्लोकार्थः—उन रत्नविजयसूरिजीके पट्टरूपी उदयाचलके समागमसे सूर्यके समान, और मिथ्यात्वरूपी अंधकारको दूर करनेके लिये तथा भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये ज्ञानरूपी किरणोंके समूहको धारण करनेवाले और खोटे सिद्धान्तको ग्रहण करनेवाले अच्छे वादीरूप तारोंके संगमसे रात्रिपूर्ण आकाशको शोभायुक्त करने वाले ऐसे श्रीक्षमाविजयजी सूरि हुए ॥ १२ ॥

श्लोकः । मदनो निहतः स्वरूपतस्तरसा येन जितः सुराचलः ।

महसा सहसा सहस्ररुग्विजितः सौम्यतया सुधाकरः ॥१३॥

वचसा वचसामधीशिता कविताभिः कविरीशवत्तया ।

हरिरेव जितो यशस्विना विदुषा केन स चोपमीयते ॥१४॥

युग्मम् ।

श्लोकार्थः—यशके धारक जिन्होंने अपने रूपसे कामदेवको हराया, गुरुतासे सुमेरुको जीता, स्वभावसे उत्पन्न तेजसे सूर्यको जीता और सौम्यतासे चंद्रमाको जीता ॥१३॥ वचनसे बृहस्पतिपनेको, कवितासे शुक्रको और ऐश्वर्यसे इन्द्रको जीता. ऐसे उन आचार्योंको विद्वान् किसकी उपमा देवें अर्थात् जो उपमा देने योग्य पदार्थ थे उनको तो उन्होंने अपने गुणोंसे ही जीत लिया, अब उनको किसकी उपमा दी जावे ॥ १४ ॥ इन दोनों श्लोकोंको मिलाके अर्थ किया गया है, इस लिये युग्म है ।

श्लोकः । सरस्वती यस्य मुखान्निरन्तरा प्रकाशमासादयति प्रभाविनी ।

हिमाद्रिपद्मद्रहतो निरत्यया सरिद्वरेवामरलोकपूजिता ॥१५॥

श्लोकार्थः—जैसे हिमाचलके पद्मद्रहसे देव तथा मनुष्योंसे पूजित गंगानदी निरन्तर निकलती हैं, उसी प्रकार जिनके मुखसे प्रभावकी धारक सरस्वती सदा प्रकट होती रहती हैं ॥ १५ ॥

श्लोकः । यदीयकीर्तिर्ध्वलेष्टमूर्तिस्त्रिलोकसंपूर्तिमियर्ति नित्यम् ।

अनादिगङ्गैव जडस्वभावं विहाय वैशद्यमुरीचकार ॥ १६ ॥

श्लोकार्थः—उज्ज्वल इष्ट आकारको धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति सदा तीन लोकको पूर्ण (व्याप्त) कर रही है सो यह कीर्ति ऐसी सोहती है, मानो अनादि गंगाने अपने जड़ (जल) स्वभावको छोड़कर, सचेतनता (निर्मलता) को ही स्वीकार करलिया है ॥ १६ ॥

श्लोकः । अहो यदीयेन गुणोच्चेन विहाय संख्यां वबुधे यथास्वम् ।

अतः कणादोक्तगुणेषु दक्षा गुणत्वजातिं न तथा वदन्ति ॥१७॥

श्लोकार्थः—आश्चर्य है कि जिनके गुणोंका समूह संख्याको छोड़कर, इच्छानुसार

वृद्धिको प्राप्त हो गये । इसी लिये कणादके कहे हुए गुणोंमें चतुर जन गुणत्व जातिको वैसी नहीं कहते हैं ॥ १७ ॥

श्लोकः । यत्कीर्तिकान्ता व्यभिचारिणीव समुत्सुकैका त्रिदिवजगाम
तत्रामरस्पर्शविशिर्णिहारा तस्तार तारोपममौक्तिकैः खम् १८

श्लोकार्थः—जिनकी कीर्तिरूपी स्त्री व्यभिचारिणी स्त्रीकी नाई समुत्सुक होकर, एकहीही स्वर्गमें चली गई वहापर देवोंके ससर्गसे दूटे हारवाली होकर, तारोंके समान जो मोती है उनसे आकाशको आच्छादित करती हुई । भावार्थ—ये आकाशमें तारे नहीं हैं, किन्तु उन आचार्योंकी कीर्तिरूप स्त्रीके हारमेसे दूटे हुए मोती हैं ॥ १८ ॥

श्लोकः । अहीनो नोऽहीनो यदपि वपुषा भूभरजुषा
तथाप्यास्ये वाणी हसति तच्छैषीति भणनात् ।

अतस्त्वादेर्वाह्मीभणननियमश्चेतसि कृत-

त्रिकालत्रैलोक्यत्रिपदमयसन्दर्भविततः ॥ १९ ॥

श्लोकार्थः—यद्यपि वे पृथ्वीको धारण करने रूपगुणसे शोभायमान शरीरसे अहीन अर्थात् उत्तम थे, तथापि अहि+इन=अहीन अर्थात् शेषनागजी नहीं थे, और उनके मुखमें जो वाणी है वह शैषी इस नामके कहनेसे शब्द करती है, इसी लिये उन्होंने अपने मनमें तीन काल, तीन लोक और तीन रत्नोंको रचनासे प्रसिद्ध ओंकाररूप आदिकी ब्रह्मसयन्धी वाणीके कथन करनेका नियम किया ॥ १९ ॥

श्लोकः । स एष गच्छाधिपतिर्विभाति सूरेश्वरः श्रीविजयाद्याख्यः ।
यस्य प्रभावेण च पञ्चमेऽपि चतुर्थभाव समवाप धर्मः ॥२०॥

श्लोकार्थः—वे उपरोक्त गुणोंके धारक ये गच्छके स्वामी श्रीदयाविजयजी नामक सूरेश्वरजी सर्वोत्तम रूपसे प्रकाशमान हो रहे हैं, जिनके प्रभावसे पचमकालमें भी धर्म चतुर्थकालपनेको प्राप्त हुआ अर्थात् पचमकालमें भी चतुर्थकाल जैसी धर्मोन्नति हुई ॥ २० ॥

श्लोकः । तैरनुग्रहधिया विधिरेप दर्शितो मयि च शास्त्रसमुत्थः ।
तत्कृते च मयका रचितोऽय ग्रन्थ आगमपदैश्च पुराणैः ॥२१॥

श्लोकार्थः—उन श्रीदयाविजयजी सूरेश्वरजीने ही कृपानुद्धिसे मुझमें शास्त्रका ज्ञान दर्शाया है (प्रकट किया है) और इस लिये उन्हींकी प्रसन्नताके लिये प्राचीन सिद्धान्तोंके पदोंसे यह (द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक) ग्रन्थ मैंने रचा है ॥ २१ ॥

श्लोकः । तद्गच्छपुष्करदिवाकररश्मिलुल्याः

श्रीभावसागर इति प्रथिताभिधानाः ।

तदन्तिषच्छ्रीविनितादिवारां

निधीश्वराः शास्त्रविचारदक्षाः ॥ २२ ॥

श्लोकार्थः—उस गच्छरूपी कमलको सूर्यकी किरणके समान, श्रीभावसागरजी इस नामसे प्रसिद्ध सूरि हुए और उनके शिष्य शास्त्रविचारमें चतुर श्रीविनीतसागरजी हुए ॥ २२ ॥

श्लोकः । तेषां विनेयलेशेन भोजेन रचितोक्तिभिः ।

परस्वात्मप्रबोधार्थं द्रव्यानुयोगतर्कणा ॥ २३ ॥

इति श्रीद्रव्यानुयोगतर्कणायां कृतिभोजविनिर्मितायां

समाप्तिसन्दर्भाध्यायः पञ्चदशः ।

श्लोकार्थः—उन श्रीविनीतसागरजीके तुच्छ शिष्य मुझ भोजसागरने परके तथा निजके प्रबोधके लिये वचनोंसे इस द्रव्यानुयोगतर्कणाको निर्मित किया ॥ २३ ॥

श्लोकः । श्रीगुरोश्चरणद्वन्द्वसरसीरुहसेवया ।

ठाकुरप्रसादविदुषा ग्रन्थोऽयं समनूदितः ॥ १ ॥

इति श्रीपण्डितठाकुरप्रसादप्रणीतभाषानुवादसमलङ्कृतायां द्रव्यानुयोगत-

र्कणायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

। सं भूयात् ।



